अनुक्रम

आलोचना खण्ड

व्याख्या खण्ड

प्रियप्रवास

हरिऔध का जीवन-वृत्त

जीवन परिचय:—हिन्दी कविता के विकास की अपनी कहानी है। इस विकास में हरिऔध का अपना योगदान रहा है। खड़ीबोली कविता को प्रारम्भिक पथ दिखलाने वाले कवि हरिऔध का जन्म वैशाख कृष्णा ३ सं० १९२२ विक्रम तदनुसार १५ अप्रैल, सन् १८६५ ई० में जिला आजमगढ़ के अन्तर्गत निज़ामाबाद नामक स्थान पर हुआ था। ये अगस्त गोत्रीय शुक्ल यजुर्वेदीय शाखा के सनाढ्य ब्राह्मण थे। इनके पूर्वज मुगल सम्राट जहाँगीर के राज्य काल में दिल्ली में रहा करते थे किन्तु इन्होंने इसे छोड़ दिया और बदायूं जिले में आकर बस गये। बदायूं जिले में अभी तक इनके पूर्वजों का मकान बना हुआ है। दिल्ली छोड़ने के पीछे मुगल बादशाहों का क्रोध बताया जाता है। कहा जाता है कि एक बार मुगल सम्राट किसी जातीय दुश्मनी के कारण दिल्ली-निवासी गौड़ कायस्थों से अति रुष्ट हो गये। राजा ने इस परिवार को पूरी तरह नष्ट करने की योजना बना डाली। समय की बात है कि ये सभी शीघ्र ही काल कवलित हो गये। राजा के मन में यह विश्वास जम गया कि अब गौड़ कायस्थ नाम मिट गया और हमेशा के लिए ही नष्ट हो गया है, किन्तु वस्तुस्थिति ऐसी न थी।

पंडित काशीनाथ उपाध्याय द्वारा दो स्त्रियों को और उनकी सन्तानों को अपने घर में छिपा कर रखा हुआ था। कुछ ही समय पश्चात् यह सूचना राजा को भी मिल गई। जहांगीर के पूछने पर कि ये कौन हैं, उपाध्यायजी ने उन्हें सनाढ्य ब्राह्मण बताया। इसके साथ ही राजा की आज्ञा हुई कि पंडित काशीनाथ यदि इन स्त्रियों के हाथ का बनाया हुआ भोजन करें तो यह असत्य मान लिया जायगा कि ये कायस्थ हैं। उपाध्यायजी इस कसौटी पर खरे उतरे और उन्होंने राजा के मन में विश्वास जमाने के लिए उन स्त्रियों के हाथों का बनाया हुआ भोजन कर लिया। यह कार्य सच्चे मानवीय धर्म का पोषक था। इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं कि इनके पूर्वज बड़े ही कर्त्तव्यनिष्ठ और परोपकारी थे, तभी तो इस प्रकार के कार्य में सफल उतरे। इतने पर भी पंडित काशीनाथ दिल्ली में नहीं ठहर सके और विवशता और भय के कारण निजामाबाद में आकर रहने लगे। हरिऔध के समय ब्राह्मण परिवारों में संकीर्णता और कट्टर धर्म-प्रियता का साम्राज्य था, किन्तु हरिऔध के वंश वाले इसे औरों की तुलना में कम महत्त्व दिया करते थे। पंडित काशीनाथ से सम्बन्धित उक्त घटना इसका प्रमाण है।

माता-पिता:— हरिऔध के पिता पंडित भोलासिंह अनुशासन प्रिय और शान व प्रतिष्ठावान व्यक्ति थे। वे सदैव मर्यादाओं का ध्यान रखते थे। जमीदारी की सभी विशेषताएं हरिऔध में विद्यमान थीं। एक विद्वान् लेखक

का कथन है कि पं० भोलासिंह के भाई पं० ब्रह्मासिंह में ब्राह्मणत्व का विकास हुआ था। वे विद्वान् और साहित्यिक थे, वह निःसंतान थे अतः हरिऔध की देखरेख उन्होंने ही की। इस प्रकार हरिऔध में जहाँ पिता का आभिजात्य मिलता है वहीं पितृव्य की विद्वता भी मिलती है। इसके अतिरिक्त हरिऔध पर उनकी माता का बहुत प्रभाव पड़ा। कहा जाता है कि हरिऔध की माताजी बड़ी आस्तिक थीं। "श्रीमती रुक्मिणी देवी का गृहस्थ जीवन विशेष सुखमय नहीं था। अतः स्वभावतः भगवान के प्रति उनकी आसक्ति बढ़ गई थी। वह प्रकृति से अत्यधिक उदार और भावुक थीं। रामायण और सुखसागर को पढ़ती और रोती रहती थीं। बालक हरिऔध की भावुकता का स्रोत यही है।"

डा० विश्वंभर उपाध्याय ने इसी से यह निष्कर्ष निकाला है कि बचपन में ही हरिऔध भावुक थे क्योंकि माता के आंसू उन्हें रामायण और सुख-सागर के मार्मिक स्थलों के पात्रों की मानसिक दशाओं का स्मरण करने की शक्ति उत्पन्न कर रहे थे। किसी परिस्थिति में पात्र पर क्या बीतती है और उस समय कैसा अनुभव होता है, उस समय शरीर व मन पर कैसा होने लगता है—यह ज्ञान काव्य कला के लिए अनिवार्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि सरस्वती ने ही माता के रूप में बालक हरिऔध को दीक्षा दी। पिता का स्वभाव उग्र और अनुशासन प्रिय था। अतः इसके विपरीत गुणों का विकास हरिऔध में हुआ क्योंकि आतंक से भयभीत बालक माता की गोद में ही मुख छिपा सकता था।

वस्तुतः हरिऔध को आगे बढ़ाने में तथा उचित शिक्षा-दीक्षा दिलाने में इनके पितृव्य ब्रह्मासिंह का विशेष हाथ रहा है। इन्होंने उन्हीं के सम्पर्क में रह कर संस्कृत आदि की शिक्षा ग्रहण की तथा अपने जीवन का विकास किया। इनके (हरिऔधजी) जीवन के वंशवृक्ष को इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं। यह जानकारी हरिऔध और उनका साहित्य नामक पुस्तक के आधार पर दी जा रही है—

[हरिऔध की वंशावली पृष्ठ ३ पर देखें]

यह वंशावली प्रस्तुत की गई है जिससे हरिऔध के पूरे वंश का चित्र और उनके पूर्वजों की नामावली स्पष्ट हो जाती है। स्पष्ट ही कवि के एक भाई और एक बहिन थी। इनमें से हरिऔधजी का लालन-पालन ब्रह्मासिंह के सौजन्य से हुआ, अतः विशिष्ट शिक्षित हो गये।

शिक्षा-दीक्षा और विवाह—हरिऔधजी ने किसी स्कूल विशेष में शिक्षा प्राप्त नहीं की। सातवें वर्ष में ये निजामाबाद के साधारण से स्कूल में भर्ती कराये अवश्य गये किन्तु आगे की शिक्षा घर पर ही हुई। इनके ताऊजी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। वे ही इन्हें घर पर पढ़ाया करते थे। आगे चलकर क्वीन्स कालेज में भी अंग्रेजी पढ़ने गये जो बनारस में था किन्तु कुछ कारणों से वहां रह नहीं सके। अतः घर पर ही इन्होंने संस्कृत, फारसी और बंगला आदि को बड़ी रुचि के साथ पढ़ा। आगे चलकर धीरे-धीरे हरिऔधजी भजन, कीर्तन और कविगोष्ठियों आदि में भाग लेने लगे। इनके थोड़े से स्कूली जीवन में कुछेक बड़ी मनोरंजक और प्रेरणाप्रद घटनायें

घटित हुईं। उनमें से कुछ का उल्लेख 'हरिऔध और उनका साहित्य' के लेखक ने किया है—"एक बार हरिऔध ने प्रिन्सीपल डाक्टर वेनिस के बाग से एक फूल तोड़ लिया। प्रिन्सीपल ने बालक हरिऔध को समझाया—देखो बेटे भविष्य में अब कभी फूल मत तोड़ना। डाल में रहकर वह अनेक का मन आकर्षित करेगा। तुम्हारे हाथों में तो वह दो क्षणों में ही समाप्त हो जायगा।" कहते हैं कि हरिऔध के जीवन पर इस घटना का विशेष प्रभाव पड़ा।

(जन्म संवत् १९२२ विक्रमीय)
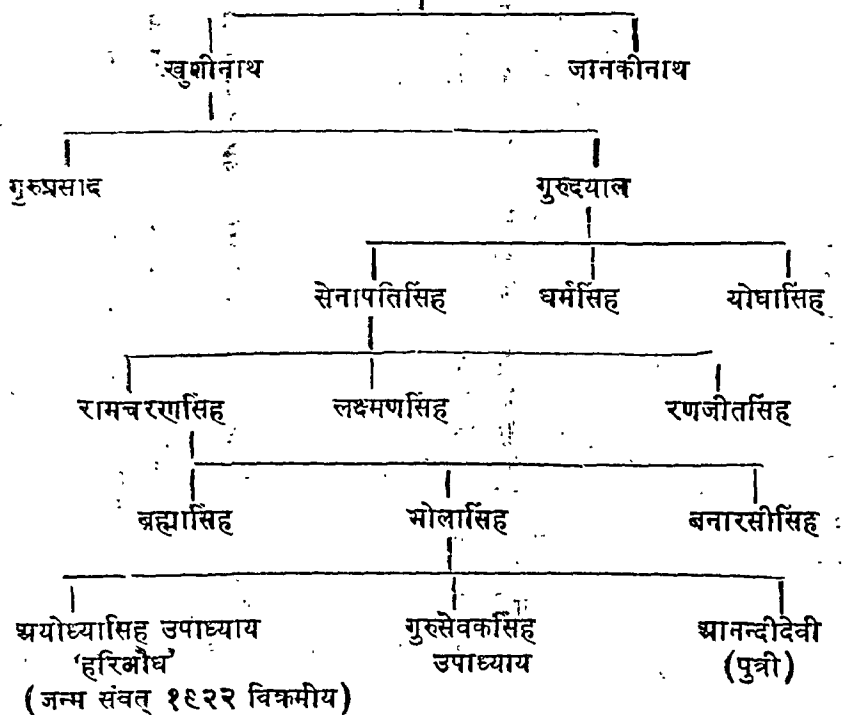
हरिऔध अपने आत्मज्ञान से ही कविता में रुचि लेने लगे। बचपन से ही हरिऔध कविता की ओर झुके और फिर इसी रुचि को विकसित करने के लिए वे भजन कीर्तनों को छोड़कर साहित्यिक संस्थाओं में जाने लगे। इन्होंने बचपन में अपना उपनाम हरिसुमेरसिंह रख लिया।

हरिऔधजी का विवाह सन् १८८२ में बलिया जिले के अन्तर्गत सिकन्दरपुर ग्राम के निवासी पंडित विष्णुदत्त मिश्र की कन्या अनन्तकुमारी के साथ हो गया। इनका पारिवारिक जीवन आर्थिक दृष्टि से बहुत अच्छा नहीं था। अतः विवाहोपरांत सन् १८८४ में ही हिन्दी मिडिल स्कूल में

अध्यापन का कार्य प्रारम्भ कर लिया। नार्मल की परीक्षा भी दी जो प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् १८९० में आप काननगो हो गये। ये अपनी नौकरी के प्रति विशेष सचेष्ट थे और त्यागपूर्ण जीवन के अनुयायी थे। अतः सदर कानूनगो के पद पर आसीन कर दिये गये।

समय की बात कि पत्नी का देहान्त हो गया। शादी भी दुबारा नहीं की। सन् १९२३ में सरकारी नौकरी से अवकाश ले लिया। हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रति हरिऔध का विशेष अनुराग था। इनकी साहित्यिक अभिरुचि और साहित्यिक चेतना को देखकर मदनमोहनजी मालवीय ने इन्हें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी पढ़ाने का कार्य-भार सौंप दिया। इन्होंने इस कार्य को बड़ी प्रसन्नता और लगन के साथ निभाना शुरू कर दिया। कविता के क्षेत्र में भी धीरे-धीरे ख्याति बढ़ती गई और इन्हें 'कवि सम्राट' की उपाधि से विभूषित किया गया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने हरिऔधजी को विद्यावाचस्पति की उपाधि से विभूषित किया। इसी समय उन्हें 'प्रिय-प्रवास' नामक महाकाव्य पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला। काशी विश्वविद्यालय का जीवन जैसे ही समाप्त हुआ ये आजमगढ़ आकर रहने लगे। समय और काल की गति विचित्र है। काल की क्रूरता देखिये कि हिन्दी साहित्य की इस विभूति को उसने ६ मार्च १९४७, को हमारे बीच से उठा लिया। अब हरिऔधजी के साहित्य के माध्यम से ही हम उन्हें जान और समझ सकते हैं।

व्यक्तित्व—हरिऔधजी का व्यक्तित्व अपने ढंग का था। उनके जीवन के अध्ययन से पता चलता है कि वे बहुत ही सरल स्वभाव और उच्च विचारों के व्यक्ति थे। हरिऔध अभिनन्दन ग्रन्थ में लिखा है—आपके छोटे भाई पण्डित गुरुसेवकसिंह तो वंश–परम्परा का परित्याग करके सिक्खों की वेष–भूषा छोड़ बैठे थे, और पूर्णतया पाश्चात्य सभ्यता में रंग गये थे, परन्तु हरिऔधजी अन्त तक अपनी परम्परा का पालन करते रहे। आप लम्बे केश तथा दाढ़ी रखते थे। आपकी मुखाकृति अत्यन्त आकर्षक थी। आपका शरीर दुबला-पतला और रंग गेहुंआ था। वैसे मुख पर सदैव तेज विद्यमान रहता था, परन्तु कुछ दिनों तक अर्श रोग से पीड़ित रहने के कारण अन्तिम दिनों में आपके चेहरे पर चिन्ता की क्षीण रेखायें विद्यमान रही आती थीं। आप घर पर प्रायः कमीज, वास्कट तथा पाजामा पहनते थे, परन्तु अन्य सार्वजनिक स्थानों पर जाते समय श्वेत पगड़ी, शेरवानी, पाजामा, अंग्रेजी जूते तथा मोजे धारण किया करते थे। गले में दुपट्टा भी डालते थे। वैसे खद्दर पहनने के विशेष शौकीन नहीं थे।

हरिऔध के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता थी, सरलता और सहृदयता। वे अपने सभी इष्ट मित्रों के बीच तथा सामान्य अवसरों पर भी इन दोनों गुणों का परिचय दे दिया करते थे। कवि-सम्राट होकर भी सबसे मिलने-जुलने में विशेष रुचि रखते थे। घर पर आये का, चाहे वह छोटा हो या बड़ा—परिचित हो या अपरिचित यथोचित सम्मान किया करते थे। हरिऔधजी के शिष्टाचार और व्यवहार से सभी संतुष्ट थे।

हरिऔधजी मिलनसार के साथ ही साथ आतिथ्य सत्कार प्रिय भी थे। इस विषय में वे विशेष सचेष्ट रहते थे। श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

ने लिखा है कि "इस भय से कि अतिथि को किसी प्रकार का कष्ट न हो जाय, वे उसकी सुविधा की समस्त वस्तुओं से जानकारी प्राप्त कर लेते थे। वे अतिथि के चारों ओर इतने गुप्तचर तैनात रखते कि वह किसी संकोचवश झूठ बोल कर भूखा नहीं रह सकता था। कभी-कभी तो अतिथि को उनकी इतनी निगरानी से वास्तव में क्लेश होने लगता, क्योंकि उसकी छोटी से छोटी बात का पता भी हरिऔधजी को बराबर मिलता रहता।"

हरिऔधजी के स्वभाव के विषय में दो विशेष बातों का उल्लेख पंडित गुरुसेवक उपाध्याय ने किया है—एक तो यह कि वे संदेह बहुत ही शीघ्र करने लगते और दूसरी यह कि उनमें कविजनोचित रसिकता का कुछ अंश देखा जाता है। संदेह की उपयोगिता बताते हुए उन्होंने कहा कि सरकारी नौकरी में इसने उनकी बड़ी सेवा की है, क्योंकि इसके कारण वे अपना काम आवश्यकता और उचित समय के पहले ही बिल्कुल ठीक रखते थे।

हरिऔधजी प्रकृति के पुजारी थे। वे प्रकृति को विशेष स्नेह करते थे। उनकी रुचि थी कि इससे अधिक सुखदायक और आकर्षक कोई दूसरा तत्व सृष्टि में नहीं है। प्रकृति ने ही हरिऔधजी को रुचिकर और सुन्दर वस्तुओं का प्रेमी बना दिया था। वे कानूनगो की नौकरी से जब भी कभी विरस होते या ऊब जाते तो तुरन्त बगिया की ओर चले जाते और गुलाब की पंखड़ी पर बैठे और रस लेते भ्रमर को देख कर आनन्दित होते थे। प्रकृति की गोद में सुख को प्राप्त करने वाले हरिऔध ने स्वयं ही अपने प्रकृति प्रेम का उल्लेख किया है—"घन पटल का वर्ण वैचित्र्य, शस्य श्यामला धरिणी, पावस की प्रमोदमयी सुषमा, विविध विटपावली, कोकिला का कलरव, पक्षिकुल का कल निनाद' शरदऋतु, की शोभा, दिशाओं की समुज्ज्वलता ऋतुपरिवर्तनजनित प्रवाह, अनन्त प्राकृतिक सौन्दर्य, ज्योत्स्ना-रंजित-यामिनी, तारक-मंडित नील नभोमंडल, सुचित्र विहंगावली. पूर्णिमा का अखिल कलापूर्ण कलाधर, मनोमुग्धकर दृश्यावली, सुसज्जित रम्य उद्यान, ललित लतिका मनोरम पुष्पचयन मेरे आनन्द की प्रिय सामग्री है, किन्तु, पावस की सरस छवि, वसंत की विचित्र शोभा; कोकिल का कुहक और किसी कलकंठ का मधुर-गान, वह भी भावमयी कविता-बलित मुझको उन्मत्त प्राय कर देते हैं।"

प्रियप्रवास का प्रकृति वर्णन इसी संदर्भ में देखा जा सकता है। प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति मुग्ध होने के कारण ही आपकी कविता में सरलता और मंजुलता दिखाई देती है। उनके द्वारा किये गये वार्तालाप के दौरान हम इस रसिकता को देख सकते हैं। यों उनकी बातों में रसिकता, वेदना, रोष, निराशा और व्यंग्य सभी का समावेश रहता था। वे मानव-प्रकृति के सच्चे पारखी भी थे। प्रकृति के मनोरम सौन्दर्य की भांति मानव सौन्दर्य की विविध झांकियां उनके साहित्य में देखी जा सकती हैं। समाज सेवा, लोकानु-रंजन,लोकोपकार, विश्व-बंधुत्व, समानता और व्यक्ति की स्वतंत्रता के वे विशेष प्रेमी थे। इस प्रकार के विचारों के बाह्य वर्णन उनके काव्यों में मिलते हैं। 'प्रियाप्रवास' तो इसका ज्वलंत प्रमाण है।

हरिऔध के व्यक्तित्व में भावुकता ने दो काम किये—एक ओर तो वे चारित्रिक दृढ़ता को विकसित करते गये और दूसरी ओर साहस का अभाव

भी विकसित होता गया। भावुकता के दौर में फंस कर वे भीरु या डरपोक बनते गये। स्वाभाविक था, हरिऔध जैसे भावुक का डरपोक बनना। उनको भीरु बनाने में माता का भी योग पर्याप्त मात्रा में रहा है। हरिऔध की माताजी सदैव यह प्रयत्न करती रहीं कि मेरे लाल को कोई कष्ट न हो। इससे हरिऔध लाड़-प्यार में पलते रहे। विषाद और कष्टों से हरिऔध को सभी प्रकार से दूर रखा गया। उनकी माता के मन में सदैव यह भाव रहा कि **"मेरे लाल को कोई कष्ट न हो"** कष्ट और विवादों से बचे रहने वाले बच्चे सहिष्णु नहीं बन पाते हैं। क्वीन्स कालेज में रहते समय कोठरी के पास से ही श्मशान का मार्ग था। वहां से जाने वाले मुर्दों के साथ 'राम नाम सत्य है' की ध्वनि ने हरिऔध को भयातुर और कारुणिक बना दिया। कवि की संवेदना में जैसे और अधिक विकास हुआ।

हरिऔध के व्यक्तित्व में आदर्शवादिता कूट-कूट कर भरी थी। प्राचीन आदर्श उनकी श्रद्धा के पात्र थे। यह श्रद्धा उन्हें अन्धविश्वास की सीमा तक नहीं ले गई यह अच्छा ही हुआ। धर्मों में कोई भी धर्म बुरा नहीं होता—सभी में कुछ न कुछ अच्छाई होती है। भजन-पूजन को विशेष महत्व नहीं देते थे, किन्तु सनातन धर्म में विशेष श्रद्धा रखते थे। एकेश्वरवादी हरिऔध प्रायः सभी देवी देवताओं को आदर व्यक्त करते थे। ईश्वर को मानते तो थे, किन्तु बौद्धिकता के विकास के कारण उसे तार्किक दृष्टि से देखते थे। वस्तुतः हरिऔध का समय ही वह था जबकि बौद्धिक वातावरण विकसित हो रहा था और वे अपनी चिन्तना और विचारणा में बौद्धिक तत्वों को महत्व देते जा रहे थे। सुधारवादी आन्दोलनों के साये में जो नवीन दृष्टि विकसित हो रही थी, उसी ने प्रियप्रवास को और उनकी रचनाओं को विशिष्टता प्रदान की।

वे (हरिऔधजी) हिन्दू धर्म और धार्मिक ग्रन्थों के प्रति श्रद्धा तो रखते थे, किन्तु इस विषय में "उनकी नीति व्यापक धार्मिक सहिष्णुता की विरोधिनी नहीं होती, वे ममता या मोहवश किसी पर अन्याय नहीं करते। उदाहरणार्थ वेदों की प्राचीनता और महत्ता तो निर्विवाद है। उनमें आर्यों के जिस महान जीवन का चित्र अंकित है उसकी झलक आज भी मानव जाति के लिए एक सन्देश है।"

कवि की ये पंक्तियाँ देखिये कितना गहरा सन्देश है—

हमारे बड़े ये बड़ी सूझ वाले।
हुए हैं सभी बात ही में निराले॥
उन्होंने सभी ढंग सुन्दर निकाले।
जगत में बिछे ज्ञान के बीज डाले।
उन्हीं का अछूता वचन लोक न्यारा।
गया वेद के नाम से है पुकारा।
चला कौन कब वेद से कर किनारा।
उसी से मिला खोजियों को सहारा।
किसी को बनाया किसी को सुधारा।
उसी ने किसी को दिया रंग न्यारा।

उसी से गयी आंख में जोत आई ।
बहुत से उरों की हुई दूर काई ।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि हरिऔधजी हिन्दी के गौरव थे । भाषा के विधायक, सशक्त आलोचक और सहृदय कवि तीनों ही रूप उनके साहित्यकार में प्राप्त होते हैं। वे पूर्णत: भारतीय थे, सरल, मधुर और मिलनसार स्वभाव उनके व्यक्तित्व की विशेषता थी । वे स्वभावत: नम्र, सरल, दृढ़ और कार्यशील थे—दूसरे शब्दों में परिश्रमी थे । उनका जीवन विविध परिस्थितियों में व्यतीत हुआ । उन्होंने कानूनगो के पद पर नौकरी की—कविता की और इस प्रकार एक नयी चीज साहित्य-जगत के समक्ष प्रस्तुत की । उनकी वृत्ति और प्रवृत्ति में समानता नहीं रही फिर भी वे दोनों को चलाते रहे । हां, अन्त में अपनी प्रवृत्ति या रुचि की ओर ही अग्रसर हुए । एक ओर जीविका का प्रश्न जिसका मार्ग भिन्न था और दूसरी ओर रुचि जिसे सांसारिक बाधाओं की गलियों से गुजरना पड़ा किन्तु हरिऔध ने दोनों का निर्वाह किया । यही उनके व्यक्तित्व और जीवन की सफलता थी ।

हरिऔध की साहित्य-साधना

हरिऔध के जीवन वृत्त का परिचय मिल जाने पर यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि इन्हें प्रारम्भ से ही कविता करने का शौक था । वे साहित्यिक चेतना सम्पन्न व्यक्ति थे । नौकरी और अन्य कार्य करते समय भी उनकी साहित्यिक चेतना कभी भी मरी नहीं । वे निरन्तर साहित्यिक प्रगति करते रहे । उनकी निरन्तर प्रगति उनके साहित्यिक सौरभ को नव्यता प्रदान करती रही ! इनकी प्रतिभा असाधारण थी । बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न कलाकार हरिऔध ने पद्य और गद्य दोनों ही क्षेत्रों में अपनी चेतना का विकास किया । एक ओर मौलिक ग्रन्थों की सृष्टि की तो दूसरी ओर अनूदित ग्रन्थों की सर्जना भी की ।

हरिऔध की मौलिक कृतियों को चार वर्गों में बांटा जा सकता है—

(१) **उपन्यास**—ठेठ हिन्दी का ठाठ और अधखिला फूल ।
(२) **महाकाव्य**—प्रियप्रवास और वैदेही वनवास ।
(३) **आलोचनात्मक ग्रंथ**—(अ) हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास ।
(ब) कबीर वचनावली की आलोचना ।
(स) साहित्य संदर्भ ।

(४) **स्फुट काव्य संग्रह**—चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, बोलचाल, रसकलश, पद्यप्रसून, कल्पलता, पारिजात, ऋतुमुकुर, काव्योपवन, प्रेम प्रपंच, प्रेम पुष्पहार, प्रेमाम्बु प्रश्रवण, प्रेमाम्बु प्रवाह, प्रेमाम्बु वारिध और हरिऔध सतसई ।

हरिऔध की अनूदित रचनाएं भी दो प्रकार की हैं—
(अ) गद्य विषयक ।
(ब) पद्य विषयक ।

इन्होंने निबंध, कहानी और उपन्यासों के अनुवाद भी प्रस्तुत किये । इस परिचय से पता चलता है कि हरिऔध की साहित्यिक प्रतिभा बहुमुखी

थी। उन्होंने अपनी साहित्यिक चेतना का प्रसार विविध साहित्यिक क्षेत्रों में किया। गद्य और पद्य और उनमें भी कहानी, उपन्यास और कविता सभी में अपनी योग्यता का परिचय दिया है। हरिऔध जी ने हिन्दी की खड़ी बोली के प्रारम्भ से लेकर विकास तक अपने आपको दृढ़ता के साथ साहित्य से सम्बद्ध रखा। खड़ी बोली के आन्दोलन मे हरिऔध ने सक्रिय भाग लिया।

गद्य साहित्य के अन्तर्गत उपन्यासों का महत्व है। सबसे पहले आपने ठेठ हिन्दी का ठाठ नामक उपन्यास लिखा। इसमें हिन्दू समाज की विवाह विषयक एक निकृष्ट रीति को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया। कथावस्तु पर्याप्त सरल और मार्मिक है साथ ही वस्तु में स्वाभाविकता और सजीवता है। यों सामान्यतः इसमें औपन्यासिक तत्वों और कलन का अभाव खटकता है।

इसके पश्चात् 'अधखिला फूल' उपन्यास सामने आया। इसमें उस समय के विलासी जमींदारों का नग्न वर्णन किया गया है। प्रकृति चित्रण मोहक और चरित्र-विधान आदर्शवादी शैली में किया गया है। उपन्यास विषयक कला इनमें भले ही न हो, किन्तु इनकी महत्ता समकालीन संदर्भ और भाषा के नमूने को प्रस्तुत करने के कारण विशिष्ट अर्थ रखती है।

हरिऔधजी ने 'रुक्मिणी परिणय' और 'प्रद्युम्न विजय' नामक दो नाटक भी लिखे। पहले नाटक के संवाद प्रायः अधिक लम्बे और अस्वाभाविक हैं। प्राचीन नाट्य-शैली को यहां देखा जा सकता है, कवितांशों में व्रज भाषा का प्रयोग है, किन्तु नाट्य-कला का भी सर्वथा अभाव मिलता है। 'प्रद्युम्न विजय' भारतेन्दु बाबू के 'धनंजय व्यायोग' के उपरान्त हिन्दी का दूसरा व्यायोग माना जाता है। इसमें शम्बरासुर के वध की कथा कही गई है। नाट्य-कला के दर्शन यहां भी नहीं होते हैं।

इतिहास और आलोचना भी हरिऔध से अछूते नहीं रहे हैं। आपने पटना विश्वविद्यालय के लिए हिंन्दी साहित्य के इतिहास पर व्याख्यान तैयार किये। इनके इतिहास विषयक ग्रन्थमें भाषा-विज्ञान का पुट है। भाषा के स्वरूप, उसके उद्गम और विकास आदि पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसमें उर्दू भाषा के कवियों पर भी प्रकाश डाला गया है। 'रसकलश' की भूमिकाके अन्तर्गत हरिऔधका आलोचना साहित्य सामने आजाता है। इसके अन्तर्गत रस विषयक अपनी मान्यताओं का निरूपण किया गया है। रस आनंदस्वरूप है। रीति कालीन नायिका भेद की भर्त्सना करते हुए भी आपने शृंगार रस के रसराजत्व का बड़ा सुन्दर विवेचन किया है। 'कबीर वचनावली' की भूमिका की भूमिका में भी कवि का आलोचक रूप देखा जा सकता है। इसमें कवि की समृद्ध भाषा, समीक्षा-पद्धति और आलोचना सर्वथा प्रशंसनीय है। बोलचाल की भूमिका भी काफी विस्तृत है। इसमें बोलचाल की भाषा ठेठ हिन्दी तथा हिन्दुस्तानी भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी सम्यक आलोचना की गई है। इनके अतिरिक्त 'प्रिय प्रवास' और 'वैदेही वनवास' की भूमिका भी महत्वपूर्ण है।

ग्रन्थों का अनुवाद भी किया है। डाक्टर द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि सभी अनूदित ग्रन्थों की भाषा ठेठ हिन्दी है और सभी ग्रन्थ मौलिक से जान पड़ते हैं, आपने फारसी ग्रन्थ 'गुलिस्तां' के आठवें अध्याय का

अनुवाद–'उपदेश–कुसुम' तीन भाग के नाम से किया था। गुलज़ार-दविस्तां का अनुवाद विनोद-वाटिका के नाम से किया गया। ये ग्रन्थ शिक्षाप्रद हैं। अनुवाद पूर्णत: सफल है, मूलभाव कहीं भी विशृंखलित नहीं हुआ है। यद्यपि मूलग्रन्थों के दृष्टान्तों में कवि ने कुछ परिवर्तन किया है, किन्तु मुख्य ग्रन्थ का आशय विनष्ट नहीं हो पाया है।"

प्रिय प्रवास और 'वैदेही वनवास' प्रबन्ध कृतियां हैं और सभी रचनाओं की अपेक्षा श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण है। पत्नी का देहांत होने पर नई शादी नहीं की। साधारणत: व्यक्ति शादी कर लेते हैं, किन्तु कवि ने पुनः विवाह न करने की प्रतिज्ञा की। कुछ लोगों की मान्यता है कि यही प्रिय प्रवास की तैयारी थी। खैर इतना सच है कि प्रिय प्रवास का सृजन कार्य पत्नी के देहांत के तीन वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ। स्मरणीय यह है कि प्रिय प्रवास जब लिखा गया उस समय बौद्धिक वातावरण तैयार हो रहा था। प्रिय प्रवास में कृष्ण के ब्रह्ममय रूप का निर्देशन रवीन्द्र के रहस्यवाद से अद्‌भुत सादृश्य रखता है। अतः रवीन्द्र के संदर्भ से भी हरिऔध को देखना होगा। "अत: प्रिय प्रवास केवल संधियुग का काव्य नहीं है, अपितु उसमें द्विवेदी युगीनता के अतिरिक्त छायावादी युगीन तत्व भी पाये जाते हैं।" वैदेही वनवास भी एक ऐसा ही काव्य है। इसके १८ सर्गों में भी इतिवृत्तात्मकता और उपदेशात्मकता का प्राधान्य है।

यह तो रहा हरिऔध की काव्य कृतियों का संक्षिप्त, किन्तु गम्भीर परिचय, अब उनकी काव्यकला के क्रमिक विकास को विस्तार से समझना अपेक्षित है।

काव्यकला का क्रमिक विकास—हरिऔध भारतेन्दु की परम्परा के कवि थे। उनमें भारतेन्दु की सी भावुकता और सृजन-शक्ति थी। यद्यपि यह ठीक है कि हरिऔध भारतेन्दु के उत्तरार्ध में काव्य क्षेत्र में आये, किन्तु भारतेन्दु की सी ब्रज भाषा शैली इनके समय में भी प्रचलित थी। सबसे पहले हरिऔध ने भी ब्रज भाषा में ही लिखना प्रारम्भ किया। इन्होंने कृष्णशतक की रचना कर डाली। दोहों के संग्रह के रूप में इस कृति में कृष्ण को ब्रह्म मान कर रचनायें प्रस्तुत की गई हैं। देखिये—

> नमत त्रिगुण निरलेप अज निराकार निरद्वन्द।
> मायारहित विकार बिन कृष्ण सच्चिदानंद॥
> नहीं प्रमाद यामें कछू, ताको है उन्माद।
> कृष्ण-ब्रह्मता में करत जो बावरो विवाद॥

अपनी प्रारम्भिक कृतियों के माध्यम से हरिऔध ने परम्परा का परिचय दिया है। इसके अनन्तर रुक्मिणी परिचय और 'प्रद्युम्न विजय' नामक नाटकों को देखा जा सकता है। 'रुक्मिणी परिणय' कवि ने कृष्ण के अलौकिक चरित्र में ही विश्वास प्रकट किया है। प्रेमाम्बु वारिधि, प्रेमाम्बु प्रश्रवण और 'प्रेमाम्बु प्रवाह' में भी कवि की यही प्रवृत्ति दिखाई देती है।

इस समय बौद्धिकता का बोलबाला था। बुद्धिवाद यन्त्रयुग की प्राथमिक विशेषता है। आर्य समाज जैसी बुद्धिवादी शक्तियों का इसी समय विकास हुआ। यही कारण है कि बौद्धिक जागरण के प्रकाश में १९वीं

शदी के अन्तिम दिवसों में बुद्धिवादी आस्था का विकास होता गया। सामाजिक चेतना में परिवर्तन आया और मनुष्य अन्धविश्वासों को छोड़ कर तार्किक विश्लेषणात्मक प्रवृत्तियों की ओर बढ़ा। कृष्ण का रसिया और छलियास्वरूप इसी काल में बदला जिसके पीछे इसी बुद्धिवाद का हाथ था। आर्यसमाज, काँग्रेस, थियोसोफीकल सोसाइटी, ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज आदि संस्थाओं ने बौद्धिक चेतना को विकसित करने में पर्याप्त योग दिया। "हरिऔध में जो बुद्धिवाद विकसित हुआ है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से सामाजिक व्यवस्था व राजनीतिक दशा दोनों के अनुरूप था। यह बुद्धिवाद मध्यकालीन अन्धविश्वास, सनातनियों और गतानुगतिकतावादियों से बहुत आगे था, किन्तु इससे यह समझ बैठना कि बुद्धिवादियों ने जो कुछ कहा है, वह एक दम वैज्ञानिक है, गलत है क्योंकि वह बुद्धिवाद मध्यकाल के संदर्भ में बुद्धिवाद अवश्य है, आज की दृष्टि से हरिऔधजी का ब्रह्मवाद अन्धविश्वास ही माना जायगा, किन्तु अपने समय की दृष्टि में उसका महत्व असंदिग्ध है।"

'प्रेमाम्बु प्रवाह'—कृति के अन्तर्गत हरिऔधजी ने कृष्ण के वियोग में व्याकुल गोपियों के विरह-कातर जीवन की झांकी दी है। इसके सभी छन्दों में गोपियों की विरहाकुलता और पीड़ा का मार्मिक चित्रण है। मधुवन, हरी-हरी लताएं और यमुना के कछार व वंशीवट आदि सभी का चित्रण देखने को मिलता है—

बावरी ह्वै जाती बार-बार कहि वेदन को,
विलखि-विलखि जो विहार थल रोती ना।
पीर उठे हियरो हमारो टूक टूक होत,
ध्याइ प्राननाथ जो कसक निज खोती ना
प्यारे हरिऔध के पधारे परदेश दोऊ,
नैन नसि जात जो समन संग सोतीं ना।
तनु जरि जातो जो न सुआ ढरत ऊधो
प्राण कढ़ि जातो जो प्रतीति उर होती ना।

'प्रेमाम्बु प्रश्रवण'—में कृष्ण के मनोहारी रूप की छटा वर्णित है। इस काव्य के अन्तर्गत बताया गया है कि भगवान की रूपमाधुरी पर भक्त किस प्रकार आकर्षित होता है और फिर एक स्थिति ऐसी आती है जब कि वह अपना सभी कुछ भगवान के चरणों में अर्पित कर देता है। यही इस कृति का प्रतिपाद्य है। कवि की जिस लोकोपकारिता और लोकाराधना को हम प्रियप्रवास में पाते हैं, उसका बीज इसी कृति में मिल जाता है।

प्रेमप्रपंच—सन् १९०० ई० की रचना है। इसे फारसी की पुस्तक 'फिसाना अजायब' का रूपान्तर बताया जाता है। डॉ० सक्सेना ने लिखा है कि इस ग्रन्थ की रचना ब्रज भाषा का माधुर्य प्रकट करने की दृष्टि से की गई थी। इसमें फारसी के शेरों का ब्रज भाषा में सजीव और सुष्ठु अनुवाद किया गया है। ग्रामीण प्रयोगों की बहुलता है, इसके पश्चात् उपदेश कुसुम प्रेम पुष्पोहार नामक रचनायें आती हैं। नाम से ही इन पुस्तकों के विषय को जाना जा सकता है। प्रेम पुष्पोहार हरिऔधजी की खड़ीबोली की सबसे पहली कविता है। हिन्दी भाषा की दीन-हीन दशा का वर्णन इसका

प्रतिपाद्य है। खड़ी बोली के मुहावरे आदि का प्रयोग इसमें हुआ है जिसका विकास आगे चल कर चुभते चौपदे और 'बोलचाल' आदि ग्रंथों में हुआ है।

हरिऔधजी ने तो उर्दू छन्द को भी खड़ीबोली में ढाल दिया और फिर तो खड़ीबोली की ओर उनकी रुचि निरंतर बढ़ती गई जिसकी चरम परिणति प्रियप्रवास में हुई। उर्दू छन्द का खड़ीबोली रूप देखिये—

चार डग हमने भरे तो क्या किया
है पड़ा मैदान कोमों का अभी;
मौलवी ऐसा न होगा एक भी,
खूब उर्दू जो न होवे जानता ॥

प्रियप्रवास सन् १९१४ में पटना से प्रकाशित हुआ। हिन्दी में संस्कृत वृत्तों के अन्तर्गत इतना बड़ा १७ सर्गों का महाकाव्य सबसे पहले हरिऔध ने ही लिखा। प्रियप्रवास के प्रतिपाद्य को इसके नाम से ही जाना जा सकता है। कृष्ण के विरह में गोप-गोपियाँ प्रतीक्षा में आंखें बिछाये उन्हीं का गुणगान करती रहती हैं। कवि ने अनेक पिछली घटनाओं के सहारे एक ओर कृष्ण लीलाओं का वर्णन कर दिया है तो दूसरी ओर कृष्ण और राधा को नवीन रूप प्रदान किया है। मौलिकता और नवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा के प्रकाश में खड़ीबोली का यह महाकाव्य सदैव सम्मानित होता रहेगा। प्रतिपाद्य विषय के साथ-साथ प्रियप्रवास की प्रकृति भी अविस्मरणीय है। इस प्रकृति वर्णन में कवि ने परम्परा से पर्याप्त काम लिया है। संस्कृत की गीति शैली को अपनाया गया है तथा लोकभाषा और मुहावरों की ओर भी कवि की रुचि दिखाई देती है। मुहावरों की शैली में रचे गये इनके काव्यों में चोखे-चौपदे और पद्य प्रसून का नाम विशेषोल्लेख्य है। प्रियप्रवास के बाद 'ऋतुमुकुर' नामक काव्य ग्रंथ प्रकाश में आया। इसमें ब्रजभाषा की कवितायें हैं। शरद, हेमंत, शिशिर, वसन्त आदि के भव्य चित्र इसमें मिलते हैं। इसके साथ ही 'पद्य प्रमोद' भी प्रकाशित हुआ। इसमें खड़ीबोली की ५३ कवितायें संग्रहीत हैं। इनमें से कुछ कवितायें उपदेशात्मक हैं तो कुछ कर्म का पाठ पढ़ाने वाली। कुछेक समाज के उत्थान पर लिखी गई हैं। यों प्रकृति वर्णन परक कवितायें भी इसमें सम्मिलित हैं। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियां देखिये जिनमें कर्मवीर के गुणों का उल्लेख है—

काम को आरम्भ करके यों नहीं जो छोड़ते।
सामना करके नहीं जो भूलकर मुंह मोड़ते ॥
जो गगन के फूल बातों से वृथा नहिं तोड़ते।
संपदा मन से करोड़ों की नहीं जो जोड़ते ॥
बन गया हीरा उन्हीं के हाथ से है कारबन।
कांच को करके दिखा देते हैं वे उज्ज्वल रतन ॥

चोखे चौपदे और चुभते चौपदे कवि के अप्रतिम काव्य संग्रह हैं। इनमें विभिन्न विषयों को लेकर कविताओं का सृजन हुआ है। कहीं हास्य की झलकियां हैं तो कहीं व्यंग्य की मीठी चुटकियां; कहीं समाज के गलितांगों पर प्रहार है तो कहीं सामाजिक उत्थान के लिए किये गये कार्य हैं। बोलचाल और मुहावरों की भाषा में लिखे गये काव्यों में भाषा का चमत्कार दिखाई

देता है। प्रियप्रवास में एक गति है, प्रवाह है तो चुभते चौपदे में ठहर-ठहर कर आनन्द लाभ किया जा सकता है। इन चौपदों में भाषागत आनन्द के साथ-साथ पहेली का सा आनन्द भी मिलता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियां देखिये—

सैकड़ों ही कपूत काया से
है भली एक सपूत की छाया।
हो पड़ी चूर खोपड़ी ने ही
अनगिनत बाल पाल क्या पाया॥

उक्ति चमत्कार की दृष्टि से इन पंक्तियों को देखा जा सकता है जो बेमेल विवाह पर किया गया है—

वंस में घुन लगा दिया उसने
औ 'नई पौध' की कमर तोड़ी।
जाति को है तबाह कर देती
एक अल्हड़ अधेड़ की जोड़ी॥

मुहावरे और बोलचाल के प्रयोगों के कारण ही ये पर्याप्त प्रसिद्धि पा गये। सामाजिक व्यंग्य के कारण इनका विशेष महत्व है। समाज की अनेक बातों पर कवि ने विषाक्त व्यंग्य किया है। व्यंग्य शैली का एक उदाहरण देखिए—

क्यों पले पीस कर किसी को तू, है बहुत पालिसी बुरी तेरी।
हम रहे चाटते पटाना ही, पेट तुझसे पटी नहीं मेरी॥

० ० ० ०

मंदिरों मस्जिदों कि गिरजों में खोजने हम कहां कहां जायें।
वह तो फैले हुए जहां में हैं हम कहां तक निगाह फैलायें॥

वैदेही वनवास और पारिजात नामक बृहत् काव्य भी हरिऔधजी की लेखनी से लिखे गये हैं। 'वैदेही वनवास' महाकाव्य है। इसके अन्तर्गत मर्यादा पुरुषोत्तम राम और सीता के लोक हितैषी और लोकोपकारक रूप को आकार दिया गया है। इसमें प्रियप्रवास की भाषागत कठिनता और प्रकृति चित्रणगत संकीर्णता दोनों को कवि ने अपने यत्न से दूर किया है। यद्यपि यह ग्रन्थ पौराणिक है, किन्तु सम्पूर्ण कथा के सूत्र राम के लोकानुरंजन से गुथे हुए हैं। यों आध्यात्मिक विचारणा को भी स्थान मिला है। प्रियप्रवास की भांति ही अधिकांश घटनायें वर्णित हैं जो प्रत्यक्षतः घटित नहीं होती हैं। प्रकृति चित्रण मनोहर और विशद है। सम्पूर्ण काव्य में प्रसाद, माधुर्य और ओज का बोलबाला है।

इसी के साथ पारिजात को भी देखा जा सकता है। इसे कवि ने महाकाव्य कहा है किन्तु डॉक्टर सक्सेना ने इसे महाकाव्य नहीं माना है। उनकी मान्यता है कि "विशालता की दृष्टि से तो यह एक महान काव्य है, परन्तु शास्त्रीय दृष्टि से इसे महाकाव्य नहीं माना जा सकता क्योंकि इसमें न तो प्रबंधात्मकता है, न चरित्र चित्रण है और न संधिविधान है। केवल कुछ सर्गों के शीर्षकों के रूप में दृश्यजगत, अन्तर्जगत, सांसारिकता, स्वर्ग कर्म विपाक, प्रलय प्रपंच, सत्य का स्वरूप और परमानन्द आदि का विवेचन किया गया

है। शास्त्रीय दृष्टि से यह मुक्तक काव्य की कोटि में आता है।" इस काव्य में जो विषय है, वह आध्यात्मिक और आधिभौतिक है। ईश्वर की महिमा, कल्पना, सांसारिक प्रपंच और अवतारों का मर्म, दर्शन की गहनता व धर्म का वास्तविक स्वरूप आदि विषय लिये गये हैं। दार्शनिकता का एक उदाहरण देखिये—

दिव्या भूति अचिन्तनीय कृति की ब्रह्माण्ड-मालामयी।
तन्मात्रा जननी ममत्व प्रतिमा माता महत्तत्त्व की।
सारी सिद्धिमयी विभूति-भारिता संसार सचालिका।
सत्ता है विभुकी नितान्त गहना नाना रहस्यात्मिका।

भाषा भावानुकूल है—कहीं क्लिष्ट है कहीं प्रवाहशील और तरल है। रसकलश तथा कल्पलता भी महत्त्वपूर्ण काव्य संग्रह हैं। रसकलश शृङ्गार रस का काव्य है। अश्लीलता को समाप्त करके उसे रस राजत्व के ढंग से अपनाया गया है। सभी रसों के चित्रण के साथ साथ नायिका भेद का विवेचन और वर्णन भी इसमें किया गया है। उत्तमा नायिका के आठ भेद किये गये हैं—पति प्रेमिका, परिवार प्रेमिका, जाति प्रेमिका, देश प्रेमिका, जन्मभूमि प्रेमिका, निजता अनुरागिनी, लोक सेविका और धर्म प्रेरिका।

'कल्पलता' विविधतापूर्ण रचना है। इसकी कविताओं में सामाजिक, धार्मिक और नैतिक जीवन की कुरीतियों और कुचक्रों का भंडाफोड़ किया गया है। सभी कविताओं में कवि की यथार्थवादी दृष्टि देखने को मिलती है। "तत्कालीन समाज की दुर्बलताओं के अतिरिक्त समसामयिक मस्ती, उत्सव-प्रियता, आनंद उल्लास प्रियता आदि की सजीव झांकी भी मिल जाती है अन्तिम खंड के अतिरिक्त सभी कविताओं में सरलता और सुबोधता है। प्रकृति चित्रण चित्ताकर्षक है।"

हरिऔधजी ने हरिऔध सतसई की रचना भी की थी। उसमें दोहों के माध्यम से कवि ने विविध विषयों को स्पष्ट किया है। इसमें नीति और उपदेश की प्रधानता है किन्तु भगवान की भक्ति, वात्सल्य भाव, शृंगार, वीर भावना और प्राकृतिक शोभा आदि को व्यक्त करने वाले दोहों की भी कमी नहीं है। रचनाशैली बिहारी के अनुकरण पर है। कथन पद्धति में धारा प्रवाहिकता और पर्याप्त जोश मिलता है। एकाध स्थल पर लाक्षणिकता के दर्शन भी होते हैं।

अन्त में 'मर्मस्पर्श' नामक कविता संग्रह निकला जिसमें नई और पुरानी दोनों ही प्रकार की कवितायें हैं। यही हरिऔध की अन्तिम काव्य कृति है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि कवि हरिऔध ने ब्रजभाषा बोलचाल की भाषा और संस्कृत प्रधान भाषा के तीनों रूपों में रचना की है। ब्रजभाषा के हरिऔध को रसकलश में, बोलचाल की भाषा के कवि हरिऔध चौपदों में और उच्च हिन्दी के कवि प्रियप्रवास में देखे जा सकते हैं। रसकलश का में कवि आचार्य, चौपदों का सुधारक और उपदेशक तथा प्रियप्रवास का भावुक मुद्राओं में सामने आया है।

निष्कर्ष—कवि हरिऔध की काव्य प्रतिमा का विकास बहुमुखी रहा है। कवि ने प्रारम्भ से ही विविध दिशाओं में दृष्टिपात किया है। कवि की काव्य साधना के निम्नलिखित सोपान हैं—

१. सामाजिक उन्नति–सुधार और उपदेश आदि के माध्यम से। नैतिक दृष्टिकोण भी इसी में सम्मिलित हैं।

२. प्राकृतिक सौन्दर्य का सूक्ष्म किन्तु विशद वर्णन।

३. भाषा की विशुद्धता और विविधरूपता जो इनके कई काव्य ग्रन्थों में मिलती है।

४. नवीन जागरण के संदर्भ में प्राचीन संदर्भों को नया रंग रूप देकर समसामयिक बनाने का प्रयास।

५. सामाजिक वैभव को बनाये रखने के लिए लोकाराधन, और लोक कल्याण पर विशेष बल देना।

६. ईश्वर की सत्ता में विश्वास करना क्योंकि इसके बिना मनुष्य का उत्साह और विश्वास खण्डित हो जायगा।

इन उपर्युक्त सभी बातों को हम उनकी विविध रचनाओं में देखते हैं। देशप्रेम, लोक कल्याण और सामाजिक उत्थान के साथ-साथ नैतिक और मर्यादित शृङ्गार को अपनाना कवि की दृष्टि में सदैव अभीष्ट रहा है। इन सभी तथ्यों का सम्मिलित झांकी प्रियप्रवास महाकाव्य में भी देखी जा सकती है। हरिऔध के साहित्य में तीन युग एक साथ मिले दिखाई देते हैं—एक ओर ब्रज भाषा का युग तो दूसरी ओर खड़ीबोली का युग और वह युग जो प्रगतिशील और बौद्धिक चेतना से अनुप्राणित था। इसी कारण शृङ्गार को उन्होंने एक ऐसे रूप में प्रस्तुत किया है जो अति शृङ्गारिक है और न अति बौद्धिक ही है। हरिऔध ने स्वयं साहित्यकार से यह मांग की थी—"न वह साहित्य साहित्य है, न वह कल्पना कल्पना है जिसमें जातीय भावों का उद्‌गार न हो। जिन काव्यों, ग्रन्थों को पढ़कर जीवनी शक्ति, जागृत नहीं होती, निर्जीव धमनियों में गरम रक्त का संचार नहीं होता, हृदय में देश प्रेम की तरंगे तरंगित नहीं होतीं वे केवल निस्सार वाक्य समूह हैं।"

कहना न होगा कि प्रियप्रवास और वैदेही वनवास में कवि के इन विचारों को देखा जा सकता है। प्रियप्रवास में ही उनकी मानवतावादी दृष्टि, सामाजिक संयम, लोक कल्याण देश प्रेम, उदात्त शृङ्गार और नैतिकता व उपदेशात्मकता को भाषा की शुद्धता के आंचल में लपेट कर प्रस्तुत किया गया है।

साहित्य के क्षेत्र में कवि हरिऔध प्रचारात्मकता के विरोधी थे। वे कहते थे कि "जिसमें मनुष्य जीवन की जीवन सत्ता नहीं है जो प्रकृति की पुण्य-पीठ नहीं, जिसमें सुन्दरता विकसित नहीं, मधुरता मुखरित नहीं, सरसता विलसित नहीं, प्रतिभा प्रतिफलित नहीं वह कवि रचना कुकवि वचनावली है।"

इसके आधार पर कवि हरिऔध का जो दृष्टिकोण सामने आता है वह यही है—"मध्यकालीन काव्य (जिसमें शान्त और शृङ्गार की अति है) के स्थान पर उन्होंने लोकोत्तर कान्तिवती जातीय रागरंजिता कविता देवी को प्रतिष्ठित किया है। यही गुण प्रियप्रवास में दिखाई देता है।" अतः स्पष्ट है कि कवि हरिऔध अपने समय के एक जागरूक साहित्यकार थे—

एक ऐसे साहित्यकार जो अपनी आंखों से ही सभी कुछ देख रहे थे और साथ ही उसके सुधार के लिए प्रयत्न भी कर रहे थे।

प्रियप्रवास की प्रेरक शक्तियां

प्रियप्रवास हिन्दी खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य है। हरिऔध ने इसकी सर्जना करके हिन्दी जगत को एक नया मोड़ दिया था। इससे पूर्व साहित्य में जो महाकाव्य मिलते थे वे प्राचीन परम्पराओं और परिपाटियों की सीमा में आबद्ध थे। प्रियप्रवास रचने की प्रेरणा कवि को कैसे मिली और कौन-कौन सी ऐसी परिस्थितियां और प्रेरणायें थी जिन्होंने कवि से यह काव्य लिखवा लिया।

१. वस्तुत: प्रियप्रवास के प्रेरणास्थल कई रहे हैं। कुछ तो तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक परिस्थितियां ही ऐसी थीं और कुछ और भी कारण थे जिनसे प्रियप्रवास की अवतारणा हुई। प्रियप्रवास कालीन समय में जो सामाजिक चेतना विकसित हो रही थी वह फुटकर कविताओं और एकाध खण्ड काव्य में ही अभिव्यक्ति पा रही थी। कोई भी कवि महाकाव्य के माध्यम से तत्कालीन समाज की चिन्तना और चेतना को सामने लाने के लिए तैयार नहीं था। हरिऔध ने ही पहले-पहल इसको सामने रखा। स्वयं कवि ने लिखा है—"खड़ीबोली में छोटे-छोटे कई काव्य-ग्रन्थ अब तक लिपिबद्ध हुए हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश तो सौ दो सौ पद्यों में ही समाप्त हैं, जो कुछ बड़े हैं वे अनुवादित हैं, मौलिक नहीं।..................इस लिए खड़ी बोलचाल में मुझको एक ऐसे ग्रंथ की आवश्यकता दीख पड़ी जो महाकाव्य हो।..................अतएव मैं इस न्यूनता की पूर्ति के लिए कुछ साहस के साथ अग्रसर हुआ और अनवरत परिश्रम करके इस प्रियप्रवास नामक ग्रन्थ की रचना की।"

२ प्रियप्रवास से पूर्व जो भी रचनायें सामने आ रही थीं वे सभी तुकान्त और अन्त्यानुप्रास वाली थीं। "वीरगाथा काल से लेकर हरिऔधजी के युग तक ऐसी ही हिन्दी कविताएं समाज में समादृत होती थीं, जो अन्तिम तुक या अन्त्यानुप्रास युक्त हों। परन्तु भिन्न तुकान्त और अन्त्यानुप्रास हीन कविताएं भारत की संस्कृत-भाषा में ही पर्याप्त मात्रा में ही लिखी गई थीं, जो अतीव सुन्दर, सरस और मनमोहक थीं। उस समय तक बंगला में माइकेल मधुसूदनदत्त का मेघनाथ वध भी निकल चुका था जो भिन्न तुकान्त काव्य था, किन्तु हिन्दी भाषा में उस समय तक थोड़ी बहुत फुटकर कविताएं तो अवश्य तुकान्तहीन संस्कृत वृत्तों में लिखी गई थीं, फिर भी कोई महाकाव्य अभी ऐसा नहीं लिखा गया था।"[1] कवि ने इसी अभाव के कारण प्रियप्रवास की रचना की और अपनी प्रवृत्ति को बढ़ाया। कवि की स्वीकारोक्ति भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है—हां, भाषा-सौन्दर्य साधना के लिए और उसको विविध प्रकार की कविता से विभूषित करने के लिए अतुकान्त कविता के भी प्रचलित होने की आवश्यकता है; और मैंने इसी विचार से इस प्रियप्रवास ग्रन्थ की रचना इस प्रकार की कविता में की है।[2]

1. डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सैना—प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन।
2. प्रियप्रवास की भूमिका—पृष्ठ ५

३. प्रियप्रवास की रचना की प्रेरक शक्तियों में एक यह भी थी कि कवि हरिऔध के जमाने में मातृ-भाषा की प्रतिष्ठा का प्रश्न भी तीव्र हो उठा था। जो भी भाषा को लेकर कुछ कहता वह मातृ-भाषा पर विशेष बल देता। देश-प्रेम का अलख जगाने वाले हरिऔध और उनके समकालीन कवि भी इस दिशा और स्थिति से बेखबर नहीं थे। जाग्रत जनता और तत्सम्बन्धित समाज में स्व-समाज, स्वदेश और स्वभाषा का बोलबाला था। हरिऔध कवि होने के नाते अपना कोई काव्य लिख कर ही मातृभाषा की सेवा कर सकते थे। उन्होंने यही किया। वे स्वयं लिखते हैं—मैं बहुत दिनों से हिन्दी भाषा में एक काव्य ग्रन्थ लिखने के लिए लालायित था।.......... मातृ-भाषा की सेवा करने का अधिकार सभी को तो है, बने या न बने, सेवा प्रणाली सुखद और हृदय ग्राहिणी हो या न हो, परन्तु एक लालायित चित्त अपनी प्रबल लालसा को पूरी किये बिना कैसे रहे ?............निदान इसी विचार के वशीभूत होकर मैंने प्रियप्रवास नामक इस काव्य की रचना की।

४. हरिऔध का विचार था कि मातृ-भाषा हिन्दी ही सभी प्रान्तों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। उनकी दृष्टि में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हो सकती है क्योंकि इसमें सरलता, सुबोधता और मनोवैज्ञानिकता है। इसके साथ ही उनकी धारणा थी कि हिन्दी को सभी प्रान्तवासी तभी आदर प्रदान करेंगे जब कि इसके रूप और शिल्प को परिनिष्ठित किया जायगा—जब इसकी आकृति संस्कृत के रंग से रंगी होगी और इसकी शैली में भी संस्कृत का प्रभाव होगा। खड़ीबोली को संस्कृत से मिला कर ही गौरव प्राप्त हो सकता है। इसी गौरव की रक्षा के लिए हरिऔध ने प्रियप्रवास की रचना की थी। यद्यपि प्रेमचन्द हरिऔध के इस मत के विरोधी थे। वे कहा करते थे—"जिसको हिन्दू मुसलमान दोनों मानें, जिसको आम जनता समझे वह है हिन्दुस्तानी और मेरा खयाल है कि राष्ट्रभाषा जब कभी भी बनेगी, तो वह हिन्दी, उर्दू को मिला कर।" इसके विपरीत हरिऔध का कथन था—"भारत भर में संस्कृत भाषा आदृत है। बंगला, मरहठी, गुजराती वरन् तामिल और पंजाबी तक में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। इन संस्कृत शब्दों को यदि अधिकता से ग्रहण करके हमारी हिन्दी भाषा उन प्रान्तों के सज्जनों के सम्मुख उपस्थित होगी, तो वे साधारण हिन्दी से उसका अधिक समादर करेंगे क्योंकि उसके पठन-पाठन में उनको सुविधा होगी और वे उसको समझ सकेंगे; अन्यथा हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने में दुरूहता होगी, क्योंकि सम्मिलन के लिये भाषा और विचार का साम्य ही अधिक उपयोगी होता है।" हरिऔधजी ने अपनी इसी धारणा को पल्लवित और विकसित करने के लिए प्रियप्रवास की रचना की।

५. प्रियप्रवास के सृजन के पीछे हरिऔध के मन में महाकाव्यों को रचने की एक नई परंपरा डालने की इच्छा भी थी। खड़ीबोली में महाकाव्यों की परंपरा का सूत्रपात करने वाले हरिऔध नये प्रवाह को आमंत्रित करना चाहते थे। उन्होंने लिखा है—महाकाव्य के आभास स्वरूप यह ग्रन्थ सत्रह सर्गों में केवल इस प्रेरणा और उद्देश्य से लिखा गया है कि इसको देख कर हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठ सुकवियों और सुलेखकों का

ध्यान इस त्रुटि के निवारण करने को आकर्षित हो। जब तक किसी बहुज्ञ मर्म स्पर्शिनी, सुलेखनी द्वारा लिपिबद्ध होकर खड़ीबोली में सर्वांग सुन्दर कोई महाकाव्य आप लोगों तक हस्तगत नही होता; तब तक यह अपने सहज रूप में आप लोगों के ज्योति-विकीर्णकारी उज्जवल-चक्षुओं के सम्मुख है और एक कवि के कण्ठ से कण्ठ मिलाकर यह प्रार्थना करता है--

'जबलौं फुलैं न केतकी, तबलौं विलम करील'

६. प्रियप्रवास की रचना के पीछे कवि की यह भावना भी थी कि वह संस्कृत वृत्तों को हिन्दी में प्रचलित करना चाहते थे। प्रियप्रवास से पूर्व तक हिन्दी में कवित्त,सवैया, दोहा, छप्पय आदि ही का विशेष प्रचार था। प्रियप्रवास की अवतारणा करके कवि हरिऔध ने संस्कृत के वर्ण-वृत्तों को प्रोत्साहन दिया। कवि ने प्रियप्रवास की सृष्टि ही उस कामना से की है कि वह भाषा को गौरवान्वित करे और नूतन छंदों और ललित वृत्तों के माध्यम से सरस कथा कह कर पाठकों को रस--प्लावित करे।

७. प्रियप्रवास की सृजनेच्छा के मूल में कवि का बौद्धिक दृष्टिकोण भी रहा है। उसने तत्कालीन समय में अंकुरित बौद्धिक चेतना को इस काव्य की कथा और चिन्तना में ढालने का प्रयास किया है। हरिऔधजी हिन्दू समाज में प्रचलित अन्ध--विश्वासों और अलौकिक विश्वासों को दूर करके बुद्धिसम्मत बनाने के पक्षपाती थे। वे नहीं चाहते थे कि हिन्दू संस्कृति में पली अलौकिक और अतिमानवीय घटनायें भविष्य की प्रगति को रोक दें। उन्हें भावी दीख रही थी और साथ ही भविष्य में बौद्धिक और वैज्ञानिक चिन्तना भी दिखाई पड़ रही थी। परिणामतः वे प्रियप्रवास के माध्यम से बहुत सी सांकेतिक अभिव्यंजनाओं को सहजग्राह्य और व्यावहारिक बनाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने पौराणिक गाथाओं की तर्क सम्मत व्याख्या प्रस्तुत की। अवतारवादी भावना को हरिऔध दूसरे स्तर पर खड़ा करना चाहते थे। वे कृष्ण को महापुरुष कह कर ही संतोष कर लेते थे। उनके मन में यह धारणा काम कर रही थी कि कृष्ण की अलौकिकता बौद्धिक चेतना के अनुरूप नहीं है। इसीलिए उन्होंने प्रियप्रवास की सर्जना की है। पौराणिक घटनाओं की बौद्धिक व्याख्या करने के उद्देश्य से अनुप्राणित हरिऔध यह प्रदर्शित करना चाहते थे कि पौराणिक प्रसंग सर्वथा अनर्गल नहीं होते हैं—वे प्रेरणास्पद भी होते हैं। इस प्रकार के बुद्धिवादी और व्यावहारिक विचार हरिऔध के मन में बहुत गहरे व्याप्त थे। श्री गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश ने लिखा है कि उनकी (हरिऔध) रचनाओं को देखने से ऐसा जान पड़ता है जैसे ईश्वर धीरे-धीरे मनुष्य की पीड़ा, हास विलास श्रांति-विश्रान्ति तथा आमोद-प्रमोद का रसास्वादन करने के लिए स्वयं भूमि पर उतर आया हो। परिस्थिति की प्रेरणा ने हरिऔध के जीवन में भीतर ही भीतर ऐसी गहरी क्रांति कर दी कि श्रीकृष्ण की निराकार स्वरूप पूजा से लेकर आधुनिक काल तक के हिन्दू समाज के हृदय को आन्दोलित करने वाले समस्त भाव शायद पारस्परिक बधुत्व के प्रदर्शनार्थ ही हरिऔध के हृदय में शरणागत हुए।

८. प्रियप्रवासकार की प्रारंभिक रचनाओं को देखने से विदित होता है कि कवि लोकोपकार, समानता और बंधुत्व को महत्व देता था। प्रियप्रवास

में अवतारी पुरुष कृष्ण को मानवीय संवेदना से जोड़ कर ही लोकाराधना और लोकोपकार को चित्रित किया गया है। कवि राधा–कृष्ण के बहाने अपनी बात कहने में सफल हो गया है। अतः प्रियप्रवास की रचना के पीछे यह भावना भी प्रेरक शक्ति बन कर आई है।

इन कारणों के अतिरिक्त सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक शक्तियों ने भी कवि को प्रियप्रवास लिखने की प्रेरणा दी। उनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है—

सामाजिक परिस्थिति—हरिऔध के समय में विशेषकर जबकि उन्होंने प्रियप्रवास की रचना प्रारम्भ की, उस समय सुधारवादी आन्दोलनों का जोर था। सर्वत्र सामाजिक और धार्मिक स्तर पर सुधार करने की मांग की जा रही थी। व्यक्ति–चेतना पारस्परिक संघर्षों में भले ही उलझ गई हो किन्तु वह सुधार करने की ओर अग्रसर हो रही थी। विदेशी सम्पर्क के बढ़ते हुए प्रभाव ने इसे और भी प्रोत्साहित किया था। थियोसोफीकल सोसाइटी, ब्रह्म-समाज आर्य-समाज, रामकृष्ण मिशन और प्रार्थना समाज आदि सुधारवादी संस्थायें अपने काम को बड़ी तेजी से आगे बढ़ा रही थीं। ब्रह्मसमाज सभी धर्मों को महत्व दे रहा था और मूर्तिपूजा का विरोध कर रहा था। इसके साथ ही स्त्री-शिक्षा, विधवा–विवाह, अन्तर्जातीय विवाह को महत्व और छूआ–छूत को मिटाने का प्रयास कर रहा था। विश्व बंधुत्व का प्रसार इसका लक्ष्य था। आर्य समाज ने भी भारतीय हिन्दू समाज में नवीन क्रांति उत्पन्न कर दी थी। थियोसोफीकल सोसाइटी ने भारतीय समाज को नव्य चेतना से भर दिया था। प्रत्येक धर्म को महत्व देने वाली यह सोसाइटी नवीन चेतना लेकर आई थी। जात–पांत, ऊंच नीच आदि के भेद भाव को मिटाने में इसने प्रशंसनीय कार्य किया। रामकृष्ण मिशन ने भी प्राचीनता और नवीनता का समन्वय किया। इसके साथ ही धार्मिक विश्वास, आध्यात्मिकता, लोक सेवा और मानव प्रेम आदि को विकसित करने में 'रामकृष्ण मिशन' का पर्याप्त योगदान रहा है।

"ब्रह्म समाज की भांति ही महाराष्ट्र में सामाजिक पुनरुत्थान के लिए प्रार्थना समाज की स्थापना हुई। इस समाज ने भी एक ईश्वर की उपासना और सामाजिक सुधार का आदर्श जनता के सम्मुख रखा तथा संत नामदेव, तुकाराम, रामदास आदि से प्रेरणा लेते हुए अछूत–उद्धार, शिक्षा प्रचार, विधवा–विवाह स्त्री–पुरुष की समानता, अन्तर्जातीय विवाह, अनाथालयों की स्थापना आदि कार्य किये और जनता में पारस्परिक सौहार्द, सेवा भावना, सामाजिक एकता आदि का प्रचार किया था।"

धार्मिक परिस्थिति—हरिऔध का समय वह समय था जबकि व्यक्तियों की चेतना धर्मान्धता से ओत-प्रोत थी। मूर्ति पूजा, अन्ध विश्वास, रूढ़िवाद और देवी देवताओं के प्रति अन्ध भक्ति से सम्पूर्ण समाज आक्रान्त था। सर्वत्र प्राचीनता के मोह में फंसे व्यक्ति धर्मावलम्बियों के हाथों पीसे जा रहे थे। यों वैष्णव धर्म की प्रधानता थी, किन्तु अधिकांश व्यक्ति राम, कृष्ण, दुर्गा, शिव और हनुमान आदि देवी देवताओं के उपासक थे। विष्णु के विभिन्न अवतारों की कथाओं का प्रचार था। देवी-देवता ही परमब्रह्म के स्वरूप बन गये थे। हिन्दू लोग अपने धर्म की कट्टरता के पीछे पड़े हुए थे। ईसाइयों में भी अपने धर्म के प्रचार के लिए प्रगाढ़ लालसा विद्यमान थी। अतः वे मुसलमानों की होड़ा-होड़ी व्यक्तियों को ईसाई बनाने का प्रयास कर रहे थे।

ईसाई धर्म के प्रचारार्थ अनेक पुस्तकों का वितरण किया जा रहा था। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय हिन्दू धर्म कठिन परिस्थिति का सामना कर रहा था। ऐसी परिस्थिति में हिन्दू धर्म के रक्षक के रूप में आर्य समाज की अवतारणा और विस्तारणा हुई। आर्य समाज ने समानता, पारस्परिक अभेदता, सौहार्द और विश्व बन्धुत्व को प्रचारित किया। आर्य समाज और स्वामी रामतीर्थ के सम्मिलित प्रयासों से हिन्दू धर्म की संकीर्णता नष्ट होने लगी। परिमाणतः हिन्दू धर्म को विशिष्ट किन्तु गौरव पूर्ण स्थान मिला। देश और विदेशों में इसका प्रचार होने लगा। नयी चेतना का विकास हुआ। धर्मान्ध व्यक्ति भी विश्व बन्धुत्व और लोकोपकार के साथ-साथ समानता को प्राथमिकता देने लगे।

अवतारवाद की धारणा में भी परिवर्तन आ गया। अवतारवादों के सन्दर्भ से अलौकिकता का ह्रास हुआ और धीरे-धीरे बौद्धिक चेतना और विश्लेषणात्मक विचारधारा का विकास हुआ। उदाहरणार्थ प्रियप्रवास में वर्णित गोवर्द्धन धारण की कथा, कंस वध, पूतना वध, कालिया नाग की कथा और मानस में राम द्वारा पानी पर पत्थर तैराना आदि घटनाओं की बौद्धिक और व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत की जाने लगी। स्पष्ट है कि हरिऔध ने युगीन धर्मान्धता, संकीर्णता और अति मानवीय विचारधारा को बदलने का प्रयास किया। इस नवीन चेतना ने ही कवि को प्रोत्साहित किया कि वह अपने नवीन दृष्टिकोण को नया आलोक प्रदान करे। यह कार्य प्रियप्रवास जैसे महाकाव्य से ही सम्भव था।

राजनैतिक परिस्थिति—भारत की वर्षों की गुलामी नये वातावरण में भड़क रही थी। यों १८५७ से ही भारत नयी चेतना और स्वतन्त्रता का अलख जगाने लगा था। ब्रिटिश शासन के प्रति व्यक्तियों के मन में जो धारणा विकसित हो रही थी वह असन्तोषजनक और विद्रोहात्मक थी। सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना से विद्रोह को और भी अधिक बल मिला। यद्यपि कांग्रेस का काफी विरोध हुआ तथा उसमें सम्मिलित होने वालों को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता था, किन्तु फिर भी यह संस्था चलती रही। वंग-भंग आन्दोलन ने भी परिस्थिति को प्रभावित किया। विश्वयुद्ध की समाप्ति पर १६१६ ई० में रॉलेट एक्ट पास हुआ जिसका विरोध भी हुआ।

गोलियां चलीं और जलियांवाला बाग की भयंकर घटनायें घटित हुयीं। गांधीजी ने भारतीय राजनैतिक जीवन में नये विचारों को अपनाया। सत्य अहिंसा, सेवा और सर्वोदय आदि की भावनाओं ने रामराज्य का स्वप्न देखने को मजबूर कर दिया। गांधीवादी व्यवस्था के अनुसार "सम्पूर्ण देश में ऐसी व्यवस्था का विचार था कि सभी उससे लाभान्वित हो सकें। उनके लिए पर्याप्त वस्त्र, शिक्षा, मनोरंजन, न्याय आदि की सुविधायें हों। खेती, गाय, बैल आदि की उन्नति हो और सर्वत्र सहयोग और समानता की भावना का प्रचार हो।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि हरिऔधजी के समय में जो राजनीतिक क्षेत्र तैयार हो रहा था वह काफी जागृति का था। अंग्रेजों के काले कारनामों ने हिन्दू जनता के हृदय के दरवाजे खोल दिये थे। सभी स्वतन्त्रता की निर्मल वायु में सांस लेने को आतुर हो रहे थे। यही कारण है कि उस समय जो साहित्य रचा गया वह जन-जागृति का साहित्य था। उसमें नवीन जागरण का स्वर मुखरित हो गया था।

साहित्यिक परिस्थितियां--हरिऔधजी को द्विवेदी युगीन साहित्यकार माना जाता है। हरिऔधजी ने द्विवेदीजी के साहित्यिक प्रसार से पूर्व ही यश पा लिया था। भारतेन्दु युग में जिन्दादिली पर्याप्त थी--"भारतेन्दु युग में कवियों का दृष्टिकोण उदार हो गया था और जीवन का कोई भी पक्ष उनसे अछूता नहीं बचा था। यह युग आन्दोलनों का युग था। इसी कारण इस युग में लेखक जिन्दादिली के साथ साहित्य का सृजन करते थे। उस समय प्रेम की स्वाधीनता न थी। इसलिए तत्कालीन लेखकों को हास्य और व्यंग्य का सहारा लेना पड़ता था।"

द्विवेदी युग में खड़ीबोली का प्रसार होना शुरू हो गया और काव्य में स्थूलता, बाह्य वर्णन, इतिवृत्तात्मकता, शृङ्गार विरोध, उपदेशात्मक रुचि, नैतिक संयम का प्रावधान, प्राकृतिक सौन्दर्य की बहुलता की प्रधानता रही। कवियों का दृष्टिकोण शुद्ध कविता की रचना की ओर था। वर्ण्य-विषय भी पर्याप्त बदले। नवीन और प्राचीन में सामंजस्य हुआ। शैली और वर्ण्य-विषय दोनों में ही परिवर्तन आ गया। "कवियों की मनोवृत्ति में देश, समाज और संस्कृति के प्रेम की भावना उदित हुई। वे प्रत्येक में सुधार और सुव्यवस्था की ओर अग्रसर हुए तथा ईश्वर की अलौकिक और अति मानवतावादी कथाओं को भी लौकिक और मानवतावादी रूप देकर मानव-जीवन से सर्वथा सम्बद्ध किया। यहां तक आते-आते भारतेन्दु युग की निराश मनोवृत्ति भी लुप्त हो गई और उसके स्थान पर आत्म-विश्वास व दृढ़ता की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति का स्वर सुनाई पड़ा।"

कवियों में लोक सेवा, परदुख-कातरता, मानवता प्रेम, विश्व बन्धुत्व आदि की उदार भावनायें भी घर करने लगीं। स्वतन्त्रता, समानता, देश प्रेम और राष्ट्रीयता की भावनाओं का विकास हुआ। नारी को उन्नत भूमिका प्रदान की गई। हरिऔध की राधा, गुप्तजी की कैकेयी, उर्मिला और सीता, प्रसाद की मल्लिका, अलका और श्रद्धा ऐसी ही नारियां हैं।

बौद्धिक वातावरण बनता गया, किन्तु आदर्शवादी विचारों का विशेष प्रचलन और पल्लवन होता गया। शृङ्गारिकता, अश्लीलता दोनों को दबा

दिया गया तथा इनके स्थान पर राष्ट्रीय नव-चेतना, मानवता, सत्य, सात्विकता को महत्व मिला। "इसके साथ ही अभी तक साहित्य जन-जीवन से कुछ दूर ही था, उसमें जनता के प्रति सहानुभूति और दीन दुर्बलों के प्रति श्रद्धा की भावना अधिक व्यक्त नहीं होती थी, परन्तु इस युग में आकर साहित्य का सबसे अधिक झुकाव जनता की ओर हुआ। मानव-सेवा और मानव प्रेम कविता के अभिन्न अङ्ग बन गये।" प्रियप्रवास की राधा लोकसेवा के लिए अपना सारा जीवन समर्पित कर देती है।

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास की सृजन शक्ति के पीछे तत्कालीन विविध परिस्थितियां, कुछ व्यक्तिगत कारण और विभिन्न प्रेरणास्रोत रहे हैं। इन सबसे मिल कर नवीन चेतना को विकसित होने का अवसर मिला और कवि हरिऔध ने प्रियप्रवास जैसी कृति को हिन्दी जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया।

प्रियप्रवास की कथा का सारांश

प्रियप्रवास हिन्दी खड़ीबोली का अग्रणी काव्य है। इस सर्ग में जो कथा कही गई है वह सत्रह सर्गों में विभक्त है। सत्रह सर्गों में फैली हुई कथा को सूक्ष्म और विरल ही कहना चाहिए। इस महाकाव्य का प्रतिपाद्य कृष्ण का मथुरा प्रवास और तज्जन्य गोप-गोपियों का विरह है। कवि ने सीधे-सादे ढग से कथा को नहीं कहा है। उसमें गोप-गोपियां, कृष्ण के चरित्र की विशेषताओं और ब्रज-प्रदेश में घटित घटनाओं को याद करते हैं। इसी क्रम में एक के बाद एक घटना सामने आती जाती है। खैर काव्य का मूल भाव ब्रजवासियों का विलाप ही है। इसमें कही गई सत्रह सर्गों की कथा में वर्णन बाहुल्य है। हम इस कथा को फिर भी संक्षेपत: इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं। सर्गानुसार कथा इस प्रकार स्पष्ट की जा सकती है—

प्रथम सर्ग—ब्रज के ग्वाले सूर्य अस्त हो जाने के बाद अपनी गायों के झुण्ड के साथ एक स्थान पर एकत्र हो जाते हैं। तदन्तर सभी गांव की ओर चल देते हैं। पूरे दिन कृष्ण जगल में रहे। संध्या समय मुरली की ध्वनि सुनाई पड़ी और सभी बालिकायें, युवती और प्रौढ़ स्त्रियां, बच्चे, बूढ़े और युवक घर से निकलकर कृष्ण के दर्शनों की लालसा से एकत्र हो गये। सभी ने कृष्ण के दर्शन किये। कृष्ण के गांव में प्रवेश करते ही सभी नर-नारी, बाल-वृद्ध एकत्र हुए। शनै: शनै: अन्धकार बढ़ता गया। सर्वत्र सन्नाटा छा गया। सभी दर्शक अपने-अपने घरों को वापिस आ गये। कवि ने इन सभी का वर्णन बड़े मनोयोग से किया है।

द्वितीय सर्ग—कवि हरिऔध ने बताया है कि रात दो घड़ी बीत चुकी है। सभी ओर गहन अन्धकार छाया हुआ था। हाँ घरों में अंधकार के साथ-साथ प्रकाश भी दिखाई दे रहा था। सभी ब्रज वासी अपने-अपने घरों में कृष्ण का गुनगान और कीर्तन कर रहे थे। गोकुल गांव की परिधि में विभिन्न प्रकार के हर्षसूचक वाद्य बजने लगे। इसी समय घोषणा हुई कि कंस ने राजा नंद को कृष्ण सहित धनुषयज्ञ देखने के लिए आमंत्रित किया है। आगामी दिवस कृष्ण का मथुरागमन होगा। कृष्ण के मथुरा जाने की खबर सभी के लिए भयप्रद और कष्टप्रद थी। परिणामत: सभी गोकुल वासी बहुत

ही चिन्तित हुए। कारण वे जानते थे कि कंस बड़ा निर्दयी और हत्यारा है। इसी भावना के मन में आते ही सभी के मन में आशंका ने घर कर लिया। अनिष्ट की आशंका से उनका हृदय काँपने लगा। कंस पहले ही कृष्ण-वध के निमित्त षडयंत्र करने लगा था। वे सभी एक-एक करके ब्रजवासियों को याद आने लगे। शकटासुर का आकर गिरना, यमलार्जुन वृक्ष का गिरना, बकासुर का बबूल रूप धारण करना, दुर्जय असुर से बछड़े का रूप ग्रहण करना, अघसर्प की दुष्टता, केशी दैत्य का उपद्रव, अरिष्ट और वृषभासुर के कृष्ण-वध प्रयत्न, प्रलम्ब दैत्य का कपट-रूप आदि समस्त घटनाओं की स्मृति ने ब्रज वासियों के मन में एक अजीब सा तूफान ला दिया। सभी की दशा विक्षिप्त के समान हो गई। कवि ने उनके कष्ट का वर्णन किया है—

घहरती घिरती दुख की घटा
यह अचानक जो निशि में उठी।
वह ब्रजाङ्गण में चिरकाल ही।
बरसती बन लोचन-वारि थी॥

ब्रज-धरा-जन के उर मध्य जो।
विरह-जात लगी यह कालिमा।
तनिक धो न सका उसको कभी।
नयन का बहु-वारि प्रवाह भी॥

तृतीय सर्ग—तृतीय सर्गारम्भ में रात्रि की नीरवता का वर्णन किया गया है। रात्रि की शांत-सुनसान और सुखद गोद में मनुष्य, पक्षी, वृक्ष और लतिकायें आदि शून्यता और नीरसता का अनुभव करती रहती थीं। गोकुल वासियों के हृदय में रात्रि-अन्धकार निराशा और चिन्ताओं की वृद्धि कर रहा था। राजा नन्द का राजभवन भी सुनसान था। कृष्ण के मथुरा प्रयाण की तैयारी पर सभी आंखें अश्रु सिक्त थीं। श्रीकृष्ण सुख-से सो रहे थे। माता यशोदा पर्याप्त व्याकुलता का अनुभव कर रही थीं। वे सोचती थीं कि कृष्ण कैसे हों सुरक्षित और सुखी रहें। कंस की दुष्टता से भयभीत होकर वे कृष्ण की सुरक्षा के निमित्त देवी-देवताओं से अनुनय-विनय करती रहती थीं। रात के बीतने के साथ ही साथ ब्रजांगनाओं का दुख बढ़ता जाता था। उनके दुख की चरम सीमा थी जिससे रात्रि भी उनके सुख की कामना करती रहती थी।

चतुर्थ सर्ग—गोकुल के पास ही एक दूसरा गांव था जिसके अन्दर वृषभानु नरेश निवास करते थे। उनकी गाँव में पर्याप्त प्रतिष्ठा थी। वे नन्द के घनिष्ट मित्र थे। उनका आदर-सम्मान भी पर्याप्त था। वृषभानु की ही एक पुत्री थी—नाम था राधा। राधा और कृष्ण परस्पर मिलते-जुलते रहते थे और दोनों का एक दूसरे के लिए परम स्नेह था। राधा सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति थी। कवि हरिऔध ने राधा के रूप-सौन्दर्य का वर्णन बड़ी सूक्ष्म कल्पनाओं से किया है—

रूपोद्यान प्रफुल्ल-प्राय-कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला पुत्तली॥
शोभा वारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य लीला-मयी।
श्रीराधा मृदु भाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थी॥

फूले कंज समान मंजु-दृगता थी मत्तता-कारिणी ।
सोने-सी कमनीय-कान्ति तन को थी दृष्टि उन्मेपिनी ।।
राधा की मुसकान की मधुरता थी मुग्धता-मूर्त्ति सी ।
काली कुंचित-लम्बमान अलकें थीं मानसोन्मादिनी ।।

राधा और कृष्ण दोनों के परिवार प्रेम के सूत्र में बंधे हुए थे । बचपन से ही श्रीकृष्ण का वृषभानु के घर में और राधा का नन्द के घर में आवागमन था । पारस्परिक स्नेह में बंधे दोनों ही साथ-साथ खेला करते थे । नन्द दोनों को साथ खेलना देख कर प्रसन्न होते थे । उनका स्नेह धीरे-धीरे प्रेम में परिवर्तित हो गया । राधा के हृदय में प्रेमांकुर उग आया । दोनों प्रेमपाश में आबद्ध हो गये ! वैधानिक रीति से विवाह हो, उससे पूर्व ही कृष्ण को अक्रूर के साथ मथुरा जाना पड़ा था । राधा के हृदय की कली जो प्रेम-वारि से हरी-भरी रहती थी एक बार ही में मुरझा गई । दुख की छाया उसके चेहरे पर दिखाई देने लगी । आँसू बहाती राधा व्यथित रहने लगी । राधा अपनी सहेली ललिता से अपनी प्रेम-कहानी कहने लगी । ज्यों-ज्यों समय बीतता गया--कृष्ण के विरह में राधा बौखलाई सी रहने लगी ।

पंचम सर्ग---पाँचवें सर्ग के प्रारम्भ में ही ब्रजवासियों के दुख का वर्णन किया गया है । रात तो ब्रजवासियों ने जैसे-तैसे करके व्यतीत कर दी, किन्तु प्रातःकाल होते ही उनका कष्ट प्रबलतर होता गया । ब्रज-धरा दुख-निमग्न दिखाई देने लगी कारण ब्रजाधिप कृष्ण मथुरा जा रहे थे । सभी शांत और खिन्न थे । वे सभी विवश-भाव से अश्रुधारा बहाने लगे । कृष्ण की विदाई बेला आ गई । वे अक्रूर के रथ पर जा विराजे । गोपिकाएं और यशोदा का रोना प्रारम्भ हो गया । कृष्ण ने पर्याप्त प्रयत्न किया कि ये शांत रहें, किन्तु किसी को धैर्य नहीं बधा । कृष्ण ने यहाँ तक कहा कि कंस हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है—हम शीघ्र ही लौट आयेंगे । कृष्ण के गमन पर कोई तो मार्ग में लेट जाते, कोई रथ को रोक लेते और कुछ ऐसे भी थे जो दुखातिरेक से रथ के चक्र को ही पकड़ लेते थे । इसे देख कर राजा नन्द रथ में से उतरे और सभी को आश्वासन दिलाया कि मैं दोनों को दो दिन में लेकर वापिस आ जाऊँगा । विवशता के साथ सभी चले गये और कृष्ण भी गये सो ऐसे गये कि लौटे ही नहीं ।

षष्ठम सर्ग---समय की गति विचित्र है । समय बीतता गया किन्तु मथुरा से कोई भी तो वापस नहीं आया । गोकुल के निवासियों का दुख दूना हो गया माता यशोदा ने यहाँ तक किया कि अपने बच्चों की अगवानी के लिए आदमियों की नियुक्ति की । सभी ब्रजवासी इस आशा में जीवन बिता रहे थे कि कृष्ण लौटेंगे, किन्तु दिनों-दिन यह आशा और प्रतीक्षा निराशा और आतुरता में बदलती जाती थी । ब्रजवासी व्यग्र हो उठे । माता यशोदा का कष्ट अवर्णनीय था, वे तो यह जानने के लिए कि कृष्ण कब तक लौटेंगे ज्योतिषियों को बुलाया करती थीं, नित्य प्रति पूजा और यज्ञ आदि करा कर देवी-देवताओं को प्रसन्न किया करती थीं । कृष्णागमन की प्रतीक्षा में वे रात-दिन व्यथित रहती थीं और राधा भी जैसे-तैसे अपना समय बिता रही थी । कृष्ण के दर्शनों की लालसा सभी के मन में विद्यमान था । एक दिवस

राजा नन्द के घर को वायु ने सुगन्धित किया पर वह भी सुख प्रदान करने में असमर्थ रही। वायु ने हृदय की वेदना को और भी अधिक घनीभूत कर दिया। इसी कारण राधा ने वायु को ही दूत बनाया और अपनी हृदय-वेदना को कृष्ण के पास भेज दिया। 'पवनदूती' प्रसंग वस्तुतः प्रियप्रवास का मार्मिक स्थल है।

सप्तम सर्ग—सप्तम सर्ग का विषय बहुत ही संक्षिप्त है। कवि ने बताया है कि यशोदा के पलक प्रति पल मथुरा की ओर लगे रहते थे। एक दिन राजा नन्द और अन्य गोप मथुरा से गोकुल लौटते दिखाई दिये। यशोदा के मन में संतोष हुआ कि चलो आये तो सही किन्तु उनके कष्ट का पारावार न रहा जब उन्होंने सोचा कि कृष्ण नहीं आ रहे हैं। बलराम और कृष्ण दोनों ही वहाँ रह गये हैं। यशोदा शोक-विह्वल होकर मूर्छित हो गई। नन्द राजा सान्त्वना देने लगे और उन्होंने यह विश्वास दिलाया कि कृष्ण और बलराम दो दिन में ही वापस आ जायेंगे।

अष्टम सर्ग—नन्द जब मथुरा से लौटे तो उन्होंने कृष्ण और बलराम के लिए कहा था कि ये दोनों दो दिन में वापस आ जायेंगे। इस सूचना की आशा में गोपियां घरों से निकलीं। उन्होंने सत्य का पता लगाया। उन्हें विदित हुआ कि कृष्ण और बलराम वापस नहीं आयेंगे। यह समाचार पाते ही गोकुलवासियों का हृदय-सरोवर सूख गया, हृदय कलिका मुरझा गई, गोपिकायें उनके बाल्यावस्था के दिनों को याद करके समय बिताने लगीं। उनके मन में यह बात बैठ गई कि वियोग के बाद संयोग के दिन आवेंगे ही।

नवम सर्ग—ब्रजभूमि के निवासी कृष्ण की याद में घुलते रहते थे। इसका अर्थ यह नहीं कि कृष्ण को ब्रजवासियों की याद नहीं आती थी। "है दोनों तरफ आग बराबर लगी हुई" एक दिन कृष्ण गोप-गोपियों और राधा की याद में बैठे हुए थे। उनके चेहरे की मायूसी को देख कर उनके मित्र उद्धव आ गये। उद्धव ने कृष्ण से उनकी मायूसी और उदासी का कारण पूछा। कृष्ण ने उत्तर दिया—हे उद्धव! मैं यहां कितने ही सुख से क्यों न रहूं, किन्तु ब्रजभूमि, ब्रजवासी और गोप-गोपियों व राधा के स्नेह सम्बन्ध को क्या कभी भुलाया जा सकता है? माता-पिता की याद सदैव व्यथित करती रहती है। मित्र उद्धव! मुझे यहां आये कई महीने हो गये, किन्तु मैं उन्हें भूल नहीं पाया हूं। मैं जब भी जाने का प्रयास करता हूं तभी कोई न कोई राजनैतिक परिस्थिति आकर मार्ग रोक देती है और फिर ब्रजवासियों की याद करके मेरा दुख दूना हो जाता है। अतः मित्र कृपा करके आप वहां पधारिये और अपने ज्ञानामृत से उनके हृदय की शुष्कता को दूर कीजिए। किसी भी विधि से सही उनकी पीड़ा शांत होनी ही चाहिए। ऊधो तैयार हो गये। रथ मंगवाया और ब्रज के लिए चल दिये। ब्रज पहुंचते ही उद्धव को आया जान कर सभी ब्रजवासी पुलकित हो उठे तथा प्रेम और आतिथ्य सत्कार प्रदर्शित करते हुए उद्धव से मिले' कृष्ण को न पाकर पर्याप्त उदास हुए। नन्द के यहां और सभी गोप-ग्वालों को उद्धव ने सान्त्वना दी। उद्धव को आया जान कर तथा कंस की कुटिलता को समझकर वे संदेहग्रस्त हो गये। उन्हें संदेह हुआ कि न मालूम अबकी बार कौन से अद्वितीय रत्न से ब्रज की धरा वंचित होगी?

दशम सर्ग--रात्रि का समय था। काफी रात बीत गई थी। समस्त वातावरण में स्तब्धता थी। राजा नन्द चुप थे। सर्वत्र चुप्पी थी--कहीं भी कोई हलचल नहीं थी। उद्धव भी भोजनोपरान्त एक ऐसे कमरे में बैठे थे जहां प्रकाश फैला हुआ था। नन्द, यशोदा भी वहीं थे। वियोग से शरीर दुर्बल हो गया था। किसी का चेहरा प्रसन्न और आशान्वित नहीं था। सभी का मन मलिन था। माता यशोदा ने अपने हृदय के समस्त स्नेह और वत्सल्य का परिचय दिया। सभी उसे ध्यान से सुनते रहे। रात बीत गई, किन्तु दुख की कथा समाप्त न हुई। उनके मन में वियोग--व्यथा का अनुभव निरन्तर बढ़ता गया।

एकादश सर्ग—ग्यारहवें सर्ग में गोपों की स्मृति के बहाने कवि हरिऔध ने अतीत की घटनाओं का वर्णन किया है। एक दिन गोपों का समूह यमुना के किनारे पर स्थित था। ऊधो भी वहां जा पहुंचे। सभी ने कृष्ण का सदेश पूछना प्रारंभ कर दिया। उद्धव ने कृष्ण का संदेश सभी को कह सुनाया और सभी को समझाया बुझाया। गोपों ने कृष्ण की अद्वितीय लीलाओं का गान आरंभ कर दिया। किसी ने कालीनाग के नथने की कथा कही तो कोई भयंकर ताप से रक्षा करने वाले कृष्ण की कथा कहने लगा।

द्वादश सर्ग—इस सर्ग में भी एकादश सर्ग की भांति अनेक कथाओं का उल्लेख मिलता है। एक बार का जिक्र है कि उद्धव गोपियों के साथ बैठे हुए थे। सभी कृष्ण के गुणगान में लगे हुए थे। सभी व्यथित थे। उनकी व्यथा को देख कर उद्धव भी चिन्तातुर और व्यथातुर हो गये। एक बार गोकुल में धारासार वर्षा हुई जिससे पर्याप्त हानि हुई। गोवर्धन पर्वत की सहायता से कृष्ण ने सभी की रक्षा की। इस प्रकार वर्षा से विपन्न ब्रज-वासियों की रक्षा हो गई। दुख की वेला बीत गई। वायु और मेघ का उपद्रव शांत हो गया। ब्रजभूमि फिर से बस गई; कृष्ण को पर्याप्त प्रशस्ति मिल गई। सभी कृष्ण का नामस्मरण करते हुए अपने-अपने घरों को लौट गये।

त्रयोदश सर्ग—ब्रज के सुन्दर और आकर्षक सघन वनों की छाया में गोचारण के निमित्त गोप ऊधो से मिले और उनसे कहने लगे—कृष्ण किस वंश के हैं ? इस तथ्य से हमें कोई प्रयोजन नहीं है। हमारा तात्पर्य केवल इतनी सी बात से है कि वे हमारे प्रेमी हैं–प्रिय पात्र हैं और हैं स्नेह भाजन। वे राज-पुत्र होकर भी हमारे साथ खेला करते थे। हमारे बिना वे आज तक कभी नहीं रहे, किन्तु राजनैतिक बाधाओं ने उन्हें हमसे पृथक कर दिया है। उनके गुण ही ऐसे हैं कि वे हमें ही क्यों समस्त संसार को प्रिय हैं। निर्बलों की सहायता करना सतलों को अपमानित करना वे अपना धर्म समझते थे। उनका परोपकारी स्वभाव ही तो था कि उन्होंने अघासुर, व्योमासुर तथा बकासुर आदि राक्षसों का वध किया। कृष्ण अपार शक्ति सम्पन्न और परम परोपकारी थे। उनकी अद्भुत शक्ति और सद्वृत्ति के कारण ही तो सभी उन्हें याद करते हैं।

चतुर्दश सर्ग—चतुर्दश सर्ग के प्रारम्भ में यमुना किनारे उद्धव को बैठे दिखाया गया है। वहां उन्हें बैठा देख कर कुछ बालिकायें और स्त्रियां पहुंच

जाती हैं। एक स्त्री कृष्ण का स्मरण करती है और विलखती है। उद्धव उसके कष्ट को समझ जाते हैं। कुछ व्यक्ति प्रश्न करते हैं—क्या कृष्ण अब यहां नहीं लौटेंगे। उद्धव उत्तर देते हैं—यह तो नहीं कहा जा सकता कि कब लौटेंगे, किन्तु उनका प्रेम गोकुल के प्रति यथावत् है। उनमें यह भावना है कि वे व्रज का ही नहीं समस्त विश्व का कल्याण चाहते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से अनुप्राणित कृष्ण परोपकारी हैं। अतः अपना मोह छोड़ दें तथा ऐसा प्रयत्न करें कि उनका विश्व प्रेम और विश्व कल्याण का प्रण सफलता को प्राप्त करे। गोपियां उद्धव के इस कथन को स्वीकार तो कर लेती हैं, किन्तु कृष्ण प्रेम को छोड़ पाना उनके वश की बात नहीं है।

पंचदश सर्ग—प्रातः वेला में कृष्ण के मित्र उद्धव कुंजों में भ्रमण कर रहे थे। वे मस्ती में भरे हुए थे। यकायक एक गोपी सामने आ गई। वे उस आगन्तुका गोपी का मर्म जान गये। वह गोपी क्रमशः एक-एक पुष्प के पास जाकर अपना दुखड़ा सुनाने लगी। पहले गुलाब फिर जूही और तदनंतर चमेली, वेला, चम्पा, कुंद, केतकी, बंधूक और सूर्यमुखी नामक पुष्पों के पास गयी। इन सभी को अपनी विरह व्यथा सुनाई। उसने एक भ्रमर को रोका और उसे अपनी व्यथा-कथा सुनाने लगी। यकायक वंशी की ध्वनि ने उसे भ्रमित कर दिया. उनके सभी भाव जो अब तक सोये पड़े थे—वंशी की ध्वनि से जाग्रत हो गये। परिणामतः वह गोपी वंशी के स्वर को उपालंभ देने लगी। उसके उपालंभ से यमुना और कोकिलायें भी नहीं बच सकीं। इस प्रकार उपर्युक्त गोपी विक्षिप्ता की भांति वेसुध होकर भ्रमण करने लगी। जब उसे विरह के दुख से शांति नहीं मिली तो वह घर वापस लौट आई। उद्धव उसके विरह-कष्ट से पीड़ित हुए, किन्तु कहा कुछ भी नहीं।

षोडश सर्ग—वसन्त का 'मधुमास' आया। सर्वत्र वन-उपवन में नव जीवन का संचार हुआ। पुष्प खिल उठे। दिशायें निर्मल हो उठीं। वृषभानु नरेश के आंगन में स्थित उपवन में राधा वैठी हुई थी। उद्धव वहां भी अपनी ज्ञान-गठरी को लेकर चले गये। उद्धव ने कृष्ण का संदेश सुनाया, सान्त्वना दी और राधा ने भी अपनी सभी बातों को उद्धव के समक्ष प्रकट किया। मोह और प्रणय का अन्तर स्पष्ट किया, कृष्ण को परमात्मा सिद्ध किया। अन्त में राधा के हृदय पर उस संदेश का प्रभाव पड़ा। उसने कहा—मुझे कृष्ण का संदेश शिरोधार्य है। मैं उसका आजीवन पालन करूंगी। मेरी केवल इतनी कामना है कि मुझे आप ऐसा आशीर्वाद दें ताकि मैं विश्व-कल्याण का कार्य कर सकूं और मेरा कौमार्य व्रत भी पूर्ण हो जावे। इसके साथ ही वह चुप हो गई।

सप्तदश सर्ग—उद्धव ब्रज भूमि के लिए केवल दो दिन का समय लेकर आये थे, किन्तु उन्हें यहां की रमणीयता और आनंदमग्नता ने छः मास रहने के लिए बाध्य कर दिया। इसके बाद भी कृष्ण ब्रज-भूमि वापस नहीं आये। कुछ समय के अनंतर यह समाचार प्रचारित हुआ कि जरासंध ने मथुरा पर आक्रमण किया है। वह सत्रह बार पराजित हुआ और अठारहवीं बार मारा गया। कृष्ण उसके उपद्रवों के कारण द्वारिका जा बसे। वे ब्रज कभी भी वापस नहीं आये। आक्रमणों के कारण ब्रजवासियों को गहरी चिन्ता हुई।

राधा सभी को समझाने लगी और विश्व-कल्याण में संलग्न हो गई। उसे सम्पूर्ण विश्व में कृष्ण की ही छवि दिखाई देती थी। संसार उसे कृष्णमय प्रतीत होता था। कृष्ण तो आजीवन गोकुल नहीं लौटे किन्तु राधा भी जीवन भर लोक-सेवा का व्रत निभाती रही।

प्रियप्रवास की वस्तु योजना

सामान्य परिचय—प्रियप्रवास की कथावस्तु संक्षिप्त है। इस महाकाव्य के विस्तृत कलेवर में भी सूक्ष्म कथा का अन्तर्भाव है। इसका कारण संस्कृत के परवर्ती महाकाव्यों का प्रभाव है। हरिऔध ने इन्हीं को अपना आदर्श बनाया है। इस महाकाव्य की काया पर तत्कालीन परिस्थितियों और प्रेरणाओं की छाया भले ही रही हो, किन्तु इतना स्पष्ट है कि इसकी कथा योजना पर तथा वर्णन प्रणाली पर परवर्ती संस्कृत महाकाव्यों की छाया रही है। संस्कृत के महाकवि महाकाव्यों के लिए बहुत ही संक्षिप्त कथा चुनते थे तथा वर्णनों और वार्तालापों के द्वारा अपने उद्देश्य को पूरा करते थे; चमत्कारप्रियता के स्थान पर वर्णनात्मकता को अपना आदर्श बनाते थे। हरिऔध ने प्रियप्रवास में इसी शैली को स्थान दिया है।

प्रियप्रवास की कथा का विभाजन— प्रियप्रवास की सम्पूर्ण कथावस्तु को सर्गों के क्रमानुसार संक्षेपतः इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

सर्ग संख्या	वर्णित विषय
काव्य-कथा का पूर्वार्ध—	
१–२.	अवतरण भाग और कंस द्वारा कृष्ण को निमंत्रण।
३.	यशोदा का वात्सल्यमय विरह-विलाप।
४.	राधा का करुण-क्रन्दन।
५.	श्रीकृष्ण का शोक संताप से पीड़ितों को छोड़ कर मथुरा प्रयाण।
६-८.	शोक संताप का व्यापक विस्तार और सम्पूर्ण वृन्दावन में उसका विस्तार।
कथा का उत्तरार्ध—	
९.	उद्धव का मथुरा से वृन्दावन आगमन।
१०–१६.	गोपी-गोपों विशेषतः राधा की अगंभीर वेदना की करुण अभिव्यंजना, अतीत की सुखद स्मृतियों की दुखद कसक। उद्धव द्वारा उनकी विरह-वेदना का निरीक्षण।
१७.	लोकोपकार का व्रत संलग्न होने के कारण कृष्ण का वृन्दावन न लौटना और उधर राधा की लोक-कल्याणी के रूप में अवतारणा।

प्रियप्रवास की कथा के सम्बन्ध में धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने लिखा है— "प्रियप्रवास की कथा को देखने से ज्ञात होता है कि कथा के क्रम का विकास कुछ-कुछ केवल द्वितीय, पंचम, नवम और सप्तदश सर्गों में ही हुआ दीखता है; वरना अन्य सर्गों में केवल रोने-कलपने के सिवाय और कोई नवीनता नहीं है। श्रीकृष्ण के विक्रम और उनकी अद्भुत कृतियों के वर्णन में यदि नवीनता है

भी तो उसमें आकर्षण नहीं है क्योंकि वे सभी प्राय: विलाप के व्यापक प्रसंग के अन्तर्गत गौण रूप से ही समाविष्ट हैं।.........विलाप का व्यापक प्रसंग भी इस महाकाव्य में मानो दुहराया सा गया है– एक बार तो पूर्वार्ध में अर्थात् प्रथम से अष्टम सर्ग तक; और दूसरे उत्तरार्ध में अर्थात् नवम से सप्तदश सर्ग तक। काव्य के दोनों भागों में वही माता यशोदा, वही राधा, वही गोप और वही गोपियां– सब एक-एक करके श्रीकृष्ण विरह जनित हृदयगत भावों की सकरुण अभिव्यक्ति करते हैं।"

प्रियप्रवास में वर्णित प्रमुख कथायें और प्रसंग—हरिऔधजी के प्रियप्रवास में जो प्रमुख घटनायें और प्रसंग हैं, उन्हें स्पष्टत: प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रमुख कथायें इस प्रकार हैं—

१. पूतना की कथा
२. तृणावर्त की कथा
३. शकटासुर की कथा
४. बकासुर की कथा
५. दुर्जयवत्स की कथा
६. अघासुर सर्प की कथा
७. केशी अश्व की कथा
८. यमलार्जुन की कथा
९. पशुपालक व्योम की कथा
१०. कालीनाग की कथा
११. गोवर्द्धन धारण करने की कथा
१२. कुवलयापीड़, चाणूर, मुष्टिक, कंस आदि के वध की कथा
१३. दावानल दाह की कथा
१४. जरासंध की कथा और द्वारिकागमन

उपर्युक्त कथाओं के अतिरिक्त निम्न कथाओं का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है—

१. कालीनाग की कथा
२. दावानल-दाह की कथा
३. वर्षा के प्रकोप के कारण गोवर्द्धन धारण करने की कथा
४. अघोपनामी सर्प की कथा
५. विशाल अश्व की कथा
६. व्योम पशुपाल की कथा

इन प्रसंगों के अतिरिक्त हरिऔध ने निम्नलिखित प्रसंगों का वर्णन भी प्रियप्रवास में किया है—

१. गोचारण के उपरान्त संध्या के समय श्रीकृष्ण का सजधज के साथ गोकुल में प्रवेश।
२. अक्रूर के साथ मथुरागमन और ब्रजवासियों का विलाप।
३. श्रीकृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं का वर्णन।
४. उद्धव का योग संदेश
५. महारास का वर्णन।

६. गोपियों का विरह निवेदन ।
७. भ्रमर गीत ।
८. मुरली माहात्म्य ।
९. राधा की महत्ता ।[1]

कथावस्तु की विशेषतायें—प्रियप्रवास की कथा अत्यन्त संक्षिप्त और विरल है। हरिऔधजी ने अपनी कलात्मक प्रतिभा के बल पर उसे विस्तृत और संयोजित किया है। कथा विस्तार में यशोदा, राधा और गोपियों की विरह-विकलता का विशेष हाथ है। इस काव्य में कृष्ण के मथुरागमन और उनके वियोग में ब्रज विलाप का विशेष हाथ है। प्रियप्रवास की कथा-वस्तु की निम्नलिखित विशेषतायें हैं—

१. प्रियप्रवास की कथा संस्कृत के काव्यों से प्रभावित है। "संस्कृत के उत्तरकालीन कवियों ने कथा के विकास की चिन्ता नहीं की। कवीन्द्र रवीन्द्र ने संस्कृत के काव्यों के विषय में एक बात बहुत महत्त्वपूर्ण कही है कि भारतवर्ष के श्रोता और पाठक को कथा के जल्दी-जल्दी विकास की कभी चिन्ता नहीं रही। एक-एक कथा वर्षों तक चल सकती थी और यह भी संभव था कि पाठक कथांत से पूर्ण परिचित हो फिर भी पाठक या श्रोता काव्यों को यह जान कर ही पढ़ता था कि वह काव्य को 'रस' के लिए पढ़ रहा है, कथा के लिए नहीं। आगे क्या हुआ, इसके लिए भारतीय मानस को उद्विग्नता कभी नहीं रही। वह तो बीच-बीच के वर्णनों में रस लेता ही आगे बढ़ता रहा है।"[2] प्रियप्रवास में यही प्रवृत्ति मिलती है। उसमें वर्णनों का प्राचुर्य है। अतः कथा विरमती हुई आगे चलती है। प्रियप्रवास एक गंभीर काव्य है। कथा में वर्णनों को स्थान मिला है। प्रियप्रवास का आरंभ ही वर्णनों से होता है। पूरे के पूरे सर्ग में संध्या की मनोहर झांकी प्रदर्शित की गई है।

२. प्रियप्रवास की कथा-योजना संस्कृत से प्रभावित होकर भी हरिऔध के मौलिक प्रतिभाजन्य कौशल से आवेष्टित है। काव्य के प्रथम आठ सर्गों में कथा-सूत्र क्रमशः विकसित होता दिखाई देता है। अतः आठ सर्गों तक प्रियप्रवास की पूर्वार्ध कथा है। पूर्वार्ध की कथा में जो क्रम, व्यवस्था और सुविन्यास है, वह उत्तरार्ध में नहीं है। बाद में तो कथा हास्यास्पद हो गई है। घूम-फिरकर कवि एक के बाद एक नाटकीय पात्रों को प्रस्तुत करता गया है। मजे की बात यह है कि सभी वक्ताओं का कथ्य एक ही है। उत्तरार्ध की कथा को इस छन्द से समझा जा सकता है।

निज मनोहर भाषण वृद्ध ने
जब समाप्त किया बहुमुग्ध हो
ऊपर एक प्रतिष्ठित गोप यों
तब लगा कहने सुगुणावली ।।

---

1. डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना की कृति प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन के आधार पर ।
2. रूपनारायण पाण्डेय की कादम्बरी की भूमिका से उद्धृत ।

चुप्पी से सभी कुछ शून्य में बोलता सा नजर आता है। स्पष्ट ही "प्रियप्रवास को यदि परम्परागत कथा-निर्वाह की दृष्टि से देखें तो उसमें दोष दिखाई पड़ते हैं। घटनाओं के अभाव के कारण काव्य को हानि अवश्य हुई है, चीत्कार का विस्तार हुआ है, परन्तु इस कमी के प्रति जागरूक कवि उक्त उपायों को काम में लाया है और इनसे हानि की मात्रा कम हो गई है। यदि ये उपाय काम में न लाये गये होते तो प्रियप्रवास में एकरसता की मात्रा चरम सीमा पर पहुंच जाती।"

कुछ लोगों की मान्यता है कि प्रियप्रवास की कथावस्तु में जो निर्बलता है, उससे लाभ भी हुआ है—

१. अनुभूतिप्रधान महाकाव्यों की परम्परा आगे चली है।

२. इतिवृत्तात्मकता अपदस्थ हुई है और नवीन प्रस्थापना का विकास हुआ है।

३. प्रकृति वर्णन को नया रूप प्राप्त हुआ है।

४. उदात्त चरित्र-चित्रणों के लिए अवकाश मिला है। अतः यही कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास में कथा का विकास नये और आश्चर्यजनक ढंग से हुआ है। परिणामतः लाभ और हानि दोनों की स्थिति दिखाई देती है। इसमें एक ओर नवलता का विधान है तो दूसरी ओर तज्जन्य एकरसता और उबाने वाली वर्णना का प्राचुर्य भी है। यों अपवादस्वरूप आई अतीव संक्षिप्तता भी खटकती है।

अतीव उत्कंठित तन्मनस्क हो,
समस्त ने वृत्त मुकुन्द का सुना।
अनन्तरोद्विग्न मलिन खिन्न हो
जनक ने भी हरिबंधु से कहा।

कथा स्रोत : परिवर्तन और नवीनोद्भावनाय

कथा स्रोत—प्रियप्रवास में जो कथा है वह कृष्ण, राधा, गोप-ग्वालों की कथा है। इनका आधार, महाभारत, भागवत और पुराण हैं। कवि ने यहीं से अपने काव्य का महल खड़ा करने की नींव डाली है। वस्तुतः कृष्ण विषयक कथायें इन्हीं उपनिर्दिष्ट ग्रंथों में बिखरी पड़ी हैं। कृष्ण विषयक कथाओं को हम सबसे पहले महाभारत में पाते हैं। वहाँ कृष्ण के द्वारिका जाने के बाद की कथाओं को विस्तार दिया गया है। यों महाभारत के अंशरूप 'हरिवंश पुराण' में कृष्ण-जन्म से लेकर अन्य सभी कथाओं का उल्लेख मिलता है।

ब्रह्मपुराण के १८२वें अध्याय से लेकर २१२वें अध्याय तक भगवान कृष्ण की सम्पूर्ण कथा विस्तार के साथ मिलती है। "इसमें कृष्ण-जन्म से लेकर द्वारिका में श्रीकृष्ण गमन तथा प्रभास क्षेत्र में जाकर यादवों के विध्वंस तक का वर्णन बड़ी विशदता से किया गया है। यहां पर कृष्ण की उन सभी लीलाओं का वर्णन है जो उन्होंने गोकुल, वृन्दावन और मथुरा आदि स्थानों पर की थीं।" इसी प्रकार पद्मपुराण और विष्णुपुराण में कृष्ण की समस्त कथायें विस्तार के साथ वर्णित की गई हैं। इनमें से विष्णुपुराण में तो 'महारास' का वर्णन भी मिलता है।

इसके पश्चात् श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में कृष्ण के चरित्र को विस्तार के साथ ९० अध्यायों में वर्णित किया गया है। कृष्ण की लीलाओं का वर्णन जितनी विस्तृति के साथ इस पुराण में मिलता है उतना अन्यत्र नहीं मिलता है। महारास का वर्णन, कृष्ण विरह में गोपियों की विषम व्यथा, उद्धव का गोपियों को समझाने के निमित्त आना, उद्धव-गोपी संवाद और भ्रमरगीत आदि का वर्णन बड़ी मार्मिकता के साथ इस पुराण में मिलता है।

आगे चलकर अग्निपुराण के १२वें अध्याय में कृष्ण की संक्षिप्त कथा मिलती है। यह पुराण एक प्रकार के सकलन-पुराण सा है। इस पुराण की विशेषता यह है कि भगवान कृष्ण अपने विरह में व्यथित नन्द और सभी व्रजवासियों को सान्त्वना देने के लिए व्रजभूमि में आते हैं। इसके साथ ही "भांडीर वन में एकत्रित समस्त गोप-गोपी, नन्द, यशोदा आदि को ब्रह्माजी के शाप से यादवों का विनाश, द्वारिका नगरी का समुद्र में विलय, पाँडवों के मोक्ष आदि की कथायें सुनाते हुए समस्त व्रजजनों का समाधान करते हैं तथा अन्त में अपने निश्चित धाम को लौट जाते हैं।"

इसके अतिरिक्त जैनियों के जिनसेन कृत अरिष्टनेमि पुराण के अन्तर्गत भी कृष्ण-कथा मिलती है। यहां कृष्ण के जन्म से लेकर द्वारिकागमन तक की कथा ४४ अध्यायों में बड़े विस्तार के साथ दी गई है। इस कथा में कृष्ण द्वारा केशी, गज, चाणूर, मुष्टिक कंस आदि के वध का वर्णन है, जरासंध के मथुरा पर आक्रमण का भी उल्लेख है और उसी के भय से कृष्ण का द्वारिका में पलायन करने का भी वर्णन मिलता है।[1] किन्तु, यहां गोप-गोपियों की विरहावस्था, उद्धव गोपी संवाद आदि का वर्णन नहीं मिलता।

स्पष्ट ही कृष्ण विषयक अनेक कथाओं का महाभारत से ही मिलना प्रारंभ हो जाता है। धीरे-धीरे वे पुराणों में भी फैलती गई हैं। हरिवंश-पुराण, श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण में कृष्ण की सभी कथाओं का विशद उल्लेख मिलता है। भक्तिकालीन कवि इन्हीं पुराणों के आश्रय में अपनी-अपनी कृष्ण कथाओं को आगे विकास दे सके हैं। आधुनिक काल में कृष्ण सम्बन्धी विविध कथायें भी इन्हीं से प्रभावित रही हैं। आधुनिक युग का महाकाव्य कृष्णायन प्रमुखतः महाभारत और श्रीमद्भागवत से प्रभावित हैं। भारतीय कृष्ण-कथाओं की भांति ही प्रियप्रवास महाकाव्य में जो कृष्ण कथा मिलती है वह भी इन्हीं से प्रभावित है; उसकी कथाओं, संस्मरणों और वर्णन प्रणाली के लिए ही यह ग्रंथ उपजीव्य रहे हैं। यों कवि ने भागवत और अपने काव्य प्रियप्रवास में अन्तर भी रखा है।

परिवर्तन—प्रियप्रवास पर भागवत और पुराणों की छाया स्पष्ट दीखती है, किन्तु फिर भी थोड़ा बहुत अन्तर काव्य को पढ़ते ही स्पष्ट हो जाता है। सामान्यतया कवि ने भागवत ग्रहीत कथाओं को प्रियप्रवास में यत्किंचित परिवर्तन और अन्तर के साथ प्रस्तुत किया है।

1. डॉ० सक्सेना : प्रियप्रवास में संस्कृति और दर्शन।

(१) **कालीनाग की कथा**—यह कथा भागवत और प्रियप्रवास में एक विशिष्ट अन्तर के साथ प्रस्तुत की गई है। श्रीमद्भागवत में कालियनाग को रमणक द्वीप का निवासी बताया गया है तथा उसे भयंकर सर्प की अभिधा दी गई है। उसकी विषाक्त प्रवृत्ति भयंकर थी, उसकी भयंकरता से गरुड़ तक घबराते थे। कहते हैं कि एक बार गरुड़ और कालिय नाग में युद्ध छिड़ गया। काली नाग अपने एक सौ फन फैला कर गरुड़ को डसने और उसे नष्ट करने के लिए उतारू हो गया। इससे गरुड़ नाराज हो गया और प्रत्युत्तार में उसने ऐसा प्रहार किया कि उसकी चोट से कालीनाग रमणक द्वीप से भाग कर यमुना के कुण्ड में आकर निवास करने लगा।

इस कुण्ड में रहता हुआ काली नाग ययुना के जल को विषाक्त बनाया करता था। जल का विषैलापन इतना तीव्र था कि जो भी उसे पीता प्राणों से हाथ धो बैठता। कृष्ण एक दिन खेल ही खेल में उस कुण्ड में कूद पड़े और उसे पैरों की चोट से कुचल डाला। उसके प्राण तो बच गये, किन्तु वह बेकार होकर दुबारा रमणक द्वीप में चला गया। सर्प ने और उसकी पत्नियों ने उसकी पूजा की और इस प्रकार यमुना से व्याधि मिटी।

हरिऔध ने प्रियप्रवास के अन्तर्गत इस कथा में परिवर्तन किया है। उन्होंने इसे यमुना के कुण्ड का निवासी ही सिद्ध किया है तथा जाति और लोक हित की रक्षा के लिए श्रीकृष्ण को उस नाग के भगाने का कार्य करते हुए बताया है। ब्रजवासियों की व्याकुलता, यशोदा और नन्द की अधीरता और सभी की विकलता का समान वर्णन मिलता है। हरिऔध ने नाग को वशीभूत करने की प्रक्रिया में भी परिवर्तन किया है। प्रियप्रवास में कृष्ण वंशी की मधुर ध्वनि से सर्प को वशीभूत करते हैं। इसके साथ ही वे सर्प को नष्ट नहीं करते हैं, वरन् युक्तिपूर्वक उसे सपरिवार वन की ओर निकाल देते हैं। यों कहने को तो कवि भी लिख गया है कि बहुत से व्यक्ति यह अनुमान करते रहे कि कृष्ण ने उसे मार डाला और बहुत से यह कहते रहे कि वह कहीं छिपा हुआ है। कुछ की दृष्टि में कृष्ण ने उसे दन्तहीन बना दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि हरिऔध ने इस कथा को बौद्धिक रूप प्रदान किया है और कृष्ण को साधारण व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है।

(२) **गोवर्धन-धारण की कथा**—भागवत पुराण में कथा आती है कि सभी ब्रजवासी इन्द्र की पूजा किया करते, किन्तु कृष्ण के कहने से अपनी पूजा बंद हो जाने से इन्द्र क्रुद्ध हो गये। परिणामतः प्रलयकारी मेघों से वृष्टि होने लगी। ब्रज पर घनघोर बादल छा गये, भयंकर वर्षा हुई जिसमें सारा ब्रज डूब गया। कृष्ण ने ब्रज की रक्षा के लिए क्रीड़ापरक खेल किया। उन्होंने खेल ही खेल में गोवर्धन पर्वत को अधर उठा लिया। बरसाती छाते की भांति वे उसे अपनी अंगुली पर उठा कर सभी को बचाने में सफल हो गये। इसके पश्चात् भगवान कृष्ण ने अपने ब्रज प्रदेश की रक्षा करके सभी को प्रसन्नता प्रदान की। अन्त में वर्षा की अतिरेकता समाप्त हो गई।

हरिऔध ने इस कथा को भी परिवर्तित करके बुद्धिवादी बना दिया है। ब्रज में होने वाली वर्षा को देख कर कृष्ण स्तब्ध रह जाते हैं। वे कहते

हैं कि इस भयंकर वर्षा से बचना तो मुश्किल है। अतः हम सभी को घरों को छोड़ कर गोवर्धन पर्वत की शरण में चलना चाहिए क्योंकि वहाँ बहुत बड़ी-बड़ी कंदरायें हैं- जिनमें सभी को शरण मिल सकती है। कृष्ण की यह बात सुन कर सभी गोवर्धन पर्वत की शरण में चले जाते हैं। सभी त्राण पाते हैं और कृष्ण उन्हें अनेक सुख-सुविधायें प्रदान करते हैं।

(३) **अघासुर की कथा**—भागवत के आधार पर अघासुर पूतना और बकासुर का छोटा भाई था। कंस के द्वारा ब्रज में कृष्ण और गोपों को नष्ट करने के लिए भेजा गया था। एक दिवस वह भयंकर अजगर का रूप धारण करके मार्ग में लेट गया। सभी घबराने लगे और उससे मुक्ति का प्रयास करने लगे। कृष्ण ने उसे समाप्त कर दिया। वे उसके मुँह में घुस गये और अन्दर ही अन्दर उन्होंने अपने शरीर का विस्तार किया। उसका शरीर फट गया और गला रुँध कर नष्ट हो गया। इस प्रकार कृष्ण ने सभी को उस आपत्ति से बचा लिया। हरिऔध ने इस कथा में भी परिवर्तन किया हैं। उन्होंने प्रतिपादित किया है कि वह अघासुर भी पर्वत की कंदराओं में रहता था। यदा-कदा वह अपनी भूख को शांत करने के लिए बाहर आ जाया करता था। कृष्ण ने जैसे ही उसे देखा वैसे ही उसके पास गये और उसे वेणुनाद से मोहित कर लिया। कौशल से उसका वध कर दिया।

(४) **केशी की कथा**—केशी नाम का एक दैत्य था, जिसे कंस ने श्रीकृष्ण को मारने के निमित्त भेजा था। कहा गया है कि एक बार वह दैत्य घोड़े का रूप धारण करके वेग से दौड़ता हुआ ब्रज में आया। उसकी हिनहिनाहट से सम्पूर्ण गोकुल भयभीत हो उठा। उसने कृष्ण के पास जाकर सिंह के समान गर्जना की। उसने कृष्ण को मारने का प्रयत्न भी किया, किन्तु कृष्ण तो बहुत ही चालाक थे। वे बच गये तथा अवसर पाकर अपने दोनों हाथों से उसके दोनों पैर पकड़ लिये। गरुड़ साँप को जैसे पटक देता है, उसी प्रकार कृष्ण ने उसे घुमा कर झटक दिया। हरिऔधजी ने इसे ग्रहण किया है, किन्तु थोड़ा सा परिवर्तन यह किया है कि उसे दैत्य के रूप ग्रहण में नहीं किया है। उसकी हत्या भी कवि ने अति मानवीय ढंग से न करा कर व्यावहारिक ढंग से की हैं। वस्तुतः कवि ने कथा को बुद्धिसंगत बनाने का प्रयास किया।

(५) **व्योमासुर की कथा**—व्योमासुर मायावियों के आचार्य मयासुर का पुत्र था और बड़ा ही मायावी था। एक दिन ग्वाल-बाल कृष्ण सहित लुका-छिपी का खेल खेल रहे थे। "उसी समय यह व्योमासुर ग्वाल का वेष धारण करके वहाँ आ मिला और जो ग्वाल चोर बने हुए थे उनके साथ चोर बन कर ही खेलने लगा। अब वह चोर बन कर बहुत से ग्वालों को चुरा-चुरा कर एक पहाड़ की गुफा में ले जाकर डाल देता और उस गुफा के दरवाजे को एक बड़ी चट्टान से ढक देता था। इस तरह जब केवल चार-पांच ग्वाल ही शेष रह गये, तब भगवान कृष्ण को उसकी करतूत पता चल गई और जिस समय वह ग्वाल बालों को लिये जा रहा था, उसी समय उन्होंने जैसे सिंह भेड़िये को दबोच ले उसी तरह उसे धर दबाया। व्योमासुर बहुत बली था परन्तु कृष्ण ने उसे अपने शिकंजे में फांस कर तथा दोनों हाथों से भूमि पर गिरा कर उसका गला घोट दिया। कुछ ही देर बाद वह राक्षस मर गया।"

हरिऔध के काव्य में यह घटना एकदम बदली हुई दिखाई देती है। उन्होंने व्योम को एक पशुपाल माना है, जो प्राणियों को पीड़ा देता रहता था। वह कभी किसी बैल को चुरा लेता और कभी बछड़े और गायों को चुरा ले जाता था। इस प्रकार उसके दुष्कर्मों से सभी परेशान थे। श्रीकृष्ण ने एक भारी एवं लम्बी सी यष्टि लेकर उस नीच को मार डाला और अपने ब्रजजनों को उस दुष्ट की क्रूरता से बचा लिया। वस्तुतः कवि ने इसमें भी बौद्धिक और तर्क संगत दृष्टिकोण अपनाया है।

(६) **तृणावर्त की कथा**—भागवत के अनुसार तृणावर्त नामक एक दैत्य था। वह कंस का व्यक्तिगत सेवक था। कंस की प्रेरणायें पाकर बवंडर की भांति वह गोकुल में आया और कृष्ण जो कि बालक थे, उड़ा कर ले गया। गोकुलागमन के पश्चात् वह भयंकर बनता गया किन्तु कृष्ण कम चालाक नहीं थे। उन्होंने अपना भार बढ़ा दिया। कृष्ण का भार जब असह्य हो गया तो दैत्य की उड़ने वाली गति रुक गई। कृष्ण ने उसका गला पकड़ लिया, वह मर गया।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि यह कथा अति मानवीय घटनाओं से भरी पड़ी है। हरिऔध ने इसे मानवीय बना दिया है। उसमें बौद्धिकता का अंश आ गया है। इस कथा में किये गये परिवर्तन इस प्रकार हैं—

१. तृणावर्त को दैत्य नहीं माना गया है। उसे भयंकर आंधी के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

२. भयंकर आंधी के समान सभी दिशाओं को कम्पित करने वाला कहा गया है।

३. आंधियों की भांति ही उसे क्षणिक और शीघ्र ही समाप्त होने वाला कहा गया है।

४. ऐसे अवसर पर कृष्ण अनायास ही घर में छिप कर बैठ जाते हैं और आंधी के समाप्त होते ही हंसते-किलकते बाहर निकल आते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि तृणावर्त को प्रकृति के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

(७) **दावानल की कथा**—भागवत पुराण में दावानल का वर्णन किया गया है। गायें वन में चर रही थीं कि यकायक भयंकर आग लग गई। आँधी का निरन्तर बढ़ता हुआ वेग और वन की अग्नि दोनों परस्पर संयोग से बढ़ती गयीं। कृष्ण ने सभी को समझाया और कहा—"डरो मत, तुम अपनी आँखें बन्द कर लो"। इसको सुन कर सभी गोपों ने वैसा ही किया जैसा कहा गया था। योगेश्वर कृष्ण ने भयंकर आग को पी लिया और सभी को संकट से मुक्ति दिलाई। इसके पश्चात् गोपों ने अपने को भांडीर वट के निकट पाया।

हरिऔध ने इस दावानल का ऐसा ही वर्णन किया है, किन्तु थोड़ा बहुत परिवर्तन भी किया गया है। ग्वाल बालों की दयनीय स्थिति और उनकी रक्षा के लिए किये गये उपायों का वर्णन बहुत ही मौलिक और बुद्धिसम्मत है। भागवत के कृष्ण जो आग को पीने में समर्थ थे, वे यहां व्यावहारिक रूप में मनुष्योचित प्रयास और अपने सहयोगियों के सहयोग से आग को

बुझा देते हैं। वे प्रयास करके एक कठिन मार्ग से सभी गोपों और गोप ग्वालों को बचा लाते हैं। इस प्रकार यह कथा बौद्धिक और विश्वसनीय सत्ता प्राप्त कर गई है।

इनके अतिरिक्त कुछ और घटनायें भी हैं जो कि प्रियप्रवास में दिखाई गई हैं, किन्तु उनका वर्णन कवि ने विशेष विस्तार के साथ नहीं किया है। इनमें विशेष परिवर्तन भी नहीं किया गया हैं। जिस क्रम से वे भागवत में दिखाई गई हैं, वह यहां परिवर्तित जान पड़ती हैं। कवि ने कृष्ण जन्म से लेकर जरासंध के आक्रमण तक की घटनाओं को आभीरों, गोप-ग्वालों के स्मरण रूप में ही प्रस्तुत किया गया है। क्रम से प्रियप्रवास में आने वाली घटनायें इस प्रकार हैं—

१. अक्रूर के साथ श्री कृष्ण और बलराम का मथुरा गमन।
२. उद्धव का गोप-गोपियों को समझाने के लिए गोकुल में आगमन।
३. उद्धव का गोप-गोपियों को योग मार्ग का उपदेश देना तथा स्वयं राधा के भक्त होकर मथुरा लौटना।
४. जरासंध के आक्रमण और श्री कृष्ण का द्वारिकागमन।

इन घटनाओं के अतिरिक्त शेष घटनायें स्मृतिस्वरूप अंकित होने से विभिन्न प्रकार से घटित हुई हैं। अतः स्पष्ट है कि कवि हरिऔध ने प्रियप्रवास की कथा का आधार तो भागवत को ही बनाया है, किन्तु कवि का लक्ष्य यह रहा है कि ये घटनायें अतिमानवीय न रहें और लौकिक ही बन कर सामने आवें जिससे आज का बुद्धिवादी पाठक इस ओर से शंकित न हो।

कथावस्तु की नवीनोद्भावनायें

प्रियप्रवास की कथावस्तु के परिचय, विवेचन और मूलाधार को जानने के बाद यह जानना आवश्यक हो जाता है कि हरिऔध ने अपनी कथा में कौन-कौन सी मौलिक उदभावनायें की हैं। वस्तुतः प्रियप्रवास में कुछ ऐसी उद्भावनायें हैं जिन्हें कवि की देन कहा जा सकता है। इस आधार पर निम्नलिखित तीन प्रसंग विशिष्ट मौलिक प्रतीत होते हैं—

१. पवनदूती प्रसंग
२. श्रीकृष्ण का महापुरुष रूप
३. राधा का लोक-सेविका रूप

इनका विवेचन नीचे किया जा रहा है। ये ऐसे स्थल हैं जिनके आधार पर कवि की मौलिक कल्पना शक्ति को जाना और समझा जा सकता है।

१. पवनदूती प्रसंग—प्रियप्रवास के अन्तर्गत राधा कृष्ण के वियोग में दुख का अनुभव करती है और अपनी वेदना को श्रीकृष्ण तक पहुचाने के लिए प्रातः पवन को दूती बना कर भेजती है। हिन्दी और संस्कृत दोनो ही साहित्यों में प्राकृतिक पदार्थों के माध्यम से अपने प्रिय तक संदेश भेजने की प्रथा प्राचीन है। समीर, पशु, पक्षी, मेघ आदि को सदेशवाहक का रूप प्रदान किया गया है। आदि काल से लेकर पूर्व आधुनिक काल तक में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। पवन को संदेशवाहक का रूप घनानंद ने भी दिया है। घनानंद की विरहिणी पवन को ही अपना संदेश भेजती है—

ऐरे वीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन,
वीर तोसों और कौन मनै ढरकौंहीं बानि दै।
जगत के प्रान ओछे बड़े को समान,
घन-आनद-निधान सुखदान दुखियानि दै।
जान उजियारे-गुन-भारे अति मोहे प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचान दै।
विरह-विथा की मूरि आंखिन में राखौं पूरि,
धूरि तिन्हे पायन की हा ! हा ! नेकु आनि दै।

यद्यपि हरिऔध के सामने प्राकृतिक पदार्थों को दूत बना कर भेजने की परंपरा थी। उन्होंने उसी का अनुकरण करते हुए अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। पवन को दूती बना कर राधा ने कृष्ण के पास भेजा है। इसमें कवि की मौलिक कल्पना विद्यमान है। वैसे यदि प्रभाव को ही अंकित किया जावे तो विदित होता है कि हरिऔध का यह प्रसंग कालिदास के मेघदूत से प्रभावित हैं। यक्ष जिस प्रकार अपनी मनोव्यथा को मेघ के सामने व्यक्त करता है, उसी प्रकार राधा पवन के सामने। डॉ० सक्सेना ने इस प्रसंग की तुलना की है मेघदूत के यक्ष का यह कथन देखिये—"हे मेघ ! मेरे प्रिय कार्य को शीघ्र पूरा करने की उत्कट लालसा तुम्हारे हृदय में विद्यमान है, फिर भी मैं यह देख रहा हूं कि विकसित कुटज के पुष्पों से परिमपूर्ण सुगंध वाला प्रत्येक पर्वत मार्ग में तुम्हें आकर्षित करके तुम्हारे विलम्ब का कारण होगा। अतः आँसुओं से परिपूर्ण नयन वाले मयूरों की वाणियों का स्वागत करके तुम किसी रीति से शीघ्र ही जाने की चेष्टा करना।"

हरिऔध ने उक्त भाव को पवनदूती प्रसंग में थोड़ा सा परिवर्तित करके यों प्रस्तुत किया है—

ज्यों ही मेरा भवन तज तू अल्प आगे बढ़ेगी।
शोभा वाली अमित कितनी कुंज-पुंजे मिलेंगी॥
प्यारी छाया मृदुल स्वर से मोह लेंगी तुझे वे।
तो भी मेरा दुख लख वहां तू न विश्राम लेना॥

इसी से मिलते-जुलते भाव और भी प्रियप्रवास में विद्यमान हैं। मेघदूत के और भी कई अंशों की छाप प्रियप्रवास के इस प्रसंग पर है। यक्ष एक अन्य स्थान पर कहता है—हे मेघ तुम विदिशा नगरी की गुफाओं में आराम करके वन की नदियों के तटवर्ती बगीचों में उत्पन्न मागधी कुसुमों को नूतन जल के बिन्दुओं से सींच कर कपोलों पर के पसीने के बिन्दुओं को पोंछ देने के कारण जिन महिलाओं के कमल पत्रों के बने कर्णभूषण मलिन पड़ गये हैं उन फूलों को तोड़ने वाली रमणियों को छायादान देकर कुछ देर तक उनसे परिचय प्राप्त करना। श्लोक इस प्रकार है—

विश्रान्तः सन्व्रज वननदीतीर जातानि सिंच,
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि।
गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानां,
छायादानत्क्षणपरिचितः पुष्पलावी मुखानाम्॥

इसी से मिला कर प्रियप्रवास की ये पंक्तियां पढ़िये—

तू पावेगी कुसुम गहने कान्तता साथ पैन्है।
उद्यानों में वर नगर के सुन्दरी मालिनों को ।।
वे कार्यों में स्वप्रियतम के तुल्य ही लग्न होंगी।
जो श्रान्ता हों सरसगति से तो उन्हें मोह लेना ।।
जो इच्छा हो सुरभि तन के पुष्प संभार से ले।
आ जाते सरुचि उनके प्रीतमों को रिझाना ।।

मेघदूत के इस प्रभाव के साथ ही प्रियप्रवास के इस प्रसंग पर पड़े घनानंद के प्रभाव को भी भुलाया नहीं जा सकता है। घनानंद की विरहिणी नायिका की भांति ही प्रियप्रवास की विरहिणी राधा भी यही चाहती है—

यों प्यारे को विदित करके सर्व मेरी व्यथायें।
धीरे-धीरे वहन करके पांव की धूलि लाना ।।
थोड़ी सी भी चरणरज जो ला न देगी हमें तू।
हा! कैसे तो व्यथित चित को बोध मैं दे सकूंगी ।।
जो ला देगी चरण-रज तू तो बड़ा पुण्य लेगी।
पूता हूंगी भगिनि उसको अंग में मैं लगा के ।।
पोतूंगी जो हृदय-तल में वेदना दूर होगी।
डालूंगी मैं शिर पर उसे आंख में ले मलूंगी ।।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हरिऔध के पवनदूती प्रसंग पर कई प्रभाव परिलक्षित होते हैं। इसका अर्थ यह नहीं लेना चाहिए कि इसमें कवि की कोई मौलिकता ही नहीं है। वस्तुतः कवि ने राधा के मुख से पवन से जो भी कुछ कहा है, उसमें उक्तियों का मार्मिक भण्डार है। ऐसे ही स्थानों पर पर्याप्त नवीनता और मौलिकता के दर्शन होते हैं। हरिऔध ने अनेक उक्तियों के सहारे यह कार्य सम्पन्न कराया है। अन्त में पवन से राधा ने जो आग्रह किया है; उसमें कृष्ण के समीप से उनकी चरण धूलि मृदुल-स्वर, नवल-तन की सुगंधि, अंगराग के पतित कण अथवा पुष्पमाला का कोई विरुच पुष्प में से कोई एक पदार्थ लाने की प्रार्थना की गई है। यदि इनमें से भी कुछ संभव न हो सके तो कम से कम इतना तो करना ही चाहिए—

पूरी होवें न यदि तुझसे अन्य बातें हमारी।
तो तू मेरी विनय इतनी मान ले औ चली जा ।।
छू के प्यारे कमल-पग को प्यार के साथ आजा।
जी जाऊगी हृदय-तल में मैं तुझी को लगा के ।।

ये पंक्तियां कवि की नवीनता और मार्मिकता का परिचय देती हैं। हां, इस प्रसंग के अन्तर्गत राधा विरहिणी कम नीतिनिपुण और तार्किक अधिक बन गई है। उसके स्वभाव में परम चातुर्य भरा दिखाई देता है। राधा के इस व्यक्तित्व को देख कर ऐसा नहीं लगता कि उसके हृदय में व्यथा है, कसक है और किसी के अभाव में पली वेदना है। वह भ्रान्ता और विरह-पीड़िता नहीं है तभी तो वह सतर्कता से बातें करती है। डॉक्टर द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने लिखा है—"पवनदूती प्रसंग तो मार्मिक है, परन्तु यहां राधा के विरह-निरूपण में अस्वाभाविकता आ गई है और वियोग की सुन्दर व्यंजना

नहीं हुई है। राधा का यह विरह कुछ-कुछ कृत्रिम और आरोपित सा लगता है क्योंकि नवीन-नवीन युक्तियों के घटाटोप में विरह की गंभीरता और मार्मिकता नष्ट हो गई है तथा उसमें मेघदूत के यक्ष जैसी स्वाभाविकता नहीं आ सकी है।"

श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व—श्रीकृष्ण को ईश्वर का रूप माना गया है और उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति का विकास भी बहुत पहले ही हो चुका था। कृष्ण के विकास की लम्बी कहानी है जिसका विवेचन हम किसी अन्य स्थल पर करेंगे। आधुनिक युग के अनेक कवियों ने कृष्ण को लेकर काव्य रचना की है। यों आज भी अनेक कवि ऐसे हैं जो भक्तिकाल से प्रभावित हैं तथा उन्होंने कृष्ण की सरस और मधुर क्रीड़ाओं को देवत्व का आवरण चढ़ा कर वर्णन करते रहे और कुछ कवि ऐसे भी हैं जो रीतिकाल से प्रभावित होकर केवल उनकी शृङ्गारमयी लीलाओं में मग्न होकर उनका चित्रण करते रहे हैं। "हरिऔधजी ने भी पहले 'प्रेमाम्बु प्रश्रवण' 'प्रेमाम्बु प्रवाह' प्रेमाम्बु वारिधि आदि ग्रन्थों में कृष्ण के प्रेम और माधुर्य से परिपूर्ण ब्रह्मरूप का ही निरूपण किया था, किन्तु प्रियप्रवास तक आते-आते कवि का विचार पूर्णतया बदल गया। अब उन्हें यह बात उचित नहीं प्रतीत हुई कि किसी देवता या अवतारी पुरुष का चित्रण इस तरह किया जावे कि उसके चरित्र से कामुकता, विलासिता और अश्लीलता की गंध आने लगे। इसके अतिरिक्त वह अकरणीय अथवा करणीय सभी प्रकार के कार्य कर सकता है, उसमें असंभव कार्यों के करने की ही क्षमता होनी है अर्थात् उसके किये हुए संभव कार्यों को भी व्यर्थ ही असंभव बना कर चित्रित किया जाय यह उन्हें समीचीन नहीं ज्ञात हुआ।"[1]

हरिऔध की इस विचारधारा और चिन्तना का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने कृष्ण को भगवान या अवतारी पुरुष नहीं माना है। कृष्ण को नये साधारण मनुष्य के रूप में प्रस्तुत करने के पीछे कवि का बौद्धिक दृष्टि-कोण, सुधारवादी मानस और व्यावहारिक दर्शन विशेषतः सक्रिय रहा है। इस प्रकार की प्रेरणाओं का अर्थ यह हुआ कि कवि हरिऔध की दृष्टि में परिवर्तन आ गया। उन्होंने प्रियप्रवास के अन्तर्गत श्रीकृष्ण का रूप ही बदल दिया।

प्रियप्रवास के कृष्ण लोकोपकारी अधिक, आदर्शवादी कम हैं। उनके रूप में किसी भी साधारण मानव को देखा जा सकता है यों महाभारत में भी कृष्ण लोकोपकारी हैं, थोड़ी बहुत भीष्म और अर्जुन के मुख से उनकी ईश्वर परक व्याख्या भले ही की गई हो। प्रियप्रवास के कृष्ण समाज में क्रान्ति का उन्मेष करके सुधार लाने के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। वे इसी कारण समाज सुधार, परोपकारी लोक सेवा में रत रहने वाले और अपनी जाति का भला करने वाले चित्रित किये गये हैं। प्रियप्रवास के अनेक स्थलों पर कृष्ण ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का परित्याग किया है और उनके स्थान पर समाज सेवा, विश्व-प्रेम और सामाजिक उत्थानकर्ता के रूप में सामने

---

1. कवि हरिऔध—प्रियप्रवास की भूमिका, पृष्ठ ३०

आये हैं। अन्त में तो वे प्रेम की व्यापक भूमिका पर प्रतिष्ठित हैं। उन्होंने व्यक्ति प्रेम को विश्व-प्रेम में मिला दिया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि हरिऔध ने कृष्ण के चरित्र को पूर्णतः बदल कर नया जामा पहिनाया है। उसमें से शृङ्गारिक और छलियापन को निकाल कर लोक कल्याणपरक और विश्व-बंधुत्वमय बनाने का सुन्दर प्रयास किया है। यही कवि की नव्योद्भावना है।

३. **राधा का लोकसेविका रूप**—राधा के विषय में भी अनेक मत मतान्तर प्रचलित हैं। राधा भी कृष्ण की भांति विवाद का विषय रही हैं। हरिवंश पुराण से लेकर अनेक विविध स्थलों पर राधा का नामोल्लेख मिलता है। श्रीमद्भागवत में श्री कृष्ण से अनन्य भाव के साथ प्रेम करने वाली गोपियों का वर्णन मिल जाता है। खैर इसके विकास के विषय में भी अन्यत्र विचार किया जावेगा। यहां तो केवल यह समझने की आवश्यकता है कि राधा जो रीतिकाल और भक्तिकाल में विभिन्न रंगों में चित्रित हुई हैं वे हरिऔध की कविता में कौन सी रंगत लिये हुए हैं।

रीतिकाल के पश्चात् राधा के वर्णन में परिवर्तन की गंध आने लगी थी। कुछ समय तक रीतिकालीन संदर्भ का ही विकास होता रहा है। कवियों की चेतना तो तब बदली जबकि द्विवेदी युग में एक ओर तो लोकहित और आदर्श को प्रोत्साहन मिला और दूसरी ओर बौद्धिक चिन्तना और सुधारवादी दृष्टिकोण को बल मिलता गया। वस्तुतः द्विवेदी युग का प्रमुख योगदान नारी से सम्बन्धित रहा है। नारी-सुधार इस युग का महान धर्म समझा गया है। इस युग की दिव्य-विभूति हरिऔध ने राधा को नवीन पट पर प्रस्तुत किया है। कृष्ण की भांति राधा को भी नया जीवन प्राप्त हुआ। उसमें व्यावहारिकता का पुट आ गया और समसामयिक संदर्भ की छाया भी स्पष्ट दिखाई देने लगी।

हरिऔध की राधा भी कृष्ण की तरह लोकहित-कारिणी परोप-कारिणी और विश्व-प्रेम की सेविका रही है। यही कारण है कि राधा को विरह की वह व्यथा और प्रेम की वह पीर नहीं सहन करनी पड़ी है जो कि पूर्ववर्ती काव्य में राधा को सहनी पड़ी। वह विरह के ताप से कम जली है, अपितु परोपकार, दीनों-दुर्बलों और असहाय प्राणियों की सेवा में अधिक विरत रही है। उसने तो यहां तक घोषणा कर दी थी कि—

प्यारे जीवें जगहित करें, गेह चाहे न आवें।

उद्धव जैसे ही राधा को कृष्ण का लोक हितकारी सदेश देते हैं, वैसे ही राधा उसे शिरोधार्य कर लेती है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना से अनुप्राणित होकर वह कार्य करने लगती है। वह सोचती है कि "संसार की सभी वस्तुयें जो भी मुझे दिखाई देती हैं, वे कृष्ण के रंग-रूप से संयुक्त हैं। ऐसी स्थिति में मेरा उन सभी से प्रेम करना स्वाभाविक भी है और आवश्यक भी। अब तो निस्संदेह मेरे हृदय में विश्व का प्रेम जाग्रत हो [illegible]। कवि ने स्पष्ट लिखा है—

पाई जाती विविध जितनी वस्तुयें हैं सबों में।
जो प्यारे को अमित रंग औ रूप में देखती हूं।

तो मैं कैसे न उन सबको प्यार जी से करूंगा ।
यों है मेरे हृदय तल में विश्व-प्रेम जागा ।।

इसी कारण राधा सभी को लोक-हित की भूमिका पर देखती है। वह भी व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़ कर समाज हित की चिन्ता में लग जाती है। हरिऔध की राधा ऐसी ही विश्व-हितकारी भूमिका अदा करती है। इसमें कवि की मौलिकता, नवीनता और मान्यता के दर्शन होते हैं। कवि वस्तुतः आदर्श की सीमा मे घूमता रहा है।

नव्योद्भावना के कारण—हरिऔध के प्रियप्रवास में जो नवीन उद्भावना दिखाई देती है, वह व्यर्थ नहीं है और न अकारण ही है। उसके कई कारण हैं। इन कारणों को दो संदर्भो में देखा जा सकता है—एक तो समसामयिक कारण और दूसरा व्यक्तिगत कारण व्यक्तिगत कारण के अन्तर्गत वे सभी बातें आती हैं जो कवि को चिन्तन और आत्मालोचन से प्राप्त हुई है और समसामयिक कारणों में वे बातें आती हैं जो उस युग की देन हैं। इन दोनों ही कारणों का विवेचन यहां किया जा रहा है—

समसामयिक कारण—१. प्रियप्रवास की अवतारणा का युग सुधारवादी आन्दोलनों और बौद्धिक जागरणों का युग था। उस समय चारों ओर से यह आवाज आ रही थी कि मनुष्य बुद्धिजीवी प्राणी है, अतः उसे सभी निर्णय कुछ विशिष्ट प्रकार के लेने चाहिए। हरिऔध का समय क्रांति का युग था। उस समय सुधार की लहर बड़ी वेगवती होकर आदर्श और नैतिकता की नदी में उमड़ती हुई दिखाई दे रही थी। समाज में व्याप्त संकीर्णता, एकदेशीयता और एकांगिता के विरुद्ध आवाज उठा कर प्रत्येक क्षेत्र में उदारता, विश्व-बन्धुत्व, मानवता, कर्मण्यता आदि को महत्व मिलता जा रहा था। यह महत्व भी अकारण न था। प्रत्येक प्राणी इस तलाश में था कि समाज में परिवर्तन आवे और युग की आवाज बदले। राजनीतिक पट पर भी कांग्रेस नवचेतना का संचार कर रही थी और सर्वत्र स्वाधीनता, स्वदेश प्रेम, स्वजाति-उद्धार आदि की गूंज सुनाई दे रही थी। ऐसे समय में कवि के लिए परिवर्तन लाना स्वाभाविक था।

२. युग में जननी जन्मभूमि के प्रति अटूट स्नेह की धारा उमड़ रही थी। जन्म-भूमि का प्रेम जो इस काव्य में था वह किसी भी महाकाव्य मे साकार रूप नहीं पा रहा था। हरिऔध ने इसी भावना के स्पष्टीकरण और प्रस्तुतीकरण के लिए प्रियप्रवास में नवीन उद्भावना की। श्रीकृष्ण के अनेक ऐसे कार्यों का वर्णन किया गया है जो धरित्री के निवासियों का उद्धार करने में समर्थ रहे हैं।

३. अभी तक ऐसी कोई भी रचना महाकाव्य के रूप में अवतरित नहीं हुई थी जिसमें कि नारी समाज-सेविका और दीनों के प्रति सहानुभूति रखने वाली बन कर सामने आई हो। उस समय की इस मांग को भी कवि हरिऔध पूरा करना चाहते थे। परिणामतः प्रियप्रवास की सृष्टि हुई। तत्कालीन समय में नारी पुरुष के कंधे से कंधा मिला कर चल रही थी। वह राजनीतिक जीवन में भी सक्रिय हो कर भाग ले रही थी। अतः उसका सही रूप प्रस्तुत करने को लालायित हरिऔध ने प्रियप्रवास की सृष्टि की। जिससे नवीन उद्भावना को बल मिला।

व्यक्तिगत सन्दर्भ और कारण—१. प्रियप्रवास की नवीन उद्भावनाओं के मूल में कुछ व्यक्तिगत कारण भी थे। उनमें सबसे पहला कारण था अवतारी दृष्टिकोण के प्रति अविश्वास। प्रायः कहा जाता था कि जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म बढ़ता है, तब-तब सज्जनों का उपकार करने के लिए भगवान अवतार लिया करते हैं जिससे वे धर्म की संस्थापना का कार्य भी करते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थ नमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सभवामि युगे-युगे॥

इसी प्रकार की अनेक बातें प्रचलित थीं जिनसे कृष्ण को भगवान माना गया है। हरिऔध के मन में यह बात खटकी। उन्होंने प्रयास किया किया कि ऐसी कोई भी बात आज के वैज्ञानिक युग के लिए विश्वसनीय नहीं है। हरिऔधजी ने इसे गंभीरता के साथ लिया। अतः प्रियप्रवास की सृष्टि हुई।

२. हिन्दी साहित्य में कृष्ण के दो रूप प्रचलित थे—परब्रह्म का रूप और परकीया के उपपति। "भक्ति काल के समस्त कृष्ण भक्त कवियों ने उन्हें अजर, अमर अनादि, अगोचर आदि कह कर परब्रह्म के रूप में चित्रित किया था और रीतिकाल में आकर श्रीकृष्ण को प्रायः परकीया राधा से प्रेम करने वाले तथा गोपियों के साथ अठखेलियां करने वाले एक उपपति के रूप में चित्रित किया गया था।" उक्त दोनों रूपों का हरिऔध ने पर्याप्त सर्वेक्षण किया; उन्हें समझा और अपने काव्य का विषय बनाने का कार्यक्रम बनाया। यों तो हरिऔध ने भी प्रेमाम्बु प्रश्रवण और प्रेमाम्बु प्रवाह के अन्तर्गत कृष्ण को परब्रह्म के रूप में ही स्वीकार किया है, किन्तु उनको यह रूप स्वीकार्य नहीं हो सका। उनकी हार्दिक कामना थी कि कृष्ण भगवान नहीं हैं। यदि वे भगवान रहे तो वे भगवान और मनुष्य के बीच की कड़ी नहीं बन सकते हैं। अतः उन्हें सामान्य प्राणी ही समझना चाहिए। वे आदर्श मानव हो सकते हैं बिलकुल वैसे ही आदर्श मानव जैसे कि मैथिलीशरण गुप्त के राम है—

विशिष्टताओं के प्रतीक हैं। कोई चरित्र तो अपनी व्यथा के भार से पीड़ित है और कोई कृष्ण के कार्यों का स्मरण करता हुआ जैसे-तैसे अपना समय व्यतीत कर रहा है। कृष्ण एक ऐसे पात्र हैं जो प्रेमी अवश्य रहे हैं, किन्तु राजनीतिक उलझनों के समक्ष प्रेम को भुला बैठे हैं उन्हें लोक की चिन्ता है। नन्द और यशोदा कारुणिक प्रसंगों की सृष्टि करते जान पड़ते हैं। इनके अतिरिक्त जो गोप, गोपियाँ हैं वे विशेष प्रमुखता नहीं पा सके हैं। प्रमुख पात्र हैं—राधा, कृष्ण, यशोदा, नन्द।

पात्रों का स्वरूप और प्रेरणायें—हिन्दी साहित्य के द्विवेदी युग में चारों ओर सुधारवाद की लहर दौड़ रही थी। पात्रों में जो अलौकिक तत्व था, जो आदर्श था, जो अतिरिक्त दिव्यता थी वह इस युग में नये रूप में प्रस्तुत हो रही थी। आधुनिक युग में लिखे जाने वाले साहित्य में जो चरित्र उभर कर सामने आ रहे थे वे सभी क्रांति के रूप में प्रस्तुत हो रहे थे। "कलावाद के विरुद्ध यह सामाजिकतावाद का विद्रोह था, आज का समाजवाद साहित्य के इसी सामाजिकतावाद का स्वतः प्रस्फुटित रूप था।"

इतिहास के पात्रों में कृष्ण, राम और राधा को ही समाजीकृत रूप प्राप्त हुआ है। हाँ, अब दिनों-दिन स्थिति बदलती जा रही है। कवि अपनी संवेदनाओं के आधार पर अब सभी पौराणिक पात्रों को नई भूमिका प्रदान करने लगे हैं। हरिऔध ने कृष्ण और राधा का कायाकल्प किया है। कृष्ण राधा दोनों ही रीतिकालीन शृङ्गार के रंगों में इस प्रकार लिप्त हो गये कि उनके शरीरांगों से वासना की और लोभी प्रेमी युगल की गंध आने लगी थी। डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने लिखा है कि जिस कृष्ण के सामाजिक चिन्तन से प्रथम साम्राज्य निर्माता चाणक्य को प्रेरणा मिली थी, गीता और सुदर्शन चक्र ने रक्षा और सिद्धान्त दोनों क्षेत्रों में अमित परामर्श और समाधान दिये थे, जिसका शृङ्गारिक लीलाओं में देवत्व भक्तिकालीन कवि नहीं भूले थे, उसी का पतन रीतिकाल में हो जाने से भारतीय मेधा, भारतीय मानवतावाद और भारतीय गौरव की इतिश्री हो रही थी। गुप्त जी ने भारतीय संस्कृति और इतिहास की प्रबलतम शृङ्खला की इस जीर्णता-शीर्णता को सुधारने का प्रियप्रवास से पूर्व प्रयत्न नहीं किया था, वह कार्य उन्होंने द्वापर में किया किन्तु यह बाद की बात थी। अतः हरिऔध पर ही भार पड़ा कि वह गम्भीरता से भारतीय इतिहास के आदि निर्माता कृष्ण का पुनरुद्धार करें। प्रियप्रवास की चरित्र योजना को इस व्यापक संदर्भ में रख कर देखने से ही उसका महत्व स्पष्ट होता है। सन् १९१३ ई० के पूर्व एक भी काव्य ऐसा नहीं मिलता जिसमें इतने विराट चित्र-फलक पर रीतिकालीन पात्र-सृष्टि की कुत्सितता के विरुद्ध लोहा लिया गया हो। अतः युग परिवर्तन में हरिऔध की पात्र-योजना का अमित महत्व है। हरिऔध ने हमें हमारा प्राचीन उदात्त कृष्ण लौटा दिया।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कवि हरिऔध ने प्रियप्रवास में जिस पात्र-सृष्टि को महत्व दिया है वह उनकी विचारधारा के अनुकूल जान पड़ती है। हरिऔध के मानस में प्रारम्भ से ही अनेक तर्क उठ रहे थे। उन्हीं प्रश्नों और तर्कों ने प्रियप्रवास की पात्र-योजना को प्रभावित किया है। तत्कालीन सामाजिक उत्थानवादी प्रवृत्तियां, देश-प्रेम और जाति के उद्धारक भावों ने

व्यक्तिगत सन्दर्भ और कारण—१. प्रियप्रवास की नवीन उद्भावनाओं के मूल में कुछ व्यक्तिगत कारण भी थे। उनमें सबसे पहला कारण था अवतारी दृष्टिकोण के प्रति अविश्वास। प्राय: कहा जाता था कि जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म बढ़ता है, तब-तब सज्जनों का उपकार करने के लिए भगवान अवतार लिया करते हैं जिससे वे धर्म की संस्थापना का कार्य भी करते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थ नमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम् ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सभवामि युगे-युगे ।।

इसी प्रकार की अनेक बातें प्रचलित थीं जिनसे कृष्ण को भगवान माना गया है। हरिऔध के मन में यह बात खटकी। उन्होंने प्रयास किया किया कि ऐसी कोई भी बात आज के वैज्ञानिक युग के लिए विश्वसनीय नहीं है। हरिऔधजी ने इसे गंभीरता के साथ लिया। अतः प्रियप्रवास की सृष्टि हुई।

२. हिन्दी साहित्य में कृष्ण के दो रूप प्रचलित थे—परब्रह्म का रूप और परकीया के उपपति। "भक्ति काल के समस्त कृष्ण भक्त कवियों ने उन्हें अजर, अमर अनादि, अगोचर आदि कह कर परब्रह्म के रूप में चित्रित किया था और रीतिकाल में आकर श्रीकृष्ण को प्राय: परकीया राधा से प्रेम करने वाले तथा गोपियों के साथ अठखेलियां करने वाले एक उपपति के रूप में चित्रित किया गया था।" उक्त दोनों रूपों का हरिऔध ने पर्याप्त सर्वेक्षण किया; उन्हें समझा और अपने काव्य का विषय बनाने का कार्यक्रम बनाया। यों तो हरिऔध ने भी प्रेमाम्बु प्रश्रवण और प्रेमाम्बु प्रवाह के अन्तर्गत कृष्ण को परब्रह्म के रूप में ही स्वीकार किया है, किन्तु उनको यह रूप स्वीकार्य नहीं हो सका। उनकी हार्दिक कामना थी कि कृष्ण भगवान नहीं हैं। यदि वे भगवान रहे तो वे भगवान और मनुष्य के बीच की कड़ी नहीं बन सकते हैं। अतः उन्हें सामान्य प्राणी ही समझना चाहिए। वे आदर्श मानव हो सकते हैं बिल्कुल वैसे ही आदर्श मानव जैसे कि मैथिलीशरण गुप्त के राम है—

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया।
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया ।।
संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।।

अतः विवेचन से स्पष्ट है कि प्रियप्रवास में जो नवीन उद्भावनायें हैं, उनके मूल में कवि के व्यक्तिगत और विशेषकर समसामयिक कारण रहे हैं। इन्हीं दोनों कारणों से कवि हरिऔध ने प्रियप्रवास जैसे महाका... को मौलिकता के रंग से रंग कर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

प्रियप्रवास की चरित्र-सृष्टि

चरित्र चित्रण की दृष्टि से प्रियप्रवास एक
महाकाव्य में विभिन्न चरित्र अवतीर्ण हो जाते

२. छान्दोग्य उपनिषद् में कृष्ण का वर्णन देवकी-पुत्र के रूप में किया गया है तथा उन्हें घोर आंगिरस का शिष्य बताया गया है। "यदि वैदिक ऋषि कृष्ण तथा उपनिषद् के कृष्ण आंगिरस गोत्र के या आंगिरस के शिष्य हैं तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि देवकी पुत्र कृष्ण उपनिषद् काल तक मंत्रदृष्टा ऋषि के रूप में प्रसिद्ध थे।"

३. महाभारत में कृष्ण को वीर और नीतिज्ञ के रूप में प्रस्तुत किया है। महाभारत म परब्रह्म कृष्ण की भावना का उल्लेख है। गोपाल कृष्ण की भावना ा नहीं। ीता में भी कर्मयोगी कृष्ण के ईश्वरीय रूप का ही वर्णन किया गया है। हां; महाभारत में कृष्ण का गोविन्द नाम भी मिलता है किन्तु उस समय तक गायों से सम्बन्ध रखने वाले गोविन्द की कथायें प्रचलित नहीं थीं। महाभारत के शांतिपर्व में चार अवतार मानें गये हैं— वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। सर भण्डारकर ने यह प्रमाणित किया है कि वासुदेव और कृष्ण में अन्तर है। उनकी दृष्टि में 'सात्वत' एक क्षत्रिय वंश का नाम था जिसे वृष्णि भी कहते थे। वासुदेव इसी सात्वत वंश के महापुरुष थे और उनका समय ईसा से ६०० वर्ष पूर्व का है। उन्होंने ईश्वर के एकत्व भाव का प्रचार किया था। उनकी मृत्यु के बाद उसी वंश के लोगों ने वासुदेव को ही साकार रूप से ब्रह्म मान लिया।

४. महाभारत में विष्णु का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है और कृष्ण को विष्णु का ही अवतार माना गया है। यही विष्णु या कृष्ण भगवद् गीता में ब्रह्म के आसन पर विराजमान हैं।

५. भारत में दूसरी शताब्दी के आस-पास आभीरों का आगमन हुआ। ये सभी गोपाल के उपासक थे तथा ये कृष्ण को देवता मानते थे। जिस समय इस जाति ने यहां अपने राज्य की स्थापना की उस समय यह निश्चित है कि श्री कृष्ण और वासुदेव के भारत में प्रचलित रूपों का इनके देवता के साथ भी सम्मिश्रण हुआ। "इसी कारण सम्भवतः ऋषि कृष्ण, परब्रह्म वासुदेव तथा विष्णुरूप कृष्ण तीनों मिल कर गोपालकृष्ण के रूप में आराध्य देव हो गये।"

६. विष्णुरूपी कृष्ण, जो अवतारी थे, की भावना का विकास क्रमशः हरिवंशपुराण वायुपुराण, भागवतपुराण आदि में उत्तरोत्तर होता गया। वासुदेव और कृष्ण आरम्भ में अलग-अलग माने जाते थे, परन्तु बाद में दोनों परस्पर एक दूसरे में मिल गये। तीसरी शताब्दी में हरिवंश पुराण के अन्तर्गत कृष्ण विषयक समस्त प्रचलित जानकारी को संकलित किया गया और श्रीकृष्ण को गोप, गार्प और गायों का प्रियसखा, परब्रह्म तथा गोपाल रूप प्रदान करके सभी रूपों का समन्वय कर दिया गया। इसी संदर्भ में विष्णुपुराण, पदमपुराण और ब्रह्मपुराण में भी कृष्ण को निरूपित किया गया। आगे चल कर विभिन्न सम्प्रदाय बा और धीरे-धीरे कृष्ण भक्ति का विकास हुआ।

भक्तिकाल में गोपालकृष्ण और परब्रह्म के रूप में कृष्ण की उपासना और वर्णना होती रही। उन्हें जगत का नियामक और स्रष्टा माना गया तथा संहारक भी निर्दिष्ट किया गया। रीतिकाल में कृष्ण का विलासी रूप प्रमुख

प्रियप्रवास के कृष्ण और राधा के व्यक्तित्व का निर्माण किया है। इसके और भी कई कारण हैं—

१. सर्वप्रथम तो हरिऔध उस कृष्ण को रीतिकालीन पंकिल वातावरण से निकालना चाहते थे जो कभी पौराणिक संदर्भ से सुदर्शन चक्रधारी था और गीता के माध्यम से कर्म और भक्ति का संदेश देने वाला था। उनके मन में 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' का संदेशवाहक कृष्ण आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। यही धारणा प्रियप्रवास में बलवती हुई है।

२. कवि उपयोगितावादी दृष्टिकोण का प्रचारक था। वह सुकरात के उस कथन का पक्षधर था जिसमें यह कहा गया है कि सौन्दर्य और उपयोगिता को अलग नहीं किया जा सकता है। कवीन्द्र रवीन्द्र भी यही कहा करते थे। उपयोगितावादी दृष्टि के कारण ही सुधारों की माँग तीव्र होती जा रही थी।

३. स्वतन्त्रता प्राप्ति भी एक नया आयाम था जिसके कारण भी प्रत्येक व्यक्ति समाधान का इन्तजार करता जान पड़ता है। वह हर काम को करते समय स्वतन्त्र चिन्तन और आलोचन से सहायता लेना नहीं भूलता है। युग के बदलते आयामों ने इसे और भी पुष्ट किया है।

४. हरिऔध ने सोचा था कि प्राचीन पात्रों का व्यक्तित्व आधुनिक संदर्भ के साथ भी प्रस्तुत किया जा सकता है। "The ancient contained all seed & all within its loins." कृष्ण का जीवन भी हरिऔध को ऐसा ही प्रतीत हुआ। कवि ने इसी आधार पर कृष्ण के माध्यम से तथा राधा के सहयोग से युगीन संदर्भों को व्यक्त कर दिया है। अपनी नयी बात कहने के लिए कवि ने नये पात्रों की अपेक्षा पुराने पात्रों से ही काम चला लिया है।

इस प्रकार यह बात निस्संदेह कही जा सकती है कि कवि की दृष्टि में उपयोगितावादी सिद्धान्त दृढ़ था और उसकी पात्र-योजना के मूल में पुराने पात्रों के द्वारा ही शिवत्व और लोकमंगल का प्रसार रहा है। 'कवि ने यह चिन्ता ही नहीं की कि इससे वह यथार्थ अर्थात् मानवीय कमजोरियों से बहुत ऊपर उठे हुए पात्रों का चित्रण कर जायेगा और अति आदर्शवाद का उस पर आक्षेप लगेगा। 'कवि ने स्वयं क्योंकि अपनी कमजोरियों पर विजय पाई थी। अतः वह आश्वस्त था कि सेवा के लिए ही जीवित रहना सर्वदा सम्भव है!' आगे प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डाला जा रहा है।

कृष्ण

कृष्ण पौराणिक पात्र हैं। उनमें प्रारम्भ से ही अलौकिक गुणों का समावेश माना गया है। वे मनुष्य के रूप में नहीं अपितु नारायण के रूप में पूजे गये हैं। वे श्रद्धा के पात्र रहे हैं। कृष्ण सोलह कलाधारी और पूर्णावतारी ब्रह्म माने गये हैं। प्रियप्रवास में जिस कृष्ण का वर्णन किया गया है वह पूर्ववर्ती कृष्ण से भिन्न है।

१. कृष्ण का सबसे पहले उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। वहां कृष्ण को वैदिक ऋषि के रूप में स्वीकार किया गया है। वे आंगिरस गोत्रोत्पन्न माने गये हैं।

२. छान्दोग्य उपनिषद् में कृष्ण का वर्णन देवकी–पुत्र के रूप में किया गया है तथा उन्हें घोर आंगिरस का शिष्य बताया गया है। "यदि वैदिक ऋषि कृष्ण तथा उपनिषद् के कृष्ण आंगिरस गोत्र के या आंगिरस के शिष्य हैं तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि देवकी पुत्र कृष्ण उपनिषद् काल तक मंत्रदृष्टा ऋषि के रूप में प्रसिद्ध थे।"

३. महाभारत में कृष्ण को वीर और नीतिज्ञ के रूप में प्रस्तुत किया है। महाभारत में परब्रह्म कृष्ण की भावना का उल्लेख है। गोपाल कृष्ण की भावना ा नहीं। ीता में भी कर्मयोगी कृष्ण के ईश्वरीय रूप का ही वर्णन किया गया है। हाँ; महाभारत में कृष्ण का गोविन्द नाम भी मिलता है किन्तु उस समय तक गायों से सम्बन्ध रखने वाले गोविन्द की कथायें प्रचलित नहीं थीं। महाभारत के शांतिपर्व में चार अवतार मानें गये हैं— वासुदेव, सकर्षण, पद्युम्न और अनिरुद्ध। सर भण्डारकर ने यह प्रमाणित किया है कि वासुदेव और कृष्ण में अन्तर है। उनकी दृष्टि में 'सात्वत' एक क्षत्रिय वंश का नाम था जिसे वृष्णि भी कहते थे। वासुदेव इसी सात्वत वंश के महापुरुष थे और उनका समय ईसा से ६०० वर्ष पूर्व का है। उन्होंने ईश्वर के एकत्व भाव का प्रचार किया था। उनकी मृत्यु के बाद उसी वंश के लोगों ने वासुदेव को ही साकार रूप से ब्रह्म मान लिया।

४. महाभारत में विष्णु का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है और कृष्ण को विष्णु का ही अवतार माना गया है। यही विष्णु या कृष्ण भगवद् गीता में ब्रह्म के आसन पर विराजमान हैं।

५. भारत में दूसरी शताब्दी के आस-पास आभीरों का आगमन हुआ। ये सभी गोपाल के उपासक थे तथा ये कृष्ण को देवता मानते थे। जिस समय इस जाति ने यहां अपने राज्य की स्थापना की उस समय यह निश्चित है कि श्री कृष्ण और वासुदेव के भारत में प्रचलित रूपों का इनके देवता के साथ भी सम्मिश्रण हुआ। "इसी कारण सम्भवतः ऋषि कृष्ण, पर-ब्रह्म वासुदेव तथा विष्णुरूप कृष्ण तीनों मिल कर गोपालकृष्ण के रूप में आराध्य देव हो गये।"

६. विष्णुरूपी कृष्ण, जो अवतारी थे, की भावना का विकास क्रमशः हरिवंशपुराण वायुपुराण, भागवतपुराण आदि में उत्तरोत्तर होता गया। वासुदेव और कृष्ण आरम्भ में अलग-अलग माने जाते थे, परन्तु बाद में दोनों परस्पर एक दूसरे में मिल गये। तीसरी शताब्दी में हरिवंश पुराण के अन्तर्गत कृष्ण विषयक समस्त प्रचलित जानकारी को संकलित किया गया और श्रीकृष्ण को गोप, गापों और गायों का प्रियसखा, परब्रह्म तथा गोपाल रूप प्रदान करके सभी रूपों का समन्वय कर दिया गया। इसी संदर्भ मे विष्णुपुराण, पदमपुराण और ब्रह्मपुराण में भी कृष्ण को निरूपित किया गया। आगे चल कर विभिन्न सम्प्रदाय बने और धीरे-धीरे कृष्ण भक्ति का विकास हुआ।

भक्तिकाल मे गोपालकृष्ण और परब्रह्म के रूप में कृष्ण की उपासना और वर्णना होती रही। उन्हें जगत का नियामक और स्रष्टा माना गया तथा संहारक भी निर्दिष्ट किया गया। रीतिकाल में कृष्ण का विलासी रूप प्रमुख

हुआ और उन्हें सभी शृङ्गारिक चेष्टाओं और लीलाओं का केन्द्र मान लिया गया। परिणामत: कृष्ण के विविध रूप— शृङ्गार विषयक, सामने आये। आधुनिक युग के प्रारंभ में कृष्ण का मिला जुला रूप प्रचलित रहा। कुछ कवियों ने भक्तिकाल की परम्परा में कृष्ण को प्रस्तुत किया और कुछ ने रीतिकालीन संदर्भ में किन्तु हरिऔध तक आते-आते पारंपरिक रूप बदला और उसमें नई चेतना का सचार हुआ। हरिऔध ने कृष्ण को अवतारी रूप से छुटकारा दिलाने का पर्याप्त प्रयास किया है।

हरिऔध की कृष्ण विषयक विचारधारा—हरिऔव की कृष्ण विषयक विचारधारा दो विन्दुओं से देखी जा सकती है। एक तो पारंपरिक विन्दु से जिसमें कृष्ण परब्रह्म के रूप में चित्रित हुए हैं और दूसरा वह विन्दु जहाँ कृष्ण नये युग के दर्पण से दिखाये गये हैं। रुक्मिणी-परिणय और प्रद्युम्न विजय नाटकों में कृष्ण को प्रतापी मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कवि की अन्य रचनाओं में प्रेमाम्बु प्रश्रवण, प्रेमाम्बु प्रवाह और प्रेमाम्बु वारिधि काव्यों में कृष्ण ब्रह्म के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। प्रियप्रवास तक आते-आते कवि की दृष्टि में परिवर्तन हुआ है।

प्रियप्रवास की भूमिका को देखने से विदित होता है कि कृष्ण को अवतारी माना गया है, किन्तु वह कवि की भावना का सही प्रतीक नहीं है। "मैंने श्रीकृष्णचन्द्र को एक महापुरुष की भांति अङ्कित किया है, ब्रह्म करके नहीं। अवतारवाद की जड़ में श्रीमद्भागवत गीता का यह श्लोक मानता हूं—"यद्यद् विभूतिमत्सत्व श्रीमदर्जितमेव वा" अतएव जो महापुरुष है, उसका अवतार होना निश्चित है।

इस कथन से कवि की अवतारवाद की समर्थक दृष्टि का आभास मिलता है, किन्तु यह आभास स्पष्टत: समाप्त हो जाता है जब कवि कहता है—"काल पाकर मेरी दृष्टि व्यापक हुई, मैं स्वयं सोचने विचारने लगा, उसी के फलस्वरूप मेरे पाश्चाद्वर्ती और आधुनिक काव्य हैं। भगवान कृष्णचन्द्र में अब भी मुझको श्रद्धा है, किन्तु वह श्रद्धा अब संकीर्णता, एकदेशीयता और अकमर्ण्य दोपदूषिता नहीं है। ईश्वर एकदेशीय नहीं है। वह सर्वव्यापक है और अपरिच्छिन्न है, उसकी सत्ता सर्वत्र वर्तमान है। प्राणिमात्र में उसका विकास है— सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन। जिस प्राणी में उसका जितना विकास है, वह उतना ही गौरव गरिष्ठ है, उतना ही महिमामय है, उसमें उतनी ही सत्ता विराजमान है। मानव-प्राणीसमह का शिरोमणि है। उसमें ईश्वराय सत्ता समस्त प्राणियों से समाधिक है। अतएव मानवता का चरम विकास ही ईश्वर की प्राप्ति है—अवतारवाद है।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रियप्रवास की रचना करते समय कवि हरिऔध ने आधुनिक व्यक्ति और उसकी रुचि को ध्यान से नहीं हटाया है। यही कारण है कि उसमें नवीनता है। "वस्तुत: आधुनिक विचार वाले लोगों को यह प्रिय नहीं है कि आप पक्ति-पंक्ति में भगवान श्रीकृष्ण को ब्रह्म लिखते चलें और चरित्र लिखने के समय कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं समर्थ: प्रभु: के रंग में रंग कर ऐसे कार्यों का कर्त्ता उन्हें बनावें कि जिनके करने में

साधारण विचार के मनुष्य को भी घृणा होवे ......कृष्ण चरित्र को इस प्रकार अङ्कित किया गया है जिससे कि आधुनिक लोग भी सहमत हो सकें।[1]

इस कथन से स्पष्ट है कि कवि हरिऔध के मन में परिवर्तन आ गया था। कृष्ण के ब्रह्मत्व और अश्लीलत्व दोनों को कवि की विचारधारा ने संदेहपरक दृष्टि से देखा था उसके मानस में एक उत्क्रान्ति मची हुई थी। यही कारण है कि प्रियप्रवास के कृष्ण को निरूपित करते समय कवि ने उसे ब्रह्मत्व से पूर्णतः दूर ही रखा है। वह मानवीय गौरव से जाज्वल्यमान हैं। कृष्ण ईश्वर नहीं थे, बल्कि आदर्श मानव थे। हरिऔध के कृष्ण में ब्रह्मत्व की मात्रा का हल्का सा अंश भले ही हो. अन्यथा वे तो पूर्णतः अनुकरणीय आदर्श मानव है। यों एकदम कृष्ण के व्यक्तित्व से ब्रह्मत्व वाले अंश को निकाल पाना कवि के लिए संभव नहीं था। पारंपरिक कृष्ण के थोड़े बहुत ध्वंसावशेष तो प्रियप्रवास में ही रह गये हैं। सामान्यतः कवि ने कृष्ण के लिए लिखा है—

अपूर्व आदर्श दिखा नरत्व का
प्रदान की है पशु को मनुष्यता।
सिखा उन्होंने चित की समुच्चता।
बना दिया सभ्य समग्र गोप को ।।

प्रियप्रवास में वर्णित कृष्ण—हरिऔध के कथनों और आदर्शों को देखते हुए यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कृष्ण के चरित्र में कवि क्रान्ति का उन्मेष्ट रहा है। प्रियप्रवास के आधार पर कृष्ण की निम्नांकित विशेषतायें सामने आती हैं—

१. **सौन्दर्य की मूर्ति**—प्रियप्रवास के कृष्ण पारंपरिकता को समेटे हुए सौन्दर्य का अक्षय भंडार प्रतीत होते हैं। वे गोपानक हैं। गोप मण्डली के नेता या अग्रणी हैं। वे सदैव ग्वाले के वेश में रहते हैं तथा गोपालक धर्म का निर्वाह करते हैं। वे अलौकिक सौन्दर्य सम्पन्न हैं। सारा गोकुल ग्राम उनकी रूप-माधुरी की ओर आकर्षित है। मुरली की मधुर ध्वनि, उनके शरीर पर शोभित पीताम्बर, वक्ष पर वनमाला, दोनों वृषभ-स्कन्धों पर पड़ा दुकूल, कानों में मकराकृति के कुण्डल, सिर पर सुकोमल अलकावली के मध्य मोर मुकुट सभी का मन मोहित करने के लिए पर्याप्त है। उन्नत भाल पर केसर की खौर कान्ति बढ़ा रही है। सुकोमल अरुण-अधरों पर पीयूषवर्षिणी मुरलिका धीरे-धीरे मधुर स्वर में गूंजती है तथा जनमानस को आह्लादित करती है। कवि ने लिखा है—

कुंकुम शोभित गोरज बीच से
निकलते ब्रज-वल्लभ यों लसे।
करन ज्यों करके दिशि कालिमा
विलसता नभ में निलनीश है ।।
अतसि पुष्प अलंकृत कारिणी
सुछवि नील सरोरुह वर्द्धिनी।

---

1. हरिऔध कृत प्रियप्रवास की भूमिका से उद्धृत।

नवल सुन्दर श्याम शरीर की
सजल नीरद सी कल कांति थी ।।

सौन्दर्य के साथ ही कृष्ण के व्यक्तित्व में शील का भी समावेश था। वे मृदुभाषी, अमृतोपम वाणी बोलने वाले थे। कवि ने इसी कारण लिखा है कि—

मधुरिमामय था मृदु बोलना,
अम्रित सिंचित सो मुस्कान थी।
समुद थी जन मानस मोहती,
कमल लोचन की कमनीयता ।।

२. **ब्रज के सर्वस्व**—कृष्ण सभी को प्रभावित करते हैं। सम्पूर्ण ब्रज निवासी कृष्ण को जीवनाधार मानते हैं। कंस के निमत्रण को लेकर अक्रूर गोकुल में आते हैं तो सभी कृष्ण के मथुरागमन से चिंतित हो जाते हैं। जैसे-जैसे इस सूचना का प्रसार होता जाता है, वैसे-वैसे व्यथा और व्यथा से संतप्त व्यक्तियों की संख्या बढ़ती जाती है। नंद और यशोदा की दशा भी विचित्र हो जाती है। राधा, गोप, गोपियां, पशु-पक्षी सभी कृष्ण के लिए समर्पित हैं।

३. **संगठन की अपूर्व क्षमता**—कृष्ण में विद्यमान है। यद्यपि वे ब्रह्म नहीं हैं, किन्तु फिर भी वे अकेले ही संगठन बनाये रखने की क्षमता से ओत-प्रोत हैं। जब वन में आग लग जाती है और वह धीरे-धीरे फैलती जाती है तो कृष्ण उसे बुझाने का प्रयत्न करते हैं। यह प्रयत्न संगठन का परिचायक है। उसमें संघ-शक्ति का सम्मिलन है। कृष्ण सभी गोप-ग्वालों से संगठित होकर कार्य करने के लिए कहते हैं। कालिया वध के अवसर पर भी इसी सगठन शक्ति का परिचय दिया गया है। यों कवि ने अकेले कृष्ण से भी कार्य सम्पन्न कराने की प्रतिज्ञा सी करवाई है, किन्तु यह प्रतिज्ञा सभी साथियों को प्रोत्साहित करने की भावना से व्यक्त की गई है—

अतः करूंगा यह कार्य मैं स्वयं,
स्वहस्त में प्राण स्वकीय को लिये।
स्वजाति औ जन्मधरा निमित्त मैं,
न भीत हूंगा विकराल व्याल से ।।

नेतृत्व ४. संगठन शक्ति के साथ-साथ ही कृष्ण में नेतृत्व शक्ति का भी अच्छा विकास दिखाया गया है। कृष्ण गोपालकों के नेता थे। उनके सभी कार्यों का नियमन और संचालन कृष्ण के ही हाथों से होता था। इसमें कोई संदेह नहीं कि कृष्ण नेतृत्व-गुण से युक्त हैं। गोवर्धन धारण के समय वे सभी के सहयोग से सही कार्य करने को अग्रसर हुए हैं तथा उन्होंने सभी का नेतृत्व किया है। वस्तुतः अतिवृष्टि से कृष्ण को संगठित दलों के सहारे सेवा करने का दृश्य दिखाने का अवसर कवि ने प्रदान कर दिया है—

इसलिए फिर पंकज नेत्र ने,
यह सओज कहा जनवृन्द से
रह अचेष्टित जीवन त्याग।
मरण है अति [illegible]चेष्ट।

विपद से वरवीर समान जो,
समर अर्थ समुद्यत हो सका।
विजय भूति उसे सब काल ही,
वरण है करती सुप्रसन्न हो।

इसके तुरन्त बाद ही कवि ने अपने लक्ष्य को स्पष्टतः सिद्ध कर लिया है, कृष्ण जनसेवा में तल्लीन हो जाते हैं। यहां अलौकिकता को स्थान नहीं दिया गया है, बल्कि उसके खंडन की पृष्ठभूमि भी बता दी है—

लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में,
ब्रज धराधिप के प्रिय-पुत्र का।
सकल-लोक लगे कहने उसे,
रख लिया उंगली पर श्याम ने ॥

इसी प्रकार अघासुर के वध के समय पर भी वंशी की मन-मोहिनी स्वर लहरी के सहारे सारी अलौकिकता क़ाफूर हो गई है। कवि ने वर्णन को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

मुहुर्मुहुः अद्भुत वेणुनाद से,
बना वशीभूत विमूढ़-सर्प को।
सुकौशलों से वऱ अस्त्र-शस्त्र से,
उसे बधा नन्द नृपाल नन्द ने ॥

डॉ० विश्वंभर नाथ उपाध्याय ने ठीक ही लिखा है कि शेष लीलाओं से पौराणिकता को फटक कर उनकी बुद्धिसंगत व्याख्या देने का प्रयत्न किया गया है, यद्यपि उसका प्रयत्न सर्वत्र सफल नहीं हो पाता क्योंकि 'क्यों, कैसे' के प्रश्न हमारे मन को कुरेदते हैं। कवि कृष्ण में ब्रह्मत्व के स्थान पर नेतृत्व की प्रतिष्ठा में पूर्णतः सफल हुआ है। नेतृत्व-जनशक्ति को जनहित की दिशा में मोड़ सकता है, यह शक्ति और कौशल कृष्ण में खूब मिलता है।

५. प्रियप्रवास के अन्तर्गत राजा के रूप में कृष्ण की एक झलक षष्ठ सर्ग में प्राप्त होती है। इसी स्थल पर कृष्ण की शान, मर्यादा और आतंक का वर्णन भी किया गया है। कवि ने स्पष्टतः लिखा है—

बैठे होंगे निकट जितने शांत और शिष्ट होंगे।
मर्यादा का प्रति-पुरुष को ध्यान होगा बड़ा ही ॥
कोई होगा न कह सकता बात दुर्वृत्तता की।
पूरा-पूरा प्रति हृदय में श्याम आतंक होगा ॥

६. डॉ० उपाध्याय ने कृष्ण के व्यक्तित्व निरूपण में पारसत्व का विधान भी बताया है। उच्च पद वाले प्रायः सभी पर आतंक जमाने की सोचा करते हैं, किन्तु कृष्ण में ऐसी भावना नहीं है। कृष्ण उच्च पदासीन होकर भी आतंकवादी प्रवृत्ति और शोषणवादी आदतों से परे हैं तभी तो वे सब के प्रिय हैं। ऐसे चरित्र निश्चय ही अनुकरणीय हैं—

प्यारे-प्यारे बचन उनसे बोलते श्याम होंगे।
फैल जाती हृदय तल में हर्ष की बेलि होगी ॥
देते होंगे प्रथित गुण वे देख सद्‌दृष्टि द्वारा।
लोहा को छू कलित कर से स्वर्ण होंगे बनाते ॥

अवसाद प्रसाद

७. कृष्ण को कवि हरिऔध ने कहीं भी निराश, अवसन्न और विषाद-पूर्ण मुद्रा में प्रस्तुत नहीं किया है। कृष्ण का सौन्दर्य अपिरिमित रहा है। प्रियप्रवास में कई स्थलों पर कृष्ण संघर्ष, आपदा और थकाने वाली भूमिकाओं पर खड़े दिखाई देते हैं, किन्तु हरिऔध ने उन्हें कहीं भी अवसन्न और वितृष्ण मुद्रा में प्रस्तुत नहीं किया है—

प्रकृति शान्त हुई वर व्योम में,
चमकने रवि की किरणें लगीं।
निकट ही निज सुन्दर सद्म के,
किलकते हंसते हरि भी मिले॥

प्रियप्रवास के कृष्ण अनेक घनघोर संकटों में पड़ कर भी अस्त-व्यस्त नहीं दिखाई देते हैं। वास्तव में कवि हरिऔध ने कृष्ण की सृष्टि में कर्त्तव्य और सौन्दर्य का विधान एक साथ किया है—रोती हुई यशोदा के सम्मुख कृष्ण समुद सोते हैं, यात्रा से उत्पन्न कष्ट भी कहीं चित्रित नहीं किया गया है। कवि की इस प्रकार की चित्रण-पद्धति नवीनता की परिचायिका है—

समुद थे ब्रज वल्लभ सो रहे।
अति प्रफुल्ल मुखाम्वुज मन्जु था॥
निकट कोमल तल्प मुकुन्द के।
कलपती जननी उपविष्ट थी॥

"सुधारवादी चेतना की धुन में कृष्ण को एक नीरस नेता के रूप में ही चित्रित नहीं किया गया है जिसे केवल आदर मिलता है, कृष्ण ऐसे जन-नायक हैं कि उन्हें सभी प्रकार के प्यार मिलते हैं।" कवि आधुनिक होकर भी कृष्ण की मनमोहिनी मूर्ति को विस्मृत नहीं कर पाया है। परम्परा से चली आती कृष्ण—सौन्दर्य—प्रतिमा को आदर व्यक्त करते हुए उसे मंगल और कर्मनिष्ठा से जोड़ दिया गया है। वस्तुतः प्रियप्रवास की विशेषता ही यह है कि कृष्ण सौन्दर्य और शिवत्व कर्म और आकर्षण के सम्मिलित सेतु हैं।

८. कृष्ण लोक संग्रह और लोकोपकारी भावों के सम्मिलित पुन्ज हैं। वे कठिन पथ के पथिक है। लोकसेवा और लोकहित दोनों ही कठोर साधनायें है। इनमें रत रहने वाला कष्टों से विलग नही रह सकता है। कृष्ण ऐसे ही व्यक्ति हैं जो लोकसेवा और विश्व—प्रेम का व्रत लिए हुए है। इसी लोकहित के निमित्त वे अपने वचपन के साथी गोप—ग्वालों, राधा, नन्द व यशोदा आदि सभी को छोड़ देते हैं। वे उद्धव के माध्यम से राधा को जो सन्देश भिजवाते हैं उसमें भी लोकहित और लोकोपकार की ध्वनि ही प्रमुख है। वे सन्देश के साथ ही साथ स्वयं भी तपस्वियों की भांति लोक कल्याणकारी जीवन व्यतीत करते हैं। विश्व-हित और विश्व-प्रेम का उन्हें पर्याप्त ध्यान है। उनके जीवन का लक्ष्य ही लोकहित वन गया है। उद्धव का यह कथन इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है—

वे जी से हैं जगत—जन के सर्वथा श्रेय कामी।
प्राणों से है अधिक उनको विश्व का प्रेम प्यारा॥

९. प्रेम और कर्त्तव्य के पालक कृष्ण सामान्यतः कर्त्तव्य को ही प्रमुखता देते हैं, किन्तु इसका यह अर्थ लगाना व्यर्थ होगा कि वे प्रेम से दूर

होते चले गये हैं। प्रवास वेला में प्रिय जनता की व्याकुलता से वे कम आकुल नहीं हैं। उनके मन में एक ओर तो रास-लीला और वन्शी की मादक ध्वनि के प्रति आकर्षण है तो दूसरी ओर वे कर्त्तव्य की पुकार को भी सुनी-अनसुनी कर पाने में असमर्थ हैं। यहीं पर हलकी सी झलक अन्तर्द्वन्द की भी दिखाई गई है, किन्तु झलक-झांकी नहीं बन सकी है। वस्तुत: प्रियप्रवास में अन्तर्द्वन्द का प्राय: अभाव ही है। महापुरुष होने के नाते उनमें अन्तर्द्वन्द की योजना सगत भी नहीं प्रतीत होती है।

१०. हरिऔध ने कृष्ण को **मानवता के पोषक** के रूप में चित्रित किया है। वे संसार में आये ही इसलिए हैं कि दानवता का विनाश कर सकें। इसी का परिणाम है कि वे बकासुर, अघासुर, शकटासुर आदि का वध करते हैं। मानवता की रक्षा करने के लिए तो वे अपने प्राणों को भी संकट में डालने को तैयार रहते हैं। देश, जाति और जन्मभूमि के प्रति वे अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तत्पर रहते हैं। परोपकार उनके जीवन का मूल-मन्त्र है तो परदु:ख कातरता उनकी चेतना का सर्वाधिक गहरा रंग है वे स्वयं कहते हैं—

अत: करूँगा यह कार्य मैं स्वयं
स्वजाति औ जन्म-धरा निमित्त मैं
न भीत हूंगा विकराल व्याल से
सदा करूँगा अपमृत्यु सामना। सभीत हूंगा न सुरेन्द्र वज्र से।
कभी करूँगा अवहेलना न मैं, प्रधान धर्मांग परोपकार की।
प्रवाह होते तक शेष श्वास के। स-रक्त होते तक एक भी शिरा।
स-शक्त होते तक एक लोम के, किया करूँगा हित सर्वभूत का॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कृष्ण का मानवता प्रेम ही उन्हें लोकप्रिय नेता की पदवी पर प्रतिष्ठित करता है। संकीर्णता और एकदेशीयता से वे सदा दूर रहते हैं।

११. हरिऔध ने यद्यपि यह प्रयत्न किया है कि कृष्ण ब्रह्म न रह कर सीधे सादे मानव बनें, किन्तु पूर्व संस्कारों से एकदम छुट्टी पा लेना कवि के लिए आसान नहीं होता है। हरिऔध ने प्रियप्रवास में बीच का मार्ग अपनाया है, किन्तु फिर भी कहीं-कहीं कृष्ण के अलौकिक रूप की रक्षा कर ली गई—अधिकांशत: ऐसे स्थलों पर कवि यह प्रयत्न करने में संलग्न हो गया है कि अलौकिकत्व के विनाश से सौन्दर्य और कवित्व का ह्रास न हो जावे। यों अनेक स्थलों पर बुद्धि प्रधान व्याख्याओं को अवसर मिल गया है, किन्तु फिर भी कुछेक स्थलों पर पूर्णतया तो नहीं, किन्तु आंशिक रूप से अलौकिकत्व के ध्वंसावशेष अवश्य मिलते हैं। कवि प्रयत्न करता है, किन्तु काव्य माधुरी के सामने बौद्धिकता पनप नहीं सकी है—

वध न उद्यम दुर्जय वत्स का
कुटिलता अघसंज्ञक सर्प की।
विकट घोटक की अपकारिता
हरि निपातन यत्न अरिष्ट का।
कपट रूप प्रलम्ब प्रवंचना
खलयना पशुपालक व्योम का।

अहह ए सब घोर अनर्थ थे
व्रज विभूषण हैं, जिनसे बचे ।

व्रज विभूषण को अप्रत्यक्षतः कवि ने इसलिए बचा लिया है कि वे ईश्वरीय भूमिका पर प्रतिष्ठित रहे हैं ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रियप्रवास के कवि हरिऔध ने प्रयत्नतः कृष्ण को ब्रह्म की पदवी से हटा दिया है । उनके सभी अलौकिक कर्मों की बौद्धिक व्याख्या की गई है । वस्तुतः प्रियप्रवासकार ने कृष्ण की अवतारणा एक ऐसे महापुरुष के रूप में की है जो कि मानव जाति का उद्धारक, देश-भक्त और लोकोपकारिता के गुणों से युक्त हैं । इस रूप के लिए हरिऔध कालीन समसामयिक संदर्भ ही महत्वपूर्ण रहा है । डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने लिखा है कि हरिऔधजी की यह कल्पना आधुनिक युग के पूर्णतया अनुकूल है और इस कल्पना के द्वारा कवि ने श्रीकृष्ण के परम्परागत रूप के विरुद्ध ऐसे लोकोत्तर चरित्र-सम्पन्न नृरत्न की कल्पना की है जिसे आदर्श मान कर भारत ही क्या सारा विश्व कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है, विश्व बंधुत्व के भावों को अपना सकता है और मानव रूप में ईश्वरत्व की कल्पना को भली प्रकार समझ सकता है । अतएव आधुनिक विज्ञान-सम्पन्न बुद्धिवादी युग की आत्मा को सतुष्ट करने के लिए, मानवता का प्रचार करने के लिए तथा लोकहित की भावना का सम्पूर्ण जगत में प्रसार करने के लिए कवि ने कृष्ण के इस आदर्श चरित्र का निरूपण किया है । ७

राधा

प्रियप्रवास के राधा और कृष्ण दोनों ही बुद्धिवादी भावनाओं के सम्मिलित केन्द्र हैं । कृष्ण और राधा के पारम्परिक व्यक्तित्व के साथ ही उसमें जो नवीन चेतना का समीकरण हुआ है वह युग की देन है । राधा का विकास ही अपनी पद्धति से हुआ है । हरिऔध तक आते-आते राधा के चरित्र ने अनेक मोड़ लिए हैं ।

राधा का विकास—श्रीकृष्ण विषयक भावना का विकास जिस ढंग से हुआ है, उसी ढंग से राधा का भी, किन्तु भागवतपुराण और माध्व मत में राधा का उल्लेख नहीं मिलता है । वास्तव में राधा का सर्वप्रथम नाम ब्रह्म वैवर्त पुराण में मिलता है । इसके पश्चात् विष्णु स्वामी और निम्बार्क संप्रदायों में राधा का संकेत मिलता है । राधा के विकास के सम्बन्ध में निम्नलिखित मत सामने आते हैं ।

१. कुछ विद्वान् राधा को मध्य एशिया से चल कर आये हुए भ्रमणशील आभीरों की प्रेम देवी मानते हैं । दूसरे उन्हें द्रविड़ जाति की उपास्य देवी कहते हैं तथा उनका अस्तित्व वेदों से भी प्राचीन सिद्ध करते हैं ।

२. कुछ विद्वानों की दृष्टि में राधा किसी अज्ञातनाम कवि की मधुर कल्पना है जो कवि के विलुप्त हो जाने पर भी आज तक विद्यमान है तथा सदैव विद्यमान रहेगी ।

३ इसके साथ ही ध्वन्यालोक में सबसे पहले राधा का नाम मिलता है, यह भी तर्क दिया जाता है । इसके साथ ही गाथा सप्तशती, पंचतंत्र, ब्रह्म वैवर्त पुराण आदि में भी राधा का नाम मिल जाता है ।

४. राधा अनिंद्य सुन्दरी थीं। उनका यह सौन्दर्य गीतगोविन्द में देखा जा सकता है। यहाँ पर राधा वासन्ती कुसुम के समान सुकुमार अवयवों से सुरक्षित होकर एक विक्षिप्त की भांति अपने प्रियतम कृष्ण को ढूँढती फिरती हैं—

स्तन विनिहित मपि हारमुदारम्
सा मनु ते कृशनन्दुति भारम्।
राधिका तव विरहे केशव !
सरस मसृणमपि मलयज पंकम्
पश्यति विषमिव वपुषि संशङ्कम्
श्वसित पवन मनुयम परिणाहम्
मदन दहनमिव वहति सदाहम्।

५. गीतगोविन्द के बाद चंडीदास की राधा का स्वरूप सामने आता है। चंडीदास ने राधा को परकीया नायिका के रूप में चित्रित किया है; यह राधा कृष्ण के साथ विहार करने वाली, संकेत स्थल पर उन्मुक्त होकर मिलने वाली, अभिसार के लिए लुकछिप कर जाने वाली, मान करने वाली, लुक-छिप कर कृष्ण से मिलने का प्रयत्न करने वाली है।

६. विद्यापति की राधा कृष्ण की प्रेयसी के रूप में चित्रित है। उसमें कृष्ण लीलाओं का वर्णन लौकिक शृङ्गार के रूप में किया गया है जिसमें आध्यात्मिकता का सर्वथा अभाव है। विद्यापति पर माध्व–सम्प्रदाय के अतिरिक्त विष्णुस्वामी और निम्बार्क के सिद्धान्तों का स्पष्ट प्रभाव है। निम्बार्क ने राधा की प्रतिष्ठा खूब अच्छी तरह स्थापित कर दी थी, तथा विष्णुस्वामी मध्वाचार्य की भांति द्वैतवादी थे। राधाकृष्ण की सम्मिलित उपासना ही इन लोगों की भक्ति थी। जिसका प्रभाव विद्यापति पर पड़ा है। विद्यापति और चंडीदास की राधा की तुलना रवीन्द्र ने इस प्रकार की है—"विद्यापति की राधा में प्रेम की अपेक्षा विलास अधिक है, इसमें गंभीरता का अटल स्थैर्य नहीं है, केवल नवानुराग की उद्भ्रान्त लीला और चांचल्य है। विद्यापति की राधा नवीना है, नवस्फुटा है। हृदय की सारी नवीन वासनायें पंख फैला कर उड़ना चाहती है पर अभी रास्ता मालूम नहीं है। कौतूहल और अनभिज्ञतावश वह जरा अग्रसर होती है और फिर वापस आ जाती है। कुछ व्याकुल भी है और आशा निराशा का आन्दोलन भी है। चंडीदास गंभीर और व्याकुल हैं। विद्यापति नवीन और मधुर हैं।"[1]

दिनेश बाबू का कथन है—कि विद्यापति वर्णित राधिका कई चित्रपटों की समष्टि है। जयदेव की राधा की भाँति इसमें शरीर का भाग अधिक है, हृदय का कम, किन्तु विरह में पहुँच कर कवि ने भक्ति और विरह का गान गाया है, उसके प्रेम में बंधी हुई विलासी कलामयी—राधा का चित्रपट सहसा सजीव हो उठा है।"

७. विद्यापति के पश्चात् सूर तथा अन्य कृष्णभक्त कवियों की राधा के दर्शन होते हैं। इन कवियों ने राधा को पर्याप्त मर्यादित रूप में प्रस्तुत किया है। राधा संयोग के क्षणों में कृष्ण के साथ आनन्ददायक क्रीड़ायें

1. रवीन्द्र का कथन आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा अनुवादित।

करती है तथा वियोग में अनेक दुखों का भार वहन करती हुई दिखाई गई है। वस्तुतः धीरे-धीरे राधा उपास्या देवी बनती गई हैं। हरिऔध अभिनन्दन ग्रन्थ में लिखा है—जयदेव की राधा के समान उसमें प्रगल्भ व्याकुलता नहीं है। विद्यापति की राधा के समान उसमें मुग्ध कौतूहल और अनभिज्ञ प्रेम-लालसा नहीं है, चंडीदास की राधा के समान उनमें अधीर कर देने वाली गलद्‌बाष्पा भावुकता भी नहीं है, पर कोई सहृदय इन सभी बातों का उसमें एक विचित्र मिश्रण के रूप मे अनुभव कर सकता है।

८. कृष्ण भक्त कवियों के बाद रीतिकाल मे राधा को विलासिनी चंचला, क्रीडारत और बतरस लालच लाल की मुरली छिपाने वाली तथा खेल-खेल में कृष्ण को परेशान करने वाली के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह यहाँ आकर अल्हड़ यौवना, कामिनी तथा रूप-सुन्दरी बन गई है। उसके शरीर से चंचल क्रीड़ायें दिखाई देती हैं।

९. आधुनिक काल में जिस राधा के दर्शन होते हैं वह द्विवेदी युगीन, नैतिकता, लोक-हित और सुधारवाद से प्रभावित है। इस समय नारी सुधार और बौद्धिक चिन्तना से प्रेरित होकर ही रचनायें लिखी गई है। हरिऔध भी इसी काल के कवि थे। अतः उनकी राधा पूर्ववर्ती कवियों से सर्वथा पृथक है।

हरिऔध की राधा—हरिऔध ने जिस राधा का निर्माण किया है वह पूर्ववर्ती राधा से अलग नयी भूमिका पर प्रतिष्ठित है। नयी परिस्थिति की उपज के कारण राधा बदल गई। लोक-सेवा और परोपकार की भूमिका पर आ खड़ी हुई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि आधुनिक युग के लेखक साधनात्मकता को स्वीकार कर गये हो ते आज भी भक्तिकालीन राधा का विकास हो गया होता, किन्तु ऐसा नहीं हो सका। वैज्ञानिक युग के बुद्धिवाद ने पुराचीन दिव्यतावाद का ध्वज-भंग कर दिया और ईश्वर के स्थान पर मानव को प्रतिष्ठा मिली।..............आधुनिक युग के ईश्वरवादी साहित्य में जो मनुष्य छिपा हुआ था, उसका पुनरुद्धार कर दिया गया और ईश्वरता का निषेध न करके भी उपेक्षा की गई।

प्रियप्रवास में वर्णित और चित्रित राधा के व्यक्तित्व की निम्नलिखित विशेषतायें हैं—

१. **अनुपम सुन्दरी**—राधा के सौन्दर्य का वर्णन कवि हरिऔध ने मौलिक शैली में किया है। राधा की शरीर-यष्टि अत्यन्त कोमल और क्षीण है उसके मुख पर सदैव मुस्कान शोभा देती है, उसकी आदत है कि वह निरन्तर क्रीड़ारत रहती है। शोभा की वह समुद्र है अत्यन्त मृदुभाषिणी है और माधुर्य की साकारमूर्ति है। राधा के नेत्र कमल के समान और उन्मत्तकारी हैं। उसके शरीर की स्वर्णिम कांति नेत्रोन्मेषकारिणी है, उसकी मधुर मुस्कान मोहित करने वाली है और उसकी घुंघराली अलकें मानस में उन्माद पैदा करने वाली हैं। राधा नाना भावों के प्रकटीकरण में कुशल है। कवि ने उसकी शरीर-यष्टि के सौन्दर्य और हाव-भावों का वर्णन इस प्रकार —

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुत्तली।

शोभावारिधि की अमूल्य मणि सी लावण्य लीलामयी।
श्री राधा मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थी
फूले कंज समान मंजु दृगता थी मत्तताकारिणी।
सोने सी कमनीय कांति तन की थी दृष्टि उन्मेषिनी।
राधा की मुस्कान की मधुरता थी मुग्धता मूर्ति सी।
काली कुंचित लम्बवान अलकें थी मान सोन्मादिनी।
नाना भाव विभाव हाव कुशला आमोद आपूरिता
लीला लोल कटाक्ष पात निपुणा भ्रूभंगिमा पंडिता।
वादित्रादि समोद वादन परा आभूषणाभूषिता।
राधा थी सुमुखी विशाल नयना आनन्द आन्दोलिता।

इस वर्णन से राधा के सौन्दर्य की झाँकी मिल जाती है। कवि ने उसके सौन्दर्य का वर्णन रीतिकालीन सदर्भ में ही किया है।

२. **प्रियप्रवास की राधा प्रणय की मधुर मूर्ति** है। उसका सौन्दर्य आकर्षण का केन्द्र है। राधा के हृदय में कृष्ण के निमित्त प्रेम है। 'लरिकाई का प्रेम' प्रणय के रूप में व्यक्त हो गया है। राधा अपने कोमल हृदय का कृष्ण के चरणों में अर्पित कर चुकी है। परिणामतः शयन और भोजन के समय भी उसे कृष्ण की छवि मानस में व्याप्त दिखाई देती है। उसके प्रेम की पृष्ठभूमि में कृष्ण के वचनों की सरसता, मुखारविन्द की रमणीयता, उनकी सरलता, अति प्रीति और सुशीलता उसके चित्त से कभी उतरती नहीं, अपितु वह सदैव कृष्ण में ही लीन रहती थी—

बलवती कुछ थी इतनी हुई।
कुंवरि–प्रेम–लता उर–भूमि में।
शयन भोजन क्या, सब काल ही।
वह बनी रहती छवि मत्त थी।
वचन की रचना रस से भरी।
प्रिय मुखाम्बुज की रमणीयता॥
उतरती न कभी चित से रही।
सरलता अति प्रीति, सुशीलता॥

कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम इतना बढ़ जाता है कि वह उन्हें मन ही मन अपना पति मान लेती है। विधि पूर्वक वरण करने की कामना से वह सदैव कृष्ण में अनुरक्त रहती है, किन्तु विधि का विधान देखो कि उसकी समस्त आशाओं पर तुषारापात हो जाता है। कृष्णगमन का समाचार राधा को व्यथित कर देता है। उसे समस्त संसार शून्य और उदास दिखाई देने लगता है, दिशायें रोती सी जान पड़ती हैं, घर काटने को तैयार हो जाता है। मन व्यथातुर होकर इधर-उधर दौड़ने लगता है। राधा कहती है कि नियति कितनी कठोर है। मैं कृष्ण को मन में तो धारण कर ही चुकी थी अब तो विधिपूर्वक वरण की आकांक्षा पूर्ण होना और शेष रह गई थी अब वह पूर्ण नहीं हो सकेगी। स्पष्ट ही कवि हरिऔध ने राधा को शुद्ध प्रणयिनी के रूप में प्रस्तुत किया है जो कृष्ण के विरह में परेशान रहती है। उसका वियोगिनी रूप पवित्र और आदर्श वियोगिनी का रूप है।

३. विरह वनाम युक्ति कौशला नारी:—प्रियप्रवास की राधा को कवि ने विपत्ति विधुरा और विरह-विधुरा नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। कृष्ण विरह में व्यथित राधा उन्मना और अन्यमनस्का सी दिखाई देती है। कृष्ण की सांवली मूर्ति की प्यासी राधा दिन रात घायल हिरनी सी इधर उधर भ्रमित चित्त से घूमती जान पड़ती है। वह विरह में पवन के द्वारा संदेश भेजती है। इस पवनदूती प्रसंग में राधा की सहृदयता भी दिखाई देती है। वह पवन को विविध युक्तियों के द्वारा संदेश भेजती है, किन्तु उससे (पवन से यह प्रार्थना करती है कि वह जिस किसी भी मार्ग से होकर जावे उसे उपद्रवहीन रखे। भाव यह है कि अंधड़ आदि के रूप में न चले।

इसमें तो कोई संदेह नहीं कि राधा कृष्ण का विरह सह रही है किन्तु यह सच है कि उसके द्वारा बताई गई विविध युक्तियां किसी भी ज्ञानी के तर्कों और निर्देशनों से कम नहीं हैं। वह पवन को मार्ग निर्दिष्ट करती हुई ऐसी–ऐसी तरकीबें बताती है कि कोई भी उससे यह अनुमान लगा सकता है कि राधा विरहिणी कम युक्ति–कौशला अधिक है। इसी कारण पवनदूती प्रसंग के अन्तर्गत राधा का विरहिणी-रूप तो तिरोहित हो जाता है और नीति–निपुणा और तर्कशीला का रूप स्पष्ट होकर सामने आ जाता है। यद्यपि कवि ने उसे भ्रान्ता और उद्विग्ना कहा है किन्तु इस प्रसंग में तो वह भ्रान्ता कम और युक्तिशीला अधिक है। यदि वह भ्रान्ता होती तो पवन को यह तर्क भरा बौद्धिक संदेश नहीं देती।

४ उदारता और सदाशयता राधा के व्यक्तित्व की विशेषताएं हैं। यही कारण है कि पवन जब कृष्ण के लिए संदेश लेकर जाती है तो राधा यही कहती है कि देखो तुम मार्ग में थके–मांदे और क्लान्त व्यक्तियों को शीतलता से मंडित कर देना, किसी लज्जाशीला श्रमित ललना के कुम्हलाये हुए मुख को ताजगी दे देना। राधा की यह सदाशयता और उदारता उसके चरित्र को निखार देती है।

५. जब कृष्ण के प्रति राधा का प्रेम चरम–सीमा पर पहुंच जाता है तब वह विश्व की विविध वस्तुओं में किसी न किसी रूप में श्याम का दर्शन करने लगती है। प्राकृतिक पदार्थों में श्याम छवि का अवलोकन कर वह कृष्ण को याद करती और दुखी होती है, परन्तु तब तक ही जब तक कि उसके हृदय में मोह रहता है। जब राधा का मोह हट जाता है–मोह शुद्ध प्रणय में परिवर्तित हो जाता है तब वह प्राकृतिक पदार्थों और श्याम के बीच साम्य पाकर सुख और शान्ति प्राप्त करती है—

कंजों का या उदित–शशि का देख सौन्दर्य आंखों।
कानों द्वारा श्रवण करके गान मीठा खगों का।
मैं होती थी व्यथित, अब हूं शान्ति सानंद पाती।
प्यारे के पांव मुख, मुरली नाद, जैसा उन्हें था।

६. अब तक तो राधा का प्रेम व्यक्तिगत था वह कृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करना चाहती थी. किन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि कृष्ण लोक-कल्याण के कार्यों में लग गये हैं. वे अब उससे नहीं मिल पायेंगे तो वह भी प्रियतम के मार्ग का ही अनुसरण करती है वह अपने व्यक्तिगत प्रेम को कर्त्तव्यशीलता में बदलती हुई कहती है—

प्यारे आवें सु-वयन कहें प्यार से अंक लेवें।
ठंडे होवें, नयन–दुख हो दूर, मैं मोद पाऊँ।
ये भी हैं भाव मम उर के, और ये भाव भी हैं।
प्यारे जीवें जगहित करें गेह चाहे न आवें।

धीरे–धीरे राधा के हृदय में परिवर्तन होने लगता है। उसके हृदय में सात्विक वृत्तियों का उदय होने लगता है। उसकी सभी कामनाएं सात्विकता का बाना पहन लेती हैं और वह विश्व को श्याममय देखती है। कृष्ण और विश्व उसके लिए अलग–अलग नहीं रह जाते हैं।

७. कृष्ण में ही सम्पूर्ण विश्व को देखने वाली राधा लोकोपकार या लोकसेवा का वरण करती है। प्रियप्रवास की राधा की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका लोकसेविका और मानवीय दृष्टि सम्पन्ना के रूप में प्रस्तुत की गई है। सात्विक वृत्ति के उदय हो जाने से एक तो राधा के हृदय में विश्व-प्रेम जागृत हो जाता है और दूसरे वह कृष्ण को अपने हृदय में ही भगवान की तरह विश्वव्यापी समझने लगती है। इसका परिणाम यह निकलता है कि राधा की दृष्टि में विश्व-सेवा या लोक-सेवा ही प्राथमिक हो उठती है राधा विश्व, परमात्मा और कृष्ण तीनों को एक दूसरे का पर्याय समझती है, अतः एक की सेवा सबकी सेवा बन जाती है। नवधा भक्ति की नयी व्याख्यान्तर्गत उसके द्वारा कहा गया यह कथन देखिये—

विश्वात्मा जो परम प्रभु है रूप तो हैं उसी के।
सारे प्राणी सरि गिरि लता बेलियां वृक्ष नाना।
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा।
भावोयेता परम-प्रभु की भक्ति-सर्वोत्तमा है।

राधा के हृदय में विश्व-प्रेम जाग्रत हो जाने पर वह सम्पूर्ण मोह छोड़ देती है तथा लोक सेवा में प्रवृत्त हो जाती है वह कृष्ण के संदेश का अक्षरशः पालन करती है तथा सभी के प्रति करुणा, परोपकार और समानता का भाव रखती हुई लोक-सेविका बन कर अपना सम्पूर्ण जीवन बिताती है। राधा का लोकोपकारी रूप मुग्धकारी है, उनके मुख पर चिन्ता की अपेक्षा शांति का भाव है, उनके हृदय में गरम आहें नहीं हैं। वे अब स्थिरचित्त हैं। उनकी आंखों में वेदना के आँसुओं की अपेक्षा सेवानंद से प्राप्त सन्तोष की झलक है। वे दुखी हैं तो औरों के ही कष्ट से दुखी हैं—

मैं ऐसी हूँ न निज दुख से कष्टिता शोकमग्ना।
हा जैसी हूँ व्यथित ब्रज के वासियों के दुखों से।
गोपी-गोपों व्यथित ब्रज की बालिका बालकों को।
आके पुष्पानुपम मुखड़ा कृष्ण प्यारे दिखावें।।

राधा ने जो भक्ति विषयक सिद्धान्त प्रतिपादित किये थे, उनका अक्षरश पालन भी किया है। राधा कृष्ण की प्राप्ति से निराश होकर सदा के निमित्त कौमार्य-व्रत धारण कर समाज हितकारी कार्यों में जुट जाती है। वह शोक-संतप्त गोप–गोपियों को अपनी व्यथा भूल कर प्रबोध देती है। वह नन्द और यशोदा को अत्यन्त विनीत और मधुर स्वर में सान्त्वना देती है। वह अपने कार्यों के द्वारा सभी का मन बहलाती और उनका दुःख दूर करती है। वह

दीन-दुखियों, आर्तों और पीड़ितों की सहायता कर उनका अवलम्ब बनती है। इस लोक-हितैषिणी भावना से राधा वृषभानु-नन्दिनी राधा न रह कर ब्रज देवी बन जाती है। निम्नलिखित पंक्तियों में लोक सेविका राधा के स्वरूप को देखा जा सकता है—

संलग्ना हो विविध कितने सान्त्वना कार्य में भी।
वे सेवा थीं सतत करतीं वृद्ध रोगी जनों की।
दीना-हीना निबल विधवा आदि को मानती थीं।
पूजी जाती ब्रज-अवनि में देवि-तुल्या अतः थीं।
वे छाया थीं सुजन-शिर की, शासिका थीं खलों की।
कंगालों की परम-निधि थीं, औषधी थीं पीड़ितों की।
दीनों की थीं भगिनि, जननी थीं अनाथाश्रितों की।
आराध्या थी ब्रज अवनि की प्रेमिका विश्व की थीं।

राधा के चरित्र निर्माण के पीछे कवि हरिऔध की जो भावना कार्य कर रही है वह है तत्कालीन नारी आन्दोलन। आज के जमाने में नारी स्वतन्त्र और पुरुष की सहकर्मिणी बनना चाहती है। हरिऔध के जमाने में ऐसी ही स्त्रियों की आवश्यकता थी जो लोक-सेवा, परोपकार और पराये दुःख को अपना दुःख समझ कर कार्य करें। हरिऔध ने प्रियप्रवास के माध्यम से ऐसी नारी को प्रस्तुत किया है और यह नारी है राधा। इसका कायाकल्प किया गया है।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि राधा की अवतारणा नये ढंग से की गई है। वे शुद्ध मानवी के रूप में अनुकरणीय चरित्रवान नारी हैं। उनके रूप में एक ऐसी नारी की कल्पना की गई है जो आधुनिक संदर्भों में व्यावहारिक और विश्वसनीय प्रतीत होती है। यों सामान्यतः राधा के चरित्र में एक बात खटकती है। राधा सुख पाना चाहती है और और उसका सुख कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करना है। वह इस कार्य में सफल नहीं हो पाती है परिणामतः उसे लोक-सेवा का कार्य स्वीकार करना पड़ता है। "राधा के हृदय का सर्वथा स्वाभाविक विकास हुआ है, वेदना के पथ पर चल कर उन्होंने विश्व-प्रेम और ईश्वर-भक्ति के मन्दिर में प्रवेश किया है परन्तु प्रश्न यह है कि जिस समय तक विश्व-प्रेम के देवालय में प्रविष्ट भी नहीं हुई थीं तब तक यदि बीच में ही वेदना के कारण स्वरूप कृष्ण-विरह का अन्त हो जाता तो भी क्या वे उस मन्दिर में प्रवेश करना पसन्द करतीं अथवा प्रियतम के बाहु-पाश में स्वयं को बद्ध कर सम्पूर्ण विश्व को भूल जातीं?"[1]

यशोदा

यशोदा भारतीय साहित्यकारों से सदैव ही उपेक्षा पाती रही है जैसे कि प्रारम्भिक कवियों से उर्मिला या यशोधरा। यशोदा माता के रूप में भी वात्सल्य को लुटा कर भी अपने व्यक्तित्व को साहित्य में नहीं सँवार सकी है। यद्यपि अनेक कृष्ण भक्त कवियों ने राधा और कृष्ण के अतिरिक्त किसी दूसरे पात्र की ओर ध्यान ही नहीं दिया है। प्रियप्रवास के कवि हरिऔध ने यशोदा

---

1. महाकवि हरिऔध : गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश, पृ० २१२

के मातृत्व को देखा और उनकी स्नेहमयी गोद में फैली स्नेह छाया को वर्णन की पट्टी पर प्रस्तुत किया है। हरिऔध ने यशोदा के मातृत्व रूप की झांकी प्रियप्रवास के माध्यम से प्रस्तुत की है। इसका विवेचन आगे किया जा रहा है।

१. प्रियप्रवास में यशोदा का चित्र बड़ा मार्मिक बन पड़ा है। उनके हृदय की समस्त वेदना इतनी प्रगाढ़तर दिखाई देती है कि कलेजा मुंह को आता है। वास्तव में जब उन्हें पुत्र-स्नेह का सम्बल मिलना चाहिए था; तभी वह छिन गया है। यशोदा के बुढ़ापे का सहारा कृष्ण मथुरा चला गया है परिणामतः वे दुखी हैं। वस्तुतः प्रियप्रवास की यशोदा न तो संसार का हित समझ सकती हैं और न लोक सेवा की प्रेरणा को ही समझ पाती हैं, अपितु वे तो सीधी और सरल हृदया माता के रूप में सामने आती हैं। उनके मातृत्व की झांकी उस समय अधिक स्पष्ट हो जाती है जबकि वे सुनती हैं कि कृष्ण को लेने के लिए अक्रूर आ गये हैं।

२. प्रियप्रवास की **यशोदा मातृत्व की प्रतिमूर्ति** हैं। प्रियप्रवास के अन्तर्गत वे एक ममतामयी माता के रूप में अवतरित हुई हैं। वे भारतीय जननी हैं—ऐसी जननी जिसके हृदय में अपरिमित ममता विद्यमान है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे कभी भी अपना लाभ नहीं सोचती हैं। यशोदा पुत्र-प्रेम के सहारे ही जीवित हैं, यह ठीक है तभी तो वे कृष्ण को मथुरा भेजते समय कष्ट का अनुभव करती हैं। वे कृष्ण गमन पर मार्ग में रथ के सामने नहीं लेटती हैं कारण वे उचित-अनुचित को समझते हुए भी परिस्थिति की गम्भीरता को नहीं भूलती हैं। तात्पर्य यही है कि यशोदा की ममता अन्ध ममता नहीं है।

यद्यपि वे कृष्ण गमन के समाचार से दुःखी हैं। उनके हृदय में अनेक भाव हैं। वे रोती हैं, कलपती हैं, किन्तु संयम कहीं भी नहीं खोती हैं। कंस की क्रूरता उन्हें विदित है, राजनीतिक जाल से भी वे पीड़ित हैं तभी वे कृष्ण के गमन पर चिन्तित और व्यथित हैं। वे करुण क्रन्दन करती हुई कृष्ण की शैय्या के समीप बैठी हैं, कृष्ण की निद्रा भंग होने के भय से वे रोते समय भी सीमित और मर्यादित रहती हैं। बीच-बीच में वे अपने पुत्र की शुभ-कामना भी करती जाती हैं। वे यकायक रोना-धोना बन्द कर देती हैं और कुल के देवी-देवताओं की मनौती मानती हैं। अतः यशोदा की अधीरता, व्याकुलता और कातरता जननी के विमल ऐश्वर्य की परिचायिका है। वे सही अर्थों में मातृत्व की विभूति हैं—प्रतिमूर्ति हैं। वे कुल देवी से प्रार्थना करती हुई कहती हैं—

समझ के पद पंकज सेविका,
कर सकी अपराध कभी नहीं।

इसके साथ ही वे नम्र होकर यह भी कहती हैं कि पुत्र की प्राप्ति के निमित्त यदि कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा करना।

पर शरीर मिले सब भांति मैं
निरपराध कहा सकती नहीं।
इसलिए मुझसे अनजान में
यदि हुआ कुछ भी अपराध हो।

वह सभी इस संकट काल में
कुलपते ! सब ही विधि क्षम्य है।

स्पष्ट ही यशोदा का चरित्र शुद्ध सात्विक भावनाओं से परिपूर्ण है।

३. **यशोदा वात्सल्य की** साकार प्रतिमूर्ति हैं। उनका प्रिय पुत्र जब सामने से विदा हो जाता है तो वे यह सोचती हैं कि न मालूम कैसे यह मार्ग में जायेगा और कैसे भोजन आदि की व्यवस्था होगी ? इसी चिन्ता में अपने पति नन्द से कहती हैं कि देखो यह लाडला बेटा अभी तक तो कहीं बाहर गया नहीं है और आप मार्ग की कठिनाइयों से परिचित है। कृपा करके इसे मार्ग में मधुर फल खिलाना, धूप और तीखी पवन से भी इसकी रक्षा करना। पीने के लिए निर्मल जल की व्यवस्था करना। कवि ने माता के हृदय के वात्सल्य को यों चित्रित किया है—

सब पथ कठिनाई नाथ हैं जानते ही
अब तक न कहीं भी लाडिले हैं सिधारे।
मधुर फल खिलाना दृश्य नाना दिखाना
कुछ पथ दुःख मेरे बालकों को न होवे।
खर पवन सतावे लाडिलों को न मेरे
दिनकर किरणों की ताप से भी बचाना।
यदि उचित जंचे तो छांह में भी बिठाना
मुख सरसिज ऐसा म्लान होने न पावे।
विमल जल मंगाना देख प्यासा पिलाना
कुछ क्षुधित हुए ही व्यंजनों को खिलाना।
दिन वदन सुतों का देखते ही बिताना
विकसित अधरों को सूखने भी न देना।।

४. **ममता और करुणा की प्रतिमा**—के रूप में भी हरिऔध का यशोदा के दर्शन होते हैं। दुःख और विषाद के भावोदधि में डुबकियां लगाती हुई यशोदा उस समय दिखाई देती हैं जबकि नन्द ब्रज से अकेले ही लौटते हैं। उन्हें आता देखकर वह बड़े वेग से द्वार तक दौड़ती हैं, किन्तु निराशा ही मिलती है। पुत्र को न देखने के कारण वह छिन्नमूला लता के समान दिखाई देती हैं। वह बेहोश हो जाती हैं—पर्याप्त प्रयत्नों के अनन्तर वह चेतना प्राप्त करती हैं। उनके प्रश्नों की बौछार नन्द के ऊपर पड़ती है। कितनी वेदना, कितनी टीस, कितनी विषमता और कितनी करुणा है माता यशोदा के प्रश्नों में। कुछ पंक्तियां देखिये—

प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहां है ?
दुःख जलनिधिमग्ना का सहारा कहां है

× ×

वह हृदय हमारा नेत्र तारा कहां है ?
वह परम अनूठा रत्न सर्वस्व मेरा······
धन मुझ निधनी का लोचनों का उजाला।

× ×

वह नव नलिनी से नेत्र वाला कहां है ?

ममता बुरी चीज है कारण मानव निराश होकर भी आशान्वित रहता है यशोदा भी इसकी शिकार हैं। वह कृष्ण के विरह में नित्य प्रति दरवाजे पर आकर बैठ जातीं और कृष्णागमन के मार्ग को देखते–देखते ही वह समस्त दिन बिता देती थीं। वे राहगीरों से पूछती थीं कि तुमने मेरे बेटे को तो इधर आते नहीं देखा है। वह माता नित्य–प्रति पुत्र की प्रतीक्षा में बढ़िया-बढ़िया मिष्ठान्न और पकवान परोसा करती था। एक लम्बी अवधि बीत जाने पर भी कृष्ण वापिस नहीं आये—आये भी तो उनके मित्र उद्धव कृष्ण के संदेश वाहक बन कर। उद्धव के आने पर यशोदा यह प्रश्न नहीं करती हैं कि कृष्ण क्यों नहीं आये, अपितु वे तो यह पूछती हैं कि—

मेरे प्यारे सकुशल सुखी और सानन्द तो हैं ?
कोई चिन्ता मलिन उनको तो नहीं है बनाती ?
अबो छाती वदन पर है म्लानता भी नहीं तो ?
हो जाती हैं हृदय–तल में तो नहीं वेदनायें ॥

४. यशोदा एक दुखिया माता हैं, उन्हें कहा तो यह गया था कि धैर्य से काम लो कृष्ण—तुम्हारा लाडला बेटा दो ही दिनों में आ जावेगा यशोदा जो अपना धैर्य खो चुकी थीं वह यह कह कर संतोष कर लेती हैं कि 'क्या आवेगा कुँवर ब्रज में नाथ दो ही दिनों में,' बस इसी आशा की डोर के सहारे वे जीवित रहती हैं। वे रात–दिन उसी आशा में निमग्न रहती हैं। उद्धव से भी यही प्रश्न करती हैं 'क्या मुझे अपने प्रिय लाल की मधुर बातें कभी सुनने को प्राप्त हो जायेंगी ?' यशोदा की दुःख भरी कहानी को सुन कर उद्धव का हृदय भी पिघल जाता है। वे भी उनकी व्यथा–कथा सुनते रहते हैं।

५. बराबर दुख–भार सहन करते–करते यशोदा का शरीर भले ही क्षीण हो गया हो, किन्तु उनका अन्तःकरण विशाल हो गया है। उद्धव से वार्तालाप के दौरान वे कृष्ण की वीरता गुणावली का विशेष ध्यान रखती हैं। वे कृष्ण की प्रशंसा करती हैं। सप्तम सर्ग और दशम सर्ग में यशोदा कृष्ण का गुण गाते नहीं थकती हैं। वे कृष्ण को इसलिए स्नेह करती हैं कि वह ऐसा बेटा है जो गुणों के कारण महान् है। यशोदा की ममता के विकास में मानव-मूल्य निरन्तर साथ रहे हैं। मानव मूल्यों के कारण ही यशोदा के ममत्व को अन्धता नष्ट हो गई है। यशोदा परिस्थिति को भी समझती हैं। वे परिस्थिति की जटिलता को समझती हैं और वे इसी सत्य की अवहेलना करने में असमर्थ हैं तभी तो केवल यह कामना शेष रह गई है जिसमें वे देवकी के प्रति भी दयार्द्र हो गई हैं—

मैं रोती हूं हृदय अपना कूटती हूं सदा ही,
हा ! ऐसी ही व्यथित अब क्यों देवकी को करूँगी।
प्यारे जीवें प्रमुदित रहैं औ बने भी उन्हीं के।
धाई नाते वदन दिखला जायँ नरेक और ॥

वस्तुतः यशोदा का अन्तःकरण कितना उदार और विशाल बन गया है। वे एक ऐसी माता हैं जो आदर्श हैं अनुकरणीय हैं। यशोदा के चित्रण में कवि का उद्देश्य यह रहा है कि वे आदर्श माता की झांकी प्रस्तुत कर सकें जो असीम मोह, ममता और करुणा की प्रतिमूर्ति हो, जिसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व

कष्टों को सह कर भी पुत्र के लिए समर्पित हो। इतना ही नहीं जिसके हृदय में विशालता और सदाशयता हो जो लोकसेवा और परोपकार के कार्यों से हर्ष व्यक्त करती हो, यशोदा ऐसी ही माता हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यशोदा प्रियप्रवास की उपलब्धि हैं। राधा का आदर्शवाद भले ही आक्षेपों को प्रेरित करने में समर्थ हो, कृष्ण भी भले ही अपने वैचित्र्यपूर्ण और विलक्षण व्यवहार के कारण आलोच्य बन गये हों, किन्तु प्रियप्रवास की माता यशोदा का व्यक्तित्व निर्दोष है, आक्षेप और आलोचनाओं से दूर है। यशोदा की स्थिति उस गाय सी है जिससे उसका प्रिय वत्स वियुक्त हो गया है—

उद्विग्ना हो विपुल सकला।
क्यों न सो धेनु होगी।
प्यारा लैरू अलग जिसकी।
आंख से हो गया है॥

प्रियप्रवास के नन्द

सामान्य परिचय—प्रियप्रवास के चरित्र विधान में नद भी महत्वपूर्ण पात्र हैं। वे व्रजभमि के राजा हैं तथा गोपों के अग्रणी स्वामी हैं। वे जैसे हैं वैसे ही उनके परिवार के व्यक्ति हैं। सभी व्रजवासी उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। वे जो भी कहते हैं, उसे सभी आज्ञा मान कर शिरोधार्य समझते हैं। उन्हें कृष्ण जैसा पुत्र प्राप्त हुआ है।

प्रियप्रवास के अन्तर्गत दो प्रकार के पात्र हैं—एक तो मुखर पात्र और दूसरे मौन और शांत पात्र। मुखर पात्रों में राजा नन्द का नाम नहीं आता है, बाकी सभी इसी वर्ग के पात्र हैं। नन्द मौन और-शांत पात्र हैं। नन्द मौन हैं। अतः उनका चरित्र बहुत ही मार्मिक बन गया है।

१. राधा, यशोदा और गोप-ग्वाले तो 'मुखरता' के कारण अपने दुख को व्यक्त करके जी हल्का कर लेते हैं, किन्तु नन्द की आदत है कि वे मौन रह कर ही दुख को सहन करने में अपनी विशेषता व्यक्त करते हैं—

जब कभी यह रोदन कान में।
व्रजधराधिप के पड़ता रहा॥
तड़फते तब यों वह तल्प पैं।
निशित-शायक-विद्ध जनो यथा।

नंद प्रियप्रवास में वैसे ही तड़फते हैं जैसे बाल्मीकि का क्रौंच पक्षी। वास्तव में राजा नन्द के सामने कृष्ण की विदाई के कारण जो आर्तनाद होता है, उसके साक्ष्य स्वरूप नन्द का मौन ही एक ऐसा तत्व है जो उन्हें सभी से विलग कर देता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि नंद के व्यक्तित्व की गरिमा और गौरव इसी गम्भीरता में निहित है। नन्द का मौन कभी-कभी तो बहुत ही खीझ उत्पन्न कर देता है—

द्वारे आया व्रज नृपति को देख यात्रा निमित्त।

इतने से ही कवि ने नन्द के अनुभावों का चित्रण कर दिया है। "राजा नन्द के 'मौन दुख सहन' को यशोदा के लिए उद्दीपन रूप में प्रस्तुत करना प्रियप्रवास की विशेषता है। सुखमय समय में किसी प्रसन्न व्यक्ति को जब हम दुखमय परिस्थिति में मौन देखते हैं तब हृदय हाहाकार कर उठता है।"

यशोदा जब मौन नन्द को ही सम्बोधित करके अपने हृदय के उद्गार प्रकट करती है। तब पुत्र-प्रेम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त दिखाई देने लगता है—

अहह दिवस ऐसा हाय क्यों आज आया।
निज प्रिय सुत से जो मैं जुदा हो रही हूँ।,
अगणित गुणवाली प्राण से नाथ प्यारी।
यह अनुपम थाती मैं तुम्हें सौंपती हूं।।
सब पथ कठिनाई नाथ हैं जानते ही।
अब तक न कहीं भी लाडिले हैं पधारे।।
मधुर फूल खिलाना दृश्य नाना दिखाना।
कुछ पथ दुख मेरे बालक को न होवे।।

२. पुत्र की कल्याण-कामना करने वाले नन्द भविष्य की आशकाओं से व्यथित दिखाये गये हैं। वात्सल्य के प्रतीक नद पुत्र पर भविष्य में आने वाली आपदाओं से परेशान हैं। वे अपने श्वेत बालों में हाथ फेरते हुये बड़े संकट में हैं। वे अपने शयन-कक्ष में ही चुपचाप रोते और बिलखते हैं। अश्रु सिक्त नेत्रों से वे शैय्या पर लेटे-लेटे कभी छत की ओर देखते हैं तो कभी शैय्या की ओर दृष्टिपात करते हैं। कभी-कभी रात्रि वेला में वे दरवाजे की ओर इस आशय से झाँकते हैं कि कितनी रात्रि और शेष है। वे दुखी इसीलिए हैं कि कंस के निमन्त्रण पर कृष्ण से विलग होना पड़ेगा।

३. नन्द के व्यक्तित्व में कर्त्तव्यपालन का विशेष भाव है। वे पति के रूप में भी अपने कर्त्तव्य को नहीं भूलते हैं। मथुरा से अकेले लौटने पर जब कृष्ण वियोग में यशोदा मूर्छित हो जाती है तो उस समय नन्द के दुख का भी पारावार नहीं है। वे इतने पर भी अपनी पीड़ा को दबाते हैं और यशोदा के कष्ट का ध्यान करके धैर्य, सयम और मर्यादा से काम लेते हैं तथा उन्हें प्रबोधते हुए शांति प्रदान करते हैं। वे यशोदा के हृदय में शांति का संचार करते हैं। वे इसी निमित्त यहां तक कह देते हैं—

"हाँ आवेगा प्रियसुत प्रिये गेह दो ही दिनों में"

यही अकेला वाक्य आशा की डोर बन कर यशोदा को सहारा देता है और नन्द की कर्त्तव्यनिष्ठा का भी परिचय देता है। वे अपने कर्त्तव्य पालन के ही कारण तो यशोदा के सामने अपने दुख को व्यक्त नहीं करते हैं।

४. नन्द यद्यपि पुत्र कृष्ण के वियोग में दुखी हैं, किन्तु फिर भी उनका हृदय उदार है, वे अन्तःकरण से शुद्ध हैं। कष्ट का आधिक्य इस कारण कम हो जाता है कि कृष्ण के कार्य और राधा की लोक-हित-तन्मयता उन्हें बल प्रदान करती है। वे इन दोनों की राष्ट्रीय भावनाओं और विश्व-प्रेम की भावनाओं के कारण ही दयनीय स्थिति में भी सम्भले हुए दिखाई देते हैं।

५. नन्द के चरित्र में अन्तर्द्वन्द का विकास और पात्रों की अपेक्षा अच्छा और अधिक हो गया है। कवि हरिऔध ने नन्द की दशा को मणि-विहीन सर्प से उपमित किया है—

खोके होवे विकल जितना आत्म सर्वस्व कोई।
होती है खो स्वमणि जितनी सर्प को वेदनायें।

लज्जा से वे प्रथित पथ में पाँव भी थे न देते।
जी होता था व्यथित हरि का पूछते ही संदेसा।।
विक्षिप्तों सा वदन उनका आज जो देख लेता।
हो जाता था वह व्यथित औ था महा कष्ट पाता।

डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का कथन है कि नन्द के चित्रण में कवि ने विशेषण-उल्लेखन विधि का प्रयोग नहीं किया है। इस विधि के अपनाने से चरित्र चित्रण का अति सरलीकरण हो जाता है। इसी प्रकार कवि ने विस्तृत उद्‌गार भी उनके मुख से नहीं कहलवाये हैं— वह सप्तम सर्ग में यशोदा को सान्त्वना देते समय क्या कहते हैं, यह तक कवि ने नहीं बताया है, सिर्फ वह इतना कह देता है कि राजा नन्द ने यशोदा को सान्त्वना दी और यशोदा को कुछ सन्तोष हुआ—

आवेगों से वह विकल तो नन्द थे पूर्व से ही।
कान्ता को यों व्यथित लख के शोक में और डूबे।।
बोले ऐसे वचन जिनसे चित्त में शांति आवे।
आशा होवे उदय उर में नाश पावे निराशा।।

निष्कर्षत: नन्द जी के रूप में कवि ने एक आदर्श पिता, पुत्र वियोग से व्यथित पिता, धैर्यवान और विवेक सम्पन्न राजा का चित्रण किया है। वे किसी भी स्थल पर चाहे वह कितने ही संकट का क्यों न हो, धैर्य नहीं छोड़ते हैं। व्यथा में भी विवेक से काम लेना उनका स्वभाव बना हुआ है।

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति और मानव का अटूट सम्बंध है। मानव का स्वभाव है सौन्दर्य की ओर अग्रसर होना और सौन्दर्य प्रकृति की विभिन्न छवियों में पुंजीभूत रहता है। जहां सौन्दर्य है, वहीं आकर्षण है और आकर्षित होने की सर्वाधिक विशेषता साधारण मानव की अपेक्षा संवेदनशील कवि में पाई जाती है। आदि काल से लेकर आज तक प्रकृति की विभिन्न छवियां काव्य के पृष्ठों पर अङ्कित की गई हैं। संध्या, प्रभात, दोपहर और निशा के वर्णन सदैव से काव्यों में होते आये हैं। सच बात यह है कि जैसे मानव सौन्दर्य-जिज्ञासु है, उसी तरह कविता भी आकर्षण और मुग्धता की व्याख्या ही है। इस कार्य के लिए या कल्पना विधान के लिए प्रकृति को उपेक्षित दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है।

यों तो भाव-वर्णन की भांति ही प्रकृति-वर्णन की भी दो ही पद्धतियाँ हैं। "प्रथम तो वह जिसमें कवि प्राकृतिक पदार्थों में उदात्त और सुन्दर पदार्थों में से कुछ का चयन करता है। उदात्त और सुन्दर धारणायें उसके समाज में प्रचलित और स्वीकृत धारणायें हैं, उन्हीं धारणाओं की धरनी पर कवि का मन भी विकसित हुआ है। अत: यह स्पष्ट है कि विराट-पर्वत, क्षुब्ध समुद्र और निर्मल अनन्त आकाश के प्रति वह भी अपने समाज के अनुकूल ही दृष्टिकोण विकसित करता है। द्वितीय विधि में कवि प्रकृति को हम किस दृष्टि से देखें, इस ओर हमें प्रेरित करता है, प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण का विकास इस बात का सूचक है कि समूची जीवन पद्धति में कुछ अन्तर आ गया है और संवेदनशील क्रान्तिदर्शी कवि ने उसे पहले ही जान लिया है।"

आज प्रकृति अनेक रूपों में दिखाई दे रही है। कुछ प्रमुख पद्धतियां इस प्रकार हैं—

१. आलम्बन रूप में
२. संवेदनात्मक रूप में
३. उद्दीपन रूप में
४. रहस्यात्मक रूप में
५. वातावरण निर्माण रूप में
६. प्रतीकात्मक रूप में
७. अलंकार रूप में
८. मानवीकरण रूप में
९. लोकशिक्षा के रूप में
१०. दूत या सदेशवाहक के रूप में।

हरिऔध और प्रकृति—हरिऔध का युग जन-जागृति का युग था। उस समय को देखते हुए तत्कालीन शिक्षित व्यक्ति व्यवस्था से क्षुब्ध हो उठे थे। वे समाज मे क्रांति लाना चाहते थे। इसी कारण जहां एक ओर कवि मध्यकालीन काव्य में चित्रित मानवीय संबंधों को परिवर्तन की तुला पर तौल रहे थे तो दूसरी ओर प्रकृति के परंपरागत वर्णन में भी परिवर्तन आता जा रहा था। द्विवेदी युगीन कवियों की इच्छा तो यह थी कि प्राकृतिक पदार्थों पर स्वतंत्र रूप से लिखना चाहिए और उद्दीपन रूप का वर्णन सदैव आकर्षण का केन्द्र नहीं बना रह सकता है। अतः प्रियप्रवास के कवि ने इसी आवाज को बुलन्द किया है और नयी प्रक्रिया से प्रकृति का वर्णन किया है, स्पष्ट है कि हरिऔध ने प्रकृति-वर्णन की परम्परा को हृदयंगम तो किया था, किन्तु जागरूक समाज की आवाज को भी उपेक्षित नहीं समझा और प्रकृति को नया धरातल प्रदान किया। प्रियप्रवास में जो प्रकृति वर्णन है, उसमें एक ओर तो परंपरा का विधान है और दूसरी ओर प्रगति की रूपरेखा स्पष्ट दिखाई देती है।

प्रगति की रेखा तटस्थ प्रकृति अङ्कन और षट्ऋतु-वर्णन-प्रणाली में दीख पड़ती है "प्रियप्रवास में व्रज-विलाप को प्राकृतिक व्यापारों से अलग करके नहीं देखा गया है जैसा कि मध्यकालीन काव्य में पाया जाता है, यहां ऐसा लगता है कि प्रकृति में होने वाले परिवर्तन, उसकी विभिन्न दृश्य सृष्टि व्रज में होने वाली घटनाओं के साथ-साथ हो रही है। राजाओं के दरबारों में लिखित साहित्य में यह प्रवृत्ति नहीं दिखाई पड़ती है। वहां प्रकृति भोगवृत्ति को संतुष्ट करने का माध्यम है, किन्तु प्रियप्रवास में मानवीय घटना प्राकृतिक घटना के साथ संग्रथित है। अतः प्रथम सर्ग में मानवीय घटना कृष्ण का गोचारण आदि से लौटना तथा वंशीवादन, व्रजवासियों द्वारा उनके दर्शन व कृष्ण का सौन्दर्य आदि संध्याकाल के प्राकृतिक दृश्य से अलग नहीं किये जा सकते हैं।" हम प्रयत्न करके भी यदि उन्हें अलग-अलग करें तो इनकी सम्पूर्णता और संश्लिष्टता नष्ट हो जायेगी और अपूर्णता और विश्लिष्टता सामने आने से कुछ अभाव खटकता रहेगा।

मानवीय और प्राकृतिक दृश्य को एक साथ चित्रित करने के लिए कवि ने नाटकीय पद्धति का प्रयोग किया है। भूतकालिक क्रिया के प्रयोग से तो

ऐसा लगता है जैसे वह प्राकृतिक वर्णन की भूमिका पर कुछ और ही कहने की सोच रहा है। यों कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य को स्वतंत्र रूप भी दिया है। प्रियप्रवास को पढ़ने से यह तथ्य अधिक स्पष्टता से सामने आता है कि कवि आलम्बन रूप और तटस्थ रूप से प्रकृति का वर्णन अधिक करता है। प्रकृति वर्णन की विविध झांकियों का वर्णन यहां दिया जा रहा है—

१. **आलम्बन रूप में**—प्रकृति वर्णन प्रियप्रवास की अन्यतम विशेषता है। आलम्बन रूप में भी दो प्रणालियां प्रचलित हैं—बिम्ब ग्रहण प्रणाली और अर्थ ग्रहण प्रणालो। पहली में प्रकृति का संश्लिष्ट चित्र मिलता है और दूसरी में प्राकृतिक पदार्थों के नाम भर गिना दिये जाते हैं। ये दोनों ही पद्धतियां 'प्रियप्रवास' में मिलती हैं। बिम्बग्रहण प्रणाली द्वारा कवि प्रकृति के भव्य रूप को यों अंकित करता है—

ऊंचा शीश सहर्ष शैल करके था देखता व्योम का।
या होता अति ही सगर्व वह था सर्वोच्चता दर्प से।
या वार्ता यह था प्रसिद्ध करता सामोद संसार में।
मैं हूं सुन्दर मानदण्ड व्रज की शोभामयी भूमि का।।

० ० ० ०

पानी निर्झर का समुज्ज्वल तथा उल्लास की मूर्ति था।
देता था गति-शील-वस्तु-गरिमा यों प्राणियों को बता।।
देता था उसका प्रवाह उर में ऐसी उठा कल्पना।
धारा है यह मेरु से निकलती स्वर्गीय आनंद की।।

वास्तव में प्रकृति की इस जीवंत झांकी में उसके मनहरण और आकर्षक रूप को बिम्बात्मक ढंग से प्रस्तुत कर दिया गया है बिम्बग्रहण प्रणाली के ही अन्तर्गत कवि ने प्रकृति की भयंकरता को भी वर्णित किया है। श्मशान भूमि की भयकरता का वर्णन करते समय कवि ने वहां पर पड़ी हुई खोपड़ियों के विकट दंत दिखा कर अत्यन्त भैरव हास करती चित्रित किया है।

विकट दंत दिखा कर खोपड़ी, कर रही अति भैरव हास थी।
विपुल अस्थि समूह विभीषिका, भर रही भय थी वन भैरवी।।

इसी प्रकार नाम परिगणनात्मक प्रणाली के अन्तर्गत प्रकृति के कोमल और भयंकर दोनों पक्षों का वर्णन किया गया है। गोवर्धन पर्वत पर खड़े वृक्ष का वर्णन इस अर्थ ग्रहण प्रणाली के अन्तर्गत आता है। जामुन, आम, कदम्ब, नील और जम्बीरादि का वर्णन है देखिये तो सही कवि की लेखनी से निकले शब्द—

जम्बू अम्ब, कदम्ब, निम्ब फलसा जम्बीर औ आंवला।
लीची दाड़िम, नारिकेल इमिली और शिंशिपा इंगुदी।
नारंगी अमरूद बिल्व बदरी, सागौन शालादि भी।
श्रेणीबद्ध तमाल-ताल कदली औ शाल्मली थे खड़े।

कवि ने परिगणना में शायद ही किसे छोड़ा हो, किन्तु करील का नाम जो यहां प्रमुखता से होता है, भूल ही गया है। इलायची, लौंग, शाल आदि का वर्णन हास्यास्पद लगता है क्योंकि वे वस्तुएं वहां होती ही नहीं है। जहां तक अर्थ ग्रहण प्रणाली के अन्तर्गत आने वाले प्रकृति के भयंकर

रूप का प्रश्न है कवि ने तृणावर्तीय विडम्बना का उल्लेख किया है तथा साथ ही भयकर तूफान का भी वर्णन किया है। आंधी उपल–वृष्टि बादलों की गड़गड़ाहट, पेड़ों का उखड़ना, मकान की छतों का उड़ना आदि वर्णित हैं। अत: स्पष्ट ही आलम्बन रूप में कवि ने विशेष रुचि ली है। निदाघ वर्णन, वर्षा वर्णन, शरद और वसंत वर्णन तो आलम्बनत्व का प्रतिनिधित्व करते जान पड़ते हैं।

प्रियप्रवास में प्रकृति का वर्णन तटस्थ दृष्टि से किया गया है। कवि वर्णन करते समय एक प्रकार की तटस्थता का अनुभव करता है। इस प्रकार के वर्णनों में भावुकता एक स्थान पर भी नहीं भड़की है, यह आश्चर्य का विषय है कि भावुकतावादी कवि हरिऔध में प्रकृति–दर्शन की इतनी अधिक क्षमता थी। 'अरुणता अति ही रमणीय थी' केवल यह पंक्ति उपर्युक्त पंक्तियों में भी कवि की मुग्धता को संकेतित करती है अन्यथा चित्रकार की तरह कवि अपना कार्य करता चला गया है। इस तटस्थ अंकनात्मक प्रवृत्ति का परिचय देने वाली ये पंक्तियां देखिये। पूरा का पूरा संध्या वर्णन इसी पद्धति पर लिखा गया है—

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखा पर थी अवराजती
कमलिनी कुल–वल्लभ की प्रभा।
विपिन बीच विहंगम वृन्द का
कल निनाद विवर्द्धित था हुआ।
ध्वनिमयी विविध विहगावली
उड़ रही नभ मंडल मध्य थी।
अधिक और हुई नभ लालिमा
दश-दिशा अनुरंजित हो गई।
सकल पादपपुञ्ज हरीतिमा
अरुणिमा विनिमज्जित सी हुई।

उद्दीपन विभाव—प्रियप्रवास में उक्त पद्धति के अतिरिक्त प्रकृति का उद्दीपक रूप भी देखने को मिलता है। इसके अन्तर्गत प्रकृति की छवि मानव के मनोभावों को उद्दीप्त करती है। हरिऔध ने कृष्ण के चले जाने पर गोपियों की विरह-व्यथा का वर्णन करने के लिए पंचदश सर्ग में प्रकृति के उद्दीपन रूप की अतीव मार्मिक झांकी अंकित की है। सर्गान्तिगंत बताया गया है कि एक वियोगिनी वाला व्याकुल हो कर वाटिका में जाती है और वहां पर आकर पाटल, जूही, चमेली, बेला, चम्पा आदि को विकसित देख कर उसके हृदय में मर्मान्तक व्यथा पल्लवित होती है—

आके तेरे निकट कुछ भी मोद पाती न मैं हूं।
तेरी तीखी महक मुझको कष्टिता है बनाती।
क्यों होती है सुरभि सुखदा माधवी मल्लिका की।
क्यों तेरी है दुखद मुझको पुष्प बेला बता तू।

इसी तरह आनन्द के क्षणों को काव्यारंभ में संध्या के वर्णन के दौरान देखा जा सकता है। कवि ने आकाश में छायी हुई धूल का वर्णन करते हुए लिखा है—

गगन मण्डल में रज छा गई।
दश-दिशा बहु शब्दमयी हुई॥
विशद-गोकुल के प्रति गेह में।
बह चला वर-स्रोत विनोद का॥

प्रकृति के उद्दीपन रूप का जो वर्णन प्रियप्रवास में मिलता है, उसमें नवीनता है। आधार को परिवर्तित भूमिका प्रदान की गई है। महत्वपूर्ण बात यह है कि कवि ने प्रेम के वर्णन में प्रकृति को उद्दीपन रूप प्रदान नहीं किया है। चौथे सर्ग में नक्षत्र राधा को उद्दीप्त करने के साथ साथ अनेक भावों को भी जन्म देते हैं। १५वें सर्ग में जो उद्दीपन किया गया है वह भी पारंपरिक उद्दीपन शैली से भिन्न है वहाँ उद्दीपन के साथ-साथ ही सखी अपने मानसिक भावों को व्याख्या की भूमि पर उपस्थित कर देती है। राधा-उद्धव का जो संवाद चित्रित किया गया है वह भी पारंपरिक उद्दीपन शैली के प्रति विद्रोह प्रतीत होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि कवि ने उद्दीपन शैली का प्रयोग किया है किन्तु यह भी विस्मरणीय नहीं कि उसमें मौलिकता और नवीनता की भूमिका उपस्थित है।

संवेदनात्मक वर्णन—प्रियप्रवास में कवि ने प्रकृति का संवेदनात्मक वर्णन भी किया है। मानव मनोभावों के अनुकूल हर्ष के समय प्रसन्नता और विषाद के समय शोक, रुदन के समय आंसू आदि का वर्णन किया जाता है वहाँ प्रकृति का संवेदनात्मक वर्णन किया जाता है। हरिऔध ने प्रकृति के इस स्वरूप को प्रियप्रवास में बड़ी तन्मयता से चित्रित किया है। प्रकृति ने मानव जीवन से पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लिया है। माता यशोदा के दुःख पर आंसू बहाये जाने पर रात्रि भी रोती है और ओस के बहाने अश्रु गिराती है। कवि का वर्णन इस प्रकार है—

विकलता उनकी अवलोक के।
रजनि भी करती अनुतप थी॥
निपट की नीरव ही मिष ओस के।
नयन से गिरता बहु वारि था॥

विपुल नीर बहा कर नेत्र से मिष कलिंद-कुमारि प्रवाह के
परम कातर हो रह मौन ही रुदन थी करती ब्रज की धरा

इसी प्रकार कृष्ण जन्म के अवसर पर किया गया वर्णन भी इसी पद्धति के अन्तर्गत आता है। डा० सक्सेना के आधार पर इस संवेदनात्मक वर्णन में भावसिप्त वर्णन का अभाव है और विषाद, हास, उल्लास आदि की उतनी गहनता नहीं है, जितनी छायावादी कवियों की संवेदनात्मक प्रकृति-चित्रणमयी कविताओं में दिखाई देती है। फिर भी कवि प्रकृति के इस सचेतन व्यापार से विरक्त नहीं दिखाई देता और वह प्रकृति में मानवों की भांति ही सहृदयता, सहानुभूति समवेदना आदि के दर्शन करता है।

डॉ० विश्वंभर उपाध्याय ने उद्दीपन के संदर्भ से ही प्रियप्रवास में सहवेदनात्मक (Sympathetic) वर्णन का उल्लेख किया है। उनका कथन है कि सष्ठ सर्ग मध्यकालीन प्रकृति के उद्दीपक रूप के विरुद्ध विद्रोह है। कवि ने उद्दीपनों में एक प्रबलतम पदार्थ वायु को नायिका का दूत बना डाला है। अतः प्रकृति के उद्दीपक चित्रों की वर्णना का प्रश्न ही समाप्त हो गया है और इस कमी की पूर्ति कवि ने अपनी कल्पना-शक्ति से सर्वथा नूतन परिस्थिति द्वारा कर ली है। शत्रु और पीड़क को दूत बनाने से राधा की उच्च चित्तवृत्ति और कुशलता दोनों प्रमाणित होती हैं, उससे और लाभ हुआ हो या न हुआ हो, यह लाभ अवश्य हुआ है कि परंपरागत उद्दीपक रूप के स्थान पर प्रकृति का सहवेदनात्मक, सहानुभूतिपरक रूप अधिक प्रस्तुत हुआ है। उद्दीपन परपरा का निषेध कवि ने कितनी सरलता से कराया है—

क्यों होती है निष्ठुर क्यों बढ़ाती व्यथा है ?
तू है मेरी चिरपरिचिता तू हमारी प्रिया है ।।
मेरी बातें सुन मत छोड़ दे वामता को
पीड़ा खो के प्रणत जन है बड़ा पुण्य होता ।

वातावरण निर्माण के रूप में—प्रियप्रवास में किया गया प्रकृति चित्रण बड़ा प्रभावशाली बन पड़ा है। कवि ने आगे घटित घटनाओं को दिखाने के लिए जो प्राकृतिक वर्णन किया है वह वातावरण का निर्माण करने में पर्याप्त सहायक हुआ है। तीसरे सर्ग में विषाद, खिन्नता और अवसाद को व्यक्त करने के लिए कवि ने जो वर्णन किया है वह नन्द और यशोदा के स्वरूप की अभिव्यंजना के लिए वातावरण तैयार करता दिखाया गया है। इसी प्रकार कृष्ण के मथुरागमन के अवसर पर व्याप्त उदासी, खिन्नता और शोक के वातावरण की सृष्टि के लिए कवि ने पांचवे सर्ग के प्रारंभ में यमुना की तरंगों से व्यथा का विकास दिखाया है। यमुना का जल शोकमग्न है तथा भ्रमर भ्रमित से हो कर कुञ्जों से निकल कर घूम रहे थे तथा कुमुदिनी भी किसी खोटी-विरह घड़ी को सामने देख कर कान्तिहीन एवम् मलीन होती हुई अवनतमुखी हो रही थी—

सारा नीला सलिल सरि का शोक छाया पगा था ।
कुञ्जों में से मधुप कढ़ के घूमते थे भ्रमे से ।
मानो खोटी विरह-घटिका सामने देख के ही ।
कोई भी थी अवनत-मुखी कांतिहीना मलीना ।।

रहस्यात्मक रूप में जो प्रकृति चित्रण किया गया है। प्रकृति के कण-कण में ईश्वरीय सत्ता व्याप्त है। ईश्वर अलक्ष्य और अदृश्य है। वह अलक्ष्य शक्ति अत्यन्त गूढ़ रहस्यमयी और अपरिचित है। हरिऔध तो स्वभाव से ही प्रकृति की मनोरम छटा से व्याप्त विराट सत्ता में विश्वास करने वाले हैं। वे एक जिज्ञासु और उत्सुक कवि की तरह उस सत्ता को कहीं खोजते नहीं फिरते, अपितु उन्हें तो वह खिले हुए प्रसून-वृन्द मधुर-गुंजन युक्त भौंरे, नदियों के मधुर कल-कल, चन्द्र ज्योत्स्ना और पक्षियों के मधुर कलरव आदि में सर्वत्र उस विराट सत्ता का आभास मिलता रहता है और प्रकृति के

इन सुरम्य पदार्थों को देख-देख कर वे प्रायः उन्मत्त प्राय होते रहते थे।[1] यही कारण है कि हरिऔध ने प्रकृति के रहस्यात्मक वर्णन में कभी भी लिप्तता नहीं दिखाई। इस दृष्टि से प्रियप्रवास की प्रकृति का मूल्याङ्कन ठीक नहीं है।

प्रतीकात्मक रूप में—प्रकृति का प्रतीकात्मक रूप में प्रयोग किया जा सकता है किन्तु स्मरणीय यह है कि इसमें आन्तरिक और वाह्य में साम्य विठा कर ही यह कार्य सफलतापूर्वक किया जा सकता है प्रायः यह देखा जाता है कि आन्तरिक साम्य से प्रभाव की मात्रा से अभिवृद्धि हो जाती है। सुख, आनन्द और प्रफुल्लता के लिए क्रमशः उषा, प्रभात या प्रकाश का प्रयोग, प्रकृति का प्रतीकात्मक प्रयोग ही माना जाएगा। हरिऔध ने अपने प्रियप्रवास में इस पद्धति का प्रयोग किया है। सांध्य अरुणिमा के उपरान्त अचानक घिर आने वाली कालिमा के लिए कवि ने प्रतीकात्मक स्तर पर प्रकृति को प्रस्तुत किया है। वर्णनान्तर्गत शशि कृष्ण का प्रतीक है और कलायें उनके गुणों की प्रतीक है। एक उदाहरण देखिये—

वहु भयंकर थी वह यामिनी।
विलपते व्रज भूतल के लिए॥
तिमिर में जिसके उसका शशि।
वहु कलायुत होकर खो चला॥

सच वात यह है कि प्रकृति को प्रतीकात्मक रूप में कम ही प्रस्तुत किया गया है।

अलंकार योजना के रूप में प्रकृति का प्रयोग प्राचीन काल से ही किया जा रहा है। प्राकृतिक उपमानों से शरीरांगों की कोमलता, मसृणता और सात्विकणता व कठोरता आदि को व्यक्त करने की पद्धति प्राचीन है। प्रियप्रवास में भी यह पद्धति दिखाई देती है। राधा के सौन्दर्य का चित्र जिसमें वह रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु विम्वानना आदि के रूपमें प्रस्तुत की की गई है, प्रकृति का आलंकारिक चित्रण मिलता है। कृष्ण की सौन्दर्य राशि का वर्णन भी इसी शृङ्खला में एक कड़ी जोड़ता जान पड़ता है। एक उदाहरण देखिये जिसमें उपमा अलंकार के सहारे प्रकृति को प्रस्तुत किया गया है—

कुंकुम शोभित गोरज वीच से,
निकलते व्रज-वल्लभ यों लसे।
करन ज्यों करके दिशि कालिमा,
विलसता नभ में नलिनीश है।

इसी प्रकार रूपक अलंकार के सहारे किये गए एक वर्णन को देखिये। यह चित्र संश्लिप्टता लिए हुए है जो प्रभावकारी व्यंजना कराने में समर्थ है—

ऊधो मेरा हृदय-तल था एक उद्यान न्यारा।
शोभा दती अमित उसमें कल्पना क्यारियाँ थीं।
प्यारे-प्यारे कुसुम कितने भाव के थे अनेकों।
उत्साहों के विपुल विटपी मुग्धकारी महा थे॥

मानवीकरण के रूप में प्रकृति का वर्णन प्रायः अंग्रेजी प्रभाव से आया है और इसका प्रारम्भ छायावाद से ही हुआ है। प्रियप्रवासकार हरिऔध ने इसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है क्योंकि उस समय इसका प्रचलन ही नहीं था। हाँ, अनायास ही इस प्रकार की पद्धति पर खड़े किये गए प्रकृति चित्र प्रियप्रवास में मिल जाते हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में मानवीकरण का प्रयोग देखिये—

उत्फुल्ल थे विटप वृन्द विशेष होते।
लालित्यधाम बनती नवला लता थी॥
क्रीड़ामयी ध्वनिमयी कल ज्योति वाली।
धारा अश्वेत सरिकी अति तदगता थी॥
थी नाचती उमगती अनुरक्त होती।
उल्लासिता विहसिता प्रफुल्लिता थी॥
पाई अपूर्व स्थिरता वायु ने थी।
मानो अचंचल विमोहित हो बनी थी॥
वंशी मनोज्ञ स्वर से बहु मोदिता हो।
माधुर्य साथ हँसती सित चन्द्रिका थी॥

इसी प्रकार ब्रज के रमणीक गोवर्द्धन पर्वत को अपना सहर्ष ऊँचा शीश करके सर्वोच्चता के दर्प एवम् गर्व से परिपूर्ण एक गिरिराज या पर्वतों के सम्राट की भांति अंकित किया गया है। उसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

ऊँचा शीश सहर्ष शैल करके था देखता व्योम को।
या होता अति ही स गर्व वह था सर्वोच्चता दर्प से।
या वार्ता यह था प्रसिद्ध करता सामोद संसार में।
मैं हूं सुन्दर मानदण्ड ब्रज की शोभामयी भूमि का।

वृन्दावन में नारंगी के वृक्ष को सोने के कई तमगे लगाये हुए हरे-हरे सजीले वस्त्र पहिने हुए बड़े अनूठेपन के साथ खड़ा हुआ अङ्कित किया है—

सुवर्ण ढाले-तमगे कई लगा,
हरे सजीले निज वस्त्र को सजे।
बड़े अनूठेपन के साथ था खड़ा,
महा रङ्गीला तरु नाग रङ्ग का॥

शिक्षा देने वाली के रूप में भी प्रकृति को प्रस्तुत करने की परम्परा चली आ रही है। प्रायः जन साधारण प्रकृति के तत्त्वों से उपदेश या शिक्षा ग्रहण करते आ रहे हैं। प्राकृतिक पदार्थों से दिये गये उपदेश सर्वथा प्रभावकारी होते हैं। कविवर हरिऔध ने भी लोक-शिक्षा के रूप में प्रकृति का वर्णन किया है। बेर का वृक्ष अपने कांटों से स्वयं ही विदीर्ण होकर इस बात की ओर संकेत कर रहा था कि बुरे अङ्ग वाले प्रायः अत्यन्त कष्टदायक होते हैं। इसी प्रकार आंवले का कच्चा वृक्ष इस बात का सूचक है कि कच्चे और चंचल स्वभाव वाले व्यक्तियों की स्थिति में स्थिरता नहीं होती है। वे इसलिए सफलता से दूर रह जाते हैं क्योंकि वे पक्के नहीं होते।

रहस्य से शून्य न एक पत्र है।
न विश्व में व्यर्थ बना तृणेक है।

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि कवि हरिऔध ने प्रकृति वर्णन की विभिन्न प्रणालियों को अपनाया है। वे पारंपरिक प्रकृति वर्णन साथ-साथ प्रकृति चित्रण की नवीनता को भी अपने काव्य में ले आये हैं। प्रकृति चित्रण के संदर्भ से एक आलोचक ने कहा है कि प्रियप्रवास का प्रकृति-चित्रण हिन्दी काव्य में एक घटना है, नूतन सौन्दर्य बोध की सृष्टि इसकी विशेषता है। हिन्दी काव्य के विकास में यह एक आवश्यक सोपान है। इस सन्दर्भ से अलग कर प्रियप्रवास के कृतित्व की परीक्षा करना कवि के प्रति अन्याय है यद्यपि उसमें स्थायी सौन्दर्य निधि की दृष्टि से भी मोहक शक्ति है और आज भी वह हमें प्रभावित करती है। यह निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास की प्रकृति-चित्रण पद्धति बड़ी मनोहर है। उसमें एक ओर परंपरा का गौरव है तो दूसरी ओर नवीनता का प्रतीकत्व। कवि ने खुली आंखों से प्रकृति को देखा है और उसका सही रूपांकन किया है।

प्रियप्रवास में विरह-वर्णन

प्रियप्रवास एक विरह काव्य है। उसकी सृष्टि ही इस दृष्टि से हुई है कि कृष्ण के विरह में ब्रजवासियों की स्थिति पर प्रकाश डाला जा सके। हरिऔध के मन में बहुत पहले से यह धारणा बद्धमूल होती जा रही थी कि कृष्ण के प्रवासकाल में ब्रजवासियों की कैसी स्थिति रही। इसी दृष्टि से इस काव्य की सर्जना हुई है। इसका वर्ण्य-विषय कृष्ण का प्रवास-काल है इस काव्य का नामकरण करते समय भी कवि ने इस बात का ध्यान रखा है। पहले कवि ने इसका नाम ब्रजांगना विलाप रखा था जो इसी विरह जन्य पीड़ा और विलाप का परिचायक था। बाद में प्रियप्रवास नाम भी इसी भाव का द्योतक है।

प्रियप्रवास में चित्रित सभी वातावरण वियोग से विलग नहीं है। कवि ने यों तो प्रेम, आदर, सख्य, स्नेह, वात्सल्य, भक्ति और प्रणय आदि सभी वृत्तियों का संश्लिष्टात्मक परिचय दिया है किन्तु इतने पर भी प्रधानता विप्रलंभ-शृङ्गार की ही है। प्रियप्रवास का विरह हृदय पर आघात करने वाला है।

प्रियप्रवास को देख कर सबसे बड़ी बात जो ध्यान में आती है, वह यही है कि इसमें विरह का ही प्राधान्य है। संयोग शृङ्गार का पूर्ण परिपाक इसमें नहीं हुआ है। उसका जो भी आभास इसमें प्राप्त होता है, वह सभी स्मृति के रूप में व्यक्त किया गया है। स्मृतिरूप भी जो शृङ्गार आकार पा सका है, वह नैतिक धरातल पर ही प्रतिष्ठित है तात्पर्य यह है कि संयोग-शृङ्गार के वर्णन में कवि ने विशेष मर्यादा का ध्यान रखा है। इसी कारण उसमें जो स्वाभाविकता आ सकती थी, वह नहीं आ पाई है। इस विवाद को सुलझाने के लिए यह तय किया जा सकता है कि वह वातावरण ही ऐसा था जबकि रीतिकाल के विरुद्ध अभियान चल रहा था। 'अतः ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रियप्रवास में जो शृङ्गार रहा है वह अधिक प्रगतिशील था, किन्तु स्थायी साहित्य की दृष्टि से इस काव्य को उक्त मर्यादावाद के कारण हानि भी पहुंची है।'

विप्रलंभ शृङ्गार की बात तो प्रियप्रवास में वर्णित ही है। यों सामान्य प्रक्रिया के आधार पर संयोग के अभाव में वियोग का घटित होना पूर्ण परिपक्वता को धारण कर सकता है। प्रियप्रवास का विप्रलंभ करुण रस से समन्वित होने के कारण सूर और रीतिकालीन संदर्भो से कटा हुआ है। वास्तविकता यह है कि प्रियप्रवास में विप्रलंभ शृङ्गार नैतिकता के भार से आक्रान्त होने के कारण परम्परा से नवीनता की ओर अग्रसर है।

प्रियप्रवास में भोगपरक दृष्टिकोण का अभाव है कारण प्रारम्भ से ही यह करुण प्रवृत्ति धारण करता हुआ प्रतीत होता है। राधा का प्रारम्भिक विलाप उन्माद से ही प्रारम्भ होता है। इसके उच्चस्तरीय रूप को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है—

> रुदन रत न जाने कौन क्यों है बुलाता ?
> गति पलट रही है, भाग्य की क्यों हमारे ?
> उह ! कसक समाई जा रही है कहां की ?
> सखि ! हृदय हमारा दग्ध क्यों हो रहा है ?

इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि विरह वर्णन में पीड़ा, रोदन की व्यंजना सफलता पूर्वक हो जाती है, किन्तु एक ही विषय के और संदर्भ के एक ही बार आवृत होने से पाठक को संतुष्टि का अंश प्रायः नहीं मिल पाता है इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास का विरह-वर्णन रोदनात्मक उद्गारों का विरह-वर्णन है।

प्रियप्रवास की विशेषता जो विरह से सम्बन्धित है वह नैतिकता के कारण अपना महत्व रखती है। प्रियप्रवास मे चित्रित राधा की पुकार एक कुलीना की पुकार है। वस्तुतः इसका कारण यह है कि यहां प्रेम में एक व्रत या साधना को मानना पड़ता है, जो वासना को पराभूत करके प्राप्त किया जा सकता है। इस दृष्टि से यह तो स्वीकारा ही जा सकता है कि इस काव्य में भोगलिप्सा के समक्ष नैतिकता का दृष्टिकोण विजयी होता है। कवि अपनी नैतिक दृष्टि का विकास करना चाहता था इसलिए पवनदूती प्रसंग में उसने अपनी प्रतिभा को दिखा दिया। यदि नैतिकता का सम्बल न होता तो इसमें प्रवेश पाना भी कठिन ही था।

प्रियप्रवास में रुदन और विलाप दोनों ही स्थितियां दिखाई गई हैं और वहां इनको बार-बार आवृत्त होता देखना पड़ता है और इस प्रकार पाठक परेशान हो जाता है। उसे वह आनंद नहीं मिल पाता है जो कि किसी नायक और नायिका के मिलन पर प्राप्त होता है। इस दृष्टि से 'प्रियप्रवास का विरह वर्णन रोदनात्मक उद्गारों का विरह-वर्णन है।'

प्रियप्रवास के विरह के सम्बन्ध में कहा जाता है कि कवि के पात्रों का चरित्र प्रारंभ से ही निश्चित है उसमें विकास है—परन्तु वह विकास नीचे से प्रारंभ नहीं होता है, बहुत ऊंचे से शुरू होता है—एक व्यक्ति दस हजार फुट की ऊंचाई पर खड़ा है और फिर उसे गौरीशंकर की चोटी पर पहुंचना है—यह कार्य प्रियप्रवास के कवि का है जो उसने विरह-वर्णन द्वारा सफलता पूर्वक किया। राधा प्रारंभ में सामान्य मानव भूमि पर खड़ी नहीं की गई है अपितु वह सामान्य प्रेमिका से हजारों फुट ऊंची खड़ी हुई प्रतीत होती है और

विरह-वर्णन द्वारा उसे कवि ने अन्त में गौरीशंकर चोटी पर पहुंचा दिया है अतः विकास तो है; किन्तु वह विकास नीचे से शुरू नहीं हुआ है, यह स्पष्ट है।

प्रियप्रवास में चित्रित विरह निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है—राधा का विरह, यशोदा का विरह, नन्द का विरह और ब्रजवासियों का विरह वर्णन। इस सभी संदर्भों में विरह के नये रूप देखने को मिलते हैं। प्रियप्रवास में व्याप्त विरह कितना पीड़ा-प्रद है, यह तथ्य भली भाँति निम्नांङ्कित पंक्तियों से जाना जा सकता है—

यदि विरह–विधाता ने रचा तो
स्मृति रचने में कौन सी चातुरी थी ?
यदि स्मृति विरची तो क्यो उसे है बनाया।
वयन–पटु–कु–पीड़ा बीज प्राणी उरों में।

यशोदा—कृष्ण के मथुरा चले जाने पर तो सम्पूर्ण ब्रजवासी, पशु–पक्षी व जड़–प्रकृति तक विरहाकुल हो जाते हैं। **इनमें सर्वाधिक कष्ट यशोदा को होता है**। वात्सल्यमयी माता का हृदय फूट–फूट कर रोने लगता है। उसके हृदय के सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। उसकी समस्त चेतना पर व्यथा और पीड़ा का गहरा आवरण चढ़ जाता है। कवि की यशोदा कृष्ण के विरह में करबद्ध प्रार्थना करती व देवताओं को मनाती चित्रित की गई है। कंस के द्वारा बुलाये जाने से माता यशोदा का हृदय विदीर्ण हो जाता है किन्तु कृष्ण कहीं व्यथित न हो जायें इसलिए वह तो यही करती है—

पट हटा सुत के मुख कंज की,
विकचता अब थी अवलोकती।
विवश सी तब थी फिर देखती,
सरसता, मृदुता, सुकुमारता॥

इसमें कोई संदेह नहीं कि कृष्ण पराक्रमी थे। उन्होंने अनेक दुष्टात्माओं का वध किया था, किन्तु मातृहृदय स्नेहसिक्त होकर कृष्ण की कुशलता जानना चाहता था। उन्हें स्नेह के कारण यह चिन्ता लगी रही रहती थी कि कहीं यह सरोजवदन मुरझा न जाये। अतः यशोदा का नित्य-कर्म यह था—

प्रतिदिन कितने ही देवता थीं मनाती।
बहु यजन करातीं विप्र के वृन्द से थीं॥
नित घर पर नाना ज्योतिषी थीं बुलातीं।
निज प्रियसुत आना पूछने को यशोदा॥

कवि हृदय माता के हृदय की आवाज को जैसे पहचान गया है तभी तो वह मातृ-हृदय का इतना सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक वर्णन और विश्लेषण कर पाया है। नंद जब कृष्ण को मथुरा छोड़ कर अकेले ही वापिस आ जाते हैं तो यशोदा का हृदय चीत्कार कर उठता है वह अपने को अवश पाती हैं तथा उनके हृदय से यह आवाज निकलने लगती है—

प्रिय पति ! वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है ?
दुख-जलनिधि में डूबती का सहारा कहाँ है ?

इन पंक्तियों में कवि ने 'कहां' है, की प्रश्न शैली के माध्यम से वेदना को और भी अधिक घनीभूत बना दिया है। इस शैली में एक ओर करुण स्वर है तो दूसरी ओर पीड़ा का घनत्व है। यशोदा—उद्धव संवाद के अन्तर्गत तभी विरह की ऐसी मार्मिकता देखी जा सकती है।

२. प्रियप्रवास के पात्र नंद भी विरही हैं उनका हृदय भी पुत्र-शोक में व्याकुल है। वे व्यथा—भार से पीड़ित हैं, किन्तु वे अपनी व्यथा को व्यक्त करने के लिए एक भी शब्द मुंह से नहीं बोलते हैं। वे सब सहन करके भी चुप हैं, मौन हैं। उन्हें इस बात का विशेष ध्यान है कि यदि मैं भी व्यथातुर होकर अन्य जैसा ही आचरण करने लगूं, तो उसका प्रभाव दूसरों पर और भी विघातक सिद्ध होगा। इसी कारण स्वयं पुत्र—वेदना से व्यथित होकर भी इतना साहस रखते हैं कि वे यशोदा को समझाते हैं—सान्त्वना देते हैं।

३. राधा भी विरहिणी है—एक ऐसी विरहिणी जो विरह में तड़पती और विलखती हुई भी अन्त में अपनी भावनाओं का उदात्तीकरण कर लेती है। प्रियप्रवास के विरह—वर्णन में राधा के विरह—वर्णन का विशेष महत्व है। वह कृष्ण की प्रेयसी है, उनकी सभी कुछ है। कृष्ण को मन ही मन समर्पित हो चुकी है, उन्हें मन से वरण भी कर चुकी है, किन्तु आदर्श नारी के धर्म से तिल भर डिगना उसके वश की बात नहीं है तभी तो कहती है—

> हृदय चरण में तो चढ़ा ही चुकी हूँ।
> सविधि वरण की थी कामना और मेरी॥

कृष्ण की प्रेयसी राधा, कृष्ण के मथुरा प्रवास से मलीन हो जाती है, उसका सौन्दर्य फीका पड़ जाता है और उस 'क्रीड़ा कला पुत्तली' की क्रीड़ायें और लीलायें समाप्त हो जाती हैं। विरह की घड़ियों में उसका समस्त हृदय काँपता और कसकता सा प्रतीत होता है। संसार की चेतना भी उसे शून्यवत् दिखाई देती है। आकाश में टिमटिमाते तारे भी ठिठके से, कुछ सोच में डूबे से जान पड़ते हैं। इतना ही क्यों उसे तो उषा की लालिमा भी किसी कामिनी के प्रवाहित रुधिर सी जान पड़ती है, पक्षियों का कलरव चीत्कारपूर्ण और सूर्य आग का गोला प्रतीत होता है। देखिये तो सही—

> क्षितिज निकट कैसी लालिमा दीखती है?
> बह रुधिर रहा है, कौन सी कामिनी का।
> विहग—विकल हो बोलने क्यों लगे हैं?
> सखि सकल दिशा में आग सी क्यों लगी है?
> सब समझ गई मैं काल की क्रूरता को,
> पल—पल वह मेरा है कलेजा कंपाता।
> अब नभ उगलेगा आग का एक गोला।
> सकल ब्रज—धरा को फूंक देता जलाता॥

विरहिणी राधा के पुनः दर्शन प्रियप्रवास के षष्ठ सर्ग में होते हैं। इस सर्ग में राधा रोती कलपती दिखाई देती है। वेदना का पारा-वार नहीं है और उधर उसके मन में कृष्ण—मिलन की लालसा तीव्र से तीव्रतर होती जा रही है। पवन का शीतल स्पर्श उसके शरीर के तार—तार झंकृत कर देता है और इस प्रकार उसकी वेदना बढ़ती ही जाती है। सबसे पहले तो वह पवन

को बुरा भला कहती है और तदनंतर कुछ सोच कर उसे दूत बना लेती है और उसके माध्यम से ही वह पवन-दूती बना कर कृष्ण के पास संदेशा भेजती है। प्रियप्रवास का 'पवनदूती प्रसग' जिसमें विरहिणी राधा अपने मन की व्यथा को स्पष्ट करती है, बहुत मर्मिक है, किन्तु राधा के हृदय की गहन-वेदना का आभास गहराई से नहीं हो पाता है। कारण हरिऔध ने राधा के माध्यम से पवन को जो बातें कहलवाई हैं, वे किसी विरही के कथन कम, नीतिज्ञ और विवेक सम्पन्न नारी के तर्क अधिक हैं।

राधा जैसी विरहिणी जो सर्वत्र कृष्ण को ही देखती हो, अपने प्रणय संदेश मे इतनी समझदारी की तर्कपूर्ण बातें करे तो उसके हृदय की गहराई में संदेह होने लगता है। वास्तव में पवन को बताई गई विभिन्न युक्तियों के बीच राधा का विरहिणी रूप विलीन हो जाता है और एक कुशल रमणी के समान व्यवहार करती दिखाई देती है। डॉ० सक्सेना के शब्दों में हम उसे इस क्षण न तो श्रान्ता नारी कह सकते हैं और न व्यथा वद्धिता उद्विग्न विरहिणी, क्योंकि उसकी दशा में उतनी गहराई और उतनी कसक नहीं है, जितनी मेघदूत के यक्ष अथवा जायसी की नागमती में है। इस विरहिणी में वियोग सम्बन्धी वे समस्त काम दशायें भी नहीं दिखाई देती हैं जिनका आभास 'सूर' की राधा में मिलता है। यहां केवल चिन्ता और गुण कथन का उल्लेख अवश्य स्पष्ट रूप से श्रीकृष्ण के गुणों का निवेदन करते समय मिल जाता है किन्तु अन्य अवस्थायें भली भांति उभर भी नहीं सकी हैं। इसी से यहां पाठकों का हृदय विरह के मर्मस्पर्शी प्रभाव से उद्वेलित नहीं होता तथा उसके स्थायी विरह से सहृदयों का हृदय भी उतना आन्दोलित नहीं होता जितना सूर की राधा के विरह-निवेदन से हो उठता है।

राधा का विरह उद्धव से संवाद करते समय भी प्रकट होता है। यह झांकी षोडश सर्ग में देखी जा सकती है। "यहां पर राधा अपनी अन्य पूर्व-वर्ती विरहिणी नायिकाओं से कहीं अधिक करुणा, उदारता, सेवा, लोक हित, विश्व प्रेम आदि उदात्त भावों से ओत-प्रोत दिखाई देती है। उसके प्रियतम कृष्ण का संदेश जीवन का आदर्श बन गया है। राधा न तो रोती-कलपती है और न नागमती की भांति वृक्ष-वृक्ष से और उसके पत्ते-पत्ते से विरह-कथा ही कहती दिखाई देती है। वह उर्मिला की भांति भी विरह में करवटें नहीं बदलती, अपितु कृष्ण का संदेश शिरोधार्य कर जनहित की कामना से लोक-कल्याण और परोपकार के कार्यों में संलग्न हो जाती है। यह वह भूमिका है जबकि राधा की लौकिक और प्रणय-संबंधी भावनाओं का उदात्तीकरण हो जाता है। वह प्रेमिका और विरहिणी के स्थान पर विश्व प्रेम की प्रवर्तिका और लोक-सेविका बन जाती है। यह आदर्श है—यथार्थ से आदर्श की यात्रा जिसमें प्रणय का वैयक्तिक विधान सामाजिक विधान की रूप रेखा तैयार करता है। केवल एक उदाहरण पर्याप्त होगा:—

> संलग्ना हो विविध कितने सान्त्वना-कार्य में भी।
> वे सेवा थीं सतत करतीं वृद्ध रोगी जनों की॥
> दीना—हीना-निबल विधवा आदि को मानती थीं।
> पूजी जातीं व्रज अवनि में देवि तुल्या अतः थीं॥

स्पष्ट ही राधा की स्थिति साधारण प्रेम से उदात्त प्रेम की ओर जाने की है। इसमें वासना की गंध न होकर शुद्ध प्रणय की छाप है। यही छाप उन्हें लोक सेवा में निरत कर देती है—

सच्चे स्नेही अवनिजन के देश के श्याम जू।
राधा जैसी सदय-हृदया विश्व के प्रेम डूबी॥
हे विश्वात्मा! भरत-भुवि के अङ्क में और आवें।
ऐसी व्यापी विरह घटना किन्तु होने न पावे॥

४. प्रियप्रवास के अन्तर्गत गोपियों का विरह भी महत्व का अधिकारी है। इस संदर्भ में चित्रित विरह परम्परा की पंक्ति में खड़ा दिखाई देता है। कवि हरिऔध ने अन्य कवियों की भांति गोपियों की विक्षिप्तावस्था का वर्णन किया है। "सूर आदि कवियों की भांति यहाँ भी कवि हरिऔध ने गोपियों को यमुना का नीला जल, मधुवन की हरी लतायें, कदम्ब की फूली डालियाँ, कालिन्दी का मनोहारी तट आदि देख कर और कृष्ण की पुरानी लीलाओं का स्मरण करके विलखते-बिसूरते दिखाया है।" गोपियां उद्धव से यहां तक कह देती हैं—यदि यमुना का नीला जल सूख जाय, कुन्जें जल जायें, हमारी आँखें फूट जायें हमारे हृदय विध्वंस हो जायें. सारा वृन्दावन उजड़ जावे और कदम्ब के समस्त वृक्ष उखड़ जायें तो भी हम अपने प्रियतम कृष्ण को भला कैसे भूल सकती हैं. उनको भूलना हमारे नियन्त्रण में नहीं है। इतना ही नही, इस स्थान की एक-एक वस्तु कृष्ण की याद दिलाती है और हम उसी याद में व्यथित रहती हैं और निशा-दिवस रोती रहती हैं हमारे हृदय जलते रहते हैं। हमारे नेत्रों में कृष्ण की मनमोहिनी छवि इस प्रकार बस गई है कि उसके मारे वे सदैव प्रेमोन्मत्त होकर खोजने में लगी रहती हैं। पवन के झोंकों के समान हमारी वेदना हमें झोंके देती रहती है—

फूली डाली सु-कुसुममयी नीप की देख आँखों।
आ जाती है हृदय-घन की मोहिनी मूर्ति आगे।
कालिन्दी के पुलिन पर आ देख नीलाम्बु न्यारा।
हो जाती है उदय उर में माधुरी अम्बुदों-सी॥
सूखे न्यारा सलिल सरिका दग्ध हों कुञ्ज-पुञ्जें।
फूटें आँखें. हृदय-तल भी ध्वंस हो गोपियों का।
सारा वृन्द-विपिन उजड़े नीप निर्मूल होवे।
तो भूलेंगे प्रथित गुण के पुण्य-पयोधि माधो॥

पंचदश सर्ग में एक गोपी की विक्षिप्तावस्था का बड़ा ही मार्मिक वर्णन है। इस गोपी की भ्रान्तावस्था, विक्षिप्तावस्था और गहन वेदनाजन्य पीड़ा का वर्णन कवि ने कुशलता से किया है। वह वाला प्रत्येक पुष्प पर जाती है और उससे वात करती है किन्तु जब उससे कोई भी नहीं बोलता है तो यह भ्रमर को सम्बोधित करती हुई कुछ कहना चाहती है किन्तु वह अपनी चंचल प्रवृत्ति के कारण एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर जाता है और उसकी व्यथा से दूर ही रहता है। इसी बीच उसे कृष्ण की मुरली की आवाज सुनाई पड़ती है और वह उसी ध्वनि के समक्ष भ्रांतिवश वार्तालाप करने लगती है। मुरली को जो ताने सूर की गोपियों ने दिये हैं, वैसे ही या उसी परम्परा

में वह विशिष्ट गोपी भी मुरली को उपालम्भ देती है। इस प्रकार कवि हरिऔध ने पंचदश सर्ग में एक गोपी के विरह के माध्यम से सभी की व्यथा को प्रस्तुत किया है। वस्तुतः हरिऔध की गोपियाँ, कृष्ण-प्रेम में उन्मत्त मादक प्रेम के वशीभूत ऐसी गोपियाँ है जो कृष्ण के विरह में उन्हें या उनकी स्मृति को भी इसीलिए नहीं छोड़ना चाहती हैं कि यही तो एक सहारा है जो उन्हें जीवित रखे हुए है।

५. प्रियप्रवास का विरह **उज्ज्वल शृंगार का नमूना है उसकी परिणति करुण रस में हो** जाती है। राधा एक ऐसी कुलवधू है जो अपने प्रेम-रहस्य के कथन को कलंक समझती है, इसी कारण वह संदेश ले जाने वाली पवन को परोपकार की शिक्षा देती है। यों रूप-लिप्सा का वर्णन भी किया गया है, किन्तु वहां भी पवित्रता की मुहर लगा दी गई है—

तू देखेगी जलद तन को जा वहीं तद्गता हो।
होंगे लोन नयन उनके ज्योति-उत्कीर्णकारी।
मुद्रा होगी वरवन्दन की मूर्ति सी सौम्यता की।
सीधे सादे वचन उनके सिक्त होंगे सुधा से।
नीले फूले कमल-दल सी गात की श्यामता है।
पीला न्यारा वसन कटि में पैन्हते हैं छबीला।
छूटी काली अलक मुख की कान्ति को है बढ़ाती।
सद्वस्त्रों में नवल तन की फूटती सी प्रभा है॥

इतना तो सहज ही कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास का विरह अपने में नवीनता भी लिए हुए है। उसका पवनदूती प्रसंग मौलिकता की दृष्टि से अकेला है। यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि उज्ज्वल विप्रलम्भ शृङ्गार के लिए कृतसंकल्प हरिऔध ने गोपियों के विरह को भी राधा के विरह की तरह बहुत उच्च नैतिक शृङ्ग पर बैठ कर प्रारम्भ किया हो।"

६ **प्रियप्रवास के विरह में विविध विरहावस्थायें**—शास्त्रीय दृष्टि से आचार्यों ने विरह के विश्लेषण में विविध विरह-दशाओं का विवेचन किया है। ये दशायें हैं—अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, मूर्च्छा, जड़ता, व्याधि और मरण। इन सभी को हम प्रियप्रवास में देख सकते हैं। स्पष्टीकरण के निमित्त इनका उल्लेख यहां किया जा रहा है—

१ **अभिलाषा**—वियोग के क्षणों में भी नायिका अपने प्रेमी से विलग होना नहीं चाहती है, अपितु कष्ट में भी उसकी अभिलाषाएं सजग रहती हैं। राधा भी इसी परम्परा की एक कड़ी है। उसकी भी अपनी कामना है। देखिये तो सही—

हृदय-चरण में तो मैं चढ़ा ही चुकी हूं।
सविधि वरण की थी कामना और मेरी॥

२. **चिन्ता**—कंस द्वारा भेजे गये अक्रूर श्रीकृष्ण को लेने आते हैं। उनके आगमन से तथा कृष्ण की विदाई से सभी चिन्तालीन हो जाते हैं। राधा तो उनके (कृष्ण) बिना रह भी नहीं सकती है। परिणामतः वह अपनी सखी से कहती है—

क्षितिज निकट कैसी लालिमा देखती है ।
वह रुधिर रहा है कौन सी कामिनी का ।
विहग विकल हो बोलने क्यों लगे है ।
सखि ! सकल दिशा मे आग सी क्यों लगी है ।।

उन्मत्त अवस्था में दिये गये उपालम को देखिये—

मैं होती हूँ विकल पर तू बोलता ही नहीं है ।
क्या तेरी विपुल रसना कुण्ठित हो गई है ?
तू क्यों होगा सदय दुख क्यों दूर मेरा करेगा ।
तू काँटों से जनित यदि है काठ जो सगा है ।।

राधा ने उन्माद की अवस्था में ही जूही को सम्बोधित कर कहा है—

आके जूही निकट फिर यों बालिका व्यग्र बोली ।
मेरी बातें तनिक न सुनी पातकी पाटली ने ।
पीड़ा नारी हृदय तल की नारि ही जानती है ।
जूही ! तू है विकच वदना शांति तू ही मुझे दे ।

८. **व्याधि** - प्रिय की स्मृति में मनस्ताप का बढ़ना, रोना, विसूरना व तड़फना व्याधि कहलाती है । राधा को कृष्ण के विरह में इसी व्याधि का सामना करना पड़ा है । देखिये तो सही राधा की व्याधि—

सूखा जाता कमल-मुख था, होठ नीला हुआ था ।
दोनों आंखें विपुल जल में डूबती जा रही थीं ।
शंकायें भी विकल करतीं कांपता था कलेजा ।
खिन्ना, दीना, परम-मलिना उन्मना राधिका थी ।।

९. **जड़ता** विरहावस्था का वर्णन भी प्रियप्रवास में मिलता है, किन्तु पर्याप्त नहीं । प्रेम की अधिकता के कारण या विरह के अतिरेक से चित्त में एक अजीब सी जड़ता आ जाती है । हृदय का सारा भाव-भवन शून्य सा प्रतीत होने लगता है । शरीर में जड़ता का प्रवेश हो जाता है । इसी के साथ विरह की दशाओं में मरण का उल्लेख भी किया जाता है किन्तु यह तो वियोग क्या जीवन की ही अन्तिम अवस्था है । विरह की वेदना से विरही कभी-कभी मृतप्राय हो जाता है, यही 'मृतप्रायता' मरण की दशा को बतलाती 'पवनदूती प्रसंग' के अन्तर्गत राधा ने अवश्य ही पवन से कहा है कि यदि तू चाहती है कि मेरे प्राणों की रक्षा हो तो इतना कर कि कोई प्रिय की वस्तु ही लाकर दे दे । इससे मेरे प्राणों को तोप मिलेगा । यदि यह नहीं हो सका तो—

जो ऐसा तू नहीं कर सके तो क्रिया चातुरी से ।
जाके रोने विकल बनने आदि को ही दिखा दे ।
चाहे ला दे प्रिय निकट से वस्तु कोई अनूठी ।
हा हा ! मैं हूं मृतक बनती, प्राण मेरे बचा दे ।।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रियप्रवास में विरह की विविध दशायें देखने को मिलती हैं । इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रियप्रवास में किया गया हरिऔधजी का वर्णन नवीनता और मौलिकता से समुज्ज्वित है । हरिऔध ने अपने पूर्ववर्ती कवियों द्वारा वर्णित विरह में से उन तत्वों का परिहार

सुपुष्प से सज्जित पारिजात।
मयंक है श्याम बिना कलंक का॥

इन उपर्युक्त उद्धरणों से विरह के अन्तर्गत स्पष्ट किये गये गुणों के दर्शन होते हैं। कवि हरिऔध ने प्रियप्रवास के अन्तर्गत इस पद्धति को विशेष प्रोत्साहन दिया है। प्रत्येक सर्ग में कोई न कोई गोप या गोपी खड़ी होकर कृष्ण के गुणों और कर्मों को याद करते हैं और इस प्रकार कृष्ण का गुणानुवाद चलता रहता है।

५. उद्वेग--उद्वेग की स्थिति में विरहिणी को सुखप्रद वस्तुएं भी दुख देने वाली बन जाती हैं। शीतल, सजल पदार्थों मे भी उसे ताप मिलता है। उसे सारी सृष्टि केवल कष्ट प्रदान करती है। प्रिय वस्तुओं का दर्शन जो कभी आनन्द देता था, दारुण कष्ट देने लगता है। कारण यह है कि उसके दुःखी हृदय की परछाईं प्रिय वस्तुओं का आवरण बन कर उन्हें कष्टप्रद बना देती है। यही स्थिति राधा की है। देखिए राधाजी को सकल दिशायें कैसी रोती प्रतीत हो रही हैं। यह दिक्-रुदन उनके अपने अन्तर के प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त कुछ नहीं है--

यह सकल दिशायें आज रो सी रही हैं।
यह सदन हमारा है हमें काट खाता।
मन उचट रहा है, चैन पाता नहीं है।
विजन-विपिन में है भागता-सा दिखाता।

एक और उदाहरण लीजिए। जिस वायु का शीतल स्पर्श कृष्ण की उपस्थिति में अतिशय सुख प्रदान करता था वही आज व्यथित बना रहा है।

श्री राधा को यह पवन की प्यार वाली क्रियायें।
थोड़ी-सी भी न सुखद हुई हो गई वैरिणी-सी।
भीनी-भीनी महक मन की शांति को खो रही है।
पीड़ा देती व्यथित चित्त को वायु की स्निग्धता थी।

६. **प्रलाप**--विरह-वेदना की आतिशय्य से प्रेमोन्मत्त हृदय होकर प्रेमी असम्बद्ध प्रलाप करने लगता है। यह दशा विक्षिप्त मस्तिष्क की तरह होती है। उसके कथन में कोई तुक और क्रम नहीं होता। राधा अपनी सखी से कहती है---

"रुदनरत न जाने कौन क्यों है बुलाता।
गति पलट रही है भाग्य की क्यों हमारे।
उह! कसक समाई जा रही है कहां की।
सखि! हृदय हमारा दग्ध क्यों हो रहा है।

७. **उन्माद**--विरही की ज्ञान नाड़ियां (Sensory Nerves) दुखातिरेक से शिथिल पड़ जाती है। कभी वह हंसता है, कभी रुदन करता है, कभी उठता है, कभी बैठता है और अपलक नेत्रों से आकाश की ओर देखता रहता है। उसे अपनी क्रियाओं का ज्ञान नहीं रहता कि वह क्या कर रहा है। विरह की इस दशा को उन्माद की संज्ञा दी जाती है। राधा सूर्य की लालिमा देखती है। उसे देख कर वह कह उठती है--

क्षितिज निकट कैसी लालिमा देखती है।
वह रुधिर रहा है कौन सी कामिनी का।
विहग विकल हो बोलने क्यों लगे हैं।
सखि! सकल दिशा मे आग सी क्यों लगी है॥

उन्मत्त अवस्था में दिये गये उपालम्भ को देखिये—

मैं होती हूं विकल पर तू बोलता ही नहीं है।
क्या तेरी विपुल रसना कुण्ठित हो गई है?
तू क्यों होगा सदय दुख क्यों दूर मेरा करेगा।
तू काँटों से जनित यदि है काठ जो सगा है॥

राधा ने उन्माद की अवस्था में ही जूही को सम्बोधित कर कहा है—

आके जूही निकट फिर यों बालिका व्यग्र बोली।
मेरी बातें तनिक न सुनी पातकी पाटली ने।
पीड़ा नारी हृदय तल की नारि ही जानती है।
जूही! तू है विकच वदना शांति तू ही मुझे दे।

८. **व्याधि** – प्रिय की स्मृति में मनस्ताप का बढ़ना, रोना, विसूरना व तड़पना व्याधि कहलाती है। राधा को कृष्ण के विरह में इसी व्याधि का सामना करना पड़ा है। देखिये तो सही राधा की व्याधि——

सूखा जाता कमल–मुख था, होठ नीला हुआ था।
दोनों आंखें विपुल जल में डूबती जा रही थीं।
शंकाये भी विकल करतीं कांपता था कलेजा।
खिन्ना, दीना, परम–मलिना उन्मना राधिका थी॥

९. **जड़ता** विरहावस्था का वर्णन भी प्रियप्रवास में मिलता है, किन्तु पर्याप्त नहीं। प्रेम की अधिकता के कारण या विरह के अतिरेक से चित्त में एक अजीब सी जड़ता आ जाती है। हृदय का सारा भाव–भवन शून्य सा प्रतीत होने लगता है। शरीर में जड़ता का प्रवेश हो जाता है। इसी के साथ विरह की दशाओं में मरण का उल्लेख भी किया जाता है किन्तु यह तो वियोग क्या जीवन की ही अन्तिम अवस्था है। विरह की वेदना से विरही कभी-कभी मृतप्राय हो जाता है, यही 'मृतप्रायता' मरण की दशा को बतलाती 'पवनदूती प्रसंग' के अन्तर्गत राधा ने अवश्य ही पवन से कहा है कि यदि तू चाहती है कि मेरे प्राणों की रक्षा हो तो इतना कर कि कोई प्रिय की वस्तु ही लाकर दे दे। इससे मेरे प्राणों को तोष मिलेगा। यदि यह नहीं हो सका तो——

जो ऐसा तू नहीं कर सके तो क्रिया चातुरी से।
जाके रोने विकल बनने आदि को ही दिखा दे।
चाहे ला दे प्रिय निकट से वस्तु कोई अनूठी।
हा हा! मैं हूं मृतक बनती, प्राण मेरे बचा दे॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रियप्रवास में विरह की विविध दशायें देखने को मिलती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रियप्रवास में किया गया हरिऔधजी का वर्णन नवीनता और मौलिकता से सम्पुष्पित है। हरिऔध ने अपने पूर्ववर्ती कवियों द्वारा वर्णित विरह में से उन कमी का परिहार

सुपुष्प से सज्जित पारिजात।
मयंक है श्याम बिना कलंक का ।।

इन उपर्युक्त उद्धरणों से विरह के अन्तर्गत स्पष्ट किये गये गुणों के दर्शन होते हैं। कवि हरिऔध ने प्रियप्रवास के अन्तर्गत इस पद्धति को विशेष प्रोत्साहन दिया है। प्रत्येक सर्ग में कोई न कोई गोप या गोपी खड़ी होकर कृष्ण के गुणों और कर्मों को याद करते हैं और इस प्रकार कृष्ण का गुणानुवाद चलता रहता है।

५. उद्वेग---उद्वेग की स्थिति में विरहिणी को सुखप्रद वस्तुएं भी दुख देने वाली बन जाती हैं। शीतल, सजल पदार्थों से भी उसे ताप मिलता है। उसे सारी सृष्टि केवल कष्ट प्रदान करती है। प्रिय वस्तुओं का दर्शन जो कभी आनन्द देता था, दारुण कष्ट देने लगता है। कारण यह है कि उसके दुःखी हृदय की परछाई प्रिय वस्तुओं का आवरण बन कर उन्हें कष्टप्रद बना देती है। यही स्थिति राधा की है। देखिए राधाजी को सकल दिशायें कैसी रोती प्रतीत हो रही हैं। यह दिक्-रुदन उनके अपने अन्तर के प्रतिबिम्ब के अतिरिक्त कुछ नहीं है--

यह सकल दिशायें आज रो सी रही हैं।
यह सदन हमारा है हमें काट खाता।
मन उचट रहा है, चैन पाता नहीं है।
विजन-विपिन में है भागता-सा दिखाता।

एक और उदाहरण लीजिए। जिस वायु का शीतल स्पर्श कृष्ण की उपस्थिति में अतिशय सुख प्रदान करता था वही आज व्यथित बना रहा है।

श्री राधा को यह पवन की प्यार वाली क्रियायें।
थोड़ी-सी भी न सुखद हुई हो गई वैरिणी-सी।
भीनी-भीनी महक मन की शांति को खो रही है।
पीड़ा देती व्यथित चित्त को वायु की स्निग्धता थी।

६. **प्रलाप**—विरह-वेदना की आतिशय्य से प्रेमोन्मत्त हृदय होकर प्रेमी असम्बद्ध प्रलाप करने लगता है। यह दशा विक्षिप्त मस्तिष्क की तरह होती है। उसके कथन में कोई तुक और क्रम नहीं होता। राधा अपनी सखी से कहती है--

"रुदनरत न जाने कौन क्यों है बुलाता।
गति पलट रही है भाग्य की क्यों हमारे।
उह ! कसक समाई जा रही है कहां की।
सखि ! हृदय हमारा दग्ध क्यों हो रहा है।

७. **उन्माद**—विरही की ज्ञान नाड़ियां (Sensory Nerves) दुखातिरेक से शिथिल पड़ जाती हैं। कभी वह हंसता है, कभी रुदन करता है, कभी उठता है, कभी बैठता है और अपलक नेत्रों से आकाश की ओर देखता रहता है। उसे अपनी क्रियाओं का ज्ञान नहीं रहता कि वह क्या कर रहा है। विरह की इस दशा को उन्माद की संज्ञा दी जाती है। राधा सूर्य की लालिमा देखती है। उसे देख कर वह कह उठती है--

क्षितिज निकट कैसी लालिमा देखती है।
बह रुधिर रहा है कौन सी कामिनी का।
विहग विकल हो बोलने क्यों लगे हैं।
सखि! सकल दिशा में आग सी क्यों लगी है।।

उन्मत्त अवस्था में दिये गये उपालम्भ को देखिये—

मैं होती हूँ विकल पर तू बोलता ही नहीं है।
क्या तेरी विपुल रसना कुण्ठित हो गई है?
तू क्यों होगा सदय दुख क्यों दूर मेरा करेगा।
तू काँटों से जनित यदि है काठ जो सगा है।।

राधा ने उन्माद की अवस्था में ही जूही को सम्बोधित कर कहा है—

आके जूही निकट फिर यों बालिका व्यग्र बोली।
मेरी बातें तनिक न सुनी पातकी पाटली ने।
पीड़ा नारी हृदय तल की नारि ही जानती है।
जूही! तू है विकच वदना शांति तू ही मुझे दे।

८. **व्याधि**— प्रिय की स्मृति में मनस्ताप का बढ़ना, रोना, विसूरना व तड़फना व्याधि कहलाती है। राधा को कृष्ण के विरह में इसी व्याधि का सामना करना पड़ा है। देखिये तो सही राधा की व्याधि—

सूखा जाता कमल-मुख था, होठ नीला हुआ था।
दोनों आंखें विपुल जल में डूबती जा रही थीं।
शंकायें भी विकल करतीं कांपता था कलेजा।
खिन्ना, दीना, परम-मलिना उन्मना राधिका थी।।

९. **जड़ता विरहावस्था** का वर्णन भी प्रियप्रवास में मिलता है, किन्तु पर्याप्त नहीं। प्रेम की अधिकता के कारण या विरह के अतिरेक से चित्त में एक अजीब सी जड़ता आ जाती है। हृदय का सारा भाव-भवन शून्य सा प्रतीत होने लगता है। शरीर में जड़ता का प्रवेश हो जाता है। इसी के साथ विरह की दशाओं में मरण का उल्लेख भी किया जाता है किन्तु यह तो वियोग क्या जीवन की ही अन्तिम अवस्था है। विरह की वेदना से विरही कभी-कभी मृतप्राय हो जाता है, यही 'मृतप्रायता' मरण की दशा को बतलाती 'पवनदूती प्रसंग' के अन्तर्गत राधा ने अवश्य ही पवन से कहा है कि यदि तू चाहती है कि मेरे प्राणों की रक्षा हो तो इतना कर कि कोई प्रिय की वस्तु ही लाकर दे दे। इससे मेरे प्राणों को तोष मिलेगा। यदि यह नहीं हो सका तो—

जो ऐसा तू नहीं कर सके तो क्रिया चातुरी से।
जाके रोने विकल बनने आदि को ही दिखा दे।
चाहे ला दे प्रिय निकट से वस्तु कोई अनूठी।
हा हा! मैं हूं मृतक बनती, प्राण मेरे बचा दे।।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रियप्रवास में विरह की विविध दशायें देखने को मिलती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रियप्रवास में किया गया हरिऔधजी का वर्णन नवीनता और मौलिकता से सम्पुञ्जित है। हरिऔध ने अपने पूर्ववर्ती कवियों द्वारा वर्णित विरह में से उन सभी का परिहार

कर दिया है जो अस्वाभाविक और अनर्गल था। हरिऔध ने कृष्ण और राधा के प्रेम और विरह को रीतिकालीन संदर्भ से अलग करके प्रस्तुत किया है। प्रियप्रवास के विरह में सच्चाई है, उदात्तता है; उसमें न तो ऐन्द्रिय प्रसार है और न वासना का अभिसार ही है। राधा का विरह स्वाभिमानी प्रवृत्ति प्रेम की शुद्धता का परिचायक है। वस्तुतः प्रियप्रवास में अङ्कित प्रेम एकांगी नहीं है, वह तो राधा और कृष्ण दोनों को प्रभावित किए हुए है, उसमें आत्मा का गौरव और विश्वास का सम्बल है। सामान्यतया राधा का विरह पवनदूती प्रसंग में आकर नीति निपुणता के पचड़े में पड़ गया है। गोपियों की विरह-वेदना परंपरा से विलग नहीं है और यशोदा का विरह-विलाप स्वाभाविक है और मातृ-हृदय का परिचय देता है; उसमें वात्सल्य की झांकी है तो पीड़ा का अतिरेक भी है। कुल मिला कर प्रियप्रवास का विलाप कहीं-कहीं तो मन को रमाता है किन्तु अधिकांश स्थलों पर विलाप और हाहाकार का आख्यानमात्र रह गया है; गहराई का अभाव पाठक को डुबोता कम, उबाता अधिक है।

प्रियप्रवास और साकेत की राधा व उर्मिला—प्रायः यह प्रश्न उठाया जाता है कि प्रियप्रवास की राधा और साकेत की उर्मिला का वियोग समान है। इतना तो सच है कि ये दोनों ही काव्य, विरह प्रधान काव्य हैं। इन दोनों कृतियों में विरह की विविध परिस्थितियों और दशाओं का मार्मिक चित्रण मिलता है। दोनों ही काव्य प्रवासजन्य विरह से प्रेरित हैं। विरह की आग में प्रज्जवलित होकर राधा और उर्मिला का चरित्र उज्जवल से उज्ज्वलतर होता गया है।

अन्तर—राधा और उर्मिला दोनों की तुलना करना संभव नहीं जान पड़ता है क्योंकि राधा एक ऐसी नारी है जिसे प्रिय का प्रेम-सुख प्राप्त तो हुआ है, किन्तु सविधि वरण नहीं हुआ है जबकि उर्मिला परिणीता पत्नी है, उसे प्रिय का प्यार मिला है—मन में अनेक भावनायें हैं जो आनन्द क्रीड़ाओं की याद दिलाती रहती हैं। इस दृष्टि से राधा का विरह निराशाजन्य है; उसे प्रिय कृष्ण से मिलने की तनिक भी आशा नहीं है। एक शब्द में वह शून्य में यह समझ कर तीर फेंक रही है कि क्या पता निशाने पर ही जा लगे जबकि उर्मिला का तीर निश्चित निशाने पर है। उर्मिला को प्रिय मिलन की आशा है।

उर्मिला विवाहिता है, वह संयोग का सुख प्राप्त कर चुकी है और उसके हृदय में प्रेम का विकास हो चुका है। राधा अभी क्वारी है, वह दाम्पत्य सुख की कामना को हृदय में संजोये भले ही हो किन्तु इस जीवन का उसे तनिक भी अनुभव नहीं है। पूर्वानुराग से होता हुआ ही उसका प्रेम विकास पा सका है जबकि उर्मिला का प्रेम दाम्पत्य जीवन से होता हुआ विरह के दौरान विकास पाता है या पाने की प्रक्रिया में है।

उर्मिला का विरह एक लज्जाशीला वधू का विरह है जो किसी पर प्रकट नहीं होता है जबकि राधा का विरह प्रेमिका का विरह है। इसी कारण इन दोनों की विरह स्थिति में वही अन्तर है जो प्रेमिका और परिणीता में होता है। अन्त में राधा के प्रेम का विश्व-प्रेम में बदल जाना तथा लोक-सेविका का रूप ले लेना उसके त्याग का प्रतीक है।

भक्ति-संदर्भ और प्रियप्रवास की नवधा-भक्ति

हिन्दी साहित्य में भक्ति काव्य की अपनी अलग परम्परा रही है। अनेक कवियों की रचनाएं भगवद्भक्ति का ही परिणाम हैं। भक्ति एक साधना है। इसमें एक ओर तो अपने अभीष्ट व्यक्ति के प्रति श्रद्धा का भाव रहता है और दूसरी ओर प्रेम का एकाधिपत्य भी। संभवतः इसी कारण आचार्य शुक्ल ने श्रद्धा और प्रेम के योग को भक्ति की संज्ञा दी है। श्रद्धा और प्रेम का यह समीकरण साधक को उसके आराध्य तक पहुंचाने में विशेष सहायक होता है। साधक अपने इष्ट देवता या व्यक्ति का सामीप्य लाभ करने के लिए अनेक प्रयत्न करता है। "जब पूज्य भाव की बुद्धि के साथ श्रद्धा-भाजन के सामीप्य-लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की भावना हो, तब हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चाहिए।" इस प्रकार की भक्ति प्रायः किसी न किसी उद्देश्य से की जाती है। संभवतः इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर भक्तों को चार प्रकार का बताया गया है—आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। इनमें ज्ञानी भक्त को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुनः।
आर्तो जिज्ञासुरथार्थी ज्ञानी चभरतर्षभः।
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक शक्तिर्विशिष्यते।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥

भक्ति की व्याख्या—भक्ति शब्द 'भज् सेवायाम्' धातु से क्तिन् प्रत्यय लगा कर बनाया है, जिसका अर्थ है भगवान का सेवा-प्रकार। शांडिल्य भक्ति-सूत्र में लिखा है कि ईश्वर में परम अनुरक्ति ही भक्ति है। नारद-भक्ति सूत्र में लिखा है कि भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा है और अमृत स्वरूप भी है। 'जिस परम प्रेम-रूपा और अमृतस्वरूपा भक्ति को पाकर मनुष्य तृप्त हो जाता है, सिद्ध हो जाता है और अमर हो जाता है। जिस भक्ति के प्राप्त होने पर मनुष्य न किसी वस्तु की इच्छा करता है, न शोक करता है और न किसी वस्तु में आसक्त होता है, विषय-भोगों के प्रति उसका कोई उत्साह नहीं रहता और आत्मा-नंद के साक्षात्कार से वह संसार के विषयों से निरपेक्ष होकर मस्त रहता है।"

भागवत में भी भक्ति की व्याख्या की गई है और उसकी विवेचना करके उसके ये लक्षण बताये गये हैं—मनुष्यों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है, जिसके द्वारा भगवान कृष्ण में भक्ति हो, भक्ति भी ऐसी जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो निरन्तर बनी रहे ऐसी भक्ति से हृदय आनंद स्वरूप भगवान की उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भक्ति की परिभाषा इस प्रकार की है—

भगवान में माहात्म्यपूर्वक सुदृढ़ और सतत स्नेह ही भक्ति है। मुक्ति का इससे सरल उपाय दूसरा नहीं है। भक्ति की और भी अनेक परिभाषाएं मिलती हैं, किन्तु सभी में जो विशिष्ट समान संदर्भ मिलते हैं वे ये हैं—

१ ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम का भाव।
२. अन्य सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य।

कारण हरिऔधजी ने भक्ति को नई व्याख्या दी। उन्होंने कहा कि सर्वोत्तम भक्ति वह है जो जगत के सम्पूर्ण प्राणियों, नदियों या झरनों, पर्वतों, लता-वेलियों, वृक्षों आदि को उस विश्वात्मा का रूप मान कर उनकी रक्षा, पूजा और उनका यथोचित सम्मान और सेवा आदि के रूप में की जाती है—

विश्वात्मा जो परम प्रभु है रूप तो हैं उसी के।
सारे प्राणी सरि गिरि लता वेलियां वृक्ष नाना।
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा।
भावोपेतो परम प्रभु की भक्ति सर्वोत्तमा है॥

इसी भक्ति विषयक विचार को हरिऔध ने राधा के माध्यम से विकसित किया है। राधा के जैसे उदार भावों के समान ही सभी के मन में उदारता आ जाती है। वह पर-पीड़ा और पर-दुख-कातरता को स्थान देता है। यही वह भक्ति है जो मानव को दीनों के साथ सम्पर्क करके दीनवन्धु की श्रेणी में ले आती है। इसी भक्ति के माध्यम से साधारण व्यक्ति भी सच्चा स्नेही, सच्चा सखा, सच्चा प्रेमी, सदय हृदय, प्रेमानुरक्त और विश्व प्रेमी वन कर जगत में शान्ति की धारा वहाता हुआ परम शान्ति को प्राप्त करता है। इसी कारण तो हरिऔधजी ने निष्काम भक्ति को महत्त्व दिया है; उसको नयी व्याख्या की है।

प्रियप्रवास और नवधा भक्ति:—प्रियप्रवास के कृष्ण परमार्थी हैं। वे सेवा में मुक्ति मानने वाले हैं। उनकी दृष्टि में वास्तव ईश्वर भक्ति मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों की सेवा में है। जब श्रीकृष्ण उद्धव के द्वारा अपना संदेश भेजते हैं, तव वे वतलाते हैं कि मनुष्य को आत्मार्थी नहीं आत्म-त्यागी वनना चहिए। वे राधा को संदेश भिजवाते हैं—

जो होता है निरत तप में मुक्ति की कामना से।
आत्मार्थी है, न कह सकते हैं उसे आत्म-त्यागी।
जी से प्यारा जगत-हित औ लोकसेवा जिसे है।
प्यारी! सच्चा अवनितल में आत्म-त्यागी वही है॥

राधा को भक्ति में विश्वास है, वह उसे निष्काम और सुन्दर साधन मानती है—

जगत- जीवन- प्राण- स्वरूप का।
निज पिता जननी गुरू आदि का।
स्वप्रिय का प्रिय साधन भक्ति है।
वह अकाम महा कमनीय है।

राधा को देवी-देवताओं की कल्पित पत्थर, मिट्टी आदि की मूर्तियों में विश्वास नहीं। वह ईश्वर को सर्व-व्यापी मानती है। उसे सृष्टि के कण-कण में व्याप्त देखती है। इसलिए वह संसार के सभी प्राणियों और वस्तुओं की रक्षा, सेवा और सम्मान करना ही परमात्मा की सच्ची भक्ति समझती है। राधा के निकट प्रियतम, परमात्मा और विश्व तीनों एक हैं, एक दूसरे में व्याप्त हैं, वह किसी की भी सेवा या भक्ति करे, एक ही वात है—

मैंने की हैं कथन जितनी शास्त्र-विज्ञात वातें।
वे वातें हैं प्रकट करती ब्रह्म है विश्व रूपी॥

व्यापी है विश्व-प्रियतम में विश्व में प्राण-प्यारा।
यों ही मैंने जगत-पति को श्याम में है विलोका॥

इस प्रकार हरिऔधजी ने राधा के द्वारा ईश्वर को विश्वात्मा के रूप में स्वीकार करा कर उसको जनता-जनार्दन का स्वरूप दे दिया है—लोकसेवा और ईश्वर-सेवा एक ही वस्तु है। इसी विचार विन्दु से नवधा भक्ति की नयी व्याख्या की गई है। प्रियप्रवास के षोडश सर्ग में छन्द संख्या ११८ से १२६ तक उनकी स्पष्ट व्याख्या कर दी है। राधा द्वारा परिभाषित भक्ति के ये नौ प्रकार वास्तव में कितने उपयोगी हैं कितने लोकोपकारक हैं यह इन्हें पढ़ कर और समझ कर ही जाना जा सकता है। राधा के द्वारा व्यक्त नवधा-भक्ति विषयक विचार लोकोपयोगी हैं। उनके पीछे हरिऔधजी ने स्वयं समाज सुधार सम्बन्धी मत को व्यक्त किया है। हरिऔध के नये विचार गांधी दर्शन, आर्य समाजी विचारधारा तथा वर्तमान युग की प्रगतिशीलता की छाप हैं। हरिऔधजी का यह कार्य सर्वथा स्तुत्य है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि निष्काम और निश्छल मन से लोकसेवा करना ईश्वर भक्ति ही है। हरिऔध द्वारा प्रतिपादित नवधा भक्ति की विवेचना को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

१. **श्रवण**—भक्ति के अन्तर्गत जिस श्रवण की बात कही जाती है वह पारम्परिक 'श्रवण' से भिन्न व्याख्या रखता है। श्रवण नाम की सच्ची भक्ति यह है कि हम आर्त और उत्पीड़ित, रोगी और व्यथित प्राणियों की दीन पुकार सुनें तथा लोक-उन्नायकों, सच्छास्त्रों और सत्संगियों के सुन्दर-सुन्दर शब्द श्रवण करें। देखिये—

जी से बातें सकल सुनना आर्त-उत्पीड़ितों की।
रोगी प्राणी व्यथित जन की लोक उन्नायकों की।
सच्छास्त्रों का श्रवण सुनना वाक्य सत्संगियों का।
मानी जाती श्रवण-अभिधा-भक्ति है सज्जनों की॥

भागवत के आधार पर श्रवण का अर्थ है—भगवान के नाम, रूप, गुण, और लीलादि को का सुनना, किन्तु राधा इस भक्ति-परक दृष्टिकोण के प्रति विद्रोह करती है और श्रवण की उपर्युक्त व्याख्या करती है।

२. **कीर्तनः**—कीर्तन की व्याख्या करते हुए भागवतकार का कथन है कि गा बजाकर कीर्तनादि से भगवान की आराधना ही कीर्तन भक्ति है। राधा इसकी नयी भूमिका प्रस्तुत करती है और कहती है कि कीर्तन वह है जिससे सुप्त व्यक्ति जाग्रत हो जावे, अज्ञानियों का अज्ञान दूर हो जावे, भूले और भटके मार्ग पर लग जांय। उदाहरणार्थ—

सोये जागे, तम पतित की दृष्टि में ज्योति आवे।
भूलें आवें सुपथ पर औ ज्ञान उन्मेष होवे।
ऐसा गाना कथन करना दिव्य न्यारे गुणों का।
है प्यारी भक्ति प्रभुवर की कीर्तनोपाधि वाली॥

यह व्याख्या नयी है—समय और परिस्थिति के अनुकूल है। इसमें राधा के जीवन का परिवर्तित लोकसेवी रूप झलक रहा है।

३. **वन्दनाः**—वन्दन नामक भक्ति के अन्तर्गत कवि का तात्पर्य है कि हमें विद्वानों गुरुजनों, देशप्रेमियों, ज्ञानियों, दानियों, सच्चरित्रों, गुणियों,

तेजस्वियों,आत्मोत्सर्गियों, देव-मूर्तियों आदि के सम्मुख नतमस्तक होना चाहिए। कवि ने लिखा है—

विद्वानों के स्वगुरुजन के, देश के प्रेमियों के।
ज्ञानी, दानी, सुचरित, गुणी, राज-तेजस्वियों के।
आत्मोत्सर्गी विबुध-जन के देव-सद्विग्रहों के।
आगे होना नमित प्रभु की भक्ति है वंदनाख्या।।

४. **दास्य:**—राधा एक पत्थर या निर्जीव कठोर प्रतिमा का दासत्व स्वीकार नहीं करती, वह भवहितकारी समस्त प्राणियों का उपकार करने वाली तथा पतितों का उद्धार करने वाली जो शक्ति है, उसका दासत्व स्वीकार करती है—

जो बातें हैं भव हितकारी सर्व भूतोपकारी।
जो चेष्टायें मलिन गिरती जातियां हैं उठाती।
हाथों-बांधे सतत उसके अर्थ उत्सर्ग होना।
विश्वात्मा-भक्ति भव सुखदा दासता-संज्ञ का है।।

५. **सख्य:**—राधा ने कृष्ण के विरह में अपना जीवन बिताते समय दूब से लेकर सूर्य तक सारी सृष्टि की वस्तुओं को प्रेममयी दृष्टि से देखना तथा उनके साथ मैत्री स्थापित करना सख्य नाम की भक्ति की है—

नाना प्राणी तरु गिरि लता आदि की बात ही क्या।
जो दूर्वा से द्यु-मणि तक है व्योम में या धरा में।
सद्भावों के सहित उनसे कार्य प्रत्येक लेना।
सच्चा होना सुहृद उनका भक्ति है सख्य नाम्नी।।

६. **आत्मनिवेदन:**—आत्मनिवेदन की राधा ने निम्नांकित पंक्तियों में व्याख्या की है—

विपद-सिन्धु पड़े नर-वृन्द के।
दुख-निवारण औ हित के लिए।
अर्पना अपने तन-प्राण को।
प्रथित आत्मा-निवेदन भक्ति है।।

आत्मनिवेदन से कवि का अभिप्राय है कि हमें आपत्ति में पड़े हुए मनुष्यों के दुख को दूर करने के लिए अपने तन एवं प्राणों को भी अर्पित कर देना चाहिए।

७. **स्मरण:**—स्मरण भक्ति की व्याख्या करते समय भागवत में कहा गया है—भगवान के नाम, गुण, रूप, उपकार आदि का स्मरण करना, किन्तु राधा के मतानुसार दीन, दरिद्र, अनाथ, विधवा और आश्रितों की सुधि लेना, उनकी रक्षा करना, उनकी पीड़ाओं पर ध्यान देना आदि ही स्मरण भक्ति कहलाती है—

कंगालों की विवश विधवा औ अनाथाश्रितों की।
उद्विग्नों की सुरति करना औ उन्हें त्राण देना।
सत्कार्यों का पर-हृदय की पीर का ध्यान आना।
मानी जाती स्मरण-अभिधा भक्ति है भावुकों की।।

८. **चरण सेवनः**—समाज एक शरीर है, शूद्र और नीच कहे जाने वाले लोग इसके पैर हैं। ये कितने तिरस्कृत, अपमानित और उपेक्षित हैं। इनके प्रति सहानुभूति प्रकट करना, इनकी रक्षा करना, इन्हें सम्मान और अधिकार देना ही राधा के मतानुसार सच्ची पाद-सेवन या चरण-सेवन भक्ति है—

जो प्राणि-पुञ्ज निजकर्म निपीड़नों से।
नीचे समाज-वपु के पग सा पड़ा है।
देना उसे शरण मान प्रयत्न द्वारा।
हैं भक्ति लोक-पति की पद-सेवनाख्या॥

९. **अर्चनः**—अर्चना का अर्थ है द्रव्य आदि चढ़ा कर भगवान की पूजा करना। राधा के अनुसार अर्चन भक्ति का अर्थ है—संतप्त व्यक्तियों को शांति, निर्बोध व्यक्तियों को सु-मति, पीड़ितों को विविध औषधियां प्यासों को जल और भूखों को अन्न देना चाहिए, कवि ने लिखा है—

संत्रस्तों को शरण, मधुरा-शांति संतापितों को।
निर्बोधों को सुमति, विविधा-औषधी पीड़ितों को।
पानी देना तृषित-जन को, अन्न भूखे नरों को।
सर्वात्मा भक्ति अति रुचिरा अर्चना-संज्ञ का है॥

इस प्रकार भक्ति के विविध सोपानों की व्याख्या नयी पद्धति पर की गई है। वस्तुतः राधा लोक-सेविका और लोकोपकारी के रूप में प्रस्तुत हो जाने के कारण ही नयी व्याख्या की ओर प्रस्तुत होती है। डॉ० द्वारिका प्रसाद ने लिखा है— 'हरिऔध के इस नवधा-भक्ति विवेचन में भारतीय संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों के साथ-साथ आधुनिक युग का प्रभाव भी विद्यमान है। यहाँ कवि ने कोरी मूर्ति पूजा और भक्ति के प्राचीन आडम्बरों के स्थान पर आधुनिक तार्किक युग की बुद्धि-दृष्टि सम्पन्न तर्क-सम्मत एवं न्याय सम्मत बातें बतलाई हैं और समस्त व्यक्तियों को भक्ति सम्बन्धी नवीन दृष्टि देने का स्तुत्य प्रयत्न किया है, जिससे न केवल वैयक्तिक जीवन ही सुधर सकता है, अपितु सामाजिक जीवन में भी आमूल परिवर्तन हो सकता है तथा उस विश्वात्मा की सच्ची भक्ति भी हो सकती है। कवि का यह भक्ति विवेचन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का पालन करता हुआ आधुनिक युग के लिए सर्वथा उचित एवं ग्राह्य है।"

प्रियप्रवास में भारतीय संस्कृति का स्वरूप

सामान्य परिचय:—हरिऔधजी भारतीय संस्कृति के व्याख्याता थे ठीक वैसे ही जैसे गुप्तजी। इन्होंने अपने प्रियप्रवास में भारतीय संस्कृति के विभिन्न तत्वों को उभारा है या प्रकट किया है। भारतीय संस्कृति का ऐसा समन्वयकारी रूप है कि इसमें अनेक देशी और विदेशी तत्त्व आकर मिल गये हैं। इन सबकी अपनी विशेषतायें हैं। प्रियप्रवास की सर्जना द्विवेदी युग में हुई। यह वह समय था जबकि सर्वत्र आदर्श, नैतिकता और सदाचार की वायु चल रही थी। उस समय भारत का सम्पर्क पाश्चात्य देशों और उसके साहित्य से भी हो गया था। अतः यह कहा जा सकता है कि उस समय एक ओर तो वैदिक तत्वों का विकास हो रहा था और दूसरी ओर अवैदिक तत्त्व भी

माता यशोदा, नंद और कृष्ण आदर्श माता-पिता और पुत्र हैं। यह छोटा भले ही हो, किन्तु आदर्श परिवार है। बलराम नन्द के आत्मज होकर भी प्राय: अप्रस्तुत ही रहे हैं। यशोदा माता के रूप में आदर्श हैं। यद्यपि वे कृष्ण की जन्मदात्री नहीं हैं तथापि कृष्ण को अपने पुत्र से भी अधिक चाहती हैं। कृष्ण जब मथुरा जाते हैं तब यशोदा उनके आगमन का पंथ निहारते-निहारते ज्योतिहीन हो जाती हैं। उद्धव के आने पर भी वह उनकी कुशलता पूछती हैं। यह वह स्थल है जहां यह पता लग सकता है कि यशोदा ने कृष्ण को कितने लाड़ प्यार से पाला है—

मीठे मेवे मृदुल नवनी और पक्वान्न नाना।
उत्कंठा के सहित सुत को कौन होगी खिलाती।
प्रात: पीता सुपय कजरी गाय का चाव से था।
हा! पाता है न अब उसको प्राण-प्यारा हमारा॥
मैं थी सारा दिवस मुख को देखती ही बिताती।
हो जाती थी व्यथित उसको म्लान जो देखती थी।
हा! ऐसे ही अब वदन को देखती कौन होगी।
ऊधो माता सदृश ममता अन्य की है न होती॥

लाडला पुत्र जब कंस के निमन्त्रण पर मथुरा चला गया तो स्नेहमयी मां का हृदय टूक-टूक हो गया। माता के समान पुत्र भी स्नेह और वत्सल गुणों की खान है। वे एक आदर्श पुत्र हैं। उन्हें जितना लाड़ प्यार व वात्सल्य यशोदा और नंद से मिला है। उतनी ही मात्रा में उनकी बालोचित क्रीड़ाएं गुरुजनों और सम्बन्धियों को आनंदित करती रहती हैं। अघासुर तथा कालियमर्दन और गोवर्धन धारण आदि घटनाओं के द्वारा वे अपने वातावरण में लोकप्रिय हो गये हैं। अतः उद्धव जिस ब्रजवासी के निकट जाते हैं वही उनके गुणों का स्तवन प्रारंभ करने लगता है। कृष्ण मृदु भाषी हैं। छोटे बड़े सभी के हिताकांक्षी हैं। विपत्ति में सभी की सहायता करने से उन्हें हर्ष होता है। कलह आदि से उन्हें तनिक भी प्रेम नहीं रहा है, अपितु जहां कहीं भी वे लोगों को लड़ते-झगड़ते देखते हैं वहां जाकर उनमें मेल कराते हैं। अपने से बड़ों का निरादर उन्हें कदापि सह्य नहीं है—

थे राजपुत्र उनमें मद था न लोभ ही।
वे दीन के सदन थे अधिकांश जाते।
बातें मनोरम सुना दुख थे जनाते।
औ थे विमोचन उसे करते कृपा से।
रोगी दुखी विपद आपद में पड़ों की।
सेवा सदैव करते निज हस्त से थे।
ऐसा निकेत ब्रज में न मुझे दिखाया।
कोई जहां दुखित हो पर वे न होवें॥

कृष्ण ब्रज के लाडले थे। वे केवल नंद के ही पुत्र न थे, अपितु वे त सारे ब्रज की आंखों के तारे थे। भारतीय संस्कृति में प्राय: जब पुत्र कहीं जाता है तो माता-पिता के चरण छुआ करता है। भारतीय संस्कृति के इस रूप का वर्णन प्रियप्रवास में मिलता है। कृष्ण और बलराम मथुरा जाते

समय अपनी माता के चरण छूते हैं, तब माता यशोदा आशीर्वाद देती हैं—"हे जीवनाधार जाओ और दोनों भैया शीघ्र ही लौट कर मुझे अपना चन्द्र-मुख दिखलाओ। तुम्हारे मार्ग में धीरे-धीरे सुन्दर पवन बहे, सूर्य अपनी तीव्रता न दिखावें, वृक्ष प्यारी छाया प्रदान करें, वनों में शान्ति फैले, मार्ग की समस्त बाधायें शांत हों, आपत्तियां दूर हों और यात्रा सफल हो और तुम कुशलता के साथ घर लौट आओ।"

पिता के रूप में नंद का जीवन भी अत्यन्त स्नेह, दुलार और कर्त्तव्य-परायणता से परिपूर्ण प्रस्तुत किया गया है। कंस के निमन्त्रण पर पुत्र को जाते देख कर पिता-हृदय व्यथा भार से दब जाता है। उनकी वेदना असह्य है, किन्तु वे चुप हैं। उनकी वेदना उद्धव के सम्मुख शतधा होकर फूट पड़ती है तथा वे अपने यमुना में डबने पर कृष्ण द्वारा बचाये जाने को अत्यन्त बुरा मानते हैं, क्योंकि यदि उस क्षण उनका लाडला पुत्र उन्हें न बचाता तो अब यह असह्य वेदना न सहनी पड़ती। उनकी यह वेदना और उनके मन का यह प्यार भारतीय संस्कृति में पले पिता के समान है। वस्तुतः यह अनुकरणीय है। भारतीय संस्कृति में स्नेह और परस्पर सम्बन्धों को विशेष महत्व दिया जाता है। प्रियप्रवासकार हरिऔध ने अपनी कृति में इस प्रकार के सभी रूपों का वर्णन किया है।

२. **आदर्श समाज**—पारिवारिक संस्कृति के साथ ही साथ प्रियप्रवास में सामाजिक संस्कृति का वर्णन भी मिलता है। सभी ब्रजवासी कृष्ण को अपनी आंखों का तारा मानते हैं। कृष्ण के वन से लौटते समय सभी उनके दर्शनों के लिए लालायित रहते हैं। उनकी वंशी की धुन पर सभी नर-नारी अपने अपने गृह-कार्यों को छोड़ कर कृष्ण का स्वागत करने को तत्पर हो जाते हैं। कृष्ण की विनोद-प्रियता लोक-कल्याण तथा मंजुभाषिता ने सभी के हृदय पर अधिकार कर लिया है। यही कारण है कि जब वे मथुरा जाते हैं तो सभी उनके रथ के मार्ग में आकर लेट जाते हैं—

बीसों बैठे पकड़ रथ का चक्र दोनों करों से।
रासें ऊंचे तुरग युग की थाम ली सैकड़ों ने।
सोये भू में चपल रथ के सामने आ अनेकों।
जाना होता अति अप्रिय था बालकों का सबों को॥

कालीनाग वध के समय भी जब कृष्ण यमुना में कूद पड़ते हैं तो सारी ब्रजभूमि में हाहाकार और क्रन्दन सुनाई पड़ने लगता है। सभी यमुना के किनारे आकर एकत्र हो जाते हैं और तब तक विपण्ण और खिन्न भाव से खड़े रहते हैं जब तक कि कृष्ण यमुना से निकल कर बाहर नहीं आ जाते हैं। यही स्थिति दावाग्नि, प्रलयकारिणी, भीषण वृष्टि और व्योमासुर आदि के वध पर दिखाई देती है। कृष्ण वन में सभी का साथ देते थे और सभी को खिला कर खाया करते थे। वे अपने ही समान सबको समझते थे। अतएव प्रियप्रवास में ब्रज के जिस समाज की झांकी प्रस्तुत की गई है वह आदर्श और भारतीय संस्कृति के अनुरूप है। समाज में श्रद्धा और विश्वास पर्याप्त मात्रा में मिलता है। यह वह समाज है जिसमें कृष्ण जैसे समाज के नेता, राधा जैसी समाज सेविका, गोप जैसे शुभचिन्तक और गोपियां जैसी

स्नेह की प्रतिमूर्तियां हैं। इस प्रकार प्रियप्रवास में भारतीय संस्कृति की विशेषता 'आदर्श समाज' का गौरव प्राप्त होता है।

३. ईश्वर का अवतार लेना—भारतीय संस्कृति के अनुसार ईश्वर का अवतार लेना प्रसिद्ध है। ईश्वर के अनेक रूप प्रचलित हैं। राम और कृष्ण को भारतीय संस्कृति में अवतार माना गया है। इनकी महानता, दिव्यता, गुरुता के कारणों से इनकी पूजा की जाती रही है। हरिऔध ने अपने प्रियप्रवास में महात्मा कृष्ण को आधार बनाया है। यद्यपि उन्होंने कृष्ण को लौकिक और मानवीय रूप देने का प्रयास किया है, किन्तु फिर भी कृष्ण के प्रति वे अपनी श्रद्धा-भक्ति तथा अटूट आस्था को कम नहीं कर सके हैं। इसी कारण कृष्ण दिव्य, अलौकिक और अवतारी पुरुष के रूप में विद्यमान हैं। उनकी अलौकिक छवि का वर्णन तथा जनता द्वारा उन्हें अवतारी पुरुष मान कर श्रद्धा-सुमन चढ़ाना इसी को प्रमाणित करता है। कालीनाग को नाथना तथा तदनंतर उसके सिर पर वंशी बजाते हुए बाहर आना अवतारवादी दृष्टिकोण की ही घोषणा है। अतः स्पष्ट है कि कवि ने कृष्ण को भक्तिकालीन कवियों की ही भांति अवतारी पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है।

भारतीय संस्कृति में ईश्वर की प्रार्थना को विशेष महत्व दिया गया है। भारत की धर्म-प्राण जनता सुख-दुख में भगवान की अर्चना आराधना करता देखी जा सकती है। यों तो समस्त धर्मों में ईश्वर-प्रार्थना को प्राथमिकता दी गई है, किन्तु यह भावना भारतीयों के तो रग-रग में व्याप्त है। प्रियप्रवास में भी इसे देखा जा सकता है। माता यशोदा कृष्ण के चले जाने पर इष्टदेव से प्रार्थना करती हैं। वे जगदीश्वर और जगदम्बिका की प्रार्थना करती हैं तथा अत्यन्त दीनता प्रकट करती हैं। उनकी प्रार्थना एक दीना और पुत्र-वियोग सन्तप्ता नारी की प्रार्थना है। वे विश्वास के साथ ईश्वर की प्रार्थना करती हैं। उन्हें विश्वास है कि उनकी प्रार्थना ईश्वर अवश्य सुनेगा और उनकी मनोकामना पूर्ण होगी। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रियप्रवास में ईश्वर भक्ति और ईश्वर के अवतारी रूप की योजना मिलती है जो भारतीय संस्कृति के अनुरूप है।

४. धार्मिक दृष्टिकोण—भारतीय संस्कृति में धर्म को विशेष महत्व प्राप्त है। प्रत्येक भारतवासी किसी भी क्षण अपने धर्म को नहीं भुला सकता है। धार्मिक दृष्टिकोण के ही परिणामस्वरूप वह व्रत, उत्सव और प्रसिद्ध त्यौहारों को मानता है।

(अ) व्रत पूजा—भारत की धर्म प्राण जनता व्रतादिक को विशेष महत्व देती है। आज के वैज्ञानिक युग में, जब कि बौद्धिकता और धर्मनिरपेक्षता का बोलबाला है तब भी अनेक भारतवासी व्रत आदि में सलंग्न रहते हैं। प्रियप्रवास में यशोदा ने कृष्ण जैसे पुत्र को अनेक प्रकार के व्रतों और अर्चनादिक नियमों के पालन के पश्चात ही प्राप्त किया है। इसी प्रकार राधा जब कृष्ण के चरणों में अपने प्रेम की पहली भेंट चढ़ाती है तब वह यही कामना करती है कि कृष्ण कैसे ही मेरे जीवन-साथी बन जावें—

सविधि भगवती को आज मैं पूजती हूं।
वह व्रत रखती हूं देवता हूं मनाती।

मम पति हरि होवें चाहती मैं यही हूं।
पर विफल हमारे पुण्य भी हो चुके हैं।

(ब) **उत्सवों और पर्वों** का विधान भी भारतीय संस्कृति की विशेषता है। यों तो सामान्यतः यह माना और कहा जाता है कि उत्सव प्रियाः मानवाः किन्तु भारतवासियों में उत्सव आदि के प्रति विशिष्ट और अतिरिक्त आकर्षण पाया जाता है। भारतीय समाज में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक अनेक उत्सवों का विधान किया जाता है, प्रियप्रवास में कृष्ण जन्म के अवसर पर सम्पूर्ण ब्रज में आनन्दोत्सव मनाया जाता है। देखिये, कितना आनन्दप्रद दृश्य है—

विपुल सुन्दर वन्दनवार थे।
सकल द्वार बने अभिराम थे॥
बिहंसते ब्रज सद्‌म समूह के।
वदन में दसनावलि भी लसी॥
नवरसाल सुपल्लव के बने।
अजिर में वरतोरण थे बंधे॥
विपुल जीह विभूषित था हुआ।
वह मनो रस लेहन के लिए॥
गृह गली मग मन्दिर चौरहों।
तरुवरों पर थी लसती ध्वजा॥
समुद सूचित थी करती मनो।
वह कथा ब्रज की सुरलोक को॥

तीन प्रकार के उत्सव—ऋतु के परिवर्तन के समय के, स्थानीय और वैयक्तिक जीवन से सम्बन्धित को प्रमुखतः स्वीकार किया जा सकता है। प्रियप्रवास में इन सभी का उल्लेख नहीं मिलता है। जन्मोत्सव का उल्लेख अवश्य आया है। इस जन्मोत्सव वर्णन में अनेक तत्वों का वर्णन करते हुए कवि ने भारतीय संस्कृति के तत्वों को स्थान दिया है। ऋतु वर्णनों में वसन्त को भी पर्व माना गया है। वसन्त का मनोहर वर्णन भी भारतीय-भावना के अनुरूप ही किया गया है।

(स) *तीर्थस्थानों का महत्व*—भारतीय संस्कृति में 'जननी-जन्मभूमि के प्रति अगाध प्रेम और अखण्ड श्रद्धा स्थापित करने के लिए तथा देश-प्रेम की उत्कट भावना को जाग्रत करने के निमित्त भारत के तीर्थ स्थानों का पर्याप्त महत्व है। नदी, नद, वन पर्वत, नगर, सिंधु आदि स्थान भी तीर्थ माने गये हैं। हरिऔधजी ने भी अपने प्रियप्रवास में ब्रज प्रदेश की अनुपम झांकी दिखाई है। भारतीय संस्कृति के आधार पर कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा तथा क्रीड़ाभूमि वृन्दावन और गोवर्द्धन तथा प्रिय स्थान वंशीवट, यमुनातट, आदि का रमणीक वर्णन किया गया है। कवि ने यमुना नदी का अत्यन्त भव्य और मनमोहक चित्र प्रस्तुत किया है। गोवर्द्धन पर्वत की उच्चता और भव्यता का वर्णन भी बड़ी विशदता से प्रियप्रवास में अंकित है। वृन्दावन की सुन्दर वनस्थली के वर्णन में तो कवि पर्याप्त रम गया है। कवि ने ब्रजभूमि के तीर्थ स्थानों की अत्यन्त रमणीक झांकी प्रस्तुत करते

हुए वहाँ के मथुरा, वृन्दावन, गोवर्द्धन, मधुवन, वंशीवट, यमुना नदी, गोकुल आदि के प्रति अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति प्रकट की है और एक गोपी से तो यहां तक कहलवा दिया है—

जहां न वृन्दावन है विराजता। जहां नहीं है व्रज-भू मनोहरा।
न स्वर्ग है वांछित है जहां नहीं। प्रवाहिता भानुसुता प्रफुल्लिता।
करील है कामद कल्पवृक्ष से। गवादि हैं काम-दुघा गरीयसी।
सुरेश क्या है जब नेत्र में रमा। महामना, श्यामघना लुभावना।
जहां न वंशीवट है, न कुञ्ज है। जहां न केकी पिक है न सारिका।
न चाह बैकुण्ठ रखें, न है जहां। बड़ी भली, गोप लली, समाअली॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि हरिऔध ने व्रज के सभी रमणीय तीर्थों का महत्वपूर्ण वर्णन किया है तथा वर्णन के द्वारा यह बता दिया है कि भारतवासी इन तीर्थ स्थानों को कितना स्नेह करते हैं।

५. भाग्यवादिता—भारतवासियों के मन में यह दृष्टिकोण गहनता से व्याप्त है कि जो भी भाग्य में लिखा होता है वही घटित होता है। इस भाग्यवादी दृष्टि के कारण ही व्यक्ति उद्यम की ओर अग्रसर नहीं होता है। प्रियप्रवास की यशोदा, राधा और गोपियाँ सभी भाग्य के सहारे जीवित हैं। वे जो भी कष्ट या सुखानुभव करती हैं वह सब भाग्य का ही परिणाम है। है। कर्म की अपेक्षा भाग्य ही समर्थ है। भाग्य की महत्ता इन पंक्तियों में देखी जा सकती है—

१. वह कब टलता है भाग्य में जो लिखा है।
२. विडम्बना है विधि की वलीयसी।
अखण्डनीया-लिपि है ललाट की॥
भला नहीं तो तुहिनाभिभूत हो।
विनष्ट होता रविबन्धु-कंज क्यों॥
३. हां भावी है परम-प्रबला दैव इच्छा बली है।
होते-होते जगत कितने काम ही हैं न होते॥
४. ऊधो बोने समय गति है गूढ़ अज्ञात वेड़ी।
क्या होवेगा कब यह नहीं जीव है जान पाता॥

भारतीय संस्कृति के पोषकों की भाग्यवादिता को कवि हरिऔध ने प्रियप्रवास में चित्रित किया है।

६ शकुन अपशकुन—भारतीय संस्कृति में शकुन तथा अपशकुन का भी अत्यधिक महत्व है। यह विचारधारा भारतीय जीवन में बहुत गहरे तक व्याप्त है। हमारे दैनिक जीवन में भी इसको देखा समझा जा सकता है। बिल्ली द्वारा मार्ग काट देना, घर से बाहर जाते समय आग दिखाई पड़ना, छींक देना आदि। इसी सन्दर्भ में पुरुषों और स्त्रियों के दक्षिण और वामांगों का फड़कना, छत पर कौवे का बोलना तथा शुभ कार्य के समय जल भरे घड़ों का सामने पड़ना सुन्दर शकुन माने जाते हैं।

प्रियप्रवास का कवि भी शकुन-अपशकुन के प्रति जागरूक है। उसके काव्य में कौवे का मुण्डेर पर आ बैठना शकुन वर्णित है। एक गोपी कहती है कि यदि कृष्ण आ रहे हों तो तू बैठ जा मैं तुझे दूध और भात खिलाऊंगी—

आके कागा यदि सदन में बैठता था कहीं भी।
तो तन्वंगी उस सदन की यों उसे थी सुनाती ।।
जो आते हों कुंवर उड़के काक तो बैठ जा तू।
मैं खाने को प्रतिदिन तुझे दूध औ भात दूंगी ।।

७. सर्व कल्याणवादी विचार और स्वदेश प्रेम—भारतीय संस्कृति में यह धारणा बड़ी प्रबल है कि सभी के प्रति हित कामना रहनी चाहिए। मनुष्य को संकीर्ण स्वार्थों को छोड़ कर विशाल दृष्टिकोण का पोषक होना चाहिए। इसी सन्दर्भ में प्राय: कहा जाता रहा है। कि सभी सुखी रहें, सभी रोग रहित हों सभी कल्याण के दर्शन करें और कभी भी किसी को किसी तरह का दुख न हो—

सर्वेऽपि सुखिन: सन्तु सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखभाग् भवेत् ।।

भाव यह है कि भारतीय संस्कृति में छोटी सी चींटी से लेकर सभी प्राणियों के सुख और हित की कामना से नित्य प्रति किये जाने वाले पांच महायज्ञों का विधान था। प्रियप्रवास के कृष्ण एक ऐसे पात्र हैं कि उनके मन में सर्वभूत हित की कामना है। कृष्ण के ये वाक्य देखिए जिनमें सर्व कल्याणवादी विचारधारा का विकास हुआ है—

"प्रवाह होते तक शेष श्वास के।
स-रक्त होते तक एक भी शिरा ।।
स-शक्त, होते तक एक लोम के।
किया करूंगा हित सर्वभूत का ।।

हरिऔध की दृष्टि में तो वही व्यक्ति श्रेष्ठ है जो आत्म-त्यागी है और जिसे जगत-हित या लोक-सेवा ही विशेष प्रिय है। कवि के ये शब्द देखिये—

जी से प्यारा जगत हित औ लोक-सेवा जिसे है।
प्यारी सच्चा अवनितल में आत्म-त्यागी वही है ।।

यही कारण है कि प्रियप्रवास की राधा अपने प्राण-प्रिय कृष्ण को विश्व-हित अथवा सर्व कल्याणवादी विचार में लीन देख कर स्वयं भी उनका ही अनुपालन करती है। यही कारण है कि राधा ने यह कभी कामना नहीं की कि कृष्ण आवें और मेरे निकट रहें। उसने तो इसके विपरीत यह कहा—

प्यारे जीवें जग हित करें गेह चाहे न आवें।

राधा का सम्पूर्ण जीवन सभी की हित चिन्तना में व्यतीत हो जाता है। कवि ने स्वयं लिखा है—

आटा चींटी विहग गण थे वारि औ अन्न पाते।
देखी जाती सदय उनकी दृष्टि कीटादि में भी।
पत्तों को भी न तरुवर के वृथा तोड़ती थीं।
जी से वे थीं निरत रहतीं भूत-सम्वर्द्धना में ।।

अत: स्पष्ट है कि हरिऔध ने अपने प्रियप्रवास के माध्यम से भारतीय संस्कृति के मुख्य तत्व मानव-कल्याण को विशेष महत्व प्रदान किया है।

८. **लोक सेवा**—भारतीय की अन्यतम विशेषताओं में लोक-सेवा का भी महत्व है। इसी सेवा भावना के परिणामस्वरूप संसार में चार वर्णों की योजना की गई। इनमें से सभी वर्ण वाले सेवा-भावना से अनुप्राणित होकर जीवन बिताया करते थे। लोक सेवा का अर्थ था—विपत्ति में सभी की सहायता करना, रोगियों की देखभाल करना तथा विविध सेवा कार्यों में रत रहना आदि। प्रियप्रवासकार ने लोक सेवा का महत्वपूर्ण निदर्शन इस काव्य में किया है। इस कृति के नायक कृष्ण बचपन से ही प्राणिमात्र की सेवा करने में लीन रहे आते थे और हमेशा रोगी, विपदग्रस्त और असहाय प्राणियों की सेवा करते हुए वे सदैव व्रज में आनन्द और सुख का संचार किया करते थे। उनके सम्बन्ध में कहा गया है—

> रोगी दुखी विपद-आपद में पड़ों की।
> सेवा सदैव करते निज हस्त से थे॥
> ऐसा निकेत व्रज में न मुझे दिखाय।
> कोई जहां दुखित हो पर वे न होवें॥

लोक सेवा उनके साथ इतनी बलवती होती है कि वे इसी कारण मथुरा चले जाते हैं। यह सेवा भावना राधा को भी लोकसेविका बना देती है। प्रियप्रवास की चरित्र नायिका राधा भी इस सेवा-भाव को अपना मूल-मन्त्र बना लेती है। वह कृष्ण के आदर्शों का अनुपालन करती है। हरिऔधजी की ये पंक्तियाँ इसी भाव को व्यक्त करती हैं—

> सलग्ना हो विविध कितने सान्त्वना कार्य में भी।
> वे सेवा थीं सतत करतीं वृद्ध रोगी जनों की।
> दीनों, हीनों, निबल विधवा आदि को मानती थीं।
> पूजी जाती व्रज-अवनि में देवियों सी अत: थीं॥

इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रियप्रवास में लोक संस्कृति का तथा लोक सेवा का वर्णन विशदता से किया गया है। इससे यही स्पष्ट होता है कि प्रियप्रवास में भारतीय संस्कृति का चित्रण हुआ है।

९. **कर्मण्यता**—भारतीय संस्कृति के आधार पर कर्म जीवन का आवश्यक उपादान है। भारतीय संस्कृति के आधार पर सौ वर्ष जीकर भी काम करने की राय दी गई है। मनुष्य को सदैव कर्म में लीन रहना चाहिए और उसके फल की कामना नहीं करनी चाहिए। कर्म तीन प्रकार के होते हैं—सात्विक, राजसी और तामसी। इनमें से सात्विक कर्म श्रेष्ठ होते हैं। मनुष्य के लिए वे ही करणीय हैं। हरिऔध ने भी सात्विक कार्यों की प्रशंसा की है और बताया है कि संसार में स्वार्थ से परे होकर सभी प्राणियों के कल्याण के लिए जो सात्विक कार्य किये जाते हैं वे सभी श्रेयस्कर होते हैं। इसके साथ ही तामसी और राजसी वृत्ति वाले व्यक्तियों की आलोचना भी हरिऔध ने की है। तामसी वृत्ति मनुष्य को छिद्रान्वेषण और पर-पीड़ा की ओर ले जाती है, जबकि राजसी वृत्ति एक प्रकार से भोग-वृत्ति ही है। अत: सात्विकी वृत्ति को ही अपनाना चाहिए। ये सात्विकी वृत्ति वाले भोग से उपरत रहते हैं। प्रियप्रवास के कवि ने इसी आधार पर कर्मठता का पाठ पढ़ाया है और यह प्रतिपादित किया है कि मनुष्य को

सात्विक कार्यों की ओर ध्यान देना चाहिए। अतः स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति का सात्विक कर्म सिद्धान्त प्रियप्रवास में चित्रित किया गया है।

१०. सत्य अहिंसा और अस्तेय—सत्य, अहिंसा और अस्तेय भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषतायें हैं। सत्य जीवन का आधार है तो अहिंसा उसकी प्रमुख शाखा है। सत्य में ही आत्मा का प्रकाश है। अतः सत्य को देखना आत्मा को देखना है। हरिऔध ने प्रियप्रवास में सत्य को विशेष महत्व दिया है। कृष्ण सत्य के पुजारी के रूप में अङ्कित किये गये हैं। कृष्ण इसी कारण समाज के लिये विघातक व्यक्तियों को नष्ट कर डालते हैं। जो सत्य के मार्ग पर चलते हैं वे उन्हें विशेष प्रिय होते हैं। कुप्रवृत्तियों वाले व्यक्ति को पहले तो कृष्ण समझाया करते थे, यदि तब भी वह मानता तो—

सुधार चेष्टा बहु व्यर्थ हो गई, न त्याग तू ने कु-प्रवृत्ति को किया।
अतः यही है अब युक्ति उत्तमा, तुझे वधूं मैं भव श्रेय दृष्टि से॥

कृष्ण सत्य के प्रतीक के रूप में चित्रित किये गये हैं। वे जहां कहीं किसी व्यक्ति को सत्य का पालन करते देखते या सत्य के मार्ग पर धावित देखते तो बड़े प्रसन्न होते थे। इसके विपरीत यदि कोई असत्य की ओर अग्रसर होता तो वे उसे समझाया करते थे—

होते प्रसन्न यदि वे यह देखते थे
कोई सुकृत्य करता अति प्रीति से है।
यों हीं विशिष्ट-पद-गौरव की उपेक्षा
देती नितान्त उनके चित को व्यथा थी।
माता-पिता गुरुजनों वय में बड़ों को
होते निरादृत कहीं यदि देखते थे।
तो खिन्न हो दुखित हो लघु को सुतों को
शिक्षा समेत बहुधा बहु शान्ति देते।

अहिंसा परमोधर्म—की कहावत सर्वत्र प्रसिद्ध है। हिंसा अधर्म है किन्तु यदि कोई समझाने पर भी न माने और निरन्तर कुकर्म करता जाये तो उसका वध भी अहिंसा का ही द्योतक होता है। हिंसा निन्दनीय है किन्तु कभी-कभी वही कर्त्तव्य बन जाती है। कृष्ण ने प्रियप्रवास में कहा है—"यह मैं जानता हूं कि हिंसा निंद्य कर्म है किन्तु कभी-कभी वह भी पुण्य का कार्य हो जाता है। वैसे तो मनुष्य ही क्या, एक चींटी का वध करना भी पाप है, परन्तु पिशाच कर्म करने वाले पापी का वध करने से कोई पाप नहीं है। जो मनुष्य समाज का उत्पीड़क है, धर्म का द्रोही है, अपनी जाति का विनाशक है, ऐसे व्यक्ति को कभी भी क्षमा नहीं करना चाहिए।" हरिऔधजी के ये विचार प्रशंसनीय हैं, किन्तु पापियों, दुष्टों और समाज उत्पीड़कों की हिंसा करना भी अहिंसा ही है। यही विचार भारतीय संस्कृति में प्रतिपादित है।

मानव जीवन की उन्नति के लिए 'अस्तेय' भी परमावश्यक है। प्रियप्रवास में इस तत्व को भी स्पर्श किया गया है। ब्रज में फैले हुए प्रवंचना, छल कपट और धूर्तता के वातावरण से कृष्ण क्षुब्ध थे। उन्होंने देखा कि कि कहीं काली नाग के विष की पीड़ा है तो कहीं अघासुर आदि उपद्रवों से

तो कहीं केशी के कार्यकलापों से। कृष्ण ने इस दूषित वातावरण को ठीक किया और आत्मोत्सर्ग के द्वारा 'अस्तेय' का पूर्ण पालन किया। कृष्ण के आचरण, शुभ कार्य और व्यवहार से यह स्पष्ट है।

११. जीवनोन्नति का महान साधन ब्रह्मचर्य को माना गया है। ब्रह्मचर्य से जीवन की अभिवृद्धि होती है। ब्रह्मचर्य संयम है। हरिऔध ने प्रियप्रवास में ब्रह्मचर्य—संयम की महत्ता पर प्रकाश डाला है। राधा और कृष्ण दोनों ही ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। उनका ब्रह्मचर्य इस बात से भी प्रमाणित होता है कि दोनों ही अन्त में लोक-सेवा और लोक-कल्याण की बात करते हैं—वैयक्तिक सुख-सुविधाओं की तो वे करते ही नही हैं।

१२. भारतीय संस्कृति में अपरिग्रह का महत्व है। भारतीय संस्कृति और उसमें पले व्यक्ति भोग की अपेक्षा योग या त्याग को प्रधानता देते हैं। यहां पर जो नियम है उसके आधार पर भोगो और उसे भूल जाओ का सिद्धान्त है। भोग भारतीय संस्कृति के आधार पर बुरा नहीं है, किन्तु भोग में लिप्त रहने की कामना बुरी है। प्रियप्रवास में अपरिग्रह को स्थान दिया गया है। कहा गया है कि जो व्यक्ति मुक्ति की कामना से तप में संलग्न होता है वह आत्म-त्यागी नहीं हो सकता है आत्म-त्यागी तो वह है जो जगत-हित और लोक-सेवा को प्रेम करता है, कृष्ण अपरिग्रही हैं—वे त्यागी हैं। अपने जीवन की सभी सुख सुविधाओं को छोड़ देते हैं और विश्व-प्रेम में लिप्त हो जाते हैं। त्याग की प्रतिमूर्ति राधा भी इसी शृङ्खला की एक कड़ी है। कारण, वह भी तो अपने जीवन की सभी सुख सुविधाओं को छोड़ कर कृष्ण की ही भांति विविध व्यथाओं में डूबे हुए व्रज को सुखी बनाने के लिए रात दिन गृह, पथ, बाग और कुञ्जों आदि में घूमती फिरती है। स्पष्ट है कि कवि ने त्याग के इस आदर्श दृष्टिकोण को भारतीय संस्कृति के ही अनुसार प्रस्तुत किया है।

(१३) आध्यात्मिक विचारधारा भी भारतीय संस्कृति का सारतत्व है। ऋग्वेद से लेकर उपनिषदकाल तक हमारे यहां आध्यात्मिक चिन्तन का स्वर्ण युग रहा है। भौतिक जीवन की अपेक्षा आध्यात्मिक जीवन को विशेष महत्व दिया गया है। भौतिकवादी सदैव से प्रकृति पर विजय के अभिलाषी रहे हैं जबकि आध्यात्मिकवादी प्रकृति की अपेक्षा आत्मा पर विजय पाने के अभिलाषी रहे हैं। आज जो हमारे जीवन में संताप, क्लेश और ईर्ष्या आदि भावनायें हैं उन सबका कारण आध्यात्मिकता का ह्रास है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतीय संस्कृति में समस्त मनोविकारों को दूर करके आध्यात्मिक उन्नति की बात कही गई है।

हरिऔधजी ने प्रियप्रवास में आध्यात्मिकता को स्थान दिया है। 'हरिऔधजी के उद्धव केवल गोपियों के सम्मुख अपनी ज्ञान-गरिमा का परिचय देने एवं साकार ब्रह्म का विरोध करने के लिये ही अपना उपदेश नहीं देते हैं, अपितु उनका उपदेश यही है कि हम अपनी असंयत वृत्तियों का योग, तपश्चर्या एवं संयम के द्वारा नियन्त्रण करें और अधिक से अधिक इस लौकिक जीवन को लोकमंगल, परोपकार और सदाचार के माध्यम से सुखी और सम्पन्न बनायें। वस्तुतः हरिऔधजी निवृत्तिमूलक आध्यात्मिकता के

पक्ष धर नहीं हैं अपितु वे प्रवृत्तिमूलक मार्ग को ही मोक्ष का साधन मान कर चले हैं। यही उनके आध्यात्मिक चिन्तन की युगानुरूपता है।"

हरिऔध का यह आध्यात्मवाद कृष्ण और राधा के चरित्रों में दिखाई देता है। कृष्ण की कामना तो यही है कि धीरे-धीरे संयम से मन को संयत बनाया जाय—

धीरे-धीरे भ्रमित मन को योग द्वारा सम्हालो।
स्वार्थों को भी जगत हित के अर्थ सानंद त्यागो।
भूलो मोह न तुम लख के वासना मूर्तियों को।
यों होवेगा दुख शमन औ शांति न्यारी मिलेगी॥

आध्यात्मिकता से जुड़ी हुई वस्तु है—नवधा-भक्ति जिसकी नूतन व्याख्या हरिऔध ने की है। इसका विवेचन अलग से किया गया। वहीं पर देखिये।

१४. **नारी का सम्मान**—भारतीय संस्कृति में नारी को विशेष सम्मान प्राप्त हुआ है। 'यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमयन्ते तत्र देवता' की उक्ति भारतीय संस्कृति की इसी विशेषता को व्यक्त करती है। नारी मनुष्य के साथ जीवन भर रहती है, किन्तु कई रूपों में—माता, भगिनी, पत्नी और प्रेयसी। नारी सेवा की साकार प्रतिमा है। पत्नी रूप में वह मनुष्य जीवन को सम्पूर्णता प्रदान करने वाली है तो माता के रूप में बच्चे को अमित स्नेह से सिक्त करने वाली है। महाभारत में नारी की विशेष प्रशंसा की गई है। वह आदर्श माता और आदर्श पत्नी के रूप में मानव जीवन की नियामिका है।

हरिऔध के प्रियप्रवास में नारी के गौरवपूर्ण चित्र मिलते हैं। यहां पर यशोदा आदर्श माता के रूप में हैं तो राधा आदर्श पत्नी के रूप में और और गोपियाँ सच्ची सहचरी के रूप में अङ्कित हैं। राधा और यशोदा के रूप में हरिऔध ने नारी के सम्मान को सुरक्षित रखा है। यशोदा के लिए कहा गया है-

"ऊधो माता-सदृश ममता अन्य की है न होती।'

राधा को नारी के रूप में बहुत सम्मान मिला है। वे सम्पूर्ण व्रज की आराध्य देवी हैं। हरिऔधजी के प्रियप्रवास के सप्तदश सर्ग में नारी के गौरव की रक्षा की गई है। इस सर्ग में नारी को समाज-सेविका लोक-हितैषिणी, विश्व-प्रेमिका और आर्तजनों की उद्धारिका के रूप में प्रस्तुत किया गया है। "यहाँ पर चित्रित नारी की सेवा भावना, उसकी उदारता, उसका पावन प्रेम उसके भूत-सम्वर्द्धन के प्रयत्न और सर्वत्र शांति स्थापना सम्बन्धी कार्य भारतीय संस्कृति में अङ्कित नारी के उज्ज्वल एवम् उत्कृष्ट रूप के परिचायक हैं और हरिऔधजी ने उन्हें इस तरह काव्य में सगुम्फित करके अङ्कित किया है जिससे नारी के महत्व के साथ-साथ भारतीय संस्कृति का उत्कृष्ट रूप भी पाठकों के सम्मुख स्पष्ट हो गया है।"

१५. **प्रकृति प्रेम**—भारतीय संस्कृति में प्रकृति की वर्णना और उपासना को जो महत्व प्राप्त है, वह प्रियप्रवास के प्रत्येक सर्ग में मिल जाता है। षट्ऋतु वर्णन, संध्या, रजनी, प्रभात और मध्याह्न के चित्रों के साथ-

साथ उषा, चांदनी दिवस-श्री, नदी, सरोवर, पर्वत और तरु लताओं आदि के वर्णन प्राप्त होते हैं। प्रियप्रवास में इन वर्णनों की कमी नहीं है। प्रकृति वर्णन शीर्षक के अन्तर्गत इसके उदाहरण दे दिये।

१६. **समन्वयशीलता**—भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें समन्वय की भावना पर विशेष बल दिया गया है। यही कारण है कि यह संस्कृति समन्वय प्रधान मानी गयी है। हरिऔधजी ने प्रियप्रवास में समन्वय-भावना पर विशेष बल दिया है। काव्य के नायक कृष्ण ही भोग और त्याग, प्रवृत्ति और निवृत्ति के सम्मिलित पुञ्ज हैं तो राधा भी समन्वय भावना की प्रत्यक्ष प्रतिमा हैं। उदाहरणार्थ एक ओर तो राधा कृष्ण के प्रेम और विरह में कष्ट का जीवन बिताती है–दिन रात उनकी याद में घुलती रहती है और दूसरी ओर लोक सेवा में प्रवृत्त है। यही समन्वय है। कृष्ण गोकुल में तो अनेक सुखों और क्रीड़ाओं में रत रहने के कारण भोगवादी दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। और मथुरा जाने के पश्चात् वे इन सभी भोगों से उपरत होकर निवृत्ति मार्ग का अनुसरण करते हैं। यही उनके चरित्र की समन्वयशीलता है। स्पष्ट ही प्रियप्रवास में कृष्ण और राधा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्मिलित केन्द्र हैं। उद्धव के चरित्र में भी ज्ञान और भक्ति का मिलन है। वे ज्ञानी बन कर गोकुल आते हैं, और प्रेमी बन कर मथुरा जाते हैं। कवि ने जगत और ब्रह्म का भी समन्वय किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि हरिऔध ने समन्वय भावना पर विशेष बल दिया है।

निष्कर्ष—सम्पूर्ण विवेचन के उपरांत हम कह सकते हैं कि कवि हरिऔध ने भारतीय संस्कृति का सजीव चित्रण किया है। अपने समय के जागरूक और उत्तरदायी कवि के रूप में इन्होंने एक ओर प्राचीन परम्पराओं का नवीनीकरण किया है तो दूसरी ओर उनकी यथोचित रक्षा भी की है। विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने भारतीय संस्कृति की अनेक विशेषताओं को प्रियप्रवास में स्थान दिया है संभवतः कवि यह बताना चाहता है कि कोई भी देश अपनी संस्कृति के अभाव में उन्नति नहीं कर सकता है।

प्रियप्रवास की प्रबन्ध योजना

'प्रियप्रवास' प्रवंध काव्य है। श्रव्य काव्य के दो भेद किये गये हैं—प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्ध में पूर्वापर का तारतम्य रहता है। मुक्तक में इस तारतम्य का अभाव रहता है। प्रबन्ध काव्य में छन्द एक दूसरे से कथानक की शृङ्खला में बंधे रहते हैं। उनका क्रम उलटा-पलट नहीं जा सकता है, वे एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। मुक्तक छंद पारस्परिक बंधन से मुक्त होते हैं, वे स्वतः पूर्ण होते हैं। वे क्रम से रखे जाते हैं, किन्तु एक छंद दूसरे से अपेक्षा नहीं करता·······प्रबन्ध काव्य में सम्पूर्ण काव्य के सामूहिक प्रभाव पर अधिक ध्यान रखा जाता है।[1]

प्रबन्ध काव्य क्या है और उसकी प्रमुख विशेषताएं क्या हैं, इसके सम्बन्ध में पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से विवेचन किया है। कुछ

१. काव्य के रूप : गुलाबराय, पृ० ८४

मान्यताओं को सभी ने स्वीकार किया है। उन सभी का विवेचन करना तो यहां असम्भव नहीं तो अनावश्यक अवश्य है किन्तु प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख अवश्य किया जा सकता है। डा० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने प्रवन्ध काव्य की सर्वसम्मत और महत्वपूर्ण विशेषताओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

१. प्रबन्ध काव्य में एक सानुबन्ध कथा होनी चाहिए, जिसमें प्रकथन की भी प्रधानता हो तथा जहां आदि, मध्य और अवसान स्पष्ट हो।

२. उसमें प्रासंगिक कथाओं की सुसम्बद्ध योजना होनी चाहिए।

३. उसमें आये हुए वस्तु-वर्णनों में रसात्मकता की प्रधानता होनी चाहिए।

४. प्रवन्ध काव्य के अन्तर्गत प्रासगिक कथाओं और वस्तु वर्णनों का मुख्य कथा के साथ पूर्णतया सम्वन्ध निर्वाह होना चाहिए।

५. कार्य की दृष्टि से उसके समस्त कथानक में एकरूपता होनी चाहिए।[1]

इन सभी तत्वों के आधार पर प्रियप्रवास के प्रबंधत्व पर विचार किया जा सकता है। आगे के पृष्ठों में इसे देखा जा सकता है।

१ **सानुवन्ध कथा**—प्रियप्रवास में सानुवन्ध कथा की योजना दिखाई देती है। कृष्ण के मथुरागमन से लेकर राधा के विश्व प्रेम में लीन होने तक की कथा को पूर्ण संगठन से प्रस्तुत किया गया है। सम्पूर्ण कथा तीन भागों में विभक्त है। प्रथम सर्ग से लेकर पंचम सर्ग तक कथा का प्रारम्भिक भाग माना जा सकता है। इस भाग में कंस के निमन्त्रण पर कृष्ण मथुरा चले जाते हैं और उनके विरह में सम्पूर्ण व्रजवासी रोते-कलपते दिखाये गये हैं। प्रफुल्लता और आनन्द की सरिता में निमग्न व्रजभूमि अवसाद और खिन्नता में वदल जाती है।

कथा का दूसरा भाग छटे सर्ग से १३वें सर्ग तक बिखरा हुआ है। इसमें कवि ने विशेष चेतना का परिचय दिया है। प्रतिपाद्य की दृष्टि से कथा के दूसरे भाग में तीन वातों पर विचार किया गया है।

(१) विरह व्यथित व्रजवासियों की व्याकुलता और अवसादमयी स्थिति का चित्रण है।

(२) विरह व्यथित व्रजवासियों को समझाने के लिये मथुरा से उद्धव का आगमन दिखाया गया है।

(३) विरह निपीड़ित व्रजजनों की व्यथा को सुन कर उद्धव की वेचैनी और परेशानी का वर्णन किया गया है।

कथा का तीसरा भाग और अन्तिम भाग चतुर्दश सर्ग से सप्तदश सर्ग तक व्याप्त है। इन सर्गों में सवसे पहले उद्धव कृष्ण का विश्व-प्रेम लोक हित और स्वार्थ त्याग सम्बन्धी संदेश सुनाते हैं। इसके अनन्तर वे राधा के पास जाकर विश्व-प्रेम की व्याख्या करते हुए राधा को विश्व प्रेम में निमग्न कर देते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रियप्रवास की कथा एक सुसम्बद्ध योजना को लेकर चली है। उसके प्रारम्भ, मध्य और अन्त निश्चित हैं। कथा में

1. प्रियप्रवास में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृ० ६३

खटकने वाली बात यह है कि ब्रजवासियों का विलाप अत्यधिक विस्तार पा गया है। परिणामतः थोड़ी-थोड़ी देर बाद पाठक ऊब जाता है। कथा शिथिल पड़ जाती है। कवि ने अपनी शक्ति भर यह प्रयास किया है कि कथा में गतिशीलता बनी रहे और उसकी नीरसता समाप्त हो जाय। इस कार्य को पूर्ण करने के लिये कवि ने बीच-बीच में कृष्ण के समाज सेवी लोकोपकारी और पराक्रमी व्यक्तित्व का वर्णन किया है। इस प्रयत्न में कवि को विशेष सफलता नहीं मिल सकी है यों थोड़ी बहुत नीरसता कम जरूर हो गई है। सम्भवतः इसका कारण यह रहा हो कि कवि ने इस काव्य का नाम 'ब्रजांगना विलाप' रखा था और नामकरण के आधार पर ही कथा की योजना की थी। इसी कारण इस काव्य में विलाप या विषाद को प्रामुख्य मिल गया है। "यों यह समस्त कथा प्रकथनपूर्ण भी है क्योंकि यहाँ अधिकांश स्थल इतिवृत्तात्मक प्रकथन प्रणाली को अपनाते हुए ही लिखे गये हैं। अतः इस काव्य में प्रकथनपूर्ण सुसम्बद्ध कथा की योजना मिलती है।" कथा की दृष्टि से यह प्रबन्ध काव्य सिद्ध हो जाता है।

प्रासंगिक कथा योजना—प्रियप्रवास में मुख्य कथा के अतिरिक्त जो प्रासंगिक कथायें हैं उनमें से अधिकाँश स्मृति के रूप में चित्रित की गई हैं। कुछ कथायें ऐसी भी हैं जिन्हें कवि ने स्पष्टतः घटित होते हुए बताया है जैसे अक्रूर का आगमन, कृष्ण का मथुरागमन, उद्धव का आगमन और गोप-गोपी, नन्द-यशोदा तथा राधा को कृष्ण संदेश सुनाना, जरासंध के आक्रमण तथा कृष्ण का द्वारिकागमन। ये कथायें प्रियप्रवास में प्रत्यक्ष घटित होती हैं। आचार्य शुक्ल ने बताया है कि प्रासंगिक कथाओं और घटनाओं की दृष्टि से दो प्रकार के काव्य होते हैं—

१. प्रथम तो वे जिनमें कवि की दृष्टि व्यक्ति पर रहती है और नायक की गौरव वृद्धि या गौरव रक्षा के लिये ही उसके जीवन की मुख्य-मुख्य घटनायें दी जाती हैं।

२. दूसरे प्रकार के वे काव्य होते हैं जिनमें कवि की दृष्टि व्यक्ति पर न रह कर किसी मुख्य घटना पर रहती है और उसी घटना के उपक्रम के रूप में सारा वस्तु विन्यास किया जाता है। प्रथम कोटि में रघुवंश, बुद्ध चरित्र आदि आते हैं तो दूसरी कोटि में कुमार सम्भव और शिशुपाल वध आदि आते हैं। प्रियप्रवास एक ऐसा ग्रंथ है जो इस वर्गीकरण के आधार पर द्वितीय कोटि के अन्तर्गत आता है। कवि का ध्यान इस ओर रहा है कि विश्व हित और लोकहित को कैसे समुन्नत और विकसित किया जा सकता है ? इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए ही कवि ने प्रियप्रवास की रचना की है। अपने इसी उद्देश्य के कारण कवि ने केवल उन घटनाओं का वर्णन किया है जिनका सम्बन्ध कृष्ण के जातीय, राष्ट्रीय और सार्वभौम हित से है। इन घटनाओं में कालियनाग, दावानल, गोवर्द्धन पर्वत को उठाना, अघासुर, व्योमासुर आदि के वृत्तान्त आते हैं। "ये सभी प्रासंगिक कथाएं मुख्य कथा से पूर्णतया सुसम्बद्ध है और कृष्ण के लोकहित और विश्व प्रेम की परिचायिका हैं। अतः उक्त सभी प्रासंगिक कथाओं को मुख्य कथा का अङ्ग माना जा सकता है। हां, इतना अवश्य है कि उन कथाओं में परम्परागत कथाओं से

भिन्नता प्रस्तुत करते हुए कवि ने जो परिवर्तन किया है, वह अधिक तर्क-सम्मत एवं बुद्धिग्राह्य नहीं वन सका है परन्तु कवि का योजना सर्वथा प्रबन्ध काव्य के ही अनुकूल है ।"[1]

३. रसात्मक वस्तु वर्णन—प्रबन्ध काव्य की तीसरी विशेषता यह है कि उसमें ऐसे वर्णन होने चाहिए जो रसात्मक हों और पाठकों के मन को प्रभावित करें । प्रियप्रवास के विविध सर्गों में अनेक स्थल ऐसे हैं जो रसात्मकता और आकर्षणमयता से ओत-प्रोत हैं । प्रथम सर्ग का संध्याकालीन वर्णन वहुत ही आकर्षक और मनमोहक है । संध्याकालीन अरुणिमा से रंजित, गोरज से विभूपित, धेनुओं और ग्वाल वालों के मध्य शोभित है । वे वंशी-वेणु आदि वाद्यों से सभी का मन मोह रहे हैं । इतना ही नहीं उस ग्वाल मण्डली के दर्शनार्थ गोकुल ग्राम की अपार जनता उमड़ती है तो कवि ने उसका वर्णन वहुत ही प्रभावशाली ढंग से किया है । सम्पूर्ण वर्णन मन को वरबस खींच लेता है—

कुंकुम शोभित गोरज बीच से,
निकलते ब्रज-वल्लभ यों लसे ।
कदन ज्यों करके दिशि कालिमा
विलसता नभ में नलिनीश है ।।

इसी प्रसंग में कृष्ण के दर्शनों के लिए उत्सुक ब्रज की जन-मण्डली और विशेषत: स्त्रियों, की स्थिति का जो वर्णन कवि ने किया है वह बहुत ही मन हरण है—

मुदित गोकुल की जन-मण्डली ।
जब ब्रजाधिप सम्मुख जा पड़ी ।।
निरखने मुख की छवि यों लगी ।
तृपित-चातक ज्यों घन की घटा ।।

पलक लोचन की पड़ती न थी ।
हिल नहीं सकता तन-लोम था ।
छवि-रता वनिता सब यों वनी ।
उपल निर्मित पुत्तलिका यथा ।।

इसी प्रकार का हृदय विदारक दृश्य उस समय उपस्थित होता है जब कि नंद मथुरा से अकेले लौटते हैं। यशोदा के वचनों में करुणा का सागर उमड़ता दिखाई देता है—

हा ! वृद्धा के अतुल धन हा ! वृद्धता के सहारे।
हा ! प्राणों के परमप्रिय हा ! एक मेरे दुलारे।
हा ! शोभा के सदन सम हा ! रूप लावण्य वाले।
हा ! बेटा हा ! हृदय–धन हा ! नेत्र तारे हमारे।।

गोपियों की व्यथा का चित्रण भी कवि ने बड़ी सरसता से किया है। कृष्ण की कथाओं में मौलिक उद्भावना के द्वारा जो नवीनता उत्पन्न की गई है वह भी आकर्षण के विन्दु पर ही ठहरती है। पंचदश सर्ग की विक्षिप्त और भ्रमित वाला का वर्णन जो विरह व्यथा से ओत-प्रोत है, बहुत ही मार्मिक बन पड़ा है। इसी प्रकार उद्धव गोपी संवाद, उद्धव–राधा संवाद भी आकर्षक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रियप्रवास में प्रबंध काव्योचित रसमयता मिलती है, किन्तु डॉ० सक्सेना के शब्दों में कहा जा सकता है कि सामूहिक रूप से देखने पर इन रसात्मक वर्णनों में करुणा और विषाद की इतनी अधिकता हो गई है कि पाठकों का मन इन्हें पढ़ते–पढ़ते ऊब जाता है। इन समस्त वस्तु वर्णनों में विप्रलंभ शृंगार की प्रधानता होने के कारण जो एकरसता आ गई है, वह कुछ कुछ अपनी सीमा का अतिक्रमण कर गई है, जिससे न तो अन्य रस अपना प्रभाव स्थापित कर सके हैं और न विप्रलंभ शृङ्गार ही स्वाभाविक रूप में विकसित हो सका है।

४ **सम्बंध निर्वाह**—प्रबंध काव्य की सफलता का रहस्य बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि कवि ने अपनी कथा–वस्तु और वर्णन पद्धति में सम्बंध का निर्वाह किया है या नहीं ? प्रियप्रवास की परीक्षा भी इस दृष्टि से की जानी चाहिए। सामान्यतः जो बात समझ में आती है वह यही कि प्रियप्रवास का कवि भावात्मक स्थलों के वर्णन में विशेष रुचि रखता है। इतने पर भी यह तथ्य विस्मृत नहीं किया जा सकता कि कवि ने प्रत्येक सर्ग की कथा को परस्पर जोड़ने की चेष्टा की है और इस प्रकार सर्गों में पूर्वापर संबंध बिठा दिया है। प्रथम सर्ग की समाप्ति संध्याकालीन रमणीक वातावरण में होती है। और द्वितीय सर्ग संध्योपरांत दो घड़ी रात बीत जाने पर आरंभ होता है। इस सर्ग की समाप्ति कृष्ण के मथुरा गमन की सूचना से व्याप्त निराशा और खिन्नता के वर्णन के साथ होती है। तीसरा सर्ग भी इसी क्रम में नंद और यशोदा की व्यथित और आशंकापूर्ण स्थिति को व्यक्त करता है। इसी प्रकार का क्रम और सम्बंध निर्वाह अन्य सर्गों में भी देखा जा सकता है। इस प्रकार कथा परस्पर गुम्फित होती हुई आगे बढ़ती जाती है, उसमें कहीं कोई विशृङ्खलता नहीं दिखाई देती है। हां, बीच–बीच में कुछ कथाओं का समावेश कवि ने किया है। ये कथायें शैली की नवीनता के कारण और भी आकर्षक बन गई हैं। शैली के क्षेत्र में स्मृति शैली ने जो आकर्षण दिया है वह कथा को उतना सुविन्यस्त नहीं कर सका है जितना कि करना चाहिए था। कारण कथाओं में क्रम भंग हो गया है। श्री मद्भागवत पुराण में कथाओं का क्रम इस प्रकार है—"पूतना उद्धार, तृणावर्त उद्धार, अघासुर

उद्धार, कालिय नाग की कथा, दावानल की रक्षा, गोवर्धन धारण, केशी तथा व्योमासुर का उद्धार तत्पश्चात् मथुरा जाकर कुवलयापीड़, चाणूर, मुष्टिक और कंस आदि का वध। हरिऔधजी ने इस क्रम को बदल दिया है—उन्होंने पहले तो पूतना और तृणावर्त की कथा के उपरांत कुवलयापीड़, चाणूर, मुष्टिक, कंस आदि के वध की सूचना दी है और फिर अघासुर वध की कथा का उल्लेख न करके कालियनाग की कथा का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् आपने दावानल, गोवर्धन धारण, केशी और व्योमासुर आदि की कथायें सुनवाई हैं।" डॉ० सक्सेना इसे व्यतिक्रम नहीं मानते हैं क्योंकि यदि ये कथायें काव्य में स्पष्ट घटित होती दिखाई गई होतीं तब तो व्यतिक्रम माना जा सकता था। प्रमुख कथा कृष्ण का विश्व प्रेम में लीन होकर मथुरागमन और तत्पश्चात उद्धव के संदेशानुसार विश्व-हित का प्रचार और प्रसार। इस कथा में थोड़े से हेर फेर से व्यतिक्रम नहीं माना जा सकता है।

प्रमुख प्रासंगिक कथाओं को भी राधा और कृष्ण के विश्व प्रेम से जोड़ दिया गया हैं। ये कथायें हैं—१. कंस के निमंत्रण पर श्रीकृष्ण का मथुरागमन २ गोपियों को समझाने के लिए उद्धव का मथुरा से आगमन ३. उद्धव गोपी तथा उद्धव राधा संवाद और ४. कृष्ण का जरासंघ के आक्रमणों से दुखी होकर मथुरा से द्वारिका चले जाना।

५. **कार्यजन्य एकरूपता** —प्रबंध काव्य की सफलता का मुख्य आधार यह होता है कि वह एक उद्देश्य, एक ध्येय अथवा एक कार्य की सिद्धि को अपना लक्ष्य बना कर क्रमशः चलता है। प्रियप्रवास में भी कार्य की दृष्टि से एकरूपता दिखाई देती है इस काव्य का लक्ष्य है कृष्ण के लोकहित और विश्व—प्रेम का संदेश पाकर राधा का विश्व प्रेम में संलग्न हो जाना। प्रियप्रवास की कथावस्तु की योजना इसी कार्य या ध्येय की ओर उन्मुख है। कुछ उदाहरणों से यह बात प्रमाणित हो सकती है—

१. कृष्ण मथुरा इसी लोकहित के लिए जाते हैं। वे जाते समय इसको नहीं भूलते हैं और उसको ही सदा गांठ बांधे रहते हैं।
२. उद्धव का ब्रजागमन भी इसी लोकहित और विश्व प्रेम के कारण हुआ है। वे भले ही प्रेम विभोर हो जाते हों, किन्तु उनका ध्येय यही है। उद्धव अपने ध्येय में सफल भी हो जाते हैं।
३. गोप-गोपियों का संगठित दल जो राधा ने बनाया था, उसका प्रमुख लक्ष्य भी विश्व-प्रेम और लोकहित था।
४. राधा स्वयं भी कृष्ण के आचरण का ही अनुपालन करती है। दोनो ही पात्र विश्व-प्रेम में लीन हो जाते हैं।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण कथा ध्येय की ओर अग्रसर होती गई है। बीच-बीच में कृष्ण के पराक्रम, अद्भुत साहस और मानवतापूर्ण कार्यों से भी लोक--हित का ही पक्ष पुष्ट होता है। कृष्ण और राधा का परोपकारी जीवन, परदुख-कातरतावादी दृष्टिकोण भी इसी ध्येय की पूर्ति के लिए है।

निष्कर्ष—प्रबंध काव्य के प्रमुख लक्षणों के आधार पर तो यही स्पष्ट होता है कि प्रियप्रवास प्रबंध काव्य है। उसकी सम्पूर्ण कथावस्तु सुविन्यस्त,

प्रासंगिक कथायें परस्पर नियोजित, उनमें सम्बंध निर्वाह और वस्तु वर्णनों की रसात्मकता के साथ-साथ कार्य की एकरूपता भी दिखाई देती है। हाँ, बीच-बीच में कथाओं को प्रस्तुत करने की पद्धति बहुत ही विचित्र है। एक गोप के कथन के समाप्त होते ही दूसरे का खड़े हो जाना और फिर कोई नयी बात प्रारंभ करना अकस्मात तो अच्छा ही लगता है, किन्तु सम्पूर्ण काव्य में इसका समायोजन हास्यास्पद सा प्रतीत होता है। यह ठीक है कि वर्णनों की रसात्मकता, कार्य की एकता के कारण ही प्रियप्रवास प्रबंधत्व का अधिकारी है। कथा वस्तु छोटी भले ही हो, किन्तु भाव संयोजन उपेक्षनीय नहीं है वियोग व्यथा की जो करुणा-धारा आरंभ में उद्‌भूत हुई वह अन्त तक अजस्त्र गति से प्रवाहित होती हुई मिलती है, वह कहीं भी श्लथ नहीं दिखाई पड़ती है। 'भावों का यह सातत्य ही प्रियप्रवास में अनुज्झितार्थ-संबंध का सफल वाहक है।" खैर जो हो सो हो, इतना निश्चित है कि प्रियप्रवास में प्रबंधात्मकता के गुण विद्यमान हैं।

प्रियप्रवास महाकाव्य की धरा पर

प्रियप्रवास के प्रबन्धत्व पर विचार कर लेने के उपरान्त यह जानना आवश्यक है कि वह कैसा प्रबन्धत्व लिए हुए है। उसमें महाकाव्योचित गुण हैं अथवा नहीं। महाकाव्य का निर्माण अनेक प्रवृत्तियों के सम्मिलन से होता है। कई वर्षों की दीर्घ साधना और चिन्तन धारा से प्रसूत होकर ही कोई काव्य महाकाव्य की अभिधा पा सकता है। महाकाव्य के लक्षण निर्धारण के सम्बन्ध में अनेक मत प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। युग के नये रंग-ढंग और नवीन विचार महाकाव्य की विचारधारा में परिवर्तन ले आते हैं। इतने पर भी हम यह मानने को तैयार नहीं कि कोई भी महाकाव्यकार उन्हीं बंधी-बंधायी घटनाओं के आधार पर काव्य-सर्जना करने को तैयार होगा। न मालूम किस क्षण कौन सी अनुभूति का वेग प्रबल हो उठे और मानव-जीवन की सत्यानुभूति नये रूप में प्रकट हो सके। इतने पर भी महाकाव्य के कुछ सामान्य लक्षण तो निर्धारित किये ही जा सकते हैं। प्रमुख तत्व और लक्षणों को इस प्रकार रखा जा सकता है—

१. प्रख्यात और इतिहास सम्मत कथानक जिसमें यथार्थ घटनाओं का वर्णन किया गया हो। प्रासंगिक कथाओं का विनियोग तो हो, किन्तु वे मुख्य कथाओं से जुड़ी हुई हों।

२. महाकाव्य का नायक देवता, उच्चकुलोत्पन्न और महान् होना चाहिए। साथ ही साथ महाकाव्य में आदर्श यथार्थ और परम्परागत पात्रों के चरित्रों का भी क्रमिक-विकास दिखलाया जाना चाहिए।

३. प्रकृति चित्रण—संध्या, प्रभात, उषा, रजनी, नदी, नद और पर्वतादि का वर्णन तथा विभिन्न ऋतुओं का विधान।

४. युग जीवन का चित्र जिसमें सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की पूरी-पूरी झांकी होनी चाहिए।

५. गंभीर भाव और रस व्यंजना का समावेश होना चाहिए। किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिए।

६. महत्प्रेरणा और महान उद्देश्य से प्रवर्तित और संचालित होकर ही कोई भी काव्य महाकाव्य की सीमा में प्रवेश कर सकता है।

७. गरिमामयी उदात्त शैली का विधान भी महाकाव्य के लिए आवश्यक है। कला की भव्यता के लिए डॉ० सक्सेना निम्नलिखित बातों को आवश्यक मानते हैं—

(क) वह सर्गबद्ध हो। उसमें विस्तार के लिए आठ या आठ से अधिक सर्ग हों, किन्तु वे न अधिक लम्बे और न अधिक छोटे हों और प्रत्येक सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की कथा सूचित की गई हो।

(ख) वह विवरणात्मक हो, उसका प्रारम्भ मंगलात्मक, नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक या वस्तु निर्देशात्मक हो। उसमें खल-निन्दा, सज्जन प्रशंसा हो और उसका नामकरण कवि, इतिवृत्त नायक या किसी प्रमुख पात्र या प्रमुख घटना के आधार पर किया गया हो।

(ग) उसकी रचना शैली उत्कृष्ट और कलात्मक हो। उसमें भाव-सम्पन्न और परिमार्जित भाषा तथा उच्चकोटि का शब्द विधान हो तथा उसमें परम्परागत विशेषणों, मुहावरों, कथन की विभिन्न प्रणालियों, गुण-रीति, ध्वनि, शब्द-शक्ति आदि का प्रयोग हो।

(घ) उसमें भावानुकूल और भावोत्कर्ष विधायक अलंकारों की योजना की गई हो।

(ङ) उसमें छन्दों अथवा, वृत्तों का सुन्दर प्रयोग हो। सर्गान्त में छन्द परिवर्तन हो किन्तु भाव सम्बद्धता के साथ।

१. **कथावस्तु**—प्रियप्रवास में जिस कथानक का विकास हुआ है वह ऐतिहासिक है और प्रख्यात भी है। कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित कथानक का आधार लेकर लिखा गया महाकाव्य प्रियप्रवास निश्चय ही प्रख्यात कथानक को लेकर लिखा गया है। कृष्ण को लेकर भारतीय साहित्य के काफी अभाव को भरा गया है। कथा कितनी प्राचीन है यह महाभारत और पुराण से जाना जा सकता है। यों इसके कथानक को पूर्णतः पौराणिक कहना कठिन है। कवि ने प्रयत्न किया है कि उसका कथात्मक सत्य भले ही छूट जाए या उलट जाए, किन्तु भावात्मक सत्य पर आघात नहीं आना चाहिए। प्रियप्रवास में वर्णित कथायें बौद्धिक स्तर पर आने के कारण बहुत कुछ व्यावहारिक और शुद्धतावादी बन गई हैं।

प्रासंगिक कथाओं का विनियोग भी प्रियप्रवास में मिलता है। मुख्य कथा के अतिरिक्त जो प्रासंगिक कथायें हैं, उनमें से अधिकांश स्मृति के रूप में चित्रित की गई हैं। कुछ कथायें ऐसी हैं जिन्हें कवि ने स्पष्टतः घटित होते हुए बताया है। कवि का प्रयास यह रहा है कि वह प्रासंगिक कथाओं को मुख्य कथा से जोड़ दे, इस कार्य में उसे किसी सीमा तक सफलता भी मिली है, किन्तु अधिकांशतः वह सफल होने की ओर अग्रसर होकर ही रह गया है।

कथा में नाट्य संधियों के विधान की भी चर्चा की जाती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रियप्रवास में पांचों संधियों की योजना की गई है। चतुर्थ सर्ग में राधा और कृष्ण की दिव्य प्रेम-कथा का बीज अंकुरित होता दिखाया

महान हैं। एक गोप के कथन से यह भी प्रमाणित हो जाता है कि कृष्ण अपने समय के सच्चे महापुरुष थे, नररत्न थे—

संसार में सकल काल नृरत्न ऐसे।
हैं हो गये अवनि है जिनकी कृतज्ञा।
सारे अपूर्व गुण हैं उनके बताते।
सच्चे नृरत्न हरि भी इस काल के हैं।।

कृष्ण लोकसेवी, समाज सुधारक, जाति का भला चाहने वाले और उसके उद्धारकर्ता हैं। उनमें वे सभी गुण हैं जो एक सुधारक और समय का प्रतिनिधित्व करने वाले नेता में होते हैं। इस प्रकार यह कहने में कोई संकोच का कारण नहीं दिखाई देता है कि नायकत्व की दृष्टि से प्रियप्रवास महाकाव्य ही है। प्रियप्रवास के अन्य पात्र भी महाकाव्य के सर्वथा उपयुक्त हैं। राधा के रूप में देश की यशस्विनी, तपस्विनी, समाज की श्रेयस्वरूपा, लोकसेविका, समाज हितैषिणी, ध्येय निष्ठा में तत्पर भारतीय रमणीरत्न का चित्रण किया गया है। नन्द के रूप में आदर्श पिता, यशोदा के रूप में आदर्श माता और उद्धव के रूप में आदर्श उद्बोधक को चित्रित किया गया है। यह महाकाव्योचित संदर्भ है।

३. प्रकृति चित्रण—महाकाव्य में प्रकृति का सौन्दर्य भी अपेक्षित रहता है। सामान्यतः सभी कवि कल्पना की प्रेरिका प्रकृति को भुला नहीं पाते हैं। मानव और प्रकृति को जैसे अलग नहीं किया जा सकता है वैसे ही काव्य और प्रकृति को भी अलग नहीं किया जा सकता है। प्रियप्रवास एक महाकाव्य है जिसमें महाकाव्योचित प्रकृति सौन्दर्य बिखरा पड़ा है। डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी के अनुसार "नवयुग खड़ीबोली हिन्दी काव्य के क्षेत्र में मानवेतर प्रकृति के चित्रण और निरूपण की दृष्टि से हरिऔध अग्रदूत समझे जायेंगे और प्रियप्रवास की गणना नवयुग हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील स्तंभ के रूप में होगी।" प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन प्रियप्रवास में पर्याप्त मात्रा में मिलता है और वही स्थल हैं जो कवि की सूक्ष्म दृष्टि के परिचायक हैं। महाकाव्य की शुरुआत ही प्रकृति के सुन्दर वर्णन से हुई है—

प्रकृति के इस वातावरण से कवि ने यह बताने का प्रयास किया है कि सम्पूर्ण ब्रजवासी कृष्ण के प्रेम में लिप्त हैं और वे किसी भी स्थिति में कृष्ण को छोड़ने को तत्पर नहीं हैं। जैसे सान्ध्य-आकाश की अरुणिमा शीघ्र ही अन्धकार में परिवर्तित हो जाती है ठीक वैसे ही कृष्ण के मथुरा गमन के कारण ब्रज के अनुरक्त वातावरण मे निराशा का अन्धकार फैलाने वाला है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कवि की कथासूत्र के उद्घाटन की यह प्रक्रिया बहुत ही कलात्मक और प्रशंसनीय है। प्रियप्रवास में सूर्य, अन्धकार, दिवस, श्री-चन्द्रिका और पर्वत आदि का वर्णन भी मिलता है। नवम सर्ग में वन, पशु-पक्षी, वृक्ष तथा सोलहवें सर्ग में प्रकृति का सुन्दर निदर्शन हुआ है। चतुर्दश सर्ग का यह वर्णन देखिये—

विमुग्धकारी मधुमास मंजु था।
वसुंधरा थी कमनीयतामयी।।
विचित्रता साथ विराजती रही।
वसन्त वासन्तिकन्तता वनान्त में।।

तात्पर्य यह है कि यहां प्रकृति के अनेक और प्रायः सभी रूप हमें मिल जाते हैं पर ऐसा कहीं नहीं दिखाई पड़ता है कि वह प्रकृति मे रम गया हो। डा० सक्सेना ने ठीक ही कहा है—'उन्हें प्रकृति और मानव की चेष्टाओं में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव तो दिखायी दिये हैं पर उन भावों के वर्णन में कवि उतना सफल नहीं, जितने कि प्रसाद, पंत आदि छायावादी कवि।"

४. युग जीवन का चित्र—प्रियप्रवास आधुनिक युग की सीमाओं में लिखा गया महाकाव्य है। प्रियप्रवासकार का सम्बन्ध उस समय से रहा है जिसमें कि अनेक प्रकार के आन्दोलनों का जोर था और कविगण भी सुधारवादी और नैतिक संदर्भों से प्रभावित हो कर काव्य-रचना कर रहे थे। सामान्यतः इसमें व्यक्ति और समाज की उदात्तीकरण वृत्ति ही प्रधान रही है। विश्व-प्रेम, परोपकार, जीवन में आसक्ति, आस्था और तर्कशील बौद्धिकता एवम् सरसता के उद्देश्य को ही हरिऔध ने वाणी प्रदान की है। इस काल की चेतना में विश्व-बन्धुत्व और विश्व-प्रेम की भावनाओं का प्रचार और प्रसार की दृष्टि मिलती है। कृष्ण इन्हीं दोनों गुणों के प्रतीक हैं। कवि हरिऔध ने कहा है—

वे जी से हैं अवनिजन के प्राणियों के हितैषी।
प्राणों से अधिक उनको विश्व का प्रेम प्यारा।

राधा कृष्ण के इसी रूप को देख कर स्वयं भी विश्व प्रेम में लीन हो कर सभी पदार्थों में कृष्ण की प्रतिमूर्ति देखती है। प्रियप्रवास में यदि कोई विशेष दृष्टि है तो वह लोक-सेवा की है। इस दृष्टि के प्रवर्तक कृष्ण हैं तो राधा इसकी प्रसारिका है। इस प्रकार अपने समय के लोक-जीवन के आदर्श को हरिऔध ने भली भांति प्रस्तुत किया है। हरिऔध के जीवन के समय में प्रचलित ब्रह्म समाज, आर्य समाज, थियोसोफीकल सोसाइटी आदि संस्थाओं ने जन-जागरण की लहर सर्वत्र दौड़ा दी। परस्पर की मलिनता, ईर्ष्या, जाति-पांत के बन्धन और ऊंच-नीच की प्रवृत्तियों को दूर करने का

सफल प्रयास इन संस्थाओं ने किया। युग की ये सभी विचारधारायें प्रियप्रवास में युग-जीवन का संदर्भ लेकर आई हैं।

हरिऔध के युग में धार्मिक संकीर्णता को दूर किया गया है तथा उसके स्थान पर उदारता, विशालता और सभी धर्मों के प्रति प्रेम और सहिष्णुता का प्रचार मिलता है। परिणामतः इस काव्य में भी इन सभी दृष्टि विन्दुओं को देखा जा सकता है। "प्रियप्रवास में कवि ने इसी धार्मिक मनोवृत्ति की झलक दिखाते हुए पहले तो सर्वत्र व्याप्त एक ईश्वर की सत्ता में विश्वास करने का उल्लेख किया है।" साथ ही साथ नवधा भक्ति का उल्लेख किया गया है जिसको नया परिवेश मिला है।

तत्कालीन राजनैतिक जीवन की झांकी भी हमें प्रियप्रवास में मिल जाती है। उस समय जो धारणा विशिष्ट बल पा रही थी, वह यह थी कि छोटे एवं बड़े सभी को दया की दृष्टि से देखो, सभी की हित-चिन्तना करो और अहिंसा का पालन करो। जो मानव विप्लव और उपद्रवों को माध्यम बना कर जनता को कष्ट दे रहा हो, उसे नष्ट कर डालना भी हिंसा का कार्य नहीं है। इसी परिवेश में कृष्ण के द्वारा अनेक आततायियों और राक्षसों का वध दिखा कर कवि ने अपने समय के उप-निर्दिष्ट सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान किया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास में अपने समय का उस युग का प्रतिबिम्ब स्पष्ट झलकता दिखाई देता है। उस समय की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक चेतना का सही और यथातथ्यात्मक संदर्भ हमें प्रियप्रवास में मिल जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रियप्रवास का युग जीवन विषयक संदर्भ महाकाव्योचित है।

५. भाव और रस व्यंजना—हरिऔधजी रस-सिद्ध कवि थे। वे रस को काव्य का जीवन्त तत्त्व मानते थे। महाकाव्य के सम्बन्ध में भी कोई न कोई सिद्धान्त काम करता ही है। सामान्यतः स्पष्ट हो जाता है कि प्रियप्रवास में विप्रलम्भ शृङ्गार की प्रधानता है। इसके प्रमाणस्वरूप इस महाकाव्य का नाम ही पर्याप्त सार्थक है। विरह वर्णन के विविध प्रकारों में से 'प्रवास' का इसमें बाहुल्य है। इसके पश्चात् प्रियप्रवास में शांत रस की योजना भी मिलती है। यों यत्र-तत्र वीर, रौद्र, भयानक और वात्सल्य के उदाहरण भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं किन्तु प्राथमिकता की दृष्टि से विप्रलंभ शृङ्गार की ही प्रधानता है।

प्रियप्रवास में जो विप्रलंभ शृङ्गार है उसको संयोग शृङ्गार से प्रेरणा नहीं मिली है। इसी कारण इस महाकाव्य में संयोग की पृष्ठभूमि के अभाव में विप्रलंभ शृङ्गार अधिक करुण हो गया है। कहा जा सकता है कि इस काव्य की शैली भले ही सीधी और अभिधात्मक कथनों से भरी पड़ी हो, किन्तु कारुणिक वातावरण की दृष्टि से इसे भुलाया नहीं जा सकता है। यहाँ रस की दृष्टि से इसका औचित्य है इसके साथ ही यह भी मानने में हमें कोई संकोच नहीं कि प्रियप्रवास में "अवान्तर रसों की निष्पत्ति अधिक मार्मिक नहीं हो सकी है। स्मृतिरूप में ही वर्णित होने के कारण उत्साह, क्रोध आदि वृत्तियों का स्वतंत्र चित्रण उतना प्रभविष्णु नहीं हो पाया। संस्कृत के महाकाव्यों में यह महत्ता है कि जहां जो वर्णन है, अद्वितीय है।"

रस के समान ही अनेक भावों की सुन्दर व्यंजना भी प्रियप्रवास नामक महाकाव्य में मिलती है। इसमें शोक, विषाद, खिन्नता और उदासी आदि के चित्र तो अत्यन्त मार्मिकता के साथ अङ्कित हैं ही साथ ही उद्धव के आगमन पर उत्सुकता, उत्कंठा और आतुरता के भावों की व्यंजना भी बड़े मनोहर ढंग से की गई है। उद्धव के आगमन पर व्रजवासी जिस उत्सुकता से दौड़ते हुए पहुंचते हैं, उसका वर्णन देखिये—

जहां लगा जो जिस कार्य में रहा।
उसे वहां ही वह छोड़ दौड़ता॥
समीप आया रथ के प्रमत्त सा।
विलोकने को घनश्याम माधुरी॥

आतुरता और अधीरता के इस वर्णन के साथ ही गोपियों की विरह-कातरता, राधा की विपन्नावस्था और यशोदा की वत्सल वियोगता का वर्णन भी बड़े मार्मिक शब्दों में किया गया है। ये भावचित्र महाकाव्य की गरिमा के अनुकूल हैं। इनमें भाव-सौन्दर्य की अद्भुत झांकी है।

६. **महत्प्रेरणा और महत् उद्देश्य**—हरिऔध अपने समय के जागरूक कलाकार थे। उन्होंने जब प्रियप्रवास की सर्जना करने का बीड़ा उठाया तो उन्हें जो प्रेरणा प्राप्त हुई वह महत् थी और उससे प्रेरित होकर जो उद्देश्य उनका अभीष्ट था, वह भी महान् था। महाकाव्य के लिए ये दोनों ही तत्त्व आवश्यक होते हैं। प्रियप्रवास के प्रेरणा-बिन्दुओं में लोक-सेवा, देश-सेवा, परोपकार और विश्व-बंधुत्व आदि भाव प्रमुखतः विद्यमान रहे हैं। इस प्रेरणा के साथ-साथ हरिऔध के समक्ष यह धारणा भी रही है कि कृष्ण अतिमानवीय न रहें और इसके लिए उन्होंने प्रियप्रवास के माध्यम से कृष्ण को साधारण स्तर पर लाकर खड़ा करने की चेष्टा की है।

मानव जीवन की उन्नति किन आधारों पर संभव है? आधुनिक मानव किस आधार पर अग्रसर हो सकता है? और सभी मनुष्य मानवता का किस तरह पालन कर सकते हैं? सर्वहित की दृष्टि का कैसे प्रसार हो सकता है? सुधारवादी दृष्टिकोणों से आन्दोलित होकर प्रियप्रवास की सृष्टि हुई है। कवि की आन्तरिक इच्छा यही थी कि संसार में मानवता का राज्य हो और सभी व्यक्तियों में लोक-सेवा और परोपकारी दृष्टि और चिन्तन धारा पल्लवित हो। इसी महान उद्देश्य के लिए महाकाव्योचित पात्रों (कथाओं) का सहारा लिया गया है। डा० सक्सेना ने लिखा है कि कवि जितनी महान प्रेरणा से प्रेरित होकर इस काव्य के निर्माण के लिए अग्रसर हुआ है, उसी के अनुरूप उसके काव्य के कलेवर को भी बदलने की चेष्टा की गई है। उसका यह परिवर्तन युगानुकूल भले ही हो, किन्तु महान उद्देश्य के स्वरूप को प्रदर्शित करने में अधिक सशक्त दिखाई नहीं देता। हां यदि कवि महाभारत से श्री कृष्ण के जीवन सम्बन्धी कोई महान घटना लेकर अपने इस उद्देश्य से सम्बन्धित घटनाओं को प्रियप्रवास के रंगमंच पर घटित होते हुए न दिखा कर केवल मौखिक रूप में ही प्रस्तुत किया है, इससे भी काव्य की गुरुता, गंभीरता और प्रभावशालीनता में कमी आ गई है फिर भी काव्य की प्रेरणा महान है और काव्य का उद्देश्य भी अत्यन्त उत्कृष्ट है।

(७)**उदात्त शैली**—प्रियप्रवास महाकाव्य की शैली उदात्त है। उसमें संस्कृत की रंगत है। वर्ण वृत्तों का प्रयोग है। छन्दों का वैविध्य है और भाषा का गौरव है। भाषा की गौरवशालिता, संस्कृत पदावली का आभिजात्यपन, छन्दों की विविध रगत और शैली की उदात्तता विद्यमान है। इस दृष्टि से भी प्रियप्रवास महाकाव्य का अधिकारी है।

छन्दों के कारण तो प्रियप्रवास का व्यक्तित्व ही बदल गया है। आज भी अनेक ऐसे लोग हैं जो छन्दानंद के निमित्त इसका अध्ययन करते है। सभी छन्दविषयक नियमों की तुलना पर प्रियप्रवास तुल सकता है। प्रथम सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है तो नवम सर्ग में छन्दों का वैविध्य दिखाई देता है। सभी छन्दों की योजना विषयानुकूल है तथा नाद-सौन्दर्य के कारण खड़ीबोली 'आर्षवाणी' का गौरव प्राप्त करती हुई दिखाई पड़ती है—"यह विस्मयजनक बात है कि संस्कृत छन्दों के प्रयोग से भाषा में पवित्रता आ जाती है—हमारा संस्कार ही ऐसा है हां, जिनकी रुचि में राष्ट्रीयता नहीं है उन्हें संस्कृत छन्दों में पवित्रता क्या, पात्रता तक का बोध न होगा।"

सर्ग निर्धारण—महाकाव्य के लक्षणों में सर्गों का निर्धारण भी महत्व रखता है। महाकाव्य के लिए जो नियम हमें प्राप्त होते हैं, वे हैं—कम से कम आठ सर्गों का प्रयोग होना चाहिए। प्रियप्रवास इस दृष्टि से भी महाकाव्य के पद का अधिकारी है। इसमें तथ्य और कथ्य दोनों के विस्तार के लिए सर्गों का उचित विधान मिलता है।

महाकाव्य का प्रारम्भ मंगलाचरण से माना जाता है। इसके जो तीन रूप हैं उनमें से वस्तु-निर्देशनात्मक रूप प्रियप्रवास में मिलता है। नामकरण विषय के आधार पर किया गया है। नायक-नायिका कवि या घटना के नाम पर नहीं। प्रियप्रवास का विषय है प्रिय का प्रवास अर्थात् कृष्ण का अपनी प्रेमिका राधा को छोड़ कर व्रज से मथुरा चले जाना। इसी कारण इस महाकाव्य में प्रवास नामक विरह की स्थिति का चित्रण मिलता है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्रियप्रवास में महाकाव्योचित गरिमा और गुणों का विधान मिलता है। अपने समय की आवाज को हृदयंगम करते हुए हरिऔध ने प्रियप्रवास को प्रस्तुत किया है। सही अर्थों में प्रियप्रवास आकार और गुण दोनों की दृष्टियों से महाकाव्य है।

संकीर्ण बना कर फिर उसे फुलाने का प्रयत्न किया गया जैसे बहुत थोड़ी रबड़ से बने हुए गुब्बारे को हवा भर कर उसे क्षितिज तक फुलाने का प्रयत्न किया जा रहा हो।'

विद्वानों के मत--पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने प्रियप्रवास और साकेत दोनों को ही साहित्य की नई विधा एकार्थ काव्य के अन्तर्गत रखा है। विस्तार और मोड़ का प्रश्न सापेक्षित है, अप्रत्याशित मोड़ों के लिए कल्पित कथानकों में अधिक गुञ्जाइश रहती है। डॉ गुलाबराय का मत है कि सर्गों और छन्दों की दृष्टि से प्रियप्रवास में महाकाव्य का पूर्ण निर्वाह हुआ है। इसमें महाकाव्य के वर्ण्य-विषय भी प्रायः सभी आ गये हैं। वर्ण्य-विषय के अन्तर्गत प्राकृतिक चित्रण में वे आचार्य केशवदास से प्रभावित हैं।

आचार्य वाजपेयी ने भी प्रियप्रवास को महाकाव्य माना है। श्री पंडित रमाशंकर शुक्ल रसाल ने भी प्रियप्रवास को महाकाव्य माना है। उन्होंने लिखा है कि खड़ीबोली में ऐसा सुन्दर, प्रशस्त, काव्यगुण सम्पन्न और उत्कृष्ट काव्य आज तक दूसरा निकला हो नहीं।

डॉ० प्रतिपालसिंह ने लिखा है कि प्रियप्रवास में भारतीय संस्कृति के महा प्रवाह का उद्‌घाटन भली प्रकार हुआ है तथा महच्चरित्र के विराट उत्कर्ष के प्रकटीकरण करने का यहां विराट आयोजन किया गया है। इसी कारण यह महाकाव्यों की श्रेणी में स्थान पाने का अधिकारी है।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास महाकाव्य है। इसमें संस्कृत आचार्यों तक के लक्षणों का ध्यान रखा गया है। कामायनी और साकेत जैसे आधुनिक युग के महाकाव्य हैं, वैसे ही प्रियप्रवास भी खड़ीबोली का प्रथम प्रगतिशील महाकाव्य है।

'प्रियप्रवास' का कला-पक्ष

कवि साधारण मनुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक भावुक और विचारशील होता है किन्तु वह अपने अनुभव को अपने तक ही सीमित रखना नहीं चाहता है। वह अपने हृदय का रस दूसरों तक पहुँचा कर उनको भी अपनी तरह प्रभावित करने को उत्सुक रहता है। इस प्रकार काव्य के दो पक्ष हो जाते है—एक अनुभूति-पक्ष और दूसरा अभिव्यक्ति-पक्ष। इसको भाव पक्ष और कला पक्ष भी कहते हैं। पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा प्रतिपादित काव्य के चार तत्व (रागात्मक तत्व, कल्पना तत्व, बुद्धि तत्व और शैली तत्व) इन्हीं दो पक्षों से सम्बन्धित हैं। इन तत्वों में रागात्मक तत्व की प्रधानता है। इसका सम्बन्ध अनुभूति से है। कल्पना नये-नये चित्र उपस्थित कर दोनों को बल देती है। शैली तत्व का सम्बन्ध अभिव्यक्ति से है। इसमें मानसिक पक्ष रहता अवश्य है किन्तु इसमें बल कलात्मक बाह्य पक्ष पर ही है। बुद्धि तत्व अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों को औचित्य की सीमा से बाहर नहीं जाने देता।

प्रियप्रवास में भी अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही पक्षों का सुन्दर समन्वय हुआ है। कविवर श्री हरिऔधजी ने काव्य में इन दोनों ही पक्षों को बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता से सहेजा है। नीचे हम प्रियप्रवास के कलापक्ष का ही विवेचन करेंगे।

(७)**उदात्त शैली**—प्रियप्रवास महाकाव्य की शैली उदात्त है। उसमें संस्कृत की रंगत है। वर्ण वृत्तों का प्रयोग है। छन्दों का वैविध्य है और भाषा का गौरव है। भाषा की गौरवशालिता, संस्कृत पदावली का आभिजात्यपन, छन्दों की विविध रगत और शैली की उदात्तता विद्यमान है। इस दृष्टि से भी प्रियप्रवास महाकाव्य का अधिकारी है।

छन्दों के कारण तो प्रियप्रवास का व्यक्तित्व ही बदल गया है। आज भी अनेक ऐसे लोग हैं जो छन्दानंद के निमित्त इसका अध्ययन करते हैं। सभी छन्दविषयक नियमों की तुलना पर प्रियप्रवास तुल सकता है। प्रथम सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है तो नवम सर्ग में छन्दों का वैविध्य दिखाई देता है। सभी छन्दों की योजना विषयानुकूल है तथा नाद-सौन्दर्य के कारण खड़ीबोली 'आर्षवाणी' का गौरव प्राप्त करती हुई दिखाई पड़ती है—"यह विस्मयजनक बात है कि संस्कृत छन्दों के प्रयोग से भाषा में पवित्रता आ जाती है—हमारा संस्कार ही ऐसा है। हां, जिनकी रुचि में राष्ट्रीयता नहीं है उन्हें संस्कृत छन्दों में पवित्रता क्या, पात्रता तक का बोध न होगा।"

सर्ग निर्धारण—महाकाव्य के लक्षणों में सर्गों का निर्धारण भी महत्व रखता है। महाकाव्य के लिए जो नियम हमें प्राप्त होते हैं, वे हैं—कम से कम आठ सर्गो का प्रयोग होना चाहिए। प्रियप्रवास इस दृष्टि से भी महाकाव्य के पद का अधिकारी है। इसमें तथ्य और कथ्य दोनों के विस्तार के लिए सर्गों का उचित विधान मिलता है।

महाकाव्य का प्रारम्भ मंगलाचरण से माना जाता है। इसके जो तीन रूप हैं उनमें से वस्तु-निर्देशनात्मक रूप प्रियप्रवास में मिलता है। नामकरण विषय के आधार पर किया गया है। नायक-नायिका कवि या घटना के नाम पर नहीं। प्रियप्रवास का विषय है प्रिय का प्रवास अर्थात् कृष्ण का अपनी प्रेमिका राधा को छोड़ कर ब्रज से मथुरा चले जाना। इसी कारण इस महाकाव्य में प्रवास नामक विरह की स्थिति का चित्रण मिलता है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि प्रियप्रवास में महाकाव्योचित गरिमा और गुणों का विधान मिलता है। अपने समय की आवाज को हृदयंगम करते हुए हरिऔध ने प्रियप्रवास को प्रस्तुत किया है। सही अर्थों में प्रियप्रवास आकार और गुण दोनों की दृष्टियों से महाकाव्य है।

प्रियप्रवास के दोषों की विवेचना भी की जाती है। जो किसी सीमा तक ठीक भी है किन्तु इससे उसके महाकाव्यत्व पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। कहा जाता है कि "प्रियप्रवास का विस्तारवाद ऊब पैदा करता है, कवि मात्र का कथन करना चाहता है, उसकी व्यंजना का प्रयत्न कम करता हैं, अतः गलदश्रु भावुकता की अधिकता हो गई है। प्रियप्रवास की कला में सूक्ष्मता नहीं है। मनोहर कल्पना की ऊंची उड़ानें नहीं हैं। दृष्टि की वह बारीकी नहीं है जो आज के काव्यों की विशेषता है। पदार्थ के समग्र चित्रण का प्रयत्न अधिक है, अनजान पार्श्वोद्‌घाटन में कवि को अधिक सफलता नहीं मिली है। सबसे बड़ी कमी है विचारों और आदर्शों की घोषणाओं की। चरित्र-चित्रण में अन्तर्द्वन्द नहीं है, विशेषणों की भरमार है। कथावस्तु की

संकीर्ण बना कर फिर उसे फुलाने का प्रयत्न किया गया जैसे बहुत थोड़ी रबड़ से बने हुए गुब्बारे को हवा भर कर उसे क्षितिज तक फुलाने का प्रयत्न किया जा रहा हो ।'

विद्वानों के मत—पंडित विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने प्रियप्रवास और साकेत दोनों को ही साहित्य की नई विधा एकार्थ काव्य के अन्तर्गत रखा है। विस्तार और मोड़ का प्रश्न सापेक्षित है, अप्रत्याशित मोड़ों के लिए कल्पित कथानकों में अधिक गुन्जाइश रहती है। डॉ गुलाबराय का मत है कि सर्गो और छन्दों की दृष्टि से प्रियप्रवास में महाकाव्य का पूर्ण निर्वाह हुआ है। इसमें महाकाव्य के वर्ण्य-विषय भी प्रायः सभी आ गये हैं। वर्ण्य-विपय के अन्तर्गत प्राकृतिक चित्रण में वे आचार्य केशवदास से प्रभावित हैं।

आचार्य वाजपेयी ने भी प्रियप्रवास को महाकाव्य माना है। श्री पंडित रमाशंकर शुक्ल रसाल ने भी प्रियप्रवास को महाकाव्य माना है। उन्होंने लिखा है कि खड़ीबोली में ऐसा सुन्दर, प्रशस्त, काव्यगुण सम्पन्न और उत्कृष्ट काव्य आज तक दूसरा निकला ही नहीं।

डॉ० प्रतिपालसिंह ने लिखा है कि प्रियप्रवास में भारतीय संस्कृति के महा प्रवाह का उद्घाटन भली प्रकार हुआ है तथा महच्चरित्र के विराट उत्कर्ष के प्रकटीकरण करने का यहां विराट आयोजन किया गया है। इसी कारण यह महाकाव्यों की श्रेणी में स्थान पाने का अधिकारी है।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास महाकाव्य है। इसमें संस्कृत आचार्यों तक के लक्षणों का ध्यान रखा गया है। कामायनी और साकेत जैसे आधुनिक युग के महाकाव्य हैं, वैसे ही प्रियप्रवास भी खड़ीबोली का प्रथम प्रगतिशील महाकाव्य है।

'प्रियप्रवास' का कला-पक्ष

कवि साधारण मनुष्य की अपेक्षा कुछ अधिक भावुक और विचारशील होता है किन्तु वह अपने अनुभव को अपने तक ही सीमित रखना नहीं चाहता है। वह अपने हृदय का रस दूसरों तक पहुँचा कर उनको भी अपनी तरह प्रभावित करने को उत्सुक रहता है। इस प्रकार काव्य के दो पक्ष हो जाते हैं—एक अनुभूति-पक्ष और दूसरा अभिव्यक्ति-पक्ष। इसको भाव पक्ष और कला पक्ष भी कहते हैं। पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा प्रतिपादित काव्य के चार तत्व (रागात्मक तत्व, कल्पना तत्व, बुद्धि तत्व और शैली तत्व) इन्हीं दो पक्षों से सम्बन्धित हैं। इन तत्वों में रागात्मक तत्व की प्रधानता है। इसका सम्बन्ध अनुभूति से है। कल्पना नये-नये चित्र उपस्थित कर दोनों को बल देती है। शैली तत्व का सम्बन्ध अभिव्यक्ति से है। इसमें मानसिक पक्ष रहता अवश्य है किन्तु इसमें बल कलात्मक बाह्य पक्ष पर ही है। बुद्धि तत्व अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों को औचित्य की सीमा से बाहर नहीं जाने देता।

प्रियप्रवास में भी अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही पक्षों का सुन्दर समन्वय हुआ है। कविवर श्री हरिऔधजी ने काव्य में इन दोनों ही पक्षों को बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता से सहेजा है। नीचे हम प्रियप्रवास के कलापक्ष का ही विवेचन करेंगे।

प्रियप्रवास की भाषा—भावों की अभिव्यक्ति का एक मात्र माध्यम भाषा ही है। इसलिए किसी भी कलाकार की कलाकृति का मूल्य निर्धारण करने के लिए भाषा ही श्रेष्ठ मापदण्ड है। सुन्दर एवं आकर्षक भाषा के बिना काव्यकृति में समुचित रस परिपाक असंभव है। भावों की अभिव्यक्ति में भाषा का वही कार्य है जैसा कि चमड़ी का शरीर के लिए। साहित्यकार और भाषा घनिष्ट रूप से सम्बन्धित हैं। वस्तुतः भाषा ही ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा साहित्यकार की योग्यता, रचना शक्ति और उसकी विषय-ग्राहकता का परिचय मिलता है। कलाकार की भाषा जितनी सशक्त होगी और जितनी अर्थवहन-सम्पन्नता होगी उतनी ही उसमें आकर्षकता विद्यमान रहेगी। इस कार्य की सफलता शब्द-ज्ञान और व्याकरण पर निर्भर करती है।

हरिऔध का साहित्य क्षेत्र में आगमन उस समय हुआ जब ब्रजभाषा को छोड़ द्विवेदी युगीन कलाकार खड़ीबोली अपनाने में संलग्न थे। ब्रज भाषा के पक्षपातियों का कहना था कि ब्रजभाषा के बिना साहित्य क्षेत्र में सरसता की स्रोतस्विनी नहीं बह सकती। इस क्षेत्र में (ब्रजभाषा के विरोध में) 'सरस्वती' का कार्य सराहनीय है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती में केवल खड़ीबोली की कविताएं प्रकाशित करने का पक्का निश्चय कर लिया। उनके इस निश्चय से उन कवियों पर विशेष प्रभाव पड़ा जो अपने आपको और अपने विचारों को प्रकाश में लाना चाहते थे। हरिऔधजी उन कवियों में से एक रहे हैं यद्यपि उनका कार्य-पथ द्विवेदीजी से भिन्न था।

प्रियप्रवास खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इस पर उसकी प्रमुख विशेषता यह है कि संस्कृत–वृत्तता का आश्रय लेकर चला है। यह आधुनिक युग में एक नया प्रयोग था। कवि प्रियप्रवास की भूमिका में स्वयं लिखते हैं—

"यह काव्य खड़ीबोली में लिखा गया है। खड़ीबोली में छोटे-छोटे कई काव्य ग्रथ अब तक लिपिबद्ध हुए हैं परन्तु उनमें से अधिकांश सौ दो सौ पदों में ही समाप्त हैं, जो कुछ बड़े हैं वे अनुवादित हैं, मौलिक नहीं। सहृदय कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त का 'जयद्रथ वध' निःसंदेह मौलिक ग्रंथ है, परन्तु यह खण्डकाव्य है। इसके अतिरिक्त ये समस्त काव्य अन्त्यानुप्रास विभूषित हैं। इसलिए खड़ी बोलचाल में मुझको एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता दीख पड़ी जो महाकाव्य हो और ऐसी कविता में लिखा गया हो जिसे भिन्नतुकांत कहते हैं। मैंने पहले इस ग्रन्थ का नाम 'ब्रजांगना-विलाप' रखा था, किन्तु कई कारणों से मुझको यह नाम बदलना पड़ा, जो इस ग्रन्थ के समग्र पढ़ जाने पर आप लोगों को स्वयं अवगत होगा।"

'प्रियप्रवास' की भाषा संस्कृत-गर्भित है। उसमें हिन्दी के स्थान पर संस्कृत का रंग अधिक है। अनेक विद्वान सज्जन इससे रुष्ट होंगे और कहेंगे कि यदि इस भाषामें 'प्रियप्रवास' लिखा गया तो अच्छा होता यदि संस्कृत में ही यह ग्रन्थ लिखा जाता। कोई भाषा मर्मज्ञ सोचेंगे— इस प्रकार संस्कृत शब्दों को ठूंसकर भाषा के प्रकृत रूप को नष्ट करने की चेष्टा करना नितान्त गर्हित कार्य है। इस विचार के लोगों से मेरी विनीत प्रार्थना है कि क्या मेरे इस

ग्रन्थ से ही भाषा-साहित्य की शैली परिवर्तित हो जायेगी ? क्या मेरे इस काव्य की लेख-प्रणाली अब से सर्वत्र प्रचलित और ग्रहीत होगी ? यदि नहीं, तो इस प्रकार का तर्क समीचीन न होगा। हिन्दी भाषा में सरल पद्य में एक से एक सुन्दर ग्रन्थ हैं। जहां इस प्रकार के अनेक ग्रन्थ हैं, वहां एक ग्रन्थ प्रियप्रवास के ढंग का भी सही। इसके अतिरिक्त मैं यह भी कहूंगा कि क्या ऐसे संस्कृति गर्भित ग्रन्थ हिन्दी में अब तक नहीं लिखे गये हैं ? और क्या समाज में वे समादृत नहीं हैं ? क्या रामचरित मानस, विनय पत्रिका और रामचन्द्रिका से भी 'प्रियप्रवास' अधिक संस्कृत गर्भित है ? क्या जिस प्रकार की संस्कृत गर्भित खड़ीबोली की कविता आजकल सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही है, 'प्रियप्रवास' की कविता दुरूहता में उससे आगे निकल गई है ? यह ग्रन्थ न्याय दृष्टि से पढ़ कर यदि मीमांसा की जावेगी तो कहा जावेगा, कभी नहीं। ऐसी दशा में मुझे आशा है कि इस विषय में मैं विशेष दोषी न समझा जाऊंगा। कुछ संस्कृत वृत्तों के कारण और अधिकतर मेरी रुचि से इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत गर्भित है, क्योंकि अन्य प्रान्त वालों में यदि समादर होगा तो ऐसे ही ग्रन्थों का होगा। भारतवर्ष भर में संस्कृत भाषा आदृत है। बंगला, मरहठी, गुजराती वरन् तामिल और पंजाबी तक में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। इन संस्कृत शब्दों को यदि अधिकता से ग्रहण करके हमारी हिन्दी-भाषा उन प्रान्तों के सज्जनों के सम्मुख उपस्थित होगी तो वे साधारण हिन्दी से उसका अधिक समादर करेंगे क्योंकि उसके पठन-पाठन में उनको अधिक सुविधा होगी और वे उसको समझ सकेंगे। अन्यथा हिन्दकी राष्ट्र भाषा होने में दुरूहता होगी, क्योंकि सम्मिलन के लिए भाषा और विचार का साम्य ही अधिक उपयोगी रहता है। मैं यह नहीं कहता कि अन्य प्रान्त वालों से घनिष्टता का विचार करके हम लोग अपने प्रान्त वालों की अवस्था और अपनी भाषा के स्वरूप को भूल जावें। यह मैं मानूंगा कि इस प्रान्त के लोगों की शिक्षा के लिए और हिन्दी भाषा के प्रकृत रूप की रक्षा के निमित्त साधारण व सरल हिन्दी में लिखे गये ग्रन्थों की ही अधिक आवश्यकता है, और यही कारण है कि मैंने हिन्दी में कतिपय संस्कृत गर्भित ग्रन्थों की प्रयोजनीयता बतलाई है, परन्तु यह भी सोच लेने की बात है कि क्या यहां वालों को उच्च हिन्दी से परिचित कराने के लिए ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता नहीं है ? और यदि है ! तो मेरा यह ग्रन्थ इसी कारण से उपेक्षित होने योग्य नहीं। जो सज्जन मेरे इतना निवेदन करने पर भी अपनी भौंह की बंकता निवारण न कर सकें, उनसे मेरी यह प्रार्थना है कि वे 'वैदही—वनवास'[1] के करकमलों में पहुंचने तक मुझे क्षमा करें, इस ग्रन्थ को मैं अत्यन्त सरल हिन्दी और प्रचलित छन्दों में लिख रहा हूं।

मैंने ऊपर लिखा है कि क्या "राम चरित मानस", रामचंद्रिका और विनय पत्रिका से भी 'प्रियप्रवास' अधिक संस्कृत गर्भित है ? मेरे इस वाक्य से संभव है कि कुछ भ्रम उत्पन्न होवे और यह समझा जावे कि मैं इन पूज्य

---

1. जहां से यह ग्रन्थ (प्रियप्रवास) छपा है। वहीं से 'वैदेही—वनवास' भी छप गया है।

ग्रन्थों के वन्दनीय ग्रन्थकारों से स्पर्द्धा कर रहा हूं और अपने कांच की हीरक खण्ड के साथ तुलना करने में सयत्न हूं। अतएव मैं यह स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर देता हूं कि मेरे उक्त वाक्य का मर्म केवल इतना ही है कि संस्कृत शब्दों के बाहुल्य से कोई ग्रन्थ अनादृत नहीं हो सकता। यह और बात है कि संस्कृत शब्दों का प्रयोग उचित रीति और चारु-रूपेण न हो सके और इस कारण से कोई ग्रन्थ हास्यास्पद और निंदनीय बन जावे। **(प्रियप्रवास की भूमिका से)**

उपर्युक्त अवतरण से आशय यह निकला कि (१) राष्ट्रभाषा हिन्दी का रूप संस्कृत–गर्भित होगा तथा (२) हिन्दी प्रदेश में उच्चकोटि के ग्रन्थ संस्कृत–गर्भित हिन्दी में लिखे जायेंगे।

हरिऔधजी के उपर्युक्त दोनों तर्कों को ही स्वीकारा जा रहा है। यह हमें मानना ही पड़ेगा कि हिन्दी का जो 'स्टैन्डर्ड' रूप विकसित हो गया है, उसक आधार संस्कृत की शब्दावली ही है। इसका मुख्य कारण देश की उच्चकोटि की शिक्षा–दीक्षा संस्कृत भाषा रही है। सांस्कृतिक वातावरण संस्कृतमय है अत: संस्कृत शब्दावली से जितने परिचित हैं या जितनी जल्दी परिचित हो जाते हैं, उतनी शीघ्रता के साथ अरबी, फारसी, और अंग्रेजी से परिचित नहीं हो पाते हैं और इनसे परिचित होकर भी इनसे राष्ट्रीय आत्मा का तादात्म्य नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त हिन्दी भाषा के सूक्ष्म भावों और उच्च विचारों को व्यक्त करने के लिए संस्कृत शब्दावली का सहारा ही लेना पड़ता है। अतः धीरे-धीरे हिन्दी संस्कृतमयी होती गई। काव्य में भावनाएं सूक्ष्म हो जाती हैं। अर्थों के पतले सूत्रों के लिए शब्दों की खोज में तद्भव और देशी शब्दों से काम नहीं चल पाता क्योंकि व्यावहारिक कार्यो के लिए ही ऐसे शब्द प्रयुक्त होते हैं। अर्थ की शुद्धता, विविधता और अस्फुट अर्थों की व्यंजना के लिए संस्कृत शब्द अपनाने पड़े हैं। वैज्ञानिक शब्दावली के लिए भी संस्कृत शब्दों का ही सहारा लेना पड़ा है और इस दिशा में हम बहुत आगे बढ़ चुके हैं। आधुनिक हिन्दी का श्रेष्ठ काव्य संस्कृतमय भाषा में है कथा साहित्य छोड़ कर आलोचना, काव्य, नाटक आदि विभिन्न अङ्ग। संस्कृत भाषा से अधिक प्रभावित हुए हैं, बंगला, गुजराती और मराठी में भी यही हुआ है। उपर्युक्त अनुच्छेद में कवि द्वारा स्वीकारे गये विचारों से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा का मान देने के लिए यह तो आवश्यक है उसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया जाय किन्तु इसका मतलब यह कदापि नहीं समझ लेना चाहिये कि उसमें भाषा के स्वाभाविक रूप का मार्ग ही रोक दिया जावे। वस्तुस्थिति तो यह है कि प्रत्येक भाषा स्वतंत्र रूप से विकसित होती है। वह अपनी पूर्ववर्तिनी और सामयिक भाषाओं से कुछ ग्रहण करती हुई अपनी सहज राह पर चलती रहती है। जिस तरह से एक बड़ी नदी में अनेक प्रकार का पानी बह कर आता है और वह किसी प्रकार की बाधा अटकाये बिना समुद्र में बह कर चला जाता है उससे नदी को वेग ही प्राप्त होता है उसी प्रकार भाषा में आगत शब्दावली से अवरोध उत्पन्न नहीं होता है। आगत शब्दावली के कारण जब भाषा का स्वाभाविक रूप बदल जाता है अथवा व्याकरण के स्थिर नियमों से बंध जाती है तो उसकी गति रुक जाती है। जैसा कि हरिऔधजी ने अपनी प्रियप्रवास की भूमिका में यह स्वीकार किया है कि इसके पश्चात के ग्रन्थों को मैं सरल भाषा में लिखूंगा।

यह सत्य है। प्रियप्रवास के पश्चात् हरिऔधजी के जितने भी काव्य प्रदर्शित हुए हैं उनकी भाषा सरल-सरस-प्रवाहपूर्ण खड़ीबोली है। उनमें कहीं भी शब्द अनावश्यक रूप से लादे नहीं गये। प्रियप्रवास के पश्चात् उन्होंने भाषा का दो रूपों में प्रयोग किया है एक तो 'वैदेही वनवास' की भावपूर्ण साहित्यिक भाषा और दूसरा 'चोखे चौपदे', 'चुभते चौपदे' तथा 'बोलचाल' की रचनाओं में यह दूसरे प्रकार की भाषा उर्दू पन लिए हुए जिसमें उक्ति वैचित्र्य तथा मुहावरों के प्रयोग की भरमार है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् अब विषय यह आता है कि क्या हरिऔधजी संस्कृत-निष्ठ भाषा-शैली के आदि प्रवर्तक थे? क्या उनसे पूर्व हिन्दी कवियों ने संस्कृत शब्दों का तनिक भी प्रयोग नहीं किया था? क्या इस प्रयोग की पृष्ठभूमि में उनकी पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना थी? इन शंकाओं का समाधान करना भी यहां आवश्यक होगा। हरिऔधजी ही सर्वप्रथम कवि नहीं थे जिन्होंने खड़ीबोली की कविता को संस्कृत का जामा पहनाया। उनके समकालीन कवि मैथिलीशरण गुप्त एवं श्रीधर पाठक ने भी अनेक कविताओं में संस्कृत के शब्दों की भरमार की है। सच्चाई तो यह है कि हिन्दी काव्य में यह परम्परा ऐतिहासिक रूप से विकसित हुई है। हिन्दी साहित्य की सर्जना अधिकांशतः पराधीन देश की जनता द्वारा की गई है। समय-समय पर ब्राह्मण धर्म के विरोध में बौद्ध तथा जैन धर्म एवं संस्कृतियों के विकास, मुसलमानों के अनेक शताब्दियों तक शासन और अन्त में अंग्रेजों के राज्य के कारण पाश्चात्य विचारों ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति और विचारधारा को विकलांग करने की चेष्टा की। इस चेष्टा में उन्हें सफलता भी मिली। इसी नियंत्रण के साथ ही साथ साहित्य में प्रतिक्रियावादी तत्व भी उभरते रहे और यही कारण है कि भारतीय साहित्य की अन्यान्य भाषाओं में सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए संस्कृत शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता रहा। हिन्दी में आदिकाल से आधुनिककाल पर्यन्त इस प्रकृति को विकसित होते हुए देखा जा सकता है। मध्यकाल में तुलसी, सूर तथा केशव ने सस्कृत के शब्दों का प्रचुर रूप से प्रयोग किया है। 'विनय पत्रिका' के पद सर्वथा संस्कृत शैली में रचे गये हैं और केशव को तो कठिन काव्य का प्रेत ही कहा जाता था। इतना ही नहीं 'हरिऔधजी' के परवर्ती कवियों ने भी संस्कृत निष्ठ भाषा का प्रयोग किया है जिनमें निराला, पंत, अनूपशर्मा तथा आनन्द कुमार के नाम विशेषोल्लेखनीय हैं, किन्तु यहां एक बात स्मरणीय है कि हरिऔध की शैली में युगानुरूप अभिधेयता तथा इतिवृतात्मकता है जबकि निराला की पंक्तियों में विषयानुरूप छंद-शब्द तथा रूप योजना एवं लाक्षणिक तथा नादात्मक सौंदर्य प्रायः सर्वत्र ही रहा है।

'प्रियप्रवास' में संस्कृत गर्भित खड़ीबोली को विशेष रूप से अपनाया गया है। इसलिए कवि का झुकाव बोलचाल की सरल भाषा से दूर संस्कृत-मयी पदावली को अपनाने की ओर अधिक रहा है, परन्तु ऐसा नहीं है कि कवि ने सरल एवं सुबोध बोलचाल की खड़ीबोली का प्रयोग ही नहीं किया। इसी कारण 'प्रियप्रवास' में हमें भाषा के दोनों रूप मिल जाते हैं अर्थात् यहां संस्कृत के तत्सम शब्द एवं समास-बहुला-पदावली युक्त भाषा का प्रयोग भी हुआ है। उदाहरण के लिए—

नाना भाव-विभाव-हाव-कुशला ग्रामोद ग्रापूरिता ।
लीला-लोल कटाक्ष-पात निपुणा भ्रू भंगिमा-पंडिता ।
वादि आदि समोद-वादन-परा आभूषणा भूषिता ।
राधा थी सुमुखी विशाल-नयना ग्रानन्द ग्रान्दोलिता ।

ग्रथवा

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय-कलिका-राकेन्दु-बिम्बानना ।
तन्वंगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीड़ा-कला-पुत्तली ।
शोभा वारिधि की ग्रमूल्य-मणि सी लावण्य लीलामयी ।
श्री राधा-मृदुभाषिणी मृगदृगी माधुर्य की मूर्ति थी ।

ग्रथवा

विमुग्धकारी मधु मंजु मास था ।
वसुन्धरा थी कमनीयतामयी ।
विचित्रता साथ विराजिता रही ।
वसंत वासंतिकता वनान्त में ।

ग्रौर इसके साथ ही यहां ग्रत्यन्त सरल, सरस एवं सुबोध बोलचाल की भाषा भी अपनाई गई है जैसे—

ग्रहह दिवस ऐसा हाय ! क्यों ग्राज ग्राया ।
निज प्रिय सुत से जो मैं जुदा हो रही हूं ।
ग्रगणित गुण वाली प्राण से नाथ प्यारी ।
यह ग्रनुपम थाती मैं तुम्हें सौंपती हूं ।

इसके साथ ही साथ निम्नांकित पंक्तियों की सरल मोहकता भी छिपाये नहीं छिप सकी है । कवि के शब्द हैं—

सब पथ कठिनाई नाथ हैं जानते ही ।
ग्रब तक न कहीं भी लाडिले हैं पधारे ।
मधुर फल खिलाना दृश्य नाना दिखाना ।
कुछ पथ-दुख मेरे बालकों को न होवे ।

यह है माता के स्नेह वत्सल भाव की सरलतम ग्रौर ग्रभिधात्मक व्यंजना जिसे हरिग्रौध प्रयत्न करने पर भी छिपा नहीं सके हैं। इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि हरिग्रौधजी ने खड़ीबोली हिन्दी का दोनों प्रकार से प्रयोग करते हुए दिखाया है कि साहित्यिक हिन्दी के दोनों रूप हो सकते हैं (१) विशुद्ध संस्कृति गर्भित रूप ग्रौर (२) बोलचाल का रूप । यद्यपि हरिग्रौधजी ने बोलचाल की भाषा में चुभते चौपदे, चोखे चौपदे ग्रादि कई ग्रंथ लिखे हैं ग्रौर वे सदैव मुहावरेदार बोलचाल की भाषा को ही ग्रधिक मार्मिक एवं प्रभावशालिनी मानते रहे, तथापि उनका विशेष झुकाव संस्कृत के तत्सम शब्दों से परिपूर्ण संस्कृत गर्भित खड़ीबोली की ओर ही रहा इस सम्बन्ध में ग्रापने 'फूल-पत्ते' की भूमिका में स्पष्ट लिखा है कि "ग्राजकल जिस भाषा में खड़ीबोली की कविता लिखी जाती है, वह बनावटी है, गढ़ी हुई है, ग्रसली बोलचाल की भाषा नहीं है । इन दिनों गद्य की भाषा भी यही है । यह भाषा ग्रब पढे लिखों में समझ ली जाती है ग्रौर दूर तक फैल गई है । इसमें संस्कृत शब्दों की भरमार है । इन दिनों इसका लिखना ग्रासान है, इसका ग्रभ्यास हो गया है, यह साहित्यिक भाषा बन गई है । संस्कृत

भाषा में उसके शब्दों में, उसके समासों में कैसा बल है, वह कितनी मीठी है, उसमें कितनी लोच है, कितना रस है, कितनी लचक है, कितनी गुञ्जाइश है, कितना लुभावनापन है, उसमे कितना भाव हे, कितना आनन्द है, कितना रंग रहस्य है, मैं उसे कैसे बतलाऊं । उसमें क्या नहीं है, सब कुछ है, उसमें ऐसे ऐसे सामान हैं, ऐसे ऐसे विचार हैं, ऐसे ऐसे साधन हैं, ऐसे-ऐसे रत्न हैं, ऐसे ऐसे पदार्थ हैं कि उनके बिना हम जी नहीं सकते, पनप नहीं सकते, न फूल-फल सकते हैं । उससे मुंह मोड़ कर हिन्दी भाषा के पास क्या रह जायगा ? वह कंगाल बन जायेगी ।.........हिन्दी भाषा की चोटी उसी के हाथ में है । ऊंचे ऊंचे विषय उसी की गोद में पलेंगे, उसी के सहारे हिन्दी भरी पूरी होगी । मैंने जो बोलचाल की ओर ध्यान दिलाया है, उसका इतना ही मतलब है कि एक रूप उसका भी रहे, जिससे वह सब कोर-कसर दूर कर अपनी किसी और बहनों से पीछे न रहे और इस योग्य बन जाये कि उसे लोग राष्ट्र भाषा के सिंहासन पर बैठा सकें ।[1]

कवि के उक्त कथन से स्पष्ट है कि वह समयानुकूल ही संस्कृत युक्त हिन्दी पदावली की ओर आकृष्ट हुआ है अन्यथा उसकी तो यही मान्यता है कि बोलचाल की खड़ीबोली ही समृद्ध और सम्पन्न होनी चाहिए । इन्हीं विचारों के कारण कवि ने प्रियप्रवास के रचना काल से ही साहित्य में दोनों भाषाओं का प्रयोग किया । प्रियप्रवास सन् १९१३ में पूर्ण हुआ और फल-पत्ते' सन् १९३५ में प्रकाशित हुआ । इससे स्पष्ट है कि २२ वर्ष की अवधि में कवि का भाषा विषय दृष्टिकोण समय के साथ बिलकुल बदल गया । क्योंकि प्रियप्रवास काल में कवि ने संस्कृत गर्भित खड़ीबोली को ही राष्ट्र भाषा पद के उपयुक्त समझा किन्तु फूल पत्ते तक आकर उसके बोलचाल में प्रयुक्त होने वाली खड़ीबोली को राष्ट्र भाषा पद के उपयुक्त स्वीकार कर लिया । इस प्रकार स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास की भाषा कवि के प्रयोग काल की भाषा है । वह उस समय हिन्दी का साहित्यिक रूप देख रहा था । जब उसने हिन्दी में शब्दों की कमी पाई तो हिन्दी की सजातीय एवं समान प्रवृत्ति वाली भाषाओं (उर्दू, ब्रज और संस्कृत) से अधिकाधिक शब्द लेकर उनकी पूर्ति आरम्भ कर दी । इस दृष्टि से काफी हद तक हरिऔधजी ने हिन्दी भाषा के स्वरूप का निर्धारण किया, जिसने आगे चल कर राष्ट्र भाषा पद भी प्राप्त कर लिया । इस प्रकार भाषा की दृष्टि से प्रियप्रवास एक महत्वपूर्ण काव्य है जिसमें कवि के भाषा सम्बन्धी प्रयासों को स्पष्टतः देखा जा सकता है । यह काव्य आज भी कवियों का मार्ग-प्रदर्शक बना हुआ है ।

शब्द चयन - प्रियप्रवास का शब्द विधान हिन्दी महाकाव्यों की परंपरा को नया रूप देने में अग्रणी है । समय और परिस्थिति की मांग के कारण प्रियप्रवासकार ने जो शब्द विधान अपनाया है वह एकदेशीय नहीं है । वस्तुतः प्रियप्रवास का कवि एक ओर तो संस्कृति के प्रति ममत्व प्रगट करता है और दूसरी ओर ब्रजभाषा के बहु-प्रचलित शब्दों को सम्मान देता है । अपनी इस प्रक्रिया में कवि को कई बार अरबी-फारसी

---

1. फूल-पत्ते दो चार बातें, पृ० २३-२४

और उर्दू की मंजिलों से भी गुजरना पड़ा है। शब्द-विधान के अन्तर्गत हमारा उद्देश्य यह बतलाना नहीं कि प्रियप्रवास में संस्कृत के कितने शब्दों का प्रयोग है, अपितु यह बतलाना है कि आलोच्य काव्य में संस्कृतेतर भाषाओं के कितने शब्द हैं क्योंकि संस्कृत की शब्दावली तो उक्त महाकाव्य के पद-पद में मिल सकती है। अतः उसे दुहराना उतना महत्वपूर्ण नहीं जितना अन्य भाषाओं के शब्दों का विवेचन और वर्णन करना है।

ब्रजभाषा के शब्द—कवि ने संस्कृत गर्भित भाषा का प्रयोग इसलिए किया कि वह इसे राष्ट्रभाषा के उपयुक्त समझता था। वस्तुतः इसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की बहुलता थी, किन्तु खड़ीबोली के विशुद्ध रूप में ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग करने के लाभ का संवरण भी कवि नहीं कर पाया है। इसका एकमात्र मुख्य कारण तो यह है कि कवि ने कविताओं का श्रीगणेश ब्रजभाषा में ही किया था और उस समय तक ब्रजभाषा ही काव्य की एकमात्र प्रमुख भाषा थी। इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा की कविताओं का संकलन भी कवि ने प्रकाशित कराया। इस प्रकार कवि ब्रजभाषा के माधुर्य एवं सरसता से इतना प्रभावित था कि विशुद्ध खड़ीबोली का प्रयोग (यह जानते हुए भी कि रचना संस्कृत-गर्भित खड़ीबोली में हो रही है) करते हुए भी ब्रजभाषा के अधिकांश शब्दों को अपना लिया है। यह बात दूसरी है कि वे शब्द ब्रजभाषा में अत्यन्त सरस और सुन्दर हों, परन्तु यहां खड़ीबोली के मध्य में उनकी रमणीयता एवं सरसता जाती रही है और वे शब्द भोंडे और ग्रामीण से लगने लगते हैं। उदाहरण के लिए—मुंडेर, छन-सुअन, ढिग, जुगत, ठौरों, यां, लांबी, मक, लैख, अकले, जोखें, बेंड़ी, घौल, फेर, कसर आदि। उपर्युक्त शब्दों के प्रयोग से कविता में किसी खास माधुर्य एवं सौन्दर्य की सृष्टि नहीं हुई है। इस प्रकार ये शब्द वर्णिक वृत्तों की पूर्ति के लिए ही लिये गये हैं। इस प्रकार ये शब्द काव्य सौन्दर्य में सहायक न हो कर उसके विघातक से जान पड़ते हैं।

ब्रजभाषा की क्रियायें—शब्दों के अतिरिक्त उपाध्यायजी ने ब्रजभाषा की क्रियाओं को भी खूब अपनाया है। उदाहरण के लिए जतलाना, उलहना, कढ़ना, सवना, बगरना, पैन्हना, पिन्हाना, दुरना, बसना, बिलपना, कलपाना, ताकना, जनाना, अवना, लौटालना, लसना, काढ़ना, बघना एवं बोधना आदि। यद्यपि ब्रजभाषा में ये सभी क्रियायें बड़ी सरस एवं भावबोधक मानी जाती हैं तथापि खड़ीबोली के अन्तर्गत इनको अनावश्यक रूप से थोपने के कारण ये भाव अभिव्यक्ति में सुन्दर एवं सुखद नहीं बन पाई हैं। कवि ने तो इनका प्रयोग भाषा की कमनीयता और सौंदर्य वृद्धि के लिए किया है किन्तु इनका प्रयोग उस स्थिति को न पहुंच कर उसके विघात ही गया। उदाहरण स्वरूप निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

(१) कालिंदी के पुलिन पर हो जो कहीं भी कढ़े तू।
पीला प्यारा वसन कटि में पैन्हते हैं फबीला।

(२) है पुष्प-पल्लव वही ब्रज भी वही है,
ए है वही न घनश्याम बिना जनाते।

यहां 'जनाते' और 'पैन्हते' क्रियाओं का प्रयोग अशोभनीय है तथा अरुचिकर है। प्रत्येक भाषा की अपनी गति एवम् प्रवृत्ति होती है। यदि उसमें किसी अन्य भाषा के शब्द या क्रियापदों को लाकर बैठाया जाय तो उसकी गति एवं सरसता में व्याघात उत्पन्न हो जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि किसी अन्य भाषा के क्रियापद लेने ही नहीं चाहिए, अपितु वे उसी स्थिति में लिए जा सकते हैं जबकि उस भाषा में अपने शब्दों एवं क्रियापदों की कमी हो। हरिऔधजी ने यहां अपनी भाषा में वृत्त या छन्द की सीमा एवं उसकी निदेशिता के विचार से ब्रजभाषा के शब्द अपनाये हैं उनके प्रयोग की अधिकता ने कहीं–कहीं भाषा की स्वाभाविक गति और सरसता को भी ठोस पहुंचाई है।

अन्य भाषाओं के शब्द—उपर्युक्त के अतिरिक्त हरिऔधजी ने अपने काव्य में कुछ अप्रचलित भाषाओं का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए फारसी के 'जुदा' शब्द को कई जगह अपनाया है। एक स्थान पर पंजाबी भाषा के 'वेले' शब्द का भी प्रयोग किया है जिसको 'समय' के अर्थ में प्रयुक्त किया है, किन्तु अन्य भाषाओं के शब्द अधिक नहीं हैं। आपने कतिपय उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग किया है।

विकृत शब्द—हरिऔध जी ने छंद के आग्रह से अथवा सरसता के अनुरोध से कुछ शब्दों का विकृत रूप में प्रयोग करना अधिक उपयुक्त समझा। उदाहरण के लिए जुगुत (युक्ति), छन-छन (क्षण-क्षण), अकले (अकेले). छिप्रता (क्षिप्रता), तीखी (तीक्ष्ण), गेह (गृह), लांबी (लम्बी), रतन (रत्न) जसुदा (यशोदा), पै (पर), माधो (माधव), ढीठ (धृष्ट), सँदेसा (संदेश), सरवस (सर्वस्व), मरम (मर्म), फेर (फिर), थिर (स्थिर) आदि।

विचित्र शब्द निर्माण—कहीं कहीं 'एक' की जगह 'यक' और 'श्यामघन' के स्थान पर 'श्यामघना' 'और' के स्थान पर 'औ' 'लौटाओं' के स्थान पर 'लौटाल', 'लसती' की जगह 'लसाती' आदि शब्दों का भी विचित्र प्रयोग किया है।

दीर्घ वर्णों का ह्रस्वी-करण और ह्रस्व का दीर्घीकरण—

मुरलि एक वजी इस काल ही।
सहित गोगण मण्डलि **ग्वालि** की।
तिमिर में जिसके उनका **शशी**।
जननि के जिय की सिगरी व्यथा।
जनमना अवनी पर **नारि** का।
रजनि भी करती अनुताप थी।

विचित्र शब्दावली का उदाहरण इस प्रकार है—

सकल गोकुल था यक तो दुःखी।
यह अवनि फटेगी औ समाजाऊंगी मैं।
महामना श्यामघना, लुभावना।
लौटाल श्यामघन को व्रज मध्य लाओ।
नाना भावों सहित नित है मंजुता से लसाती।

शब्द अपव्यय––प्रियप्रवास में शब्दों का अयव्यय भी खूब हुआ है। एक विशेषण से तो कवि को संतोष हो नहीं पाया है, इसलिए एक ही विशेषता के लिए मिलते-जुलते विशेषणों का प्रयोग इस काव्य में बहुतायत से किया गया है। उदाहरण के लिए अति, कल, वर, कलित, ललित, विलसित आदि शब्द ऐसे ही हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि प्रियप्रवास का शब्द-चयन छंद-चयन से प्रभावित है।

व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध प्रयोग––आलोच्य महाकाव्यों में कतिपय ऐसे स्थल भी हैं जहां पर कवि ने व्याकरण की ओर ध्यान न देकर नवीन ढंग से शब्दों का प्रयोग किया है। निम्न पंक्तियों में ऐसे कुछ अशुद्ध प्रयोगों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

(१) पलक लोचन की पड़ती न थी।

यहाँ पर कवि ने 'पलक' शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया है, जबकि हिन्दी में यह शब्द पुलिंग में प्रयुक्त किया जाता है।

(२) दश-दिशा अनुरंजित हो गई।

यहां पर 'दश' शब्द बहुवचन है अतः 'दिशाएं' तथा हो गयीं शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए––जबकि कवि ने एकवचन का ही प्रयोग किया है।

(३) हा हा खाया बहु विनय की और कहा खिन्न हो के।

यहां कवि ने 'हा हा खाई' के स्थान पर 'हा हा खाया' प्रयोग किया है, जो अव्यावहारिक है।

लोकोक्तियां एवं मुहावरे—हरिऔधजी मुहावरे और लोकोक्तियों के प्रयोग में बड़े ही सिद्धहस्त थे। इसके लिए उन्होंने एक वृहत् ग्रंथ 'बोलचाल' के नाम से लिखा है, जिसमें नाखून से लेकर चोटी तक जितने मुहावरे बनते हैं उन सबका प्रयोग करते हुए आपने कविता की है। 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' में भी आपने लोकोक्तियों और मुहावरों की भरमार कर दी है। आपके गद्य भी मुहावरे और लोकोक्तियों से आपूरित है, जिनके कारण भाषा में बड़ी सरलता, सरसता एवं स्पष्टता आ गई है। यह बात तो निर्विवाद सत्य है कि मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग से कोई भी भाषा अत्यन्त सशक्त, सरस और प्राणवान बन जाती है। उसमें भावों के निरूपण की एक अद्भुत क्षमता आ जाती है और वह उक्ति-सौष्ठव एवं अर्थ-गाम्भीर्य से परिपूर्ण होकर पाठक, श्रोताओं के हृदय में अल्हादकारिणी प्रतीत होती है। कवि ने आलोच्य महाकाव्य में भी लोकोक्तियों एव मुहावरों का प्रयोग करने की तनिक भी भूल नहीं की। समस्त में से कतिपय के उदाहरण निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत किये जा रहे हैं––

लोकोक्तियां—

१. आशा की है अमित महिमा धन्य है दिव्य आशा।
   जो छू के है मृतक बनते प्राणियों जिलाती।

२. नौका ही है शरण जल में मग्न होते जनों की।

३. वह कब टलता है भाल में जो लिखा है ।
४. अवनि में ललना जन जन्म को विफल है करती अनपत्यता ।
५. हा ! दुर्दैव प्रगल्मते ! अपटुता तूने कहां की नहीं ।
६. ऊंची न्यारी रुचित महिमा मोह से प्रेम की है ।
७. जो जी में है सुरसरित सी स्निग्ध धारा बहाता ।
बेटा ही है अवनि-तल में रत्न ऐसा निराला ।
८. कुल-कामिनी को स्वामी बिना सब तमोमय है दिखाता ।
९. ऊधो ! माता सदृश ममता अन्य की है नहीं होती ।
१०. प्रेमी का ही हृदय गरिमा जानता प्रेम की है ।

मुहावरे--

१. हृदय पर सांप लोटना–हा ! हा ! मेरे हृदय पर यों साँप क्यों लोटता है ।
२. पत्थरों को रुलाना–नाना बातें दुखमय कहीं पत्थरों को रुलाया ।
३. प्रेम में पगना–पूरा-पूरा दिवस पति के प्रेम में तू पगा है ।
४. लज्जा से मुंह छिपाना–वह मुख अपना है लाज से यों छिपाते ।
५. बातें करन न करना–बातें मेरी कमलिनियते । कान की भी न तूने ।
(६) देखने की ताब न लाना—वह दुख लखने की ताब क्या है न लाते ।
(७) समा बांधना—इधर था इस भांति समा बँधा ।
(८) दिन खोटे होना—दिन फल जब खोटे हो चुके हैं हमारे ।

प्रियप्रवास में गुणों का स्वरूप माधुर्य—प्रियप्रवास में हरिऔध जी ने माधुर्य गुण को निभाते हुए बड़ी सरस रचना की है । इस काव्य में वियोग एवं करुण की अविरल धारा बहती है इसलिए कवि ने अन्त:करण को पिघला देने वाले माधुर्य गुण का ही सर्वाधिक प्रयोग किया है । प्रियप्रवास के अधिकांश पात्रों के स्वर में करुण क्रन्दन, विरहावस्था, विक्षिप्तता, खिन्नता एवं शोकावस्था ही सुनाई पड़ती है इसलिए सर्वत्र कोमल पदावली युक्त इसी गुण का ही प्राधान्य है ।

उदाहरणस्वरूप इस पद को ही लिया जा सकता है—

हा ! वृद्धा के अतुल धन हा ! वृद्धता के सहारे ।
हा ! प्राणों के परम-प्रिय हा ! एक मेरे दुलारे ।
हा ! शोभा के सदन सम हा ! रूप लावण्य वाले ।
हा ! बेटा ! हृदय धन हा ! नेत्र तारे हमारे ।
कैसे होके अलग तुमसे भी आज मैं बची हूं ।
जो मैं ही हूं समझ नहीं सकी तो तुझे क्यों बताऊं ।
हाँ जीऊंगी न अब पर है वेदना एक होती ।
तेरा प्यारा वदन मरती बार मैंने न देखा ।

उक्त पद में कवि ने चित्त को पिघलाने के लिए जो मधुर पद योजना की है उसमें वियोग एवं करुणा के साथ-साथ माधुर्य गुण विद्यमान है।

ओज—प्रियप्रवास में यद्यपि प्रधानता तो माधुर्य गुण की है तथापि कवि ने ओज गुण को अपनाते हुए श्रीकृष्ण के शौर्य, पराक्रम एवं वीरता का वर्णन किया है। इस गुण के अनुकूल वीर, वीभत्स तथा रौद्र रस होते हैं। प्रमुखतया उत्साह तथा क्रोध स्थाई भाव ही ओज गुण के अधिक अनुकूल होते हैं। एक दिन ब्रज को पीड़ा देने वाले व्योमासुर को देखकर कृष्ण कहने लगे—

सुधार चेष्टा बहु व्यर्थ हो गई। न त्याग तू ने कु-प्रवृत्ति को किया।
अतः यही है अब युक्ति उत्तमा। तुझे वधूं में भव-श्रेय दृष्टि से।
क्षमा नहीं है खल के लिए भली। समाज—उत्सादक दण्ड योग है।
कुकर्म-कारी नर का उबारना। सुकर्मियों को करता विपन्न है।
अतः अरे पामर सावधान हो। समीप तेरे अब काल आ गया।
न पा सकेगा खल आज त्राण तू। सम्हाल तेरा वध वांछनीय है।

प्रसाद गुण—प्रियप्रवास में प्रसाद गुण तो सर्वत्र विद्यमान है। कवि ने इसी के माध्यम से अपने काव्य को सरस तथा सुमधुर तथा बोधगम्य बनाया है। केवल श्रवण या पठन मात्र से ही अर्थ समझा जा सकता है। निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य है—

यह सकल दिशायें आज रो सी रही हैं।
यह सदन हमारा है हमें काट खाता।
मन उचट रहा है चैन पाता नहीं है।
विजन-विपिन में है भागना सा दिखाता।
रुदन रत न जाने कौन क्यों है बुलाता।
गति पलट रही है भाग्य की क्यों हमारे।
उह! कसक समाई जा रही है कहां की।
सखि! हृदय हमारा दग्ध क्यों हो रहा है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त प्रियप्रवास की भाषा कुछ विशिष्ट गुणों से पूर्ण हैं जिनमें चित्रोपमता, वर्ण मैत्री, नाद सौंदर्य या ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता तथा व्यंजनात्मकता आदि हैं।

सार रूप में आलोच्य काव्य की भाषा अधकचरी नहीं ठहराई जा सकती है क्योंकि उसमें भाषा का वह रूप सुरक्षित है जो खड़ीबोली हिन्दी का प्राथमिक रूप है संस्कृत वृत्तता की सीमा-सुरक्षा हरिऔधजी के लिए अलंध्य विवशता थी। कवि ने वर्णिक वृत्तों और संस्कृत निष्ठता को अपनाते हुए भी भावानुकूल भाषा का सुन्दरतम रूप इस महाकाव्य में प्रस्तुत किया है। यों तो यह महाकाव्य है इसलिए कुछ कमजोरियां तो सहज ही खोजी जा सकती हैं। महाकवि के इस काव्य में शैली की स्थली पर कोमलकांत पदावली की शस्य-श्यामलता और अलंकारों की कमनीय कुसुमावली विराजती है। अतः यह सर्व सम्मति से स्वीकारा जा सकता है कि प्रियप्रवास एक अनूठी कृति है।

अलंकार

प्रियप्रवास संस्कृत से प्रभावित ग्रन्थ है, उसमें संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का प्रयोग किया गया है। अलंकारवादी आचार्यों ने अनेक प्रकार की युक्तियां देकर यह प्रतिपादित किया है कि अलंकार कविता की आत्मा के सौन्दर्य

को भी प्रकाशित करते हैं। प्रियप्रवासकार अलंकारों का कवि है, उसने अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है। शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का प्रयोग इस काव्य में मिलता है। 'अनुप्रास', 'यमक' और 'श्लेष' अलंकार का प्रयोग प्रिग्रप्रवास में कई स्थानों पर मिलता है। अनुप्रास का प्रयोग देखिये।

अनुप्रास के कई भेद होते हैं। 'छेकानुप्रास', वृत्यनुप्रास और अन्त्यनुप्रास के उदाहरणों को इस काव्य में देखा जा सकता है—

फूली फैली लसित लतिका वायु में मन्द डोली।
प्यारी-प्यारी ललित लहरें भानुजा में विराजी।
सोने की सी कलित किरणें मेदिनी ओर छूटीं।
कूलों कुन्जों कुसुमित वनों में जगी ज्योति फैली॥

इस उदाहरण में फूली-फैली में 'फ' और 'ल' की लसित-लतिका में 'ल' और 'त' की ललित लहरें में 'ल' की कलित-किरणें में 'क' की, कूलों कुञ्जों में 'क' की और जगी-ज्योति में 'ज' की एक-एक बार आवृत्ति होने के कारण छेकानुप्रास अलंकार है।

वृत्यानुप्रास के उदाहरणस्वरूप भी अनेक पंक्तियां प्रियप्रवास में पाई जाती हैं। एक उदाहरण देखिये—

काले-कुत्सित कीट का
कुसुम में कोई नहीं काम था।
कांटे से कमनीय कंज
कृति में क्या है न कोई कमी॥

श्रुत्यनुप्रास का उदाहरण इस प्रकार है—

कल मुरली निनादी लोमनीयांग शोभी।
अलि कुलमति लोप कुन्तली कांति शाली॥
अयि पुलकित अंके आज लौं क्यों न आया।
वह कलित कपोलों कान्त आलाप वाला।

अनुप्रास के अतिरिक्त 'यमक' का प्रयोग भी 'प्रियप्रवास' में मिल जाता है। निम्नांकित पंक्तियों में 'कलपाता' शब्द का प्रयोग देखिये जो यमक अलंकार के सन्दर्भ से कितना मनोहर बन गया है—

विलसित उर में है जो सदा देवता सा।
वह निज उर में है ठौर भी क्यों न देता।
नित वह **कलपाता** है मुझे कान्त हो क्यों।
जिस बिन **कल पाते** हैं नहीं प्राण मेरे।

इसके साथ ही 'लाल' शब्द के द्वयर्थक प्रयोग से सहज ही श्लेष का विधान हो गया है। एक तो पुत्र और दूसरे रत्न के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है।

विपुल धन अनेकों रत्न हो साथ लाये।
प्रियतम ! बतला दो लाल मेरा कहां है।
अगणित अनचाहे रत्न ले क्या करूंगी।
मम परम अनूठा लाल ही नाथ ला दो॥

अर्थालंकार--अर्थालंकार के प्रयोग से काव्य का सौन्दर्य बढ़ जाता है। कवि ने सादृश्यमूलक अलंकारों में 'उपमा' का सर्वाधिक प्रयोग किया है। उपमा के प्रयोग की पद्धतियों में आकृति सादृश्य, भाव सादृश्य, रंग सादृश्य के साथ-साथ मालोपमा, पूर्णोपमा के उदाहरण भी प्रियप्रवास में मिल जाते हैं।

आकृति सादृश्य--मकर के तन के कल केतु से।
लसित थे वर कुण्डल कान में ।।

भाव सादृश्य--फूले कंज समान मंजु-दृगता थी मत्तता कारिणी।
सोने सी कमनीय कांति तन की थी दृष्टि उन्मेषिनी ।।
राधा की मुस्कान की मधुरता भी मुग्धता-मूर्ति सी।
काली-कुन्चित लम्बमान अलकें थीं मानसोन्मादिनी ।।

इसी प्रकार रंग सादृश्याधारित उपमा देखिये—
गगन सांध्य समान सु-ओष्ठ थे
दसन थे युगतारक से लसे।
मृदु हँसी वर-ज्योति समान थी
जननि मानस की अभिनन्दिनी

उपमा अलंकार के प्रयोग में कहीं अमूर्त के लिए मूर्त, तो कहीं मूर्त के लिए अमूर्त, व कहीं अमूर्त के लिए अमूर्त और मूर्त के लिए मूर्त उपमानों का प्रयोग किया गया है। इनके अनेक उदाहरण प्रियप्रवास में मिल जाते हैं। कहीं-कहीं कवि चमत्कारातिशय की व्यंजना के लिए एक ही उपमेय के लिए विभिन्न उपमान जुटाने की ओर अग्रसर हुआ है। परिणामतः उपमानों की माला दिखाई देती है। ऐसे स्थलों पर वर्णन में प्रभावोत्पादकता और मार्मिकता देखने को मिलती है। कृष्ण के हृदय की समता के निमित्त दी गई उपमाओं की माला देखिये—

मृदुल कुसुम सा है औ तुने तूल सा है।
नव किसलय सा है स्नेह के उत्स सा है ।।

उपमा के अतिरिक्त प्रियप्रवास में उत्प्रेक्षा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, विरोधाभास, व्यतिरेक, संदेह, स्मरण, प्रतीप, भ्रांतिमान, विषम, परिकरोकुर, दृष्टान्त, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, विभावना और मानवीकरण आदि का प्रयोग मिलता है। इनके प्रयोग प्रियप्रवास में सहज ही मिल जाते हैं। कवि ने सायास इन्हें नहीं अपनाया है।

रूपक अलंकार—उपमा का ही एक अङ्ग है, किन्तु इसमें उपमेय की एकरूपता के कारण जो नव्य सौन्दर्य आ जाता है वह अतुलनीय है। उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियों को लिया जा सकता है—

१. रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका राकेन्दु बिम्बानना।
२. दमकती तब थी द्विगुणी शिखा।
महरि मानस मंजु प्रदीप की ।।

वस्तुतः कवि ने रूपों का अच्छा प्रयोग प्रियप्रवास में किया है। रूप के साथ ही सांगरूपक की परम्परा हिन्दी में प्राचीन है। हरिऔध के

प्रियप्रवास में भी प्रलम्ब सांगरूपकों को देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ कवि की ये पंक्तियां देखिये—

ऊधो मेरा हृदय तल था एक उद्यान न्यारा।
शोभा देतीं अमित उसमें कल्पना क्यारियां थीं।
न्यारे प्यारे कुसुम कितने भाव के थे अनेकों।
उत्साहों के विपुल विटपी थे महामुग्धकारी।
सच्चिन्ता की सरस लहरी संकुला वापिका थी।
नाना चाहें कलित कलियां थी लतायें उमंगे।
धीरे-धीरे मधुर हिलती वासना वेलियां थीं।
सद्वांछा के विहग उसके मंजु भाषी बड़े थे।

उत्प्रेक्षा अलंकार का सौन्दर्य भी देखिये—

सब नभ तल तारे जो उगे दीखते हैं।
यह कुछ ठिठके से शोक में क्यों पड़े हैं।
ब्रज दुख अवलोके क्या हुए हैं दुखारी।
कुछ *व्यथित बने से या हमें दीखते हैं।*

संदेह अलंकार—

क्या बात है मधुर इतना आज तू जो बना है।
क्या आते हैं ब्रज अवनि में मेघ सी कांति वाले।
या कुञ्जों में अटन करते देख पाया उन्हें है।
या आके है समुद परसा हस्त द्वारा उन्होंने।

इसमें एक वस्तु का द्विधात्मक ज्ञान होने के कारण सदेह अलंकार है। इसी प्रकार मिथ्या में सत्य की प्रतीति के कारण निम्नांकित पंक्तियों में भ्रान्तिमान अलंकार का सौन्दर्य देखते ही बनता है—

यदि वह पपिहा की सारिका या शुकी की।
श्रुति सुखकर बोली प्यार से बोलते थे।
कलरव करते तो भूरि जातीय पक्षी।
ढिग तरु पर आके मत्त हो बैठते थे।

अपह्नुति, व्यतिरेक, विभावना और विरोधाभास व मानवीकरण के उदाहरण देकर हम इस प्रसंग को बंद करते हैं, किन्तु यह समझना भूल होगी कि प्रियप्रवास में वे ही अलंकार मिलते हैं जो यहां उदाहरण के लिए दिए गए हैं ये उदाहरण तो स्पष्टीकरण के लिए दिए गए हैं—

अपह्नुति जिसमें प्रस्तुत का निषेध और अप्रस्तुत की स्थापना होती है—

वदन से तज के मिष धूम के।
शयन—सूचक श्वास समूह को।
झलमलाहट हीन शिखा लिये।
परम-निद्रित सा गृहदीप था।।

व्यतिरेक में उपमेय को उपमान के सौन्दर्य से बढ़ कर बताया जाता है—

मद्यों से भी अधिक जिसमें शक्ति उन्मादिनी है।
कैसे ऐसे मदन मद से वे न उन्मत्त होंगी।।

विभावना में बिना कारण के ही कार्य का घटित होना बताया जाता है—

श्यामा बातें स्मरण करके बालिका एक बोली।
रोते-रोते अरुण उसके हो गये नेत्र दोनों।।
ज्यों ज्यों लज्जा विवश वह थी रोकती वारिधारा।
त्यों-त्यों आंसू अधिकतर थे लोचनों मध्य आते।।

विरोधाभास—

सब तज हमने है एक पाया जिसे ही।
अयि! अलि। उसने है क्या हमें त्याग पाया।।

इसी प्रकार मानवीकरण का उदाहरण भी देखिये—

अविर्भूता गगन तल में हो रही है निराशा।
आशाओं में प्रकट दुःख की मूर्तियां हो रही हैं।
ऐसी जी में व्रज दुख दशा देख के था समाता।
भू-छिद्रों से विपुल करुणा-धार है फूटती सी।।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि "हरिऔधजी का कला विधान अत्यंत पुष्ट और समृद्ध है और उन्होंने अधिकांश प्राचीन अलंकारों को अपनाते हुए अपने काव्य कौशल को प्रकट किया है जिसमें कहीं भी भावों के निरूपण में व्याघात उत्पन्न नहीं हुआ है........कहीं कहीं तो भावों में अलंकारण के कारण मार्मिकता आ गई है। अपवादस्वरूप दशम सर्ग के सांगरूपक अवश्य लम्बे हो गये हैं, किन्तु सामान्यतः सरसता सुरक्षित है।"

छन्द

प्रियप्रवास निःसन्देह हिन्दी का सर्वप्रथम महाकाव्य है जिसमें संस्कृत के भिन्न तुकान्त वर्णवृत्तों का प्रयोग किया गया है। प्रियप्रवास मन्दाक्रान्ता, द्रुत विलम्बित, वंशस्थ, मालिनी, शिखरिणी, वसन्त तिलका और शार्दूल विक्रीड़ित छन्दों में लिखा गया है। हरिऔधजी इस क्षेत्र में पर्याप्त सफल हैं। उन्होंने विषय और भावानुसार ही छन्दों में परिवर्तन किया है। इन छन्दों के प्रयोग में न तो कहीं भाषा का भद्देसपन है और न गति और यति सम्बन्धी दोष है। यों धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी इनकी छन्द योजना की आलोचना भी कर गये हैं—"किन्तु किसी भी दशा में संस्कृत वृत्तों का आश्रयण हिन्दी की प्रतिभा के उपयुक्त नहीं हो सकता। प्रियप्रवास को पढ़ने से ऐसा लगता कि मानो संस्कृत के वर्णिक वृत्त अपनी राह से भटक गये हों और अरण्य रोदन कर रहे हों।"

प्रियप्रवास में जो छन्द प्रयुक्त हैं उनमें से कुछ को परिभाषा और उदाहरण सहित यहां प्रस्तुत किया जा सकता है—

मालिनी—इस छन्द का लक्षण यह है—नगण, नगण, मगण, यगण, और यगण का प्रयोग होता है—

। । ।, । । ।, S S, S ।, S , S ।, S S
अहह दिवस ऐसा हाय ! क्यों आज आया ।
निज प्रिय सुत से जो मैं जुदा हो रही हूँ ।।
अगणित गुणवाली प्राण से नाथ प्यारी ।
वह अनुपम थाती मैं तुम्हें सौंपती हूं ।।

वसन्ततिलका—वसन्ततिलका तमजा जगौ ग: अर्थात् तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु का प्रयोग होता है—

भू में रमी शरद की कमनीयता थी ।
S S । S, । । । S । । S । S S
नीला अनन्त नभ निर्मल हो गया था ।
थी छा गई ककुभ में अमिता सिताभा
उत्फुल्ल सी प्रकृति थी प्रतिभात होती ।।

वशंस्थ—

। S । S S । । S । S । S
भयंकरी प्रज्वलिताग्नि की शिखा,
दिवांधताकारिणि राशि धूम की ।
वनस्थली में वहु दूर व्याप्त थी
नितान्त घोरा ध्वनि त्रास-वर्द्धिनी ।।

द्रुत विलम्बित—नगण, भगण, भगण और रगण का प्रयोग होता है ।

। । । S । । S । । S । S
समय था सुनसान निशीथ का,
अटल भूतल में तम-राज्य था ।
प्रलय-काल समान प्रसुप्त हो ।
प्रकृति निश्चल, नीरव शांत थी ।

इसी प्रकार और भी उदाहरण स्वयं ही पुस्तक से देखे जा सकते हैं । निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास की छन्द योजना स्पष्ट और मनोहर है । हरिऔध ने संस्कृत के वर्णवृत्तों को अपना कर महाकाव्यों में एक नया द्वार खोला है । हां, कहीं-कहीं हरिऔध ने अपने छन्दों में पाठ-सौकर्य के लिए, लघु वर्णों को दीर्घ और दीर्घ वर्णों को लघु रूप में उच्चारण करने की स्वतन्त्रता अवश्य ग्रहण की है । हिन्दी, उर्दू तथा संस्कृत के छन्द शास्त्र में यह छूट अवश्य दी गई है ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रियप्रवास का कला पक्ष भावोद्घाटन में पर्याप्त सफल है । उसको भावानुरूपभाषा, संदर्भगत शब्द-चयन, भावोद्दीपक अलंकरण और विषयानुरूप छन्द योजना ने मिल कर एक अभिनव सुषमा प्रदान की है—

प्रियप्रवास में जीवन-दर्शन

प्रियप्रवास एक ऐसा महाकाव्य है जिसमें जीवन विषयक दर्शन आकार पा सका है । दर्शन से तात्पर्य किसी भी सैद्धान्तिक दर्शन से हो सकता है तो र्शन से तात्पर्य व्यावहारिक दर्शन से है । यों सामान्यत: दर्शन से जीवन

ज्ञाताओं ने विशद इसका मर्म यों है बताया।
सारे प्राणी अखिल जग के मूर्तियां हैं उसी की।।
होती आंखें प्रभृति उनकी भूरि-भूरि संख्यावती हैं।
सो विश्वात्मा अमित-नयनों आदिवाला अतः है।।

ब्रह्म की व्यापकता का संकेत भी प्रियप्रवास की इन पंक्तियों में मिल जाता है—

वे बातें हैं प्रकट करती ब्रह्म है विश्व-रूपी।
व्यापी है विश्व प्रियतम में विश्व में प्राण प्यारा।।

२. **कर्मों के आधार पर जीव की गति होती है।** भारतीय दर्शन के अनुसार जब आत्मा शरीर के बंधन को स्वीकार करती है, तब उसे जीव के नाम से अभिहित किया जाता है। इस जीव को कर्मानुसार नाना शरीर धारण करने पड़ते हैं। अन्त में जब वह अच्छे कार्य करता रहता है तो अन्त में सत्यलोक में चला जाता है।[1] शैवदर्शन में भी आत्मा को स्वतंत्र और जीव को परतंत्र माना गया है। इसके बंधन के विभिन्न कारण हैं। जैन दर्शन में भी जीव को कर्मों के कारण संसार-बंधन में पड़ा हुआ बतलाया गया है। बौद्ध भी जीव को कर्म-बंधन संयुक्त मानते हैं तथा इसकी मुक्ति अष्टमार्गिक बताई गई है। स्पष्ट है कि भारतीय दार्शनिकों ने जीव के बंधन के विभिन्न कारण बताये हैं।

सामान्य बात यह है कि मनुष्य सांसारिक बंधनों मे पड़ा रहता है। उसके बंधनों का कारण एक नहीं, अनेक हैं। जो व्यक्ति पाप कमाता है वह सांसारिक बंधनों में पड़ जाता है। पुण्यकर्मा व्यक्ति को सद्गति प्राप्त होती है। इसी को जीव की कर्मानुसार गति कहा गया है। हरिऔध ने प्रियप्रवास की कथा में जीवों की कर्मानुसार गति की व्याख्या प्रस्तुत की है। पूतना, कंस, कालीनाग, व्योमासुर, अघासुर आदि नारकीय जीव हैं जो कि अपने कर्मों का फल प्राप्त करते हैं। राधा व कृष्ण के पावन चरित्र हैं जिनके कारण उत्पीड़ित समाज भी उन्नति का मार्ग पा लेता है और अपने जीवन को सुखी और समृद्धि से परिपूर्ण कर सकने में समर्थ सिद्ध होता है। राधा और कृष्ण के पुण्य कर्मों से ही सम्पूर्ण ब्रजवासी सुखोपलब्धि करते हैं। राक्षसी रूप वाले व्यक्ति जब किसी शुभ आत्मावान को मारने की युक्ति व योजना बनाते थे तो वह अपने चिर संचित पुण्यों से ही बच जाता था। काव्य में कहा गया है—

पर किसी चिर संचित पुण्य से।
गरल अमृत अर्भक को हुआ।।
विषमयी वह होकर आप ही।
कवल काल भुजंगम का हुआ।।

राधा भी अपने शुभ कार्यों के माध्यम से कलह-जन्य दुर्गुणों को दूर कर देती थी, मलिन मन में व्याप्त सभी कालुष्य को धो देती थी, सभी प्राणियों के हृदयों में भावज्ञता का बीज बो देती थी और चिन्तामग्न घरों में शान्ति की धारा प्रवाहित किया करती थी—

खो देती थी कलह-जनिता आधि के दुर्गुणों को
धो देती थी मलिन-मन की व्यापिनी कालिमाएँ,

---

1. भारतीय संस्कृति कृति के आधार पर।

वो देती थी हृदयतल में बीज भावज्ञता का।
वे थीं चिन्ता विजित-गृह में शांति धारा बहाती।।

३. संसार परिवर्तनशील है, यहां जो भी घटित होता है वह सदैव एक जैसा नहीं रहता है। उसमें परिवर्तन होना अवश्यंभावी है। इसी प्रकार संसार के पदार्थों का उद्भव, विकास और ह्रास होता रहता है क्योंकि जगत के सभी जीव और सभी पदार्थ नित्य बनते-बिगड़ते रहते हैं। उपनिषदों में कहा गया है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते तेन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति।।

अर्थात् उस ब्रह्म से ही समस्त भूतों की उत्पत्ति होती है, वे कुछ समय तक स्थिर रहते हैं और अन्त में उसी में सब विलीन हो जाते हैं। भाव यह कि यह उत्पत्ति और विलीनता का कार्य सदैव चलता रहता है। कभी हरीतिमा शुष्कता में बदल जाती है तो कभी पर्वत मैदान और मैदान पर्वत हो जाते हैं। सुख-दुख का नियम भी संसार की परिवर्तनशीलता पर टिका हुआ है। संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक में भी संसार की परिवर्तनशीलता की ओर संकेत किया गया है—

'परिर्वातनशील संसारे मृतः कोवान जायते'

हरिऔधजी ने प्रियप्रवास में संसार की परिवर्तनशीलता की ओर संकेत किया है। वे संसार को चित्रकार–विश्वनियंता की सृष्टि मानते हैं जो सदैव दुख में डूबी रहती है, आनंदोपलब्धि नहीं कर पाती है। कवि की ये पंक्तियां देखिये:—

'धाता ने हो दुखित भव के चित्रितों को विलोका।'

संसार में जो दुख दिखाई देता है, उसका प्रमुख कारण परिर्वतन है क्योंकि क्षणांतर में ही सब कुछ बदल जाता है। उदाहरणार्थ थोड़ी देर पूर्व जिस पृथ्वी पर आनंद की सरिता प्रवाहित हो रही थी तथा प्रमोद का प्रवाह दिखाई देता था वहीं उसी रस-सिक्त पृथ्वी पर अब विषाद् का खर स्रोत बहता दिखाई देता है—

कुछ घड़ी पहिले जिस भूमि में,
प्रवहमान प्रमोद–प्रवाह था,
अब उसी रस-प्लावित भूमि में,
वह चला खर स्रोत विषाद का।

इसी प्रकार जहां थोड़ी ही देर पहले मधुर स्वरालाप सुनाई पड़ता था वहां अब नीरवता और शून्यता दिखाई दे रही है। यह परिवर्तन ऋतुओं में भी दिखाई देता है। कमल का सौन्दर्य भी बदल जाता है और उसकी पंखुड़ियां हिमपात से नष्ट हो जाती हैं। चन्द्रमा भी अपनी अमृतमयी कलाओं के द्वारा रजनी के सौन्दर्य और माधुर्य की वृद्धि करता हुआ जब पूर्ण विकसित होता है तभी राहु उसे निगल लेता है। आनन्द का सोता जिस घर में बहता है वह भी समय की परिवर्तनशील प्रवृत्ति के कारण दुख में बदल जाता है—

कमल का दल भी हिमपात से।
दलित हो पड़ता सब काल है।।
कल कलानिधि को खल राहु भी।
निगलता करता बहु क्लान्त है।।
सुख जहां निज दिव्य स्वरूप से।
विलसता करता कल नृत्य था।
अहह सो अति सुन्दर सद्म भी।
बच नहीं सकता दुख क्लेश से।।

४. नैतिक व्यवस्था या दृष्टिकोण—भारतीय दर्शन के अनुसार मानव जीवन में नैतिक व्यवस्था पर विशेष महत्व दिया गया है। भारतीय मनीषियों ने किसी न किसी प्रकार के 'ऋतु' को मानव जीवन के लिए अपेक्षित माना है। नैतिक व्यवस्था के कारण ही मानव उन्नतिशील जीवन बिता सकता है। इस नैतिक व्यवस्था को ही भर्तृहरि ने 'न्यायपथ' कहा है। हरिऔधजी ने प्रियप्रवास के अन्तर्गत इस नैतिक व्यवस्था और दृष्टिकोण को विशेष महत्व दिया है। राधा और कृष्ण के नैतिक आदर्श के माध्यम से कवि ने मानव जीवन को समुन्नत बनाने की प्रेरणा दी है। कवि ने यहां स्पष्ट बताया है कि "एक मानव अपने जीवन को नैतिक व्यवस्था द्वारा ही उन्नत बना सकता है—आदर के योग्य बना सकता है और उसे श्रेष्ठ और सदाचार सम्पन्न करके विश्ववंद्य बना सकता है।" इस कार्य के निमित्त प्रियप्रवास में अनेक संकेत दिये गये हैं। साथ ही साथ यह भी प्रतिपादित किया गया है कि उसे शांत और शिष्ट होकर जीवन व्यतीत करना चाहिए। सदैव मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए कभी कोई दुर्वृत्तता की बात मुख से नहीं निकालनी चाहिए और सदैव प्रियभाषी बनाना चाहिए—

बैठे होंगे निकट जितने शान्त औ शिष्ट होंगे।
मर्यादा का प्रति पुरुष को ध्यान होगा बड़ा ही।
कोई होगा न कह सकता बात दुर्वृत्तता की।
पूरा-पूरा प्रति हृदय में श्याम-आतंक होगा।।

नैतिक व्यवस्था का ही तकाजा है कि यदि कोई सबल निर्बल को सतावे तो उसे दण्डित करना चाहिए। सदैव ही रोगी, आपदग्रस्त व्यक्तियों की सेवा करनी चाहिए—

समाज उत्पीड़क धर्म-विप्लवी।
स्वजाति का शत्रु दुरन्त पातकी।
मनुष्य द्रोही भव-प्राणि-पुञ्ज का।
न है क्षमा योग्य वरंच वध्य है।
क्षमा नहीं है खल के लिए भली।
समाज-उत्सादक दण्ड योग्य है।।
कु-कर्म-कारी नर का उबारना।
सु-कर्मियों को करता विपन्न है।।

नैतिक जीवन बिताना किसी भी व्यक्ति के लिए गौरव की बात हो सकती है। जो मनुष्य इसका पालन नहीं कर सकता है, वह मनुष्य नहीं है।

वस्तुत: नैतिकता के लिए तो मनुष्य को अपने प्राणों का उत्कर्ष तक कर देना चाहिए। कृष्ण और राधा का जीवन इसी नैतिक व्यवस्था का उद्घोषक है। वे अनेक कष्टों का सामना करते हुए भी नैतिकता को सुरक्षित रखते हैं। वस्तुत: सम्पूर्ण प्रियप्रवास नैतिकता की ही व्याख्या प्रतीत होता है। कवि हरिऔध ने गोपियों और कृष्ण के प्रेम सम्बन्ध की अच्छी व्याख्या की है। कवि ने लिखा है कि जिस तरह अनेक तारिकायें अपने निर्मल चन्द्रमा में आसक्त रहती हैं, लाखों कमल कलियां एक सूर्य की प्रेमिकाएं हैं, उसी तरह यदि विपुल बालायें एक कृष्ण में अनुरक्त हैं तो इसमें अनहोनी या विचित्रता क्या है? देखिये तो सही कवि का कथन कितना सटीक है—

> आसक्ता हैं विमल विधु की तारिकायें अनेकों।
> हैं लाखों ही कमल कलियां भानु की प्रेमिकाएं।
> जो बालायें विपुल हरि में रक्त हैं चित्र क्या है?
> प्रेमी का ही हृदय गरिमा जानता प्रेम की है।।

५. **बन्धन के कारण**—संसार में जीव का बन्धन होता है। सांसारिक बन्धनों का कारण एक नहीं, कई हैं। भारतीय दार्शनिक अविद्या, मोह, ममता को ही बंधन का कारण मानते हैं। अविद्या का प्रभाव मनुष्य को अहंकारग्रस्त बना देता है। व्यक्ति भ्रमयुक्त हो कर करणीय अकरणीय का ज्ञान खो बैठता है। गीता में इसी बन्धन के लिए कहा गया है कि 'प्रकृति के सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण नामक तीन गुण होते हैं। इनमें से सतोगुण सुख में लगाता है, रजोगुण कर्म में लगाता है और तमोगुण ज्ञान को आवृत्त करके प्रमाद में लगाता है।"

इसके बावजूद भी यह सच है कि सांसारिक बन्धनों का कारण माया मोह और आसक्ति ही है। प्रियप्रवास में हरिऔध ने भी मोह को ही सारे अनर्थों की जड़ बताया है और कहा है कि "यह मोह ही प्राणी को नाना स्वार्थों और सुख की वासनाओं में लीन कर देता है जिससे उसका चित्त आवेगों और ममत्त्व से परिपूर्ण हो जाता है। यही मोह नन्द और यशोदा के मन में दिखाई देता है। वे मोहाविष्ट होकर कृष्ण के विरह में रोते कलपते हैं। "**मैं मानुंगी अधिक मुझमें मोहमात्रा अभी है**" कह कर राधा भी 'मोहाविष्टता' का परिचय देती है। यही मोह गोकुल वासियों को भी परेशान करता दिखाई देता है। प्रियप्रवास में मोह या आसक्ति जन्य वेदना का चित्र अंकित करते हुए यह दिखाने की चेष्टा की गई है कि मानव को अविद्या में ग्रस्त करने वाला यह मोह ही है। उद्धव का योग की शिक्षा देकर विक्षिप्त मन को सम्भालने का उपदेश इसी भूमिका का भाग है। वे यही कहते हैं कि हे गोपियों, तुम कृष्ण के प्रेमपाश में इतनी आबद्ध मत हो जाओ कि तुम्हें कष्ट का अनुभव करना पड़े। अपने विक्षिप्त मन से भ्रम को निकाल दो जिससे शुद्ध-सात्विक चित्त से शांति लाभ हो सके। उद्धव के द्वारा कहे गये ये शब्द देखिये—

> धीरे-धीरे भ्रमित-मन को योग द्वारा सम्हालो।
> स्वार्थों को भी जगतहित के अर्थ सानन्द त्यागो।।

भूलो मोहो न तुम लख के वासना-मूर्तियों को।
यों होवेगा दुख शमन औ शांति न्यारी मिलेगी ।।

व्रज की इस मोहाविष्ट रात्रि में राधा जाग्रतजीवना हो कर कुमुदिनी के समान सुशोभित होती रहती थी।

जैसी मोहावारित व्रज में तामसी-रात आई।
वैसे ही वे लसित उसमें कौमुदी के समा थी ।।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने बन्धन का प्रमुख कारण मोह को बताया है। इस मोह को त्यागने के पश्चात् ही सांसारिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

६. **श्रेयकारी साधना**—श्रेय का सामान्य अर्थ कल्याण है। इसी से मिलता जुलता एक शब्द प्रेय है। प्रेय का अर्थ है प्रियतर। श्रेयकारी कार्यों या साधनों का स्पष्ट अर्थ यही है कि वे कार्य जो मानव कल्याण के लिए हितकारी हैं। संसार के श्रेय का अर्थ है वे कार्य जो जगतहित की कामना से किये जाते हैं। श्रेयकारी साधन एक नहीं अनेक हैं। प्रियप्रवासकार ने अनेक ऐसे हितकारी साधनों को काव्य का विषय बनाया है। डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने श्रेयकारी साधनों के संदर्भ से अनेक बातों का उल्लेख किया है—

१. निष्काम कर्म
२. सात्विक जीवन
३. विचारोच्चता
४. आत्मोत्सर्ग
५. विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रसार
६. परोपकार की भावना
७. निष्काम भक्ति-भावना
८. स्वार्थहीन सेवा
९. कर्त्तव्यपरायणता
१०. जीवनोन्नति का चरमलक्ष्य लोकहित
११. आत्मसाक्षात्कार।

१. **निष्काम कर्म**—हरिऔधजी कर्मवादी थे। वे उन कार्यों को प्राथमिकता देते थे जो कि कामनाहीन हो कर किये जाते थे। अनासक्ति से किये गये कार्य ही निष्काम कर्म की अभिधा से मण्डित किये जाते हैं। भगवत्गीता में भी निष्काम कर्म योग की व्याख्या की गई है। कृष्ण ने अर्जुन से गीता में यही कहा कि हे धनंजय तू आसक्तिहीन होकर कर्म कर, तेरी सफलता निश्चित है—

योगस्थः कुरूकर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धियसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ।।

हरिऔध ने कृष्ण के जीवन के माध्यम से इसी निष्काम कर्म को व्याख्यायित किया है। वे प्रियप्रवास में योगी की भांति आचरण करते दिखाई देते हैं। जगतहित की कामना में संलग्न कृष्ण यह नहीं चाहते कि मुझे इसके बदले में कोई फल मिले। वे बड़ों की सेवा करते हैं तथा गुरुजनों

के सहायक हैं आर्तों और पीड़ितों को सुख और शांति देते हैं। उनके विचार में आपत्ति के समय में सहायता करना और बिना किसी फल की कामना से महान पुरुषोचित कर्म है। कवि ने लिखा है—

ऐ संतप्ता-विरह-विधुरा गोपियों किन्तु कोई।
थोड़ा सा भी कुवेर-वर के मर्म का है न ज्ञाता।।
वे जी से हैं अवनिजन के प्राणियों के हितैषी।
प्राणों से है अधिक उनको विश्व का प्रेम प्यारा।।
अच्छे-अच्छे वहु-फलद औ सर्व लोकोपकारी।
कार्यों की है अवलि अघुना सामने लोचनों के।।
पूरे-पूरे निरत उनमें सर्वदा हैं विहारी।
जी से प्यारी व्रजअवनि में हैं इसी से न आते।।

इस प्रकार कवि की इन पंक्तियों से निष्काम कर्म की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। यह वह कर्म हैं जो सांसारिक जीवन को श्रेयकारी वनाते हैं। राधा का जीवन भी इसी भूमि का स्पर्श करता दिखाई देता है।

(२) **सात्विक जीवन**—मनुष्य को यदि अपने जीवन में उन्नति करनी है तो उसे सात्विक जीवन व्यतीत करना चाहिए जो छल-छद्म और राग-द्वेषों से परे पवित्रता और सादगी से भरा हुआ हो। इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने से सर्वत्र सुख और शांति प्राप्त होती है। श्रीमद्भागवत गीता में सात्विक जीवन व्यतीत करने के जो नियम-उपनियम बताये गये हैं, उनमें से सात्विक आहार, सात्विक दान, सात्विक कर्म, सात्विक त्याग, सात्विक बुद्धि और सात्विक सुखों के पालन का निर्देश दिया गया है।

प्रियप्रवास के अन्तर्गत कृष्ण का जीवन सात्विक है। उसमें सात्विकता है, निश्छद्मता है और है सरलता और शुचिता। वे राजसी वृत्ति से दूर सात्विकी वृत्ति को प्रधानता देते हैं। वे लोकोपकार की ओर विशेष ध्यान देते हैं। थोड़ी सी अवस्था में ही कृष्ण शुभ कर्मों की ओर झुके रहते थे। प्राय: सुसंगति, सुनीति और शिक्षा तो क्रमिक विकास पर आधृत है। मनुष्य का स्वभाव जैसा भी हो, अच्छा हो या बुरा, वह सभी स्वभाव से ही होता है—

थोड़ी अभी यदिच है उनकी अवस्था।
तो भी नितान्त रत वे शुभ-कार्य में हैं।
ऐसा विलोक वर-वोध स्वभाव से ही।
होता सु-सिद्ध यह है वह हैं महात्मा।।
विद्या सुसंगति समस्त सुनीति शिक्षा।
ये तो विकास भर की अधिकारिणी हैं।।
अच्छा-बुरा मलिन-दिव्य स्वभाव भू में।
पाता निसर्ग कर से नर सर्वदा है।।

कवि ने कृष्ण के लोकपावन और दिव्य चरित्र का वर्णन करके इसी सात्विकता का परिचय दिया है। इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य में सात्विक जीवन विताने का आदर्श उपस्थित किया है।

३. **विचारोच्चता**—मनुष्य के जीवन का निर्माण उसके विचारानुसार ही होता है। वह यदि उच्च विचारों का है तो उसके जीवन का विकास भी उसी आधार पर उच्च होगा। जो व्यक्ति प्रारम्भ से ही उच्च विचारों वाले होते हैं वे आगे चल कर उदार और विशाल हृदय बनते हैं। प्राचीन काल की शिक्षा और जीवनयापन पद्धति ही ऐसी थी कि मनुष्य के स्वभाव का विकास ही उदारता, सहिष्णुता और सदाशयता के साथ होता था। हरिऔध की मान्यता है कि यदि मनुष्य के विचार ऊंचे हों तो उसका जीवनगत विकास भी इसी स्तर पर होगा।

प्रियप्रवास में कृष्ण का चरित्र इसी प्रकार का है। कृष्ण के जीवन चरित के रूप में उच्च जीवन वाले का ही वर्णन किया गया है। हरिऔध ने बताया है कि "उन्नत आशय एवं उच्च विचार वाले व्यक्ति ही लोभ, मोह, माया, काम, क्रोध आदि जीत कर सारे समाज में सुख और शांति की धारा बहाने का कार्य करते हैं और पग-पग पर संकट में ग्रस्त जर्जर समाज को आनन्द और उल्लासपूर्ण बना कर सर्वत्र मानवता का प्रचार किया करते हैं। उच्चाशय और उच्च विचार वालों की विशेषता यह होती है कि वे मोह या वासना के शिकार होकर समाजसेवा या विश्व शांति के कार्यों से विमुख नहीं होते, अपितु कृष्ण की ही तरह पारिवारिक स्नेह, प्रियजनों का उत्कट प्रेम सखाओं की प्रीति आदि की परवाह न करके उत्तरोत्तर आगे बढ़ते रहते हैं। उनके सम्मुख किसी एक परिवार का सुख या आनन्द नहीं रहता है, वरन् वे सम्पूर्ण समाज और सम्पूर्ण विश्व में शांति और सुख की स्थापना करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं" इसी दृष्टिकोण का परिणाम है कि प्रियप्रवास के कृष्ण सभी को छोड़ छाड़कर मथुरा चले जाते हैं। वे सादा जीवन उच्च विचार के पक्षपाती रहे हैं। कृष्ण उच्च विचारों के व्यक्ति हैं। वे आत्मीय सुखों को उपेक्षापरक दृष्टि से देखते हैं और सभी के हित की कामना में संलग्न रहते हैं। स्पष्ट है कि कवि ने मानव जीवन को सुव्यवस्थित बनाने के लिए उसे भौतिकता से आध्यात्मिकता और राजसी से सात्विकी तथा पतित विचारों से उच्च विचारों की ओर प्रेरित किया है।

४. **आत्मोत्सर्ग** भी एक ऐसा ही साधन है जिसे अपना कर व्यक्ति अपने जीवन को उन्नत बना सकता है। आत्मोत्सर्ग की भावना के पीछे ही जीवन को उच्च बनाने की लालसा विद्यमान है। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' की भावना भी आत्मोत्सर्ग की एक प्रक्रिया है। आत्मोत्सर्ग का अर्थ है कि अपना कर्त्तव्य समझ कर स्वार्थहीन भावना से दूसरों का कल्याण करना। भारतीय मनीषियों के अनुसार "आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु" कह कर बताया है कि शरीर रथ है और उसका संचालनकर्त्ता आत्मा है। शरीर को आत्मा की सवारी नहीं करनी चाहिए। उपनिषदों का संदेश है कि यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानु पश्यति, सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति" अर्थात् जो व्यक्ति प्राणिमात्र को विश्वात्मा में पिरोये हुए मनकों की तरह देखता है और हर प्राणी में उसके शरीर को नहीं, परन्तु उसके आत्म तत्त्व को ही यथार्थ समझता है, उसी को वास्तविक ज्ञान है।

हरिऔध ने प्रियप्रवास में मानव जीवन की सफलता के लिए आत्मोत्सर्ग की महत्ता का वर्णन किया है। उनकी मान्यता है कि संसार में प्रायः बहुत से

प्राणी मुक्ति की कामना से तपस्या किया करते हैं, किन्तु उन्हें हम आत्मोत्सर्ग करने वाला नहीं कह सकते हैं। वे तो आत्मार्थी होते हैं। आत्मोत्सर्ग करने वाले सच्चे आत्मत्यागी वे होते हैं जो सभी प्रकार के राग-द्वेषों से रहित होकर जगत के हित और लोकसेवा में निरत रहते हैं। सामान्यतः सम्पूर्ण संसार मोहावृत है किन्तु कुछ ऐसे भी होते हैं जो निस्वार्थ भाव से आचरण करते हैं। कवि ने आत्मोत्सर्ग के विकास का वर्णन किया है। प्रियप्रवास में बताया गया है कि सबसे पहले सद्वृत्तियों के द्वारा हृदय में श्रेष्ठ गुणों का समावेश होता है उसी के कारण मानव-हृदय में प्राणिमात्र के निमित्त एक आसंग-लिप्सा जाग्रत होती है तत्पश्चात् संसर्गवश हृदय में सहृदयता का संचार होता है और फिर व्यक्ति आत्मोत्सर्ग की भावना से भर जाता है—

आदौ होता गुणग्रहण है उक्त सद्वृत्ति द्वारा।
हो जाती है उदित उर में फेर आसंग-लिप्सा।।
होती उत्पन्न सहृदयता वाद संसर्ग के है।
पीछे खो आत्मसुधि लसती आत्म-उत्सर्गता है।।

५. विश्व-बंधुत्व—मानव स्वभावत: अहंकारी होता है। वह अपने अहम् की तुष्टि के लिए अनेक कार्य करता रहता है। वस्तुतः मनुष्य का अहम् (अहकार) उसके जीवन को उन्नति प्रदान नहीं कर सकता है। विश्व-बंधुत्व की भावना से उत्पीड़ित मनुष्य ही जीवन में उन्नति कर सकता है। महाभारत में तो कहा भी गया है कि सम्पूर्ण परिवार के हित के लिए एक मनुष्य को त्याग देना ही श्रेयस्कर है, गांव के कल्याण के लिए और आत्मा-उद्धार के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी का ही परित्याग कर देना चाहिए। इस कथन में यह भावना निहित है कि मानव को व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़ कर विश्व बंधुत्व की भावना से संयुक्त होना चाहिए। मानव की श्रेष्ठता तभी सिद्ध हो पाती है जब कि वह मानव जाति के लिए कार्य करे—यही विश्व धर्म है।

हरिऔध ने प्रियप्रवास के माध्यम से वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को विशेष महत्व दिया है। कवि ने कृष्ण और राधा के दिव्यतम चरित्रों के माध्यम से यही प्रतिपादित किया है। ये दोनों ही पात्र परिवार, कुटुम्ब और बिरादरी को छोड़ कर विश्व-बंधुत्व की भावना में लीन हो जाते हैं। यह विश्व प्रेम कृष्ण को तो अपने प्रियजन, परिजन और प्राणों से भी अधिक प्रिय राधा तक को छोड़ने की प्रेरणा देता है। उधर राधा भी कृष्ण प्रेम को छोड़ कर विश्व-बंधुत्व की भावना से भर जाती है। 'प्रियप्रवास' में प्रत्येक स्थल पर इस विश्वबंधुत्व और विश्व प्रेम की भावना को देखा जा सकता है। यह जीवन के लिए उपयोगी तत्त्व है।

६. परोपकार—प्रायः देखा जाता है कि मानव जीवन में उसके स्वयं के कार्य और तत्सम्बन्धी आवश्यकताएं इतनी प्रबल हो जाती हैं कि वह परोपकार की बात तो सोचता तक नहीं है। वह दूसरों के हित की कामना से भर कर जब आत्मसुख की कामना छोड़ देता है तभी परोपकार जैसी हित-चिन्तना-वृत्ति का आविर्भाव होता है। परोपकार का महत्त्व सर्वविदित है। मेघ, नदी, वृक्ष और सरोवर सभी परोपकार की भावना से प्रेरित होकर ही कार्य करते दिखाई पड़ते हैं। भर्तृहरि की अनेक पंक्तियां में परोपकार की महिमा गाई गई है। एक दो उदाहरण देखिये—

पिवन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्नः
स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
धाराधरो वर्षति नात्म हेतोः,
परोपकाराय सतां विभूतयः ॥

और भर्तृहरि का यह श्लोक भी परोपकार की व्याख्या करता है—

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन ।
दानेम पाणिर्न तु कंकणेन ॥
विभाति कायः खलु सज्जनानाम ।
परोपकाराय न तु चन्दनेन ॥

हरिग्रौध ने प्रियप्रवास में इसी परोपकार के गुण गाये हैं। कृष्ण के विविध कार्य जिनसे जनहित और जन–समाज की भलाई होती है, प्रियप्रवास में चित्रित किये गये हैं। उदाहरणार्थ कालीनाग से जन-समाज की रक्षा, गोवर्धन पर्वत की कथा तीव्र दावाग्नि से बंधु–बांधवों की रक्षा करके परोपकार का कार्य ही प्रमाणित कराया गया है। कृष्ण का परोपकारी गुण ही उन्हें अल्पायु में 'नृरत्न' बना देता है। कृष्ण के परोपकार से ही निःसंतान व्यक्ति उन्हें पाकर अपने को सततिवान समझते थे। राधा भी कृष्ण के परोपकार व्रत में सहायक है। राधा की परोपकारी भावना ही तो उन्हें सज्जनों के सिरों की छाया, खलों की शासिका, कंगालों की परमनिधि, पीड़ितों की औषधि, दीनों की वहिन, अनाथाश्रितों की जननी और व्रजभूमि की आराध्या आदि की अभिधा दिलाने में सहायक हुई है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रियप्रवास का कवि परोपकार को जीवनोन्नति का साधन मानता है।

७. **निष्काम भक्ति**—भक्ति का विवेचन अलग से किया गया है। वहां बताया गया है कि निष्काम भक्ति क्या है तथा जीवन में इसका क्या उपयोग है। वस्तुतः निष्काम भक्ति से ही मनुष्य का हृदय विशाल होता है, अन्यथा मानव स्वार्थी और अहंकारी भावनाओं से ग्रसित होने के कारण ही सदैव तिरस्कृत किया जाता है।

८. **निस्वार्थ सेवा** भी जीवनोन्नति के लिए परम उपयोगी है। मानव अपने जीवन में जो भी करता है, वह सब स्वार्थ के कारण ही करता है, किन्तु यदि वह निःस्वार्थ भाव से सेवा करे तो उसकी जीवनोन्नति का मार्ग खुल सकता है। एक तो सेवा का कार्य ही उत्तम फलदायक होता है फिर निःस्वार्थ सेवा तो शतगुणित होकर फलप्रद होती है। हरिग्रौध ने प्रियप्रवास में इस सेवा भावना को सबसे अधिक महत्ता प्रदान की है। हरिग्रौध ने कृष्ण और राधा के निःस्वार्थ कार्यों की ही चर्चा की है। कृष्ण जो भी कार्य करते हैं वह निःस्वार्थ भाव से, उस कृत्य के पीछे कोई भी स्वार्थ नहीं है। जनहित की कामना से किये गये कृष्ण के सभी कार्य निःस्वार्थ सेवा के अन्तर्गत आयेंगे। राधा भी इसी परम्परा की एक कड़ी के रूप में सामने आती है। राधा तभी तो मूर्छित और संतप्त प्राणियों को गोद में लेकर जल के छींटे देकर, व्यजन डुलाकर उन्हें सचेत बनाने का प्रयत्न करती है, आकुल और बिलखते प्राणियों के संताप को दूर कर देती है। देखिये—

यह सहृदयता से ले किसी मूर्च्छिता को।
निज अति उपयोगी अङ्क में यत्न–द्वारा ।।
मुख पर उसके थी डालती वारि–छींटे।
वर--व्यजन दुलाती थी कभी तन्मयी हो ।।
कुवलय-दल बीधे पुष्प औ पल्लवों को।
निज--कलित करों से थी धरा में बिछाती ।।
उस पर यकतप्ता बालिका को सुलाके।
वह निज कर से थी लेप ठंडे लगाती ।।

स्पष्ट है कि राधा और कृष्ण दोनों ही निःस्वार्थ सेवा में लगे हुए हैं। यह निःस्वार्थ सेवा जीवनोन्नति का मार्ग बताती है।

९. **कर्त्तव्यपरायणता**—मानव जीवन के कल्याण के निमित्त कर्त्तव्य पालन भी आवश्यक है। समाज के प्रति, जीवन के प्रति और पारस्परिक सम्बन्धों के संदर्भ से कर्त्तव्यपरायणता का विशिष्ट महत्त्व है। हर आदमी को अपने जीवन के विकास के लिए नियत और निश्चित कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। इस के द्वारा ही मान व जीवन उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। हरिऔधजी ने कर्त्तव्यपरायणता पर पर्याप्त बल दिया है। कृष्ण कई स्थलों पर कर्त्तव्यपरायणता का संदेश देते हैं तथा उसके सम्बन्ध में वार्ता करते हैं। कर्त्तव्यपालन से मानव को सुकीर्ति प्राप्त होती है और उसे जीवन में आनंद प्राप्त होता है। "अपने समाज या अपनी जाति पर यदि संकट आ पड़ा हो तो उस समय संकट से मुक्त करना ही मानव का प्रधान कर्त्तव्य है, उस क्षण यही उसका प्रमुख धर्म है कि वह तन-मन-धन से स्वदेश या स्वजाति के उद्धार का प्रयत्न करे। उस समय यदि वह दूसरों को बचा लेता है तब तो उसके कर्त्तव्य का पूर्ण पालन हो जाता है और यदि किसी कारण उसकी मृत्यु हो जाती है तो भी कर्त्तव्यपालन के कारण उसे विश्व में सुकीर्ति प्राप्त होती है—कवि की स्पष्ट मान्यता है कि चेष्टारहित जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा सचेष्ट होकर मरना सदैव सुन्दर होता है—

रह अचेष्टित जीवन त्याग से।
मरण है अति चाथ सचेष्ट हो ।।

अतः यह निश्चित है कि मानव समाज में आदृत जभी होता है जबकि वह अपने लिए नियत और निश्चित कर्त्तव्य का पालन करता है। हरिऔध का यही संदेश है।

१०. **आत्मसाक्षात्कार**—मनुष्य संसार में विलास आदि में पड़ कर अपने असली रूप को भूल जाता है। यह ठीक नहीं है। सचाई यह है कि वह कहीं भी कोई भी कार्य करे उसे आत्मसाक्षात्कार सदैव करते रहना चाहिए। पहले आत्म निरीक्षण कर लेने के बाद ही मनुष्य दूसरों से कुछ भी कहने का अधिकारी होता है। अपने को भूल कर हमारा कल्याण नहीं है, इन सांसारिक बंधनों से छुटकारा नहीं है। पारस्परिक भिन्नत्व, फूट, वैमनस्य बढ़ता जा रहा है। इसके निवारण के लिए आत्मसाक्षात्कार आवश्यक है। हरिऔधजी ने मानव जीवन की इस विषमता के दूरीकरण के निमित्त प्रियप्रवास में आत्म-साक्षात्कर का परिचय दिया है। कवि ने अपनी वास्तविकता को पहचानने के

निमित्त राधा और कृष्ण के चरित्र के माध्यम से मानव-मात्र को आत्म-साक्षात्कार की प्रेरणा दी है। कवि की मान्यता है कि संसार में जो भी संघर्ष है, क्लेश है। उसका कारण अन्य कुछ नहीं है वरन् हमारी मानव जाति की भ्रांति है। यदि हम अपने असली रूप को पहचान लें तो कभी भी कष्ट का अनुभव नहीं होगा।

११ **जीवनोन्नति के लिए लोकहित की** भावना भी अनुकरणीय होती है। इसका विवेचन भी विभिन्न स्थलों पर विभिन्न संदर्भों में किया जा चुका है। यहां केवल इतना ही कहना है कि मानव को उन्नतिशील बनने के लिए लोकसेवा और तत्सम्बन्धी अन्य विशेषताओं का पालन करना आवश्यक है। प्रियप्रवास का उद्देश्य ही यह है कि पौराणिक प्रसंगों और संदर्भों के माध्यम से लोकसेवा और लोकहित का प्रचार और प्रसार किया जा सके। इसी भावना के निमित्त कवि ने चरित्रों, घटनाओं और विविध प्रेरणाओं की योजना प्रियप्रवास में की है। अतः स्पष्ट है कि जीवनोन्नति के लिए श्रेयकारी साधन परमावश्यक है और उनसे ही मानव का विकास सम्भव है।

निष्कर्ष—समस्त विवेचन के उपरान्त यह आसानी से कहा जा सकता है कि प्रियप्रवास में एक जीवन-दर्शन है और वह जीवन–दर्शन मानवोन्नति के मूलमंत्र का प्रदाता और विकासकर्ता है। वस्तुतः प्रियप्रवास में जो जीवन दर्शन आया है वह तत्कालीन संदर्भ और कवि की संवेदना का ही विकास है। हरिऔध के समय जो सुधारवादी और बौद्धिक आन्दोलन विकसित हो रहे थे वे मानव कल्याण के लिए थे। कवि ने उससे प्रभाव ग्रहण किया है और यह बताया है कि मानव–जीवन की उन्नति के जो सर्वोच्च साधन हैं वे यही हैं (जिनका विवेचन किया जा चुका है) इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रियप्रवास लोकहित का, लोकोपकार का और जीवन के व्यावहारिक सिद्धान्तों और आदर्शों की प्रतिष्ठा का महत्तम काव्य है। ऐसे काव्य समाज को नया रंग देकर नया मोड़ दे जाते हैं।

हिन्दी खड़ीबोली के महाकाव्य तथा प्रियप्रवास

प्रियप्रवास खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य है। इसमें जिस नवचेतना को स्थान मिला है वह सभी महाकाव्यों में पाई जाती है–अन्तर जो भी है वह टेकनीक और अनुभूति की सूक्ष्मता का है। आधुनिक काल में महाकाव्यों का प्रारम्भ द्विवेदी युग से ही हो सका है। भारतेन्दु युग में महाकाव्यों की रचना के लिए न तो उपयुक्त शिल्प ही था और न उपयुक्त वातावरण ही था। यही कारण है कि हरिऔध ने द्विवेदी युग की चेतना से निष्पन्न प्रियप्रवास नामक महाकाव्य हिन्दी जगत को प्रस्तुत किया है। इस युग में हरिऔध के अतिरिक्त रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त का नाम उल्लेखनीय है और आगे चल कर तो और भी अनेक महाकाव्य लिखे गये। प्रसाद छायावादी युग के सर्वोच्च महाकाव्यकार माने जा सकते हैं। यों तो महाकाव्यों की संख्या बहुत बड़ी है, किन्तु प्रियप्रवास के साथ प्रायः साकेत, कामायनी, वैदेही वनवास, साकेत संत और सिद्धार्थ का नाम महत्त्व के साथ लिया जा सकता है। बाद में और भी अनेक महाकाव्य लिखे गये हैं। प्रसिद्ध महाकाव्यों में ही दिनकर का उर्वशी और सुमित्रानन्दन पंत का लोकायतन

भी पिछले कुछ वर्षों में सामने आये हैं, परन्तु उनका विवेचन प्रियप्रवास के साथ करना उचित नहीं जान पड़ता है।

दिनकर की उर्वशी कामाध्यात्म की रचना है। वह अपने ढंग का महाकाव्य है। इसमें मनोविज्ञान की गहराई, प्रतिभा की सूक्ष्म ज्योति किरण और भावों की अपूर्व छवियां पाठक को जिस भावलोक में ले जाती हैं वह प्रियप्रवास से भिन्न स्तर का भावलोक है। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि भाव, कल्पना और विचार से परिपुष्ट उर्वशी की कविता में भावों को आन्दोलित करने, प्रबुद्ध कल्पना के सामने, मूर्त-अमूर्त के स्मरणीय चित्र अङ्कित करने और विचार को उद्‌बुद्ध करने की अपूर्व क्षमता है। नर-नारी का प्रेम, दर्शन की शब्दावली में काम तथा काव्यशास्त्र शब्दावली में रति, मानव जीवन की सबसे प्रबल वृत्ति है और उर्वशी का वही आधार विषय है। काम की अनुभूति के सूक्ष्म, प्रबल, कोमल-कठोर. तरल-प्रगाढ़, मोहक-पीड़क, उद्वेगकर और सुखकर, दाहक और शीतल, मृण्मय और चिन्मय अनेक रूपों का अत्यन्त मनोरम चित्रण है और सबसे अधिक आकर्षक है प्रेम की उस चिर अतृप्ति का चित्रण जो भोग से त्याग और त्याग से भोग अथवा रूप से अरूप और अरूप से रूप की ओर भटकती हुई मिलन तथा विरह में समान रूप से व्याप्त रहती है।

लोकायतन बृहदाकार काव्य है। इसमें लोक जीवन की संस्कृति के संदर्भ से मानव जीवन की व्याख्या की गई है। सुमित्रानंदन पंत के जीवन की संचित साधना का परिणाम इस काव्य के रूप में सामने आया है। इस काव्य में गांधीवादी, अरविन्दवादी और छायावादी तीन संदर्भों को एक साथ देखा जा सकता है। कवि का लक्ष्य समन्वयवादी प्रतीत होता है। अपने युग की तसवीर कहीं हल्के और कहीं गहरे रंगों में लोकायतन में मिलती है। लोक चेतना से अनुप्राणित यह लोक जीवन का महाकाव्य है। इस महाकाव्य को प्रियप्रवास के स्तर से उसी प्रकार ऊंचा मानना होगा जैसे कि उर्वशी को या कामायनी को। इन काव्यों में सैद्धान्तिक दर्शन की चर्चा मिलती है। इनका लक्ष्य वह नहीं है जो प्रियप्रवास का है। वस्तुतः ये काव्य काव्यात्मक और दार्शनिक भूमिका पर मनोवैज्ञानिक महत्व के काव्य हैं। इसके विपरीत साकेत और प्रियप्रवास की चेतना एक है, उनका आदर्श एक है, वह है मानवता या लोकहित। एक प्रकार से कामायनी में भी यही लोक-ध्वनि है, वह भी 'विजयिनी मानवता ंत्र से प्रेरित होकर लिखा गया है।

यहां पर प्रियप्रवास के साथ साकेत, कामायनी, वैदेही-वनवास, साकेत संत और सिद्धार्थ की विवेचना प्रस्तुत की जा सकती है। इन सभी की विवेचना के तुलनात्मक आधार निम्नलिखित विन्दुओं पर स्थिर किये जा सकते हैं—

१. वस्तु योजना
२. चरित्र योजना
३. प्रकृति चित्रण
४. युग संदेश
५. कलाभिव्यंजना

६. उद्देश्य और तज्जन्य
७. सफलता का निर्देश

वस्तु योजना—ये सभी महाकाव्य आधुनिक काल की चेतना से अनुप्राणित हैं किन्तु फिर भी इनकी वस्तु योजना में अन्तर भी है और साम्य भी है।

१ साम्य की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि सभी ने प्राचीन कथानकों के आधार पर अपनी कृतियों की सृष्टि की है। साकेत, प्रियप्रवास और कामायनी तीनों की कथा का आधार पौराणिक है। इनमें कहीं कृष्ण हैं तो कहीं राम हैं, कहीं वैदेही हैं तो कहीं भरत और कहीं सिद्धार्थ। सभी पात्र दिव्य हैं और किसी भी कथा के प्रमुख पात्रों में स्थान पाने के अधिकारी हैं।

२. इन सभी महाकाव्यों में कथा को नवीनीकृत किया गया है। नये और जागरुक कवियों ने अपने समय की समस्याओं से कथाओं को जोड़ दिया है। अतः इन महाकाव्यों की कथा में समकालीनता का संदर्भ भी प्रकट हो गया है। दूसरे सभी की कथा में बौद्धिक चेतना पर बल दिया गया है।

३. इन महाकाव्यों में प्रायः प्रियप्रवास, साकेत और कामायनी में कथा का अधिकांश भाग घटित न दिखा कर वर्णित ही दिखाया गया है अर्थात् प्रियप्रवास में तो कृष्ण के जीवन से सम्बन्धित अधिकांश घटनायें वर्णित हैं, घटित कम हैं या नहीं भी हैं। साकेत में बालकाण्ड की कथा, उर्मिला द्वारा अरण्यकाण्ड की कथा शत्रुघ्न द्वारा किष्किंधाकाण्ड और लंकाकाण्ड की कथा हनुमान द्वारा वर्णित दिखाई गई है। कामायिनी में देव सृष्टि के विनाश की कथा मनु के द्वारा तथा सारस्वत प्रदेश के समाचार की कथा स्वप्नरूप में वर्णित है।

४. ये महाकाव्य अपनी कथाओं के अन्तस् में भारतीय संस्कृति के तत्त्वों को छिपाये हुए हैं। इन महाकाव्यों में यह बताया गया है कि हमारी संस्कृति और हमारा देश कितना ही विदेशी आक्रान्ताओं से पददलित रहा हो किन्तु इसका पुरातन वैभव अभी भी सुरक्षित है।

५. लोकहित और विश्वव्यापी मानवता के लक्ष्य को इन सभी महाकाव्यों में बताया गया है। नारी जीवन की उज्ज्वल झांकी भी इन महाकाव्यों में मिलती है।

चरित्र योजना—वस्तु योजना की भाँति ही इन महाकाव्यों की चरित्र योजना को भी भुलाया नहीं जा सकता है। इन महाकाव्यों में जो चरित्र आये हैं वे सभी प्रमुख पात्र रहे हैं और सभी के चरित्र दिव्य और पावन भी रहे हैं। प्रियप्रवास के नायक कृष्ण हैं जो आदर्श सम्पन्न, परोपकारी और लोकहित की भावना से सम्पन्न हैं। हरिऔधजी के कृष्ण परम्परागत रूप से भिन्न नये रूप में सामने आये हैं। कृष्ण के चरित्र में व्यक्तिगत प्रेम के स्थान पर लोकमंगल की ही प्रधानता है।

वे जी से हैं अवनिजन के प्राणियों के हितैषी।
प्राणों से है अधिक उनको विश्व का प्रेम प्यारा॥

साकेत में राम को नायकत्व प्राप्त है। वे धीरोदात्त नायक हैं, किन्तु बीच-बीच में कवि ने उन्हें धीरललित और धीरोद्धत रूप में भी प्रस्तुत

किया है। वे स्पष्टवक्ता, निर्भीक और संयमी व्यक्तित्व से सम्पन्न हैं। उनके चरित्र का विकास स्वभावतः हुआ है। प्रारम्भ में तो लक्ष्मण को प्रेमी पति के रूप में ही चित्रित किया गया है—

क्यों न मैं मदमत्त गज सा झूम लूँ।
कर कमल लाओ तुम्हारा चूम लूँ॥

कामायनी महत्त्वपूर्ण रचना है। इसके नायक मनु हैं। वे देव संस्कृति के अवशिष्ट प्रतीक हैं। मनु का चरित्र प्रसादजी ने मानवीय आधार पर प्रस्तुत किया है। प्रेम, त्याग, ईर्ष्या, निर्वेद आदि सभी भावों का उत्कर्षापकर्ष कामायनी में दिखाया गया है—

चिन्ता ! आ, अवसाद ! घरे ले।
नीरवते ! वस चुप कर दे।
× ×
शून्य अङ्क मेरा भर दे॥

श्रद्धा के मिलने पर निराश मनु को जैसे सब कुछ मिल जाता है, किन्तु इसी बीच में इड़ा आकर स्वप्न को तोड़ देती है। श्रद्धाविहीन मनु एक क्षण के लिए भी इड़ा के सम्पर्क में सुखी नहीं रह पाते, अन्त में पुनः श्रद्धा से मिलने पर इच्छा, ज्ञान और क्रिया के समन्वय द्वारा मनु जीवन में आस्था का संचार करते हैं।

साकेत सन्त और सिद्धार्थ के नायक धीर प्रशांत हैं। लौकिक आकर्षणों से विरत होकर कर्त्तव्य के विशद मार्ग का ही वे अनुसरण करने वाले हैं। साकेत संत में भरत का जितना चित्रण किया गया है वह आधुनिक कई नायकों के व्यक्तित्व से बड़ा है, फिर भी उन्हें स्वतन्त्र रूप से नायक बना कर चित्रित करने का यह प्रयास स्तुत्य है। कथा का आधार मानस का भरत चरित्र है इस काव्य में आद्यन्त भरत का चरित्र निखरा हुआ है। साकेत की भांति ही कवि ने भरत-माण्डवी के प्रेमालाप का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। मानस के भरत के सारे गुण, त्याग, भ्रातृ-प्रेम, सेवा, दया, क्षमा, साधना आदि तो हैं ही, पर भरत की ग्लानि का विशद वर्णन इसमें प्रस्तुत किया गया है—

मेरे कारण ही अवध राम ने छोड़ा।
मेरे कारण तनु-बन्ध पिता ने तोड़ा॥
मेरे कारण यह दशा तुम्हारी माता।
दानव हूं दानव, विपुल व्यथा का दाता॥

नायकों के चरित्र चित्रण के अतिरिक्त इन काव्यों की नायिकाओं की ओर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि प्रियप्रवास की नायिका राधा है जो लोक संग्रह की भावना से अनुप्राणित है। राम काव्य की सीता की भांति उसका चरित्र भी उदात्त है। राधा श्रीकृष्ण के प्रेम को विश्व-प्रेम में परिणत कर लेती है। साकेत की उर्मिला राधा के समान आदर्श प्रेमिका न होकर पत्नी हैं। लक्ष्मण के साथ वैवाहिक जीवन का अनुभव उन्हें कुछ ही हो पाता है कि तभी राम के साथ चौदह वर्ष का वनवास करने के लिए चले जाते हैं। उर्मिला के विरह में तीव्रता होना स्वाभाविक है। राधा घर-घर

जाकर सेवा शुश्रूषा करती है तो उर्मिला राज प्रासाद में ही नगर की विरहिणियों को प्रणय पुरस्सर निमन्त्रण देती है। उर्मिला अवकाश के क्षणों को प्रियतम की स्मृतियों तथा अश्रु विमोचन के द्वारा प्रस्तुत करती है। कामायनी की नायिका श्रद्धा है जो कि आदर्श प्रेमिका, पत्नी तथा माता के रूप में अङ्कित की गई हैं। श्रद्धा ही चिन्तालीन मनु को जीवन के प्रति आस्था और कर्त्तव्यनिष्ठा का पाठ पढ़ाती हैं।

प्रकृति चित्रण—आधुनिक महाकाव्यों में प्रकृति चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है। प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन रूपों का वर्णन तो सभी महाकाव्यों मे मिलता है किन्तु इसके अलावा मानवीकरण के रूप में, मानव भावना सापेक्ष प्रकृति चित्रण कामायनी में पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

प्रियप्रवास तो आद्यन्त प्रकृति काव्य ही प्रतीत होता है। प्रकृति के सुकुमार और विराट चित्र प्रियप्रवास की वर्णन—पद्धति की अपनी विशेषतायें हैं। गुप्तजी प्रकृति के कवि नहीं हैं। वे भारतीय संस्कृति के व्याख्याता हैं। उन्होंने जो भी प्रकृति चित्रण किया है वह परम्परागत है। सत्य है कि प्रियप्रवास और कामायनी में ही प्रकृति को विशिष्ट स्थान मिल सका है। डॉ० सक्सेना ने प्रियप्रवास, साकेत और कामायनी के संदर्भ से लिखा है—इन तीनों ही काव्यों में देशगत, समाजगत और सांस्कृतिक विशेषताओं से युक्त प्रकृति की छटा का उल्लेख हुआ है और इन तीनों काव्यों में प्रकृति के बिम्बग्राही संश्लेषणात्मक चित्रों की भरमार है।

इतने पर भी यह सत्य है कि प्रियप्रवास व कामायनी का प्रकृति चित्रण साकेत की तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ है। यों तो प्रियप्रवास में भी देशकाल के विपरीत वर्णन मिलते हैं। "प्रियप्रवास में प्रकृति की सजीव झांकी तो है परन्तु भावक्षिप्त और संश्लिष्ट चित्रों की संख्या अधिक नहीं है, साकेत में भी यही दशा है, जबकि कामायनी में प्रकृति के भावक्षिप्त और संश्लिष्ट चित्र ही अधिक मात्रा में मिलते हैं और वहाँ लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता के द्वारा उन चित्रों को अधिकाधिक मर्मस्पर्शी और चित्ताकर्षक बनाने का प्रयत्न हुआ है।"

४. **युग संदेश**—इन महाकाव्यों के रचयिता महाकवि प्रसाद, हरिऔध और गुप्त युग जीवन के कवि रहे हैं। हरिऔध और गुप्त ने भारतीय संस्कृति को आदर्श माना है और हमारी ईश्वर—भावना का संशोधित रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है। प्रसाद ने अपने काव्य के द्वारा मानवता का अमर संदेश प्रसारित किया है तो गुप्त और हरिऔध ने जीवन और समाज के कल्याणकारी पक्ष को उद्घाटित किया है। लोकमंगल और परोपकार के साथ ही साथ भारतीय संस्कृति के विभिन्न संदर्भों को युगीन चेतना के साये में रख कर प्रस्तुत किया है। इन काव्यों की उन पंक्तियों को लीजिए जिनसे युग संदेश उद्घाटित होता है—

१. जी से प्यारा जगत हित औ लोकसेवा जिसे है।
प्यारा सच्चा अवनि तल में आत्म-त्यागी वही है॥

२. समाज उत्पीड़क धर्म विप्लवी।
स्वजाति का शत्रु दुरन्त पातकी॥

मनुष्य द्रोही भव प्राणि पुञ्ज का।
न है क्षमा योग्य वरच वध्य भी ॥

(प्रियप्रवास से उद्धृत)

३. संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस धरती को ही स्वर्ग बनाने आया ॥

४. प्रजा के अर्थ है साम्राज्य सारा ॥

(साकेत से)

५. विजयिनी मानवता हो जाय।

६. सबकी समरसता का प्रचार।
मेरे सुत सुन मा की पुकार ॥

७. हम उनन्य न और कुटुम्बी।
हम केवल एक हमीं हैं ॥

(कामायनी से उद्धृत)

८. न रक्त में वर्ण विभेद है सखे।
न अश्रु होते बहु जाति-पांति के।
समस्त भूमण्डल में विलोक तू।
समान-सू मानव जाति एक है !

(सिद्धार्थ से उद्धृत)

९. पुरुष है भाग्य विधाता आप।
अलस ही पाता है अभिशाप।
विज्ञ है कर्मपंथ आरूढ़।
दैव के बल पर रहते मूढ़ ॥

इन उद्धरणों से सिद्ध होता है कि सभी कवि अहिंसा, मानव-प्रेम, जीवन के प्रति अदम्य अनुराग कर्मनिष्ठा और राष्ट्र-प्रेम के सन्देशवाहक हैं। वे सभी व्यक्ति के पूर्ण विकास के लिए समाज के उद्धार संरक्षण एवं परिष्करण में विश्वास रखते हैं। प्रसाद और हरिऔध का दृष्टिकोण अधिक मानवतावादी है।

५. **कलाभिव्यजना**—इस युग के महाकाव्यों का कलापक्ष भी विवेचना का अधिकारी है। प्रियप्रवास और साकेत इतिवृत्तात्मक शैली के महाकाव्य हैं। कामायनी प्रतीकात्मक स्तर का महाकाव्य है। सिद्धार्थ आदि में मिश्रित शैली के दर्शन होते हैं। प्रियप्रवास की रचना संस्कृत की छाया में हुई है। उसमें संस्कृत निष्ठता के प्रति आग्रह दिखाई देता है। छन्दों में भी संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का प्रयोग किया गया है। प्रियप्रवास की यही संस्कृत निष्ठता सिद्धार्थ और अङ्गराज व वर्द्धमान महाकाव्यों में देखी जा सकती है। साकेत की भाषा पाण्डित्यपूर्ण नहीं है। उसमें बोलचाल का अंग और अभिधात्म शैली का ही रूप है। कामायनी शैली की दृष्टि से सफल महाकाव्य है। इसमें अभिधप्रधान शैली की अपेक्षा सूक्ष्म और लाक्षणिक शैली को अपनाया गया है। "वेदना की विवृत्ति प्रकृति का मानवीकरण तथा उदात्त कल्पना-रमणीयता के अतिरिक्त चित्रात्मक शब्द प्रयोग, अभिनव प्रतीक विधान तथा स्थूल अभिव्यक्ति के स्थान पर सूक्ष्म और वायवी रूप चित्रण

आदि कामायनी की शैलीगत विशेषतायें हैं।" भाव और कला के समुचित सामंजस्य के लिए प्रियप्रवास, साकेत और कामायनी अभिनव कृतियां हैं।

इन सभी महाकाव्यों में महाकाव्यों के सभी शास्त्रीय लक्षणों को थोड़े बहुत कमोवेश के साथ देखा जा सकता है। निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि 'प्रियप्रवास में जो कला अपने आरम्भिक रूप को लेकर प्रस्तुत हुई है और भाषा और भावों में गूढ़ता और गहनता की कमी है साकेत में वही कला कुछ विकसित अवस्था में दिखाई देती है क्योंकि यह काव्य द्विवेदी कालीन इतिवृत्तात्मकता और छायावाद युग की लाक्षणिकता के मध्य में लिखा गया है और कामायनी में यह कला चरम विकास पर पहुंच गई है जिससे उसमें ध्वनि की प्रधानता हो गई है और लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता का प्रावल्य हो गया है। प्रियप्रवास रस और अलंकार प्रधान काव्य है, साकेत में रस और अलंकारों के अतिरिक्त गुणीभूत व्यंग्य की प्रधानता है, और कामायनी ध्वनि काव्य है। प्रियप्रवास से लेकर कामायनी तक हमें कला के क्रमिक विकास के दर्शन होते हैं जिसमें साकेत इस विकास की कड़ियों को जोड़ने का कार्य कर रहा है।" स्पष्ट ही ये काव्य काव्यकला के आरम्भ, मध्य और उत्कर्ष की स्थिति की सूचना देते हैं।

६. **उद्देश्य**—प्रत्येक कृति सोद्देश्य होती है। आधुनिक युग के ये महाकाव्य भी 'सोद्देश्यता' में अकेले हैं। प्रियप्रवास का उद्देश्य समाज सेवा और लोकहित की अवतारणा है तो साकेत का लक्ष्य विरहिणी उर्मिला का जीवन प्रस्तुत करते हुए त्याग का आदर्श प्रस्तुत करना है।—'त्याग और अनुराग चाहिए बस यही त्याग का संचय प्रणय का पर्व है, के आधार पर साकेत का निर्माण हुआ है। 'कामायनी' **'विजयिनी मानवता हो जाय'** की मूल चेतना से अनुप्राणित महाकाव्य है। आधुनिक युग के ये सभी महाकाव्य अपने उद्देश्यों में सफल हैं। आधुनिक युग के संदर्भ में इनका उचित मूल्यांकन यही है कि ये सभी नवचेतना की प्रतीक धारिणी कृतियां हैं। अत: ये सभी काव्य मानव चेतना और समाज की हितचिन्तना के काव्य हैं।

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में जो महाकाव्य लिखे गये हैं वे खड़ीबोली के गौरव ग्रन्थ हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रियप्रवास का स्थान महत्वपूर्ण है। उसका महत्व वही है जो प्रारम्भिक कृतियों में किसी भी महाकाव्य का हो सकता है। सबसे महत्त्वपूर्ण देन तो यह है कि हरिऔध ने खड़ीबोली में महाकाव्य लिख कर हिन्दी के एक बहुत बड़े अभाव को पूर्ण किया। दूसरे संस्कृत के वर्ण-वृत्तों को खड़ीबोली की आकृति में 'फिट' किया। तीसरे महाकाव्यों के लिए एक नवीन शैली का सूत्रपात किया जिससे भविष्य में लिखे जाने वाले सभी काव्य अपने आधार पर लिखे जा सकें। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुभूति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रियप्रवास भले ही श्रेष्ठ महाकाव्य न हो किन्तु मौलिकता, नवीनता और प्राथमिकता की दृष्टि से उसके महत्त्व को झुठलाया नहीं जा सकता है। अत: स्पष्ट ही हिन्दी महाकाव्यों में प्रियप्रवास का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसके आगे के महाकाव्य किसी न किसी रूप में प्रियप्रवास के आगे की ही मंजिल पर खड़े हुए हैं। अत: प्रारम्भिक कृति के रूप में इसका महत्त्व सदैव रहेगा।

मनुष्य द्रोही भव प्राणि पुञ्ज का।
न है क्षमा योग्य वरच वध्य भी ॥

(प्रियप्रवास से उद्धृत)

३. संदेश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस धरती को ही स्वर्ग बनाने आया॥

४. प्रजा के अर्थ है साम्राज्य सारा॥

(साकेत से)

५. विजयिनी मानवता हो जाय।

६. सबकी समरसता का प्रचार।
मेरे सुत सुन मा की पुकार॥

७. हम उनन्य न और कुटुम्बी।
हम केवल एक हमीं हैं॥

(कामायनी से उद्धृत)

८. न रक्त में वर्ण विभेद है सखे।
न अश्रु होते बहु जाति-पांति के।
समस्त भूमण्डल में विलोक तू।
समान-सू मानव जाति एक है!

(सिद्धार्थ से उद्धृत)

९. पुरुष है भाग्य विधाता आप।
अलस ही पाता है अभिशाप।
विज्ञ है कर्मपंथ आरूढ़।
दैव के बल पर रहते मूढ़॥

इन उद्धरणों से सिद्ध होता है कि सभी कवि अहिंसा, मानव-प्रेम, जीवन के प्रति अदम्य अनुराग कर्मनिष्ठा और राष्ट्र-प्रेम के सन्देशवाहक हैं। वे सभी व्यक्ति के पूर्ण विकास के लिए समाज के उद्धार संरक्षण एवं परिष्करण में विश्वास रखते हैं। प्रसाद और हरिऔध का दृष्टिकोण अधिक मानवतावादी है।

५. कलाभिव्यजना—इस युग के महाकाव्यों का कलापक्ष भी विवेचना का अधिकारी है। प्रियप्रवास और साकेत इतिवृत्तात्मक शैली के महाकाव्य हैं। कामायनी प्रतीकात्मक स्तर का महाकाव्य है। सिद्धार्थ आदि में मिश्रित शैली के दर्शन होते हैं। प्रियप्रवास की रचना संस्कृत की छाया में हुई है। उसमें संस्कृत निष्ठता के प्रति आग्रह दिखाई देता है। छन्दों में भी संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का प्रयोग किया गया है। प्रियप्रवास की यही संस्कृत निष्ठता सिद्धार्थ और अङ्गराज व वर्द्धमान महाकाव्यों में देखी जा सकती है। साकेत की भाषा पाण्डित्यपूर्ण नहीं है। उसमें बोलचाल का अंश और अभिधात्म शैली का ही रूप है। कामायनी शैली की दृष्टि से सफल महाकाव्य है। इसमें अभिधप्रधान शैली की अपेक्षा सूक्ष्म और लाक्षणिक शैली को अपनाया गया है। "वेदना की विवृत्ति प्रकृति का मानवीकरण तथा उदात्त कल्पना-रमणीयता के अतिरिक्त चित्रात्मक शब्द प्रयोग, अभिनव प्रतीक विधान तथा स्थूल अभिव्यक्ति के स्थान पर सूक्ष्म और वायवी रूप चित्रण

आदि कामायनी की शैलीगत विशेषतायें हैं।" भाव और कला के समुचित सामंजस्य के लिए प्रियप्रवास, साकेत और कामायनी अभिनव कृतियां हैं।

इन सभी महाकाव्यों में महाकाव्यों के सभी शास्त्रीय लक्षणों को थोड़े बहुत कमोवेश के साथ देखा जा सकता है। निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि 'प्रियप्रवास में जो कला अपने आरम्भिक रूप को लेकर प्रस्तुत हुई है और भाषा और भावों में गूढ़ता और गहनता की कमी है साकेत में वही कला कुछ विकसित अवस्था में दिखाई देती है क्योंकि यह काव्य द्विवेदी कालीन इतिवृत्तात्मकता और छायावाद युग की लाक्षणिकता के मध्य में लिखा गया है और कामायनी में यह कला चरम विकास पर पहुंच गई है जिससे उसमें ध्वनि की प्रधानता हो गई है और लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता का प्रावल्य हो गया है। प्रियप्रवास रस और अलंकार प्रधान काव्य है, साकेत में रस और अलंकारों के अतिरिक्त गुणीभूत व्यंग्य की प्रधानता है, और कामायनी ध्वनि काव्य है। प्रियप्रवास से लेकर कामायनी तक हमें कला के क्रमिक विकास के दर्शन होते हैं जिसमें साकेत इस विकास की कड़ियों को जोड़ने का कार्य कर रहा है।" स्पष्ट ही ये काव्य काव्यकला के आरम्भ, मध्य और उत्कर्ष की स्थिति की सूचना देते हैं।

६. **उद्देश्य**—प्रत्येक कृति सोद्देश्य होती है। आधुनिक युग के ये महाकाव्य भी 'सोद्देश्यता' में अकेले हैं। प्रियप्रवास का उद्देश्य समाज सेवा और लोकहित की अवतारणा है तो साकेत का लक्ष्य विरहिणी उर्मिला का जीवन प्रस्तुत करते हुए त्याग का आदर्श प्रस्तुत करना है।—'त्याग और अनुराग चाहिए बस यही त्याग का संचय प्रणय का पर्व है, के आधार पर साकेत का निर्माण हुआ है। 'कामायनी' **'विजयिनी मानवता हो जाय'** की मूल चेतना से अनुप्राणित महाकाव्य है। आधुनिक युग के ये सभी महाकाव्य अपने उद्देश्यों में सफल हैं। आधुनिक युग के संदर्भ में इनका उचित मूल्यांकन यही है कि ये सभी नवचेतना की प्रतीक धारिणी कृतियां हैं। अतः ये सभी काव्य मानव चेतना और समाज की हितचिन्तना के काव्य हैं।

निष्कर्षतः यही कहा जा सकता है कि आधुनिक युग में जो महाकाव्य लिखे गये हैं वे खड़ीबोली के गौरव ग्रन्थ हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रियप्रवास का स्थान महत्वपूर्ण है। उसका महत्व वही है जो प्रारम्भिक कृतियों में किसी भी महाकाव्य का हो सकता है। सबसे महत्त्वपूर्ण देन तो यह है कि हरिऔध ने खड़ीबोली में महाकाव्य लिख कर हिन्दी के एक बहुत बड़े अभाव को पूर्ण किया। दूसरे संस्कृत के वर्ण-वृत्तों को खड़ीबोली की आकृति में 'फिट' किया। तीसरे महाकाव्यों के लिए एक नवीन शैली का सूत्रपात किया जिससे भविष्य में लिखे जाने वाले सभी काव्य अपने आधार पर लिखे जा सकें। इस प्रकार स्पष्ट है कि अनुभूति और अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रियप्रवास भले ही श्रेष्ठ महाकाव्य न हो किन्तु मौलिकता, नवीनता और प्राथमिकता की दृष्टि से उसके महत्त्व को झुठलाया नहीं जा सकता है। अतः स्पष्ट ही हिन्दी महाकाव्यों में प्रियप्रवास का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसके आगे के महाकाव्य किसी न किसी रूप में प्रियप्रवास के आगे की ही मंजिल पर खड़े हुए हैं। अतः प्रारम्भिक कृति के रूप में इसका महत्त्व सदैव रहेगा।

प्रियप्रवास का संदेश

कवि सवेदनशील और जागरुक कलाकार होता है। इसलिए उसकी रचना में कोई न कोई संकेत और कोई न कोई संदेश व्यंजित होता रहता है। यह क्यों होता है ? इसका उत्तर केवल यही कह कर दिया जा सकता है कि कवि अपने अभीष्ट को वर्णन की चतुराई से प्रस्तुत करने के अनन्तर एक ऐसा संदेश देना चाहता है जिसके आधार पर उसे और उसकी रचना को याद किया जा सके। प्रियप्रवास का कवि भी इसका अपवाद नहीं है। उसने भी जिस उद्देश्य से इस महाकाव्य की रचना की है, उसके साथ ही पाठकों और सामाजिकों को एक सदेश दिया है। उसने अपने समाज की फोटोग्राफी के साथ-साथ संदेश के द्वारा भी मानवता के मार्ग को प्रशस्त किया है। डा० सरनामसिंह शर्मा ने ठीक ही लिखा है—"हरिऔध के आदर्शों में एक विशेपता यह है कि उन्होंने काव्य के माध्यम से एक मत प्रस्तुत किया है और एक नये मार्ग की ओर संकेत किया है और वह है प्राचीन रूढ़ मूल्यों की नई व्यवस्था। वे समाज को सामने रख कर व्यक्ति के मूल्य को उसके सम्बन्ध से आँकते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे समाज के सामने एक विशिष्ट कार्यक्रम या नियत पथ का प्रदर्शन कर रहे हैं। ऐसे स्थलों पर कवि में उपदेशक प्रविष्ट होकर काव्य के मर्म को स्खलित कर देता है।"[1]

प्रियप्रवास में कवि ने राधा और कृष्ण तथा गोप-गोपियों के सम्बन्ध को ही ग्रन्थ का विषय बनाया है। उन्होंने अपनी स्वतन्त्र चेतना के द्वारा काव्य में अनेक नई व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं और इस प्रसंग के अन्तर्गत उसने अनेक संदेश दिए हैं। कवि ने प्रमुखतः समाज के लिए निम्नांकित विषयों का वर्णन करके उदात्त संदेश दिए हैं—

१. प्रणयपरक नव्य दृष्टिकोण
२. व्यक्ति और समाज
३. ईश्वर भावना के प्रति नया दृष्टिकोण
४. भक्तिभावना का नवीनीकृत रूप
५. व्यक्ति और प्रकृति

१. प्रणयपरक नवीन दृष्टिकोण—प्रियप्रवास प्रमुखतः विप्रलंभ शृङ्गार परक काव्य है। कृष्ण अनेक गोपियों के हृदय में विराजमान थे, किन्तु प्रमुखतः वे राधा के आराध्य देव थे। वे मथुरा नहीं जाना चाहते थे, किन्तु परिस्थितियों की अनिवार्यता उन्हें रोक भी नहीं सकती थी वे चले तो गये किन्तु गोपियों और राधा की स्मृति ने उनके हृदय को तीखी वेदना पहुंचाई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि राधा और कृष्ण का प्रणय सम्बन्ध शारीरिक आकर्षण से प्रारम्भ हुआ था और उसका विकास भी वैसे ही हुआ किन्तु उसकी चरम परिणति आत्मिक प्रेम के मार्ग से होती हुई लोक-प्रेम या विश्व प्रेम में हुई। वस्तुतः कवि आधुनिक युग के प्रेमियों के प्रणय व्यवहार के प्रति आस्था नहीं रखता है। हरिऔध का आदर्शवाद ही उन्हें व्यक्ति के समक्ष समाज को महत्ता दिलवा देता है। आज के जमाने में तो प्रेमी अपनी

---

1. डॉ० सरनामसिंह शर्मा : साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा पृ० ३ ६

प्रेयसी के लिए समाज, देश और परिवार छोड़ कर अलग जा बसने की कामना करता है, किन्तु प्रियप्रवास का प्रेमी ऐसा नहीं है। वह समाज और देश की अधिक चिन्ता करता है और वैयक्तिक प्रेम की कम। तभी तो कृष्ण और राधा दोनों ही अपने पारस्परिक प्रेम को तिलाञ्जलि देकर विश्व प्रेम में लीन हो जाते हैं। कवि को अन्त में कहना पड़ा है—

सच्चे स्नेही अवनि जन के देश के श्याम जैसे।
राधा जैसी सदय हृदया विश्व प्रेमानुरक्ता।
हे विश्वात्मा! भरत-भुवि के अङ्क में और आवें।
ऐसी व्यापी विरह घटना किन्तु कोई न होवे॥

यहीं पर यह विचारणीय है कि हरिऔध का प्रणय विषयक क्या आदर्श रहा है? इसका उत्तर प्रियप्रवास के षोडश सर्ग में मिलता है, जहां राधा ने मोह वासना और प्रेम के विषय में अपने उद्गार व्यक्त किये हैं। राधा के अनुसार संसारी व्यक्ति मोह के पाश में बंधे रहते हैं। यह मोह भावना ही हृदय में विकार उत्पन्न करती है। कवि ने प्रणय और मोह का बहुत ही स्पष्ट अन्तर बताया है। कवि के शब्दों में तो सच्चा प्रणय कुछ और ही है– वह शरीराकर्षण से दूर है तथा उसमें पर्याप्त शुचिता का भाव है। देखिये कवि का वर्णन इस प्रकार है—

"मूलीभूता इस प्रणय की बुद्धि की वृत्तियां है।
हो जाती हैं समधिकृत जो व्यक्ति के सद्गुणों से।
वे होते हैं नित नव तथा दिव्यता धाम, स्थायी।
पाई जाती प्रणय पथ में स्थायिता है इसी से॥"

o o o o

निष्कामी है प्रणय शुचिता मूर्ति है सात्विकी है।
होती पूरी प्रमिति उसमें आत्म उत्सर्ग की है।
हो जाते हैं उदय कितने भाव ऐसे उरों में।
होती है मोह वश जिनमें प्रेम की भांति प्रायः।
वे होते हैं न प्रणय न वे हैं समीचीन होते।
पाई जाती अधिक उनमें मोह की वासना है।
होके उत्कंठ प्रिय सुख की भूयसी लालसा से।
जो है प्राणी हृदय तल की वृत्ति उत्सर्ग शीला।
पुण्यकांक्षा सुयश रुचि वा धर्म लिप्सा विना ही।
ज्ञाताओं में प्रणय अभिधा दान की है उसी को॥

"वस्तुत: यह प्रेम हमें संघर्षपूर्ण जगत से पलायन करने की प्रेरणा नहीं देता प्रत्युत हमारे मन में जीवन्त उत्साह का संचार करते हुए हमारी मनोवृत्तियों को लोक कल्याण की ओर अग्रसर करता है। मोह जनित आकर्षण बादलों की धूप की भांति कुछ क्षणों के लिए मनुष्य को स्निग्ध शीतलता भले ही दे सके, किन्तु वह प्रणय की कौमुदी से उसके अतृप्त हृदय को अभिसिञ्चित् कदापि नहीं कर सकती। सच्चा प्रेम ही मानव प्रेम का वाहक होता है। उदात्त प्रेम की लब्धि तो त्याग में ही निहित है। वह आत्मा को विस्तीर्णता देता हुआ परमात्मतत्त्व तक ले जाता है, आंसुओं को

समुद्र में नहीं डुबोता है।" इसमें कोई संदेह नहीं कि हरिऔध की लेखनी से जिस उदात्त प्रेम की भूमिका तैयार हुई है वह अनुकरणीय है। राधा का चरित्र त्यागमय है। यहां पर राधा और कृष्ण दोनों ही परिष्कृत व्यक्तित्व लिए सामने आते हैं। यही कवि का अभिनव प्रणयपरक संदेश है जिसे कवि की लेखनी ने इस महाकाव्य में आकार दिया है।

२. **व्यक्ति और समाज**—प्रेम की अभिनवता के साथ-साथ प्रियप्रवास में व्यक्ति और समाजपरक सन्देश सुनाई पड़ता है। व्यक्ति समाज की सबसे छोटी इकाई है। व्यक्ति की उन्नति समाज की उन्नति है। यदि व्यक्ति का चरित्र निर्मल है तो समाज का शरीर भी पावन और दिव्य बन कर रहेगा। हरिऔध ने इसी कारण व्यक्ति की आत्मोत्सर्गता पर विशेष बल दिया है। कवि ने लिखा है—

भू में सदा मनुज है बहु मान पाता।
राज्याधिकार अथवा धन द्रव्य द्वारा।
होता परन्तु वह पूजित विश्व में है।
निःस्वार्थ भूत हित औ कर लोकसेवा।।

आत्मोत्सर्ग करने वाला व्यक्ति ही कर्म-क्षेत्र से घबराता नहीं है। कायरता की अपेक्षा इस प्रकार का व्यक्ति सचेष्ट रह कर मरण को श्रेयस्कर समझता है। प्रियप्रवास में बताया गया है कि बहुजनहिताय कष्टों को सहन करना ही मानव के जीवन के निमित्त महान सन्देश है। कवि की दृष्टि में विपत्ति में पड़े की रक्षा करना, असहाय का सहायक होना, अपने प्राणों की ममता छोड़ कर ही कल्याण का कार्य किया जा सकता है। इसके साथ ही यदि देशोद्धार के निमित्त कुछ कुमार्गियों का वध भी करना पड़े तो कोई बात नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कवि हरिऔध ने व्यक्ति और समाज के प्रारम्भिक कल्याणप्रद सम्बन्धों की व्याख्या करके जो सन्देश दिया है। वह मानवतावादी सन्देश है।

३. **ईश्वरभावना और धार्मिक भावना** के सम्बन्ध से भी कवि ने सन्देश दिया है। मनुष्य के मन में धार्मिक प्रवृत्तियों का समावेश सृष्टि के आदिकाल से ही रहा है। ईश्वर के प्रति भी नयी दृष्टि प्रियप्रवास के माध्यम से अपनाई गई है। इस सम्बन्ध में कवि ने स्वयं लिखा है—काल पाकर मेरी दृष्टि व्यापक हुई, मैं स्वयं सोचने विचारने और शास्त्र के सिद्धान्तों का मनन करने लगा। उसी के फलस्वरूप मेरे पश्चाद्वर्ती और आधुनिक काव्य हैं। भगवान कृष्णचन्द्र में अब भी मुझको श्रद्धा है, किन्तु वह श्रद्धा अब संकीर्णता, एकदेशीयता और अकर्मण्यदोष दूषिता नहीं है। ईश्वर एकदेशीय नहीं है, प्राणिमात्र में उसका विकास है—

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन्' जिस प्राणी में उसका जितना विकास है, वह उतना ही गौरव-गरिष्ठ है। उतना ही महिमामय है, उसमें उतनी अधिक उसकी सत्ता विराजमान है। मानव प्राणी समूह का शिरोमणि है, उसमें ईश्वरीय सत्ता समस्त प्राणियों से अधिक है। इसलिए वह प्राणि श्रेष्ठ है, अशरफुल मखलूकात। अतएव मानवता का चरम विकास ईश्वरत्व की प्राप्ति है। यही अवतारवाद है—

यद्यद् विभूदिमत्सर्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छत्वं मम तेजोऽश सम्भवम् ।।

यह बड़ा व्यापक और उदार सिद्धान्त है । संसार का प्रत्येक पुरुष इस सूत्र से मान्य, वन्द्य और आदरणीय है । मानवता त्याग कर ईश्वर की चरितार्थता नहीं होती, अतएव मानवता का निदर्शन ही मानवोन्नति का प्रबल साधन है । अवतारों का सम्बल मानवता का आदर्श ही था, क्योंकि विना इस मन्त्र का साधन किये कोई 'सर्वभूत हिते रतः' नहीं हो सकता है । अतएव उसको इसी रूप में देखने की आवश्यकता है जो उसका मुख्य रूप है और यही कारण है कि आजकल मेरा परिवर्तित मत यही है ।

प्रियप्रवास से (इस सन्दर्भ से) जो सन्देश निकलता है वह यही है कि कोई भी सांसारिक प्राणी लोकमंगल की भावना और आत्मोत्सर्गता से प्रेरित हो कर ही परमात्मा तक पहुंच सकता है । परमात्मा का आह्वान मानवात्मा में ही निहित है । राधा ने कृष्ण के जिस विराट व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया है वह किसी रहस्यदर्शी योगी की ही तरह नहीं अपितु एक आदर्श प्रेमिका के उदात्त दृष्टिकोण को ही विचार में रख कर किया गया है । देखिये—

पाई जाती विविध जितनी वस्तुएं हैं सबों में ।
मैं प्यारे को अमित रंग औ रूप में देखती हूं ।
तो मैं कैसे न उन सबको प्यार जी से करूंगी ।
यों है मेरे हृदय तल का भाव ऐसा निराला है ।
मैंने प्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये ।
मेरे जी में अनुपम महा विश्व का प्रेम जागा ।
मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में ।

४. भक्ति भावना का नवीनीकरण—प्रियप्रवासकार ने भी आराध्य कृष्ण को अपरिच्छिन्न और विराट रूप में देखा है । इस रूप का विराट वर्णन प्रियप्रवास में मिलता है । नवधा भक्ति को नये रूप में प्रस्तुत करके भी कवि ने व्यावहारिक और बौद्धिक व्याख्या के स्तर पर खड़ा किया है । यह व्याख्या उसी प्रकार नवीन है जैसे कृष्ण का परब्रह्मत्व लोक की पृष्ठभूमि पर उतर कर नया है । 'नवधा भक्ति' की नयी व्याख्याओं से कवि ने यह सन्देश दिया है कि मनुष्य को हितकामना से प्रेरित हो कर जीवन यापन करना चाहिए तथा इस प्रकार नौ भूमिकाओं को लोकहित–चिन्तना के संदर्भ से प्रस्तुत करके नव्य सन्देश दिया है । इसके उदाहरण नवधा भक्ति वाले प्रश्न में देखिये—

५. प्रकृति चित्रण—प्रियप्रवास का प्रकृति चित्रण सोद्देश्य जान पड़ता पड़ता है । प्रकृति का उद्दीपन रूप में किया गया वर्णन ही उन्हें (कवि हरिऔध को) प्रिय नहीं है । इसी कारण उन्होंने प्रकृति के माध्यम से मानवता को एक सन्देश दिया है । प्रियप्रवास की राधा की सहचरी प्रकृति उसे प्रियतम का स्मरण कराने में पूर्णतया सक्षम है । विश्वनियंता की विराट छाया से आलोकित होने के कारण प्रकृति प्रियप्रवास में परम सम्मान पा सकी है—

कुञ्जों का या उदित शशि का देख सौंदर्य आंखों ।
कानों द्वारा श्रवण कर के गान मीठा खगों का ।
मैं होती थी व्यथित अब हूं शान्ति सानन्द पाती ।
प्यारे के पांव मुख मुरली नाद जैसा उन्हें पा ।।

जड़-प्रकृति का नगण्य रूप भी काव्य में महत्ता और गौरव का अधिकारी दिखाई पड़ता है । स्व० गिरीश जी ने लिखा है—

"हम प्रकृति के साथ मैत्री स्थापन करें और उसकी सहानुभति अर्जित करके अपनी विकलता का शमन करें । मनुष्य की स्वार्थपरता से खिन्न हृदय को संजीवनी शक्ति प्रकृति निराशा के विषैले प्रभाव से बचाती है ।"

इससे यह स्पष्ट कि प्रियप्रवास में जो सन्देश निहित है वह एकदेशीय नहीं अपितु बहुदेशीय है । उसमें एक ही नहीं कई प्रकार के सन्देश निहित हैं । कवि राधा और कृष्ण की कहानी को दुहराना ही अपना उद्देश्य नहीं समझता है अपितु वह तो जीवन के लिए कुछ सन्देश देना भी अभीष्ट समझता है । ये सन्देश ही उपर्युक्त विवेचन में बताये गये हैं ।

प्रियप्रवास के सन्देश विषयक विद्वानों के मत—अनेक विद्वानों ने प्रियप्रवास के सन्देश पक्ष को उद्घाटित किया है । कुछ सम्मतियां इस प्रकार चित्रित की गई हैं ।

१. "प्रियप्रवास में एक अन्य सन्देश का संकेत भी है । वह राधा-कृष्ण की वियोग-कथा कह कर ही मौन नहीं हो जाता है, वह सांसारिक जीवन के एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है । वह तथ्य जो समय द्वारा भावुकतापूर्ण बाल्यकालीन प्रेम की प्रखरता और प्रगाढ़ता नष्ट होने में प्रकट होता । जो प्रेमी एक दूसरे को गलवांही दिये हुए घूमते और संसार सुख लूटते हैं उनसे ही पूछिये कि क्या कालांतर में उनके प्रेम की आग ठण्डी नहीं पड़ जाती ? वे ही बतायें कि क्या वे आनन्दपूर्ण घड़ियां जब वे एक दूसरे के प्रति प्रेम का अनुभव करते तथा आंखों की भावुकता और शब्दों की विह्वलता द्वारा अपने आंतरिक अनुराग की प्रगाढ़ता का परिचय देते और पाते हैं, क्या जीवन में फिर कभी आती हैं ? यह एक निष्ठुर सत्य है कि हमारे जीवन में जो रस एक बार बरस गया, वह सदा के लिए गया ।" (गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश)

२. डॉ० गोविन्दराम शर्मा ने प्रियप्रवास के सन्देश को इस प्रकार व्यक्त किया है—"इस प्रकार कवि ने प्रियप्रवास में अपने नायक और नायिका के चरित्र में देश-सेवा और विश्व-कल्याणकारी भावना को प्रधानता देकर विश्व-कल्याण तथा विश्व-प्रेम का सन्देश हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है । कृष्ण ने निज हित को विश्व-हित में और राधा ने भी अपने मोहजन्य प्रेम को विश्व-प्रेम में परिणत कर दिया है । जन-सेवा ही जनार्दन की सेवा है और विश्व-कल्याण में ही मानव का कल्याण निहित है । इसी आदर्श की स्थापना हरिऔध ने प्रियप्रवास के अन्तर्गत की है ।"

३. डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने प्रियप्रवास के सन्देश पर इस प्रकार विचार व्यक्त किये हैं—"प्रियप्रवास आधुनिक मानव को कर्त्तव्य-पथ पर आरूढ़ करके उसे श्रेय की ओर अग्रसर करने की प्रेरणा देने के लिए

लिखा गया है, इसीलिए उसमें आरम्भ से अन्त तक लोक-सेवा, लोकहित और प्राणिमात्र के प्रेम का स्वर गुञ्जना दिखाई देता है। सम्पूर्ण काव्य नैतिकता और धार्मिक विश्वास से परिपूर्ण है और भारतीय संस्कृति के उन्नत विचारों से ओत-प्रोत है। इसी कारण मानव जीवन को सुसमृद्ध बनाने के लिए जिन-जिन विचारों और भावों व अनुभूतियों की आवश्यकता है, उनसे यह परिपूर्ण है।"

१. स्पष्ट ही है कि व्यक्ति को स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ को अपनाना चाहिए और आत्मार्थी की अपेक्षा परमार्थी बन कर जीवन बिताना चाहिए।

२. भोगों में जीवन का कल्याण निहित नहीं है, परन्तु त्याग और सात्विक कार्यों में ही कल्याण भावना छिपी हुई है।

३. परोपकार और परहित ही मानव को श्रेष्ठत्व और महामानवत्व प्रदान करते हैं।

४. मानव को सदैव अपनी जन्मभूमि और देश के संकट को दूर करने के लिए प्राणोत्सर्ग तक करने से नहीं चूकना चाहिए। इस प्रकार कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ होना ही श्रेयस्कर है।

५. सर्वभूत हित कामना से मानव को लोक-सेवा और लोकोपकार को अपनाना चाहिए। इसके साथ ही साथ मनुष्य को व्यक्तिगत प्रेम की सीमाओं को छोड़ कर विश्व-प्रेम की भूमिका पर प्रतिष्ठित हो कर कार्य करते रहने चाहिए। अतः यही प्रियप्रवास का अमर सन्देश है जिसे सदैव अपने जीवन में ढालना चाहिए। यह सन्देश सदैव अनुकरणीय है।

वह खाई में छिप गया है। और जो हो सो हो किन्तु इतना सच है कि कृष्ण ने अपूर्व साहस का परिचय दिया और सभी को पूर्ण मुक्ति प्राप्त हुई। अन्त में वृद्ध ने कहा कि हमारी कामना तो यही है कि कृष्ण जहां भी रहें वहीं सुखी रहें। यह कह कर वह वृद्ध तो शांत हो गया किन्तु एक अन्य गोप खड़ा हुआ और कृष्ण के गुणों का इस प्रकार वर्णन करने लगा—

ग्रीष्म का समय था। सूर्य की किरणें बड़ी ही भयावनी प्रतीत हो रही थीं, पृथ्वी तवे के समान तप रही थी और आकाश से आग की चिनगारियों की वर्षा हो रही थी। भयंकर आंधी भी चल रही थी। सभी प्राणी संतप्त थे और अवसरानुकूल व्यक्ति किसी पेड़ के नीचे तथा कोई किसी कुंज की छाया में अपना समय बिता रहे थे। कुछ मनुष्य अपने अपने घरों में समय बिता रहे थे। पक्षियों का समूह भी अपने घोंसले में शांत पड़ा था।

इस प्रकार के भयंकर वातावरण में कृष्ण गायों और बछड़ों के साथ वन में प्रतिष्ठित थे। यकायक वन के किनारे से कोलाहल होने लगा। ध्यान देने पर विदित हुआ कि वन के एक कोने में भयंकर आग लग गई है। उन्हें (कृष्ण को) ध्यान आया कि अभी अभी तो कुछ गोप बन्धु आग लगने की दिशा में गये हैं। यह स्मरण आते ही कृष्ण चिन्तित हो उठे और तुरन्त ही अपने कुछ साहसी मित्रों को लेकर उसी दिशा की ओर चल पड़े जहां पर आग लगी थी। कृष्ण जैसे ही कुंज से निकले वैसे ही उन्होंने धुएं का पर्वत सा उठते हुए देखा! थोड़ा सा आगे बढ़े ही थे कि आग की लपटें दिखाई देने लगीं! कृष्ण ने देखा कि सारी वनस्पतियां जल रही थीं। वीर पुरुष भी उस दृष्य को उसकी भयंकरता के कारण देख नहीं सकता था! पहाड़ों के समान वृक्ष रूई के ढेर के समान प्रज्वलित हो रहे थे। असंख्य पक्षी जल रहे थे। कवि ने उस दृश्य का वर्णन इस प्रकार किया है—

पहाड़ से पादप तूल पुंज से।
स-मूल होते पल मध्य भस्म थे।
बड़े-बड़े प्रस्तर खण्ड वह्नि से।
तुरन्त होते तृण-तुल्य दग्ध थे॥
अनेक पक्षी उड़ व्योम मध्य भी
न त्राण थे पा सकते शिखाग्नि से।
सहस्त्रशः थे पशु प्राण त्यागते।
पतंग के तुल्य पलायनेच्छु हो॥
जला किसी का पग पूंछ आदि था।
पड़ा किसी का जलता शरीर था।
जले अनेकों जलते असंख्य थे।
दिगन्त था आर्त-निनाद से भरा॥

कृष्ण ने सभी साथियों को कष्ट में देखा। वे बचने के लिए प्रयास कर रहे थे, लेकिन उनका वश नहीं चल पा रहा था। कृष्ण ने प्रयास कर

बचाने का संकल्प किया। उनके (कृष्ण) साथी उत्तेजित तो हुए, किन्तु सभी धैर्य खो चुकने के कारण व्यर्थ ही खड़े रहे। कुछ भी करने को उद्यत न हो सके। कृष्ण सभी को हतोत्साहित देखकर उस आग में प्रवेश कर गये। एक सांस में वे उस ओर दौड़ गये जहां उनके साथी घिरे हुए थे। अनेक प्रयत्नों के बावजूद ही वे अपने बंधु-बान्धवों को बचा सकने में सफल हो सके।

कृष्ण ने यह पुण्य का कार्य किया और संसार में यश की बेल बो दी। गोप ने कहा कि सचमुच ही हम ब्रजवासी बड़े ही दुर्भाग्य शाली हैं कि ब्रजेश और ब्रज के कौस्तुभ अब हमारे बीच नहीं हैं। उस गोप ने अपनी समस्त वेदना को इन पंक्तियों में केन्द्रित कर दिया है—

न वित्त होता धन रत्न डूबता।
असंख्य गो-वंश-स-भूमि छूटता॥
समस्त जाता तब भी न शोक था।
सरोज सा आनन जो विलोकता॥

इस प्रकार ग्यारहवें सर्ग की समाप्ति इसी वातावरण में हो जाती है। कवि ने बड़ी सहृदयता से वर्णन किया है।

सर्ग की विशेषताएं

ग्यारहवां सर्ग प्रियप्रवास का महत्वपूर्ण सर्ग है। इस सर्ग की विशेषताएं निम्न हैं—

१. कवि ने कृष्ण के गुणों का वर्णन किया है। यह वर्णन ब्रजवासियों के द्वारा किया गया है। दो वृद्ध गोपों के मुख से कृष्ण के कर्मों का वर्णन सुन कर दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं—

(अ) वर्णन में कृष्ण के लिए ममत्व है, स्नेह है। वे उनके अभाव में जैसे जीवन ही खो बैठे हैं।

(ब) कृष्ण की स्मृति 'गुण कथन' शैली में वर्णित है। यह भक्ति सोपान की महत्वपूर्ण कड़ी है।

२. दो पौराणिक कथायें--कालीदहन और वन की आग की समाप्ति का वर्णन बुद्धि प्रेरित है। कवि ने भरसक प्रयत्न किया है कि ये वर्णन अलौकिक न रहें, किन्तु कृष्ण के कर्मों के वर्णन में अलौकिकता ज्यों की त्यों बनी रहती है। हरिऔध ने जो भी बुद्धिप्रेरित व्याख्यायें की हैं, वे सारी सुधारवादी आन्दोलन से बहुत बड़े अंशों में प्रभावित हैं।

३. प्रकृति का वर्णन बड़ी विशदता से किया गया है। द्विवेदी युग में प्रकृति वर्णन का जोर रहा था, वही प्रकृति इसमें भी सुरक्षित है। प्रकृति के कोमल और परुष दोनों ही रूपों का वर्णन किया गया है। सर्ग का प्रारंभ यदि कोमल प्रकृति से हुआ है तो उत्तरांश निदाघ के वर्णन को प्रस्तुत करता हुआ उग्र और परुष रूप को प्रस्तुत करता है।

४. खड़ी-बोली हिन्दी के प्रयोग के साथ-साथ वर्णन माधुर्य की पूर्ण सुरक्षा की गई है। संस्कृत शब्दावली वर्ण-वृत्तों में आकार पाकर मनहरण बन गई है।

व्याख्याएं

यक दिन छवि-शाली ………… ……………पूछा ।।१–२।।

शब्दार्थ—यकदिन=एक दिन । छवि-शाली=छवि-सम्पन्न । अश्मंजा=यमुना । कूल वाली=किनारे वाली । नव-तरु-चय=नवीन वृक्षों का समूह । कतिपय=कुछ । भावुकों=भावज्ञों । बहु-पुलकित=अत्यन्त प्रसन्न । विराजे=बैठ गये । सकल=सम्पूर्ण या सभी । स-विधि=विधि-पूर्वक । मृदु बातें=मधुर बातें ।

प्रसंग—प्रस्तुत पंक्तियां हरिऔध कृत प्रिय प्रवास के एकादश सर्ग से अवतरित हैं। इनमें सर्ग का प्रारम्भ करते हुए कवि ने ऊधो के सम्मान का वर्णन किया है जो कि गोप-ग्वालों की ओर से प्रदर्शित किया गया था। कवि कहता है—

व्याख्या—एक दिवस शोभा सम्पन्न, सुन्दर किनारे वाली यमुना नदी के किनारे खड़े वृक्षों के समूह के नीचे उद्धव ने कुछ भावप्रवण ब्रजवासियों को देखा। यह स्थान नवीन वृक्षों से सुशोभित था! ऊधो उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसी भाव में डूबे वे स्वयं वहीं पर जा बैठे।

उद्धव को आया जान कर सभी गोप-ग्वालों ने सर्वप्रथम तो उनका स्वागत सम्मान किया और उनके प्रति भक्ति भाव प्रदर्शित किया! सभी ने उद्धव को देखकर विधिपूर्वक सिर नवाया और प्रेम के साथ उनकी अर्चना की, तात्पर्य यह है कि आदरणीय उद्धव के प्रति सम्मान या पूज्यभाव प्रकट किया। उद्धव को देखकर सभी ब्रजवासियों का हृदय भर आया और परिणाम स्वरूप हृदय में आंसू भर आये। पूर्णतः प्रेम पूरित आंखों में जल भरे हुए ब्रजवासियों ने मीठी वाणी में श्याम (कृष्ण) का कुशल संदेश पूछा। ब्रजवासियों को सबसे अधिक चिन्ता कृष्ण की ही थी। इसी कारण उन्होंने कृष्ण का कुशल संदेश पूछा।

विशेष—१ इन पदों में कृष्ण की कुशलता जानने के लिए व्यग्र ब्रजवासियों की हृदयस्थित भावनाओं का वर्णन है।

२. उद्धव की ज्ञान गरिमा का प्रतीक, उनका आदरणीय व्यक्तित्व स्पष्ट किया गया है।

३. मालिनी छन्द का प्रयोग किया गया है।

४. प्रिय प्रवास की भाषा संस्कृत शब्दावली प्रधान है। कतिपय शब्द तो पूर्णतः संस्कृत की रंगत लिए हुए है।

परम—सरसता..............................उन्मनासी ॥ ३–४ ॥

शब्दार्थ—स्निग्धता=सञ्चिकणता और मधुरता। सुख-दानी=सुख प्रदान करने वाले कृष्ण। प्रवचन-पटु=वार्ता करने में कुशल। प्रबोधा=समझाया बुझाया। अतिशय=पर्याप्त। प्रेम-प्राबल्य=प्रेम की प्रबलता और अधिकता। उन्मना=उदास या विरक्त।

प्रसंग—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध ने ब्रजवासियों के द्वारा कृष्ण के सकुशल समाचार पूछने का वर्णन किया है। कवि कहता है—

व्याख्या—सभी ब्रजवासियों को बड़ी सरसता और मधुरता के साथ उद्धव ने जन-प्रिय और सुख प्रदान करने वाले कृष्ण का समाचार पूर्ण कौशल के साथ सुनाया। इतना ही नहीं उद्धव ने अनेक प्रकार की समझाने-बुझाने वाली बातें ब्रजवासियों से कहीं। इस प्रकार प्रवचन-पटु ऊधो ने सभी को शांति प्रदान की।

गोप ग्वालों की मण्डली ने अपने प्रिय पात्र का समाचार सुन कर अतिशय सुख प्राप्त किया। सुसंवाद सुनकर गोप-ग्वालों को सुख और शांति तो मिल गई, किन्तु शीघ्र ही कृष्ण की स्मृति होते ही वे उसमें ही लीन हो गये। परिणामतः सभी गोप मण्डली कुछ समय तक मौन और शांत रही। उन सभी के मन पर उदासी छा गई।

विशेष—१. इसमें ब्रजवासियों की प्रेममग्नता का वर्णन किया गया है। सीधे-साधे शब्दों के माध्यम से वर्णन में सरसता भर दी गई है।

२. उद्धव को 'प्रवचन-पटु' कहकर चरित्रोत्कर्ष की सामा पर प्रतिष्ठित किया गया है।

फिर वहु..लगायों ॥५॥

शब्दार्थ—धीरता=धैर्य से। ब्रज-धन=ब्रजभूमि के धन अर्थात् कृष्ण। मुग्ध=मोहित। सु-ललित=सुन्दर-सुन्दर।

प्रसंग—पूर्ववत् ही रहेगा।

व्याख्या—उद्धव के द्वारा कृष्ण का समाचार सुनने के पश्चात् सभी गोपों के समूह में क्षण भर तो उदासी छायी रही फिर उनमें से एक वृद्ध गोप स्नेह भरी वाणी में कोमलता और धैर्य के साथ अपनी बात कहने लगा। वह कृष्ण के गुणों पर मुग्ध हो गया और अपनी सुन्दर वाणी से कृष्ण के चरित्र का बखान करने लगा।

विशेष :-१. प्रियप्रवास महाकाव्य की कथा को गति देने में सारा हाथ

वृद्ध और चतुर गोपों का ही रहा है ! एक गोप के बैठते ही दूसरा खड़ा हो जाता है तथा अपनी बात कहने लगता है ।

२. सामान्यत: यह प्रक्रिया नीरस और वेतुकी सी प्रतीत होती है, किन्तु काव्य में नाटकीयता भरने के लिए तथा नवीन शैली की प्रतिष्ठा के लिए इसे भुलाया नहीं जा सकता है ।

प्रसून यों ही…… **……विमुग्धता ।। ६—७।।**

शब्दार्थ :—मिलिन्द-वृन्द=भ्रमरों का समूह । विमोहता=मोहित करता । प्रलुब्ध=लुब्ध और आकर्षित । वरंच=वल्कि । बहु=बहुत ही, प्रीति-पात्र=प्रेम के योग्य । ब्रजेन्दु=कृष्ण । अपूर्व=अद्‌भुत, निबद्ध=बंधी हुई । ब्रजानुरागी=ब्रज के अनुरागी जन । विमुग्धता=मोहनकारी भावनायें ।

प्रसंग :—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध की लेखनी अधिक भावुक हो गई है । वे प्रतिपादित करते हैं फूल के आकर्षण का कारण उसकी गंध है—रंग रूप नहीं । वे कह रहे हैं—

व्याख्या—प्रसून भ्रमरों के समह को यों ही आकर्षित नहीं करते हैं उनके (भ्रमरों के) विमोहन का कारण पुष्पों की रूपाकृति नहीं होती है । इसके विपरीत पुष्प की मोहनकारी गंध ही आकर्षण को जन्म देती है । यदि सुगंध न हो तो अकेला रूप कुछ भी नहीं कर सकता है । अत: स्पष्ट ही सुमन की गंध ही भ्रमरों, रसिकों और व्यक्तियों का मन बांध लेती है; उसकी गंध ही पुष्प को प्रीति-भाजन बनाती है ।

कवि कहता है कि पुष्प की सी स्थिति ब्रजेन्दु कृष्ण की है । वे रूप के कारण ही नहीं, अपितु अपने गुणों के कारण ही सबके आराध्य बन गये हैं । कृष्ण का स्वभाव इतना मधुर है कि सभी व्यक्ति सहज ही आकर्षित हो जाते हैं । उनके स्वभाव की 'अनुपमता' ऐसी आकर्षक है कि सभी ब्रजवासी अपने को वश में नहीं रख पाते हैं; और वे अपने गुणों और कर्मों के कारण मन को बांध लेते हैं ब्रजवासियों का इतना अनुराग है कि वे इसके अतिरिक्त जैसे कुछ सोच ही नहीं सकते हैं ।

विशेष :—१. कवि की प्रतिपादना है कि रूपाकृति का आकर्षण ही सब कुछ नहीं होता है; अपितु मन का सौन्दर्य ही प्रधान होता है ।

२. कृष्ण की रूपाकृति सुन्दर है, किन्तु उससे भी सुन्दर है उनके गुण और कर्म जो ब्रजवासियों के मन को बांधे हुए हैं ।

स्वरूप होता जिसका…… **……कलंक का ।।८ से १०।।**

शब्दार्थ :—भव्य=सुन्दर । मनोज=सुन्दर । भव प्रीति=संसार का प्रेम । सर्वदा=हमेशा । प्रभूत=पर्याप्त । तथैव=वैसी ही । रसाल=आम अथवा आम्रवत् मधुर । निकेत=घर । विनीत=मधुर या विनम्र ।

सरोज=कमल। दिव्य-सुगंध=पवित्र सुगन्ध। नृलोक=नर लोक। सौर-भवान=सुगंधि से युक्त। सु-पुष्प=सुन्दर पुष्प या सज्जित पुष्प। परिजात=कमल। मयंक=चन्द्रमा।

प्रसंग :—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध कृष्ण के गुणों का वर्णन कर रहे हैं तथा साथ ही उनके गुणों के प्रभाव की चर्चा भी आलंकारिक भाषा में कर रहे हैं—

व्याख्या :—कवि अरिऔध कह रहे है कि जिसका स्वरूप सुन्दर नहीं होता है तथा जिसकी वाणी कोमल नहीं होती है—वाक्यावली मनोहर या श्रुति-सुखद नहीं होती है; वह भी अपने अन्तवर्ती गुणों के प्रभाव से संसार के प्रेम का अधिकारी होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रूप-सौन्दर्य और वाक्यों की कोमलता के अभाव में भी व्यक्ति की पूजा हो सकती है; यदि उसमें गुण हो तो। कृष्ण इसीलिए पूज्य बने कि उनके कर्म भी ऐसे ही थे।

वास्तविकता यह है कि कृष्ण का रूप जैसा अद्‌भुत और अपूर्व है, वैसी ही उनकी वाणी भी रसालवत मधुर है। उनकी वाक्यावली से रस टपकता है। वे गुणों की खान हैं—उनके पास गुण ही गुण हैं। ऐसी स्थिति में उनके विनयशील और गुणी व्यक्तित्व के प्रति सामान्य जनों की प्रीति का होना स्वाभाविक ही है।

कमल जिस प्रकार सुगंधि से युक्त होता है, वैसे ही कृष्ण भी गुणों से भरपूर हैं। वे वस्तुतः नरलोक में सुगंधित स्वर्ण के समान आकर्षक है। वे गुणों से अलंकृत पारिजात वृक्ष के समान हैं। वे तो निष्कलंक चन्द्रमा हैं। तात्पर्य यह है कि चन्द्रमा में कलक तव भी है, किन्तु कृष्ण के व्यक्तित्व में कोई दुर्गुण या कलंक नहीं है। वे निष्कलंक हैं। सभी के मनभावन कृष्ण किसी के भी अनादरणीय नहीं हैं।

विशेष :—कृष्ण के चरित्रोत्कर्ष की व्यंजना की गई है। उपमा और व्यतिरेक अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

कलिन्दजा की······ ······सहस्राशः ॥१२॥

शब्दार्थ :—कलिन्दजा=यमुना। कमनीय=सुन्दर। प्रवाहिता=बह रही है। भवदीय=आपके। विषाक्त=विषैला। विनाशकारी=विनाश करने वाला। सुकल्लोलित=सुन्दर क्रीड़ाओं में मग्न। उक्त=कथित। भुजंगिनी सर्पिणियां। सहस्राशः=हजारों।

सप्रसंग व्याख्या :—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध एक वृद्ध के माध्यम से यमुना में रहने वाले काले-नाग का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—

वृद्ध ने वताया कि यमुना की जो धारा आपके सामने प्रवाहित हो रही है, उसे पहले एक कालीनाग; इसमें रहता हुआ; विषाक्त वनाता था। उस कालीनाग का विष वड़ा भयंकर और विनाशकारी था।

वृद्ध ने कहा कि देखो, जहां पर वह धारा वह रही है, उसमें एक बहुत बड़ा कुण्ड है। उसी कुण्ड के भीतर कालीनाग सदैव रहा करता था। सबसे विस्मय की बात तो यह है कि वह अकेला नहीं रहता था; उसके साथ सहस्त्रों सर्पिणियां भी उसी कुण्ड में रहती थीं।

मुहुर्मुहु सर्प समूह...... ......प्रशंसनीय था ।।१३-१४।।

शब्दार्थ :—मुहुर्मुहु=धीरे-धीरे या बार-बार। श्वास=सांस से। कंपता=कांपता रहता था। प्रवाह=यमुना का वेग। फूत्कार=फुफकारों। विपाक्त होता=विषैला होता रहता था। सदम्बु=निर्मल जल। दिखा रहा=दीख रहा है। द्विकोस पर्यन्त=दो कोस तक। द्वि-कूल=दोनों किनारे भानुजा=यमुना।

सप्रसंग व्याख्या :—पूर्वपद के प्रसंग में ही वृद्ध कह रहा है—यमुना में रहने वाला सर्प-समूह धीरे-धीरे श्वास के माध्यम से विष छोड़ता रहता था। जब वे सर्प श्वास लेते थे तो यमुना की धार का प्रवाह कांपने लगता था। सहस्रों सर्पिणियों की असंख्य फूत्कारों से सरिता का निर्मल जल विषाक्त होता रहता था।

विष का प्रभाव बहुत था। ममाने जो कदम्ब का वृक्ष देख रहे हो, इसके अतिरिक्त कोई भी दूसरा वृक्ष यहां नहीं था और इसका कारण यमुना-जल का विपाक्त होना था। वृद्ध ने कहा कि यमुना के दोनों किनारों और दूर दो-दो कोस तक भी इसी विष के कारण कोई भी हरियाली दिखाई नहीं देती थी। ऐसी हरियाली कहीं नहीं दिखाई देती थी जिसकी प्रशंसा की जावे।

विशेष :—यमुना की धारा के अन्तर्गत प्रवाहित विष के भयंकर प्रभाव की चर्चा की गई है।

कभी यहां...... ......कोटिशः।।१५-१६।।

शब्दार्थ :—प्रमाद=आलस्य से। कदम्बु=बुरा या विपाक्त जल। विहंग=पक्षी भी। नितान्त=पूर्णतः। विपन्न=दुखी। त्यागता=छोड़ देता था। सहस्रशः हजारों। कु-मृत्यु = बुरी मृत्यु या अनपेक्षित मृत्यु। ठौर=स्थान (व्रज का शब्द है) अनेकशः अनेक-अनेक। कीट=कीड़े। कोटिशः=करोड़ों।

प्रसंग व्याख्या :—वृद्ध गोप यमुना के विपाक्त जल में पीड़ित व्यक्ति की स्थिति पर प्रकाश डाल रहा है। वह कहता है—

इस यमुना जल को कभी कोई विहंग भी यदि भ्रमवश या प्रमादवश पी लेता था तो उसको नितान्त पीड़ा और विपन्नता का अनुभव होता था। बुरे जल को पीकर उसके (पीने वाले) प्राणों का बचना कठिन होता था। परिणामतः भ्रमवश पिये हुए जल के कारण व्यक्ति शीघ्र ही अपने प्रिय प्राणों को छोड़ देता था। इस प्रकार उसकी अनचाही मृत्यु हो जाती थी।

वृद्ध ने कहा कि इस यमुना का बुरा जल पी-पीकर प्रतिवर्ष सहस्रों व्यक्ति नष्ट हो जाते थे। इस यमुना के जल का ही परिणाम था कि इसी स्थान पर अनेकों गायें, मृग व कीट जलपान के पश्चात् कु-मृत्यु को प्राप्त करते थे।

विशेष :—कवि का अपेक्षित मत यह है कि जो जानते हैं कि वह जल विषाक्त है, वे तो प्रमाद से इसे पी लेते थे और जो पशु-पक्षी थे उनके पीने का कारण भ्रम या अपरिचय था। कैसी विडम्बना थी कि अनेक जीवधारी इस विषाक्त जल से प्राणों को छोड़ देते थे। संस्कृत शब्दावली के साथ-साथ अनेक को 'अनेकशः' लिखा गया है। यह कवि के संस्कृत ज्ञान और उससे भी अधिक रुचि का परिचायक है।

रही न जाने······ ······पै गये ।।१७-१८।।

शब्दार्थ :—किस काल से=न मालम कब से। ब्रजायगा=ब्रज भूमि में। व्याधि=परेशानी या रोग। दुर्भगा=जिसे दूर भगाना कठिन हो। मुकुन्द देव=कृष्ण ने। विमुक्ति=मुक्ति। सर्वस्व=सभी कुछ या पूर्ण आधार। कृपा-कटाक्ष=कृपा की नजर से। दिवानायक=दिवस के नायक सूर्य। दुरन्तता=भयंकरता। सुर भी-समूह=गायो का समूह। महा पिपासातुर=महान् प्यास से आतुर। दिनेशजा=यमुना। वर्जित-कूल=निषिद्ध किनारे।

प्रसंग सहित व्याख्या :—इन पंक्तियों में वृद्ध गोप वतला रहा है कि न मालूम यह कपट और यह पीड़ा कब से चली आ रही। कब से कितने ही लोग इस कदम्बु का पान कर प्राण त्यागते चले आ रहे थे। यह व्याधि जो कठिनाई से दूर की जा सकती थी वह ब्रज भूमि में अनन्तकाल से चली आ रही थी। वह तो कृष्ण की कृपा हो गई जिससे यह व्याधि दूर हो गई, नहीं तो न मालूम कब तक यह प्राणान्तक पीड़ा सहनी पड़ती। कृष्ण ने अपनी कृपा-कटाक्ष से ही सभी को इस कष्ट से मुक्ति दे दी। तात्पर्य यह है कि कृपा-कटाक्ष से स्वतन्त्रता रूपी मुक्ति मिल गई।

वृद्ध गोप वर्णन करता हुआ कह रहा है कि दिवस के नायक सूर्य की प्रचण्डता और दुरन्तता जैसी ही वढ़ी वैसे ही अनेक गोप-ग्वाल गायें लेकर यमुना के किनारे पर आये। ग्रीष्म के ताप से पीड़ित और पिपासातुर सभी गोप-ग्वाले यमुना के निषिद्ध किनारे पर जा पहुंचे। निषिद्ध किनारा इसलिए कि वहीं पर विषाक्त जल था और इसी कारण वह स्थान निषिद्ध था (किन्तु भ्रमवश ही ऐसा हुआ होगा।)

विशेष—१. कृपा-कटाक्ष का प्रयोग वहुत सुन्दर है।

२. 'ठौर' और 'पै' दोनों ही शब्द बोलचाल के हैं। ये ब्रजभूमि में बोले जाते हैं। ठौर का अर्थ स्थान और पै का अर्थ है-पर! खड़ी बोली के संस्कृतगर्भित शब्दों के बीच ये शब्द बहुत अटपटे नहीं लगते हैं।

परन्तु पी के······ ······पुंज को ॥ १६-२० ॥

शब्दार्थ—स-धेनु=गायों के साथ । उपकूल=किनारे । अचेत=अचेतावस्था । सुरभि=गाय । भूतल-अंक=पृथ्वी की गोद में । कढ़े=निकले । ब्रजांगनावल्लभ=ब्रजनारियों के स्वामी । दैव-योग से=अकस्मात या भाग्य वश । विनष्ट होते=समाप्त होते । बहु-प्राणि:पुंज=बहुत से प्राणियों के समूह को ।

ससंदर्भ व्याख्या—वृद्ध गोप ने कहा कि पिपासातुर गोप-ग्वालों का समूह जैसे ही पानी पीकर गायों के सहित यमुना के किनारे से थोड़ा सा आगे बढ़ा वैसे ही वे सभी गायों के सहित अचेत हो गये और बेहोश होकर पृथ्वी की गोद में गिर पड़े ।

अकस्मात् इसी क्षण और इसी समय कृष्ण भी उधर से निकले । ब्रजांगना वल्लभ कृष्ण ने बड़े यत्न के साथ नष्ट होते हुए प्राणियों के समूह को बचा लिया । तात्पर्य यह है कि कृष्ण ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर सभी अचेत और मरणोपम व्यक्तियों को बचा लिया ।

विशेष—१. 'कढ़े' शब्द का प्रयोग खड़ीबोली की प्रकृति के अनुकूल नहीं जान पड़ता है । प्रिय प्रवासकार ने इस शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर किया है ।

२. कृष्ण के कर्मठ और लोकरक्षक स्वभाव का वर्णन इन पंक्तियों में किया गया है ।

दिनेशजा दूषित······ ······केशरी ॥ २१-२२ ॥

शब्दार्थ—दिनेशजा=यमुना । दूषित-वारि=विषैला और अशुद्ध जल । विडम्बना=धोखा । यत:=यहां या यत्र । इसी काल=इसी समय । फणीन्द्र=सांपों का स्वामी । स्वजाति=अपनी जाति की । अतीव दुर्दशा=पर्याप्त दुर्दशा । विगर्हणा=बुरी दशा या अनादर । समुत्तेजित=समान भाव से उत्तेजित । केशरी=शेर या कृष्ण जो शेर के समान कार्य करने वाले ।

ससंदर्भ व्याख्या—यमुना के विषाक्त जल से वहां के व्यक्तियों के साथ बुरी विडम्बना थी । विषैले जल से सर्वत्र हाहाकार मचने लगा था । इसी बात का ज्ञान करते हुए ब्रजेन्द्र ने उस फणीन्द्र के विषैले प्रभाव को समझा और वे शीघ्र ही इस कष्ट को दूर करने के लिए प्रवृत्त हुए ।

कृष्ण ने अपने स्ववंशियों और समान भाव रखने वाले व्यक्तियों की दुर्दशा का अनुभव किया और उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया कि यह मनुष्य मात्र का अपमान है—एक सर्प के कारण मानव जाति का विनाश हो रहा है । अत: मनुष्य मात्र का कष्ट जानकर तथा प्राणियों की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करके शेर के समान वीर कृष्ण कष्ट निवारण के लिए समुत्तेजित हुए ।

विशेष—१. कृष्ण के चरित्र का वीर पक्ष उद्घाटित हुआ है ।

२. कृष्ण की यह उत्तेजना लोक-रक्षण की प्रवृत्ति की परिचायक है ।

हितैषणा से······ ······कुमारिकांक से ।। २३–२४ ।।

शब्दार्थ—हितैषणा=हित की कामना से। अपार आवेश=पर्याप्त आवेश और उत्तेजना के साथ। व्रजेश=कृष्ण । महावंक=महान् बांकी या तिरछी। गठी हुई भवें=संश्लिष्ट भौंहे। विस्फारित=चौड़े या फटे हुए या बड़े। सशंकता=शंका भावना। अशंक=शंकाहीन। निर्वासन=निकालना। विधेय=उचित। भुजंग=सर्प। भानु-कुमारिकांक=सूर्य की कुमारी यमुना के अङ्क से।

ससंदर्भ व्याख्या— इन पंक्तियों में कवि हरिऔध कृष्ण के सर्प–विनाश कार्य का वर्णन करते हुए कह रहे हैं—

अपनी जन्म-भूमि की शुभकामना से कृष्ण को बहुत अधिक क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने लोक-कल्याण की कामना से उदबुद्ध होकर आवेश और क्रोध को प्रदर्शित किया। इस आवेश के आते ही कृष्ण की गठी हुई भौंहें कुटिल हो गई और क्रोधाभिभूत होने के कारण उनकी आखें भी बड़ी-बड़ी और विस्फारित हो गईं।

कृष्ण ने इसी क्षण निश्चय किया कि मुझे अपनी जाति का उद्धार करना है। परिणामत: उन्होंने हृदयगत शंका को त्याग कर अशकभाव से कार्य करने का निश्चय किया। उनका निश्चय था कि भानु-कुमारिकांक से इस विषैले सर्प को निकाल देना ही उचित है।

अतः करूंगा ···· ·····परोपकार की ।। २५–२६ ।।

शब्दार्थ—स्व हस्त=अपने हाथ में। प्राण को लिए=प्राणों की बाजी लगाकर। औ=और। जन्म-धरा=जन्मभूमि या पृथ्वी। भीत=डरना या भयभीत होना। विकराल-व्याल=भयकर सर्प। अपमृत्यु=बुरी मृत्यु। स-भीत=भय सहित। अवहेलना=तिरस्कार। प्रधान-धर्मांग-परोपकार=धर्म के प्रधान अंग परोपकार की अवहेलना कभी नहीं करूंगा।

ससंदर्भ व्याख्या—लोक-रक्षा की कामना से अभिभूत कृष्ण ने कहा कि मैं अपनी जाति का उद्धार अवश्य करूंगा। मुझे भले ही इस कार्य में कितना ही कष्ट क्यों न सहना पड़े। मैं दुर्लभता से प्राप्त होने वाले प्राणों को भी इस कार्य के लिए होम कर दूंगा। अपनी जाति और अपनी जन्मभूमि की रक्षा के निमित्त मैं भयंकर विष वमन करने वाले प्रलयकारी सर्प से भी भयभीत नहीं हूंगा और अपना कार्य करूंगा।

मैं तो सदैव लोकरक्षणार्थ बुरी से बुरी मृत्यु का भी सामना करने के लिए तत्पर हूं। इस कार्य के लिए मैं इन्द्र के वज्र से भी नहीं डरूंगा। धर्म के प्रधान तत्व परोपकार का मैं कभी भी तिरस्कार नहीं करूंगा। तात्पर्य यह है कि धर्म का प्रधान अङ्ग परोपकार है और यही मेरे जीवन का प्राथमिक लक्ष्य है।

विशेष—१. इन पंक्तियों में कृष्ण के निस्वार्थ प्रेम की व्यंजना की गई है।

दिशाएं प्रसन्न थीं और आकाश भी मस्ती से उल्लसित हो रहा था। सर्वत्र आनन्द की लहर दौड़ती दिखाई दे रही थी। श्वेत धूप से सुशोभित तथा तरंगों की माला को धारण किये हुए यमुना भी उत्साह से भरकर प्रवाहित हो रही थी।

मनोज्ञ धरित्री और आकाश को खिले कमलों तथा पुष्पों से लदी हुई लताओं को आनन्दपूर्वक देखकर कृष्ण बड़े हर्षित हुए। इसी हर्षातिरेक में उन्होंने अपने हाथ में वंशी ले ली और उसे बजाते हुए वे कदम्ब के वृक्ष के ऊपर चढ़ गये।

विशेष—प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन बड़ा मधुर बन पड़ा है। भयंकर कार्य के लिए भी कृष्ण अनुत्साहित नहीं हुए हैं।

कंपा सु-शाखा…… **कुण्ड पै ॥३१-३२॥**

शब्दार्थ—कंपा सु-शाखा=शाखाओं को कंपित करते हुए। बहु पुष्प =बहुत से पुष्पों। पुनः=फिर या तदनतर। समुद्भिन्न=फट गया। कम्प-कारी रव=कंपन करने वाला शोर। विषाद=पीड़ा या क्लेश। सद्म-सद्म=घर-घर में।

संदर्भ सहित व्याख्या—इन पंक्तियों में हरिऔध ने कृष्ण के उस विषैले कुण्ड में कूदने की प्रक्रिया का वर्णन किया है तथा साथ ही बताया है कि कृष्ण के इस कार्य से सभी को बड़ी पीड़ा हुई। कवि कह रहा है—

वृक्ष की बहुत सी शाखाओं और डालियों को कंपित करते हुए तथा बहुत से पुष्पों को गिराते हुए कृष्ण उस सर्प वाले विषैले कुण्ड में कूद पड़े। कृष्ण के कूदते ही यमुना का प्रवाह जो बाधाहीन होकर बह रहा था, वह कृष्ण के कूदने से फट गया और लहरें विच्छिन्न हो गईं। कूदने से आकाश में भयंकर और प्रलयंकारी शोर हुआ।

जैसे ही गोकुल में कृष्ण के यमुना-कुण्ड में कूदने का समाचार पहुंचा वैसे ही सारे ग्राम में अपार कोलाहल मच गया। सभी घरों में विषाद छा गया—यह चिन्ता होने लगी कि अब क्या होगा? कृष्ण किस प्रकार सुरक्षित रह सकेंगे। नन्द ने भी ज्योंही यह समाचार सुना वैसे ही वे भी चिन्तित हो गये और दौड़ते हुए यमुना के किनारे पर आकर खड़े हो गये।

विशेष—१ : कृष्ण के कुण्ड में कूदने की प्रक्रिया का वर्णन बहुत ही यथार्थ है। कदम्ब वृक्ष पर चढ़े हुए कृष्ण जैसे ही कुण्ड में कूदे होंगे तो स्वभावतः शाखायें हिली होंगी और उनके हिलने से कुछ पुष्प भी बिखरे ही होंगे। सामान्यतः वृक्ष से कूदने पर भी यही बात देखी जाती है।

२ : कृष्ण की छोटी उम्र और इतना महान् कार्य ही घर-घर में विषाद का कारण है।

३ : सद्म-सद्म में पुन रुक्तिः प्रकाश अलंकार है। समस्त प्रयोग सौन्दर्य वर्द्धन में सहायक है।

असंख्य-प्राणी······ ······नाद से ॥३३-३४॥

शब्दार्थ – व्रज-भूप=व्रज के राजा नंद। स-वेग=बड़ी तीव्रता से। दृग-वारि मांचते=नेत्रों के जल को गिराते हुए। व्रजांगना=व्रज की स्त्रियों। विसूरतीं=रोती-कलपती। व्रजेश्वरी=व्रजाधिप नन्द की पत्नी यशोदा। द्वि-दण्ड=दो पल। तमारिजा=अंधकार को दूर करने वाले सूर्य की पुत्री यमुना। पूर्ण हो गया=भर गया। प्रकम्पिता=कांपती। वन-मेदिनी=वन की भूमि। विषादितों=दुखी व्यक्तियों। आर्त-नाद से=दुख के स्वर से या विषाद की पीड़ा से व्याकुल होकर चीखते हुए।

संदर्भ सहित व्याख्या—इन पंक्तियों में कृष्ण के यमुना कुण्ड में कूदने से व्याकुल व्रजवासियों तथा नंद-यशोदा का चित्रण किया गया है। कवि वर्णन करता हुआ कह रहा है—कृष्ण के यमुना कुण्ड में कूद पड़ने के समाचार को सुनकर सभी व्रजवासी व्रजेश नंद के साथ अपने नेत्रों से अश्रु-धारा प्रवाहित करते हुए उसी स्थल पर आ गये, नंद के साथ ही व्रजेश्वरी यशोदा भी अनेकों व्रजांगनाओं के साथ रोती-कलपती उस स्थान पर आ पहुंची।

दो पल में ही जनता के समूह से यमुना का किनारा भर गया। क्षणांतर में ही वन-भूमि प्रकम्पित हो उठी क्योंकि वहां अनेक व्यक्तियों की आर्त-पुकार सुनाई देती थी। उनकी चीख-पुकार से सर्वत्र विषाद का भाव छा गया।

कभी कभी······ ······सामने ॥३५-३६॥

शब्दार्थ—क्रन्दन=रोना। विभेद=चीर कर। श्रुति-गोचरा=सुनाई। विषाद मर्दिनी=दुख को नष्ट करने वाली। उद्भेदित हुआ=फटा। हिल्लोल=कंपित। पतंगजा=यमुना। महा अद्भुत=महान अद्भुत दृश्य।

ससंदर्भ व्याख्या—यमुना के किनारे सभी व्रजवासी आकर विषण्ण भाव से खड़े रहे। उन्हें कभी कभी रोने की भयंकर आवाज सुनाई दी। वह बहुत ही घोर शब्द था। रोने की भयंकर आवाज को चीरकर कृष्ण की अत्यन्त सुरीली मुरली की आवाज सुनाई दे जाती थी। वह शांति प्रदान करने वाली तथा दुखों को नष्ट करने वाली थी। मुरली-ध्वनि सभी के हृदय को शांति प्रदान करने वाली थी क्योंकि उसे सुनकर सभी को यह विश्वास सा हो जाता था कि कृष्ण कुशल हैं।

इसी प्रकार यों ही अनेक घड़ियां व्यतीत हो गईं और तदनंतर यमुना में फिर से तरंगे उठने लगी। यकायक यमुना का प्रवाह फट गया और सामने अत्यन्त आश्चर्यजनक दृश्य दिखाई देने लगा।

कई फनों का······ ······शनैः शनैः ॥३७-३८॥

शब्दार्थ—भयावना=डरावना। महा कदाकार=बुरे आकार वाला। अश्वेत=जो श्वेत न हो अर्थात् काला। शैल सा=पहाड़ सा। फणीश=सर्पों

का स्वामी। कढ़ता=निकलता। विभीषणाकार=भीषण आकार वाला। प्रचण्ड=भयंकर। पन्नगी=सर्पिणी या सर्प। विदार=विदीर्ण करके। विषाक्त=विषैले। प्रमत्त=मदोन्मत्त। कढ़ते=निकलते थे। शनैः शनैः=धीरे-धीरे।

संदर्भ सहित व्याख्या—कवि हरिऔध वर्णन करते हैं कि थोड़ी ही देर में अकस्मात् ही कई फन वाला, भयावना और बुरे आकार का काले पर्वत सा महान् सर्प यमुना के अंक से निकलता दिखाई दिया। वह सर्प बहुत ही शक्तिशाली था। उसके साथ ही साथ भयंकर रूप वाली नागिनें, कई बड़े-बड़े सांप तथा नागनी तालाव के जल को चीरते हुए धीरे धीरे पागलों के समान निकलते दिखाई दिये। तात्पर्य यह है कि शीघ्र ही ब्रजवासियों ने देखा कि यमुना के जल से अनेक सर्प और सर्पिणियां प्रमत्त से निकलते दृष्टिगोचर हुए।

फणीश शीशोपरि······ ······कण्ठ में ॥३९-४०॥

शब्दार्थ--फणीश=सर्पों का स्वामी। शीशोपरि=शिर के ऊपर, राजती=सुशोभित होती रही। सु-मूर्ति=सुन्दर मूर्ति। मुकुन्द=कृष्ण। विकीर्णकारी=बिखेरने वाली। किरीट=मुकुट। विलम्बिता=लटकी हुई। उत्फुल्ल=प्रसन्न। प्रभा=कांति। कान्त=स्वामी।

संदर्भ सहित व्याख्या—कवि हरिऔध कह रहे हैं कि उस यमुना-कुण्ड से निकलने वाले सर्पराज के सिर के ऊपर कृष्ण की सुन्दर मूर्ति शोभायमान थी। उनके (कृष्ण के) सुन्दर नेत्र मनोहर कांति विकीर्ण करने वाली थी। उनका कमल के समान मुख आनन्द से खिला हुआ था। भाव यह है कि उनके मुख पर उत्फुल्लता थी।

कृष्ण के शीश पर जो मुकुट शोभायमान था; उसकी शोभा भी बड़ी ही विचित्र और आनन्दमयी थी। उनकी कमर में कछनी कस कर बंधी हुई थी। कृष्ण के मनोहर स्कंधों पर दुपट्टा पड़ा हुआ था तथा उनके गले में वन-पुष्पों की माला सुशोभित थी या लटकी हुई थी।

विशेष—१ : इन पंक्तियों में कृष्ण के कालीदहन के उपरांत यमुना से बाहर आते समय का वर्णन किया गया है।

२ : कृष्ण के रूप-सौन्दर्य की छटा निराली थी। हरिऔध ने इन दोनों पदों या छन्दों में कृष्ण की इसी छटा को निखारा है।

अहीश को······ ······वारि का ॥४१-४२॥

शब्दार्थ—अहीश=सर्पराज वह भी काला। स्वहस्त=अपने हाथ में। वररज्जु=श्रेष्ठ रस्सी। मुहुर्मुहु=धीरे-धीरे। प्रबोधिनी=प्रबोधन करने वाली। मुग्धकारी=मोहनकारी। पट=वस्त्र। सिक्त=सहित या आर्द्र। अलकें=बाल।

संदर्भ सहित व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध कृष्ण द्वारा

अहीश के नथे जाने का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—

कृष्ण ने अद्भुत पद्धति से अहीश को मथ डाला। उन्होंने रस्सी को, जिससे कि वह बंधा हुआ था, अपने हाथ में पकड़ रखा था। इस कार्य के सम्पन्न करने में उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ। वे तो सभी को प्रबोधने और मुग्ध करने वाली वंशी धीरे-धीरे बजा रहे थे।

कृष्ण का समस्त सुन्दर वस्त्र गीला हो गया था। उनका शरीर भी पूर्णतः आर्द्र हो गया था। यहां तक कि उनकी वनमाला जो गले में थी, वह भी भीगने से नहीं बची थी। कृष्ण की अलकावली से पानी की बूंदें बड़ी 'अद्भुता' अथवा विलक्षणता से गिरती हुई दिखाई दे रही थी।

विशेष—सामान्यतः हरिऔधजी ने वर्णन को अलौकिकता से दूर रखकर यथार्थ बनाने का प्रयत्न किया है, किन्तु इन पंक्तियों में वे स्वाभाविकता और यथार्थ की रक्षा नहीं कर सके हैं। कुल मिलाकर यह वर्णन अलौकिक ही प्रतीत होता है। मुरली की मादक ध्वनि से सांपों को वशीभूत करना आसान काम नहीं हैं।

लिये हुए······ ······**हो गये** ॥४३-४४॥

शब्दार्थ—कलिन्दजा-कम्पित=यमुना के कांपते हुए प्रवाह से। महाशक्ति=महान भय और शंका से त्रस्त। भीत=भयभीत, डरे हुए। घोर त्रास=भयंकर भय से। प्रकम्पिता=कम्पित। व्यस्तसमस्त=चिन्तित हो गये।

संदर्भ—पूर्वपदानुसार।

व्याख्या—कवि हरिऔध कह रहे हैं कि कृष्ण जैसे ही सर्प-समूह को लिये यमुना के विषाक्त कुण्ड से बाहर निकले वैसे ही किनारे पर खड़े सभी व्यक्ति शंकित और भयभीत हो उठे। कृष्ण को सर्प-समूह के साथ निकलना देखा। अनेक व्यक्ति तो मूर्च्छित हो गये और बहुत से त्रास या भय के कारण पृथ्वी के उस स्थल से भाग गये। स्वयं माता यशोदा भी भयाक्रांत होकर कांपने लगी। इतना ही नहीं स्वयं यशोदानाथ व्रजेश (नन्द) भी इस दृश्य को देखकर भयभीत हो गये।

विशेष—१ : कवि ने वर्णन चातुरी का परिचय दिया है।

२ : व्रजवासियों का कृष्ण के प्रति प्रकारान्तर से अनन्य प्रेम भी व्यंजित है।

विलोक सारी······ ······**थे कभी** ॥४५-४६॥

शब्दार्थ—विलोक=देखकर। भयातुरा=भय से आतुर। विभिन्न मार्ग=अलग मार्ग से। सर्प यूथ=सर्पों के समूह। वेणुनाद=वंशी की ध्वनि। सतर्क=सचेत होने से। स-युक्ति से=युक्ति से। अल्प=थोड़े भी।

संदर्भ सहित व्याख्या—कृष्ण सर्प-कुण्ड से निकले और उन्होंने सभी को यमुना किनारे पर खड़ा पाया। हरिऔध कहते हैं—

कृष्ण ने यमुना से बाहर निकल कर सभी जनता को भयाक्रांत देखा। इसे देखकर कृष्ण ने एक अलग मार्ग से सर्पों के समूह को बाहर निकाला। यमुना से निकालकर किनारे पर चढ़ाकर कृष्ण ने सर्प-समूह को वन की ओर वेग के साथ बढ़ा दिया।

कृष्ण ने वंशी बजाई और उसकी अद्भुत ध्वनि से और गतर्क संचालन से और अनेकों युक्तियों से सर्पों को वशीभूत कर दिया। सर्प-समूह कृष्ण की वंशी की ध्वनि के संकेतों पर इस प्रकार नाचते और झूमते थे कि तनिक भी इधर-उधर नहीं होते थे।

अगम्य अत्यन्त······ ······**छा गया** ॥४७-४८॥

शब्दार्थ—अगम्य=जहां गति न हो। शैल=पहाड़। अहीश=सर्पों का स्वामी। सदर्प=दर्प के साथ। यम-यातना=यमराज की यातना। तजा=छोड़ दिया। नाग वाली=कालिया नाग। यमुनाति=यमुना अति ही। समोद= आमोद के साथ। सदम=घरों। प्रमोद=उल्लास।

संदर्भ सहित व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध कृष्ण के घर लौटने तथा सर्प-विध्वंस से उत्पन्न आमोद का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—

पर्वत के निकट जहां वन बीहड़ और भयंकर हो गया था, वहीं पर कृष्ण ने परिवार के साथ ही सर्पों के समूह को छोड़ दिया। छोड़ते समय सर्पों को बहुत ही यातना दी।

उस दिन से आज तक कालियानाग कहीं भी दिखाई नहीं पड़ा है। उसके यहां से चले जाने से यमुना का विषाक्त जल अत्यन्त निर्मल हो गया है। कृष्ण के इस कार्य से प्रसन्न होकर सभी ब्रजवासी आमोद मनाते हुए अपने-अपने घरों को लौटे। सारी ब्रज-भूमि में आनन्द और उल्लास छा गया—सर्वत्र कृष्ण का जयजयकार होने लगा। ब्रजनिवासी प्रसन्नता से फूले नहीं समाते थे।

विशेष—कृष्ण के कार्य की परिणति प्रसन्नता में दिखाई गई है।

अनेक यों········ ······**अतीव क्यों** ॥४९ से ५२॥

शब्दार्थ—स-वंश=वंश सहित। मनीषी=तत्त्वचिंतक। गर्त= गड्ढे। पवित्र-भूता=पवित्रता से युक्त। जनोपघाती=मनुष्यों को मारने वाले। प्रवाद=अफवाह या झूठी खबर। पतंग-नन्दिनी=यमुना। ब्रज-व्याधि=ब्रज प्रदेश की बीमारी। प्रफुल्ल=प्रसन्न। महा-धीर=महान धैर्य के साथ। सु-कौशली=कौशल के साथ। दिव्य-धी=स्वर्गीय बुद्धि वाला।

संदर्भ सहित व्याख्या-इन पंक्तियों में यमुना से सर्प-समूह के निकालने के विषय में मनुष्यों की विभिन्न अटकलों का परिचय दिया गया है। हरिऔध कह रहे हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि कृष्ण ने फणीश को वंश सहित मार दिया है। उन्होंने वन में ले जाकर उसे मार डाला है। कुछ तत्त्वचिंतक मनीषी ऐसे भी

अहीश के नथे जाने का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—

कृष्ण ने अद्भुत पद्धति से अहीश को मथ डाला। उन्होंने रस्सी को, जिससे कि वह बंधा हुआ था, अपने हाथ में पकड़ रखा था। इस कार्य के सम्पन्न करने में उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ। वे तो सभी को प्रबोधने और मुग्ध करने वाली वंशी धीरे-धीरे बजा रहे थे।

कृष्ण का समस्त सुन्दर वस्त्र गीला हो गया था। उनका शरीर भी पूर्णतः आर्द्र हो गया था। यहां तक कि उनकी वनमाला जो गले में थी, वह भी भीगने से नहीं बची थी। कृष्ण की अलकावली से पानी की बूंदें बड़ी 'अद्भुता' अथवा विलक्षणता से गिरती हुई दिखाई दे रही थी।

विशेष—सामान्यतः हरिऔधजी ने वर्णन को अलौकिकता से दूर रखकर यथार्थ बनाने का प्रयत्न किया है, किन्तु इन पंक्तियों में वे स्वाभाविकता और यथार्थ की रक्षा नहीं कर सके हैं। कुल मिलाकर यह वर्णन अलौकिक ही प्रतीत होता है। मुरली की मादक ध्वनि से सांपों को वशीभूत करना आसान काम नहीं हैं।

लिये हुए······ ······**हो गये** ।।४३-४४।।

शब्दार्थ—कलिन्दजा-कम्पित=यमुना के कांपते हुए प्रवाह से। महाशक्ति=महान भय और शंका से ग्रस्त। भीत=भयभीत, डरे हुए। घोर त्रास=भयंकर भय से। प्रकम्पिता=कम्पित। व्यस्तसमस्त=चिन्तित हो गये।

संदर्भ—पूर्वपदानुसार।

व्याख्या—कवि हरिऔध कह रहे हैं कि कृष्ण जैसे ही सर्प-समूह को लिये यमुना के विषाक्त कुण्ड से बाहर निकले वैसे ही किनारे पर खड़े सभी व्यक्ति शंकित और भयभीत हो उठे। कृष्ण को सर्प-समूह के साथ निकलना देखा। अनेक व्यक्ति तो मूर्च्छित हो गये और बहुत से त्रास या भय के कारण पृथ्वी के उस स्थल से भाग गये। स्वयं माता यशोदा भी भयाक्रांत होकर कांपने लगी। इतना ही नहीं स्वयं यशोदानाथ ब्रजेश (नन्द) भी इस दृश्य को देखकर भयभीत हो गये।

विशेष—१ : कवि ने वर्णन चातुरी का परिचय दिया है।

२ : ब्रजवासियों का कृष्ण के प्रति प्रकारान्तर से अनन्य प्रेम भी व्यंजित है।

विलोक सारी······ ······**थे कभी** ।।४५-४६।।

शब्दार्थ—विलोक=देखकर। भयातुरा=भय से आतुर। विभिन्न मार्ग=अलग मार्ग से। सर्प यूथ=सर्पों के समूह। वेणुनाद=वंशी की ध्वनि। सतर्क=सचेत होने से। स-युक्ति से=युक्ति से। अल्प=थोड़े भी।

संदर्भ सहित व्याख्या—कृष्ण सर्प-कुण्ड से निकले और उन्होंने सभी को यमुना किनारे पर खड़ा पाया। हरिऔध कहते हैं—

कृष्ण ने यमुना से बाहर निकल कर सभी जनता को [illegible] दिया। इसे देखकर कृष्ण ने एक अलग मार्ग से सर्पों के समूह को बाहर निकाला। यमुना से निकालकर किनारे पर चढ़ाकर कृष्ण ने सर्प-समूह को वन की ओर वेग के साथ बढ़ा दिया।

कृष्ण ने वंशी बजाई और उसकी अद्भुत ध्वनि से और उसके संचालन से और अनेकों युक्तियों से सर्पों को वशीभूत कर दिया। सर्प-समूह कृष्ण की वंशी की ध्वनि के संकेतों पर इस प्रकार नाचते और झूमते थे कि तनिक भी इधर-उधर नहीं होते थे।

अगम्य अत्यन्त...... **......छा गया ॥४७-४८॥**

शब्दार्थ—अगम्य=जहां गति न हो। शैल=पहाड़। फणीश=सर्पों का स्वामी। सदर्प=दर्प के साथ। यम-यातना=यमराज की यातना। तजा=छोड़ दिया। नाग काली=कालिया नाग। यमुनाति=यमुना [illegible]। समोद= आमोद के साथ। सदन=घरों। प्रमोद= उल्लास।

संदर्भ सहित व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध कृष्ण के घर लौटने तथा सर्प-विध्वस से उत्पन्न आमोद का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—

पर्वत के निकट जहां वन बीहड़ और भयंकर हो गया था, वहीं पर कृष्ण ने परिवार के साथ ही सर्पों के समूह को छोड़ दिया। छोड़ते समय सर्पों को बहुत ही यातना दी।

उस दिन से आज तक कालियानाग कहीं भी दिखाई नहीं पड़ा है। उसके यहां से चले जाने से यमुना का विषाक्त जल अत्यन्त निर्मल हो गया है। कृष्ण के इस कार्य से प्रसन्न होकर सभी ब्रजवासी आमोद मनाते हुए अपने-अपने घरों को लौटे। सारी ब्रज-भूमि में आनन्द और उल्लास छा गया—सर्वत्र कृष्ण का जयजयकार होने लगा। ब्रजनिवासी प्रसन्नता से फूले नहीं समाते थे।

विशेष—कृष्ण के कार्य की परिणति प्रसन्नता में दिखाई गई है।

अनेक यों........ **......प्रतीव पयों ॥४९ से ५२॥**

शब्दार्थ—स-वंश=वंश सहित। मनीषी=तत्त्वचिंतक। गर्त=गड्ढे। पवित्र-भूता=पवित्रता से युक्त। जनोपघाती=मनुष्यों को मारने वाले। प्रवाद=अफवाह या झूठी खबर। पतंग-नन्दिनी=यमुना। ब्रज-व्याधि=ब्रज प्रदेश की बीमारी। प्रफुल्ल=प्रसन्न। महा-धीर=महान धैर्य के साथ। सु-कौशली=कौशल के साथ। दिव्य-धी=स्वर्गीय बुद्धि वाला।

संदर्भ सहित व्याख्या—इन पंक्तियों में यमुना से सर्प-समूह के निकालने के विषय में मनुष्यों की विभिन्न अटकलों का परिचय दिया गया है। हरिऔध कह रहे हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि कृष्ण ने फणीश को वंश सहित मार दिया है। उन्होंने वन में ले जाकर उसे मार डाला है। कुछ तत्त्वचिंतक मनीषी ऐसे भी

विशेष—१. ग्रीष्म के ताप और भयंकर वातावरण का वर्णन कवि ने बड़े मनोयोग से किया है।

२. उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग सुन्दर है।

विदग्ध हो के ....**उग्र-ऊष्मता।** ५९—६० ॥

शब्दार्थ—विदग्ध=जल कर। लौह=लोहा। इव=समान। महि-रेणु=धरती की मिट्टी। दुरन्त=भयंकर। समुद्विग्न=व्याकुल। ऊष्मता=गर्मी।

ससंदर्भ व्याख्या—कवि इन पंक्तियों में ग्रीष्मकालीन तप्तता का वर्णन कर रहा है। वह कहता है—

रेत के समूह के कण गरम हो कर तपे हुए लोहे के कण समान हो गये थे। धरती की मिट्टी जलते हुए भाड़ की गर्म बालू के समान हो गई थी। ग्रीष्मकालीन ताप बहुत ही भयंकर और असह्य था। सभी मानव अत्यन्त व्याकुलता का अनुभव कर रहे थे। प्राणियों की मधुर शांति को नष्ट करने वाली ग्रीष्म की गर्मी बहुत ही भयंकर थी। भाव यह है कि ग्रीष्म का ताप इतना उग्र और भयंकर था कि व्यक्तियों के लिए शांति से जीवन बिताना संभव नहीं था।

विशेष—उपमा अलंकार के सहारे तथा वर्णनात्मक शैली में ग्रीष्म के ताप का वर्णन बहुत ही मधुर है।

किसी घने... ......**ग्राम था** ॥ ६१—६२ ॥

शब्दार्थ—पल्लववान-पत्रों से संयुक्त। प्रगाढ़ा-छाया=गहरी छाया। स-व्यग्रता=बैचेनी के साथ। दुरन्त-काल=भयंकर समय। निद्रित=निद्रामग्न। अपार निस्तब्ध=पर्याप्त शांत।

संदर्भ सहित व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार ही कवि हरिऔध कह रहे हैं—

ग्रीष्म का ताप बहुत ही भयंकर था तथा जैसा कि कहा जा चुका है व्यक्ति ताप के कारण ही सुखद जीवन नहीं बिता रहे थे। फिर भी किसी घने पत्तों वाले व प्रगाढ़ छाया वाले कुञ्ज में प्राणी अपनी जिन्दगी बिता रहे थे। इतने पर भी ग्रीष्म-ताप से वे बहुत ही व्यग्र थे।

सभी मानव समूह ग्रीष्मातप के कारण अपने-अपने घरों में निद्रितसा पड़ा हुआ था। गर्मी के भयंकर प्रकोप के कारण एक भी व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं आ जा रहा था। सम्पूर्ण ब्रज-प्रदेश निस्तब्ध था। कहीं भी कोई हलचल नहीं दिखाई दे रही थी। भाव है ग्रीष्मताप से सभी शांत और निस्तब्ध थे।

विशेष—उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

स्व-शावकों... ......**के भगी।** ६३—६४ ॥

शदार्थ—स्व-शावकों=अपने बच्चों। अबोल=शांत। स्वकीय-नीड़

विशेष—१. ग्रीष्म के ताप और भयंकर वातावरण का वर्णन कवि ने बड़े मनोयोग से किया है।

२. उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग सुन्दर है।

विदग्ध हो के ····· ·······उग्र-ऊष्मता। ५६—६०॥

शब्दार्थ—विदग्ध=जल कर। लौह=लोहा। इव=समान। महि-रेणु=धरती की मिट्टी। दुरन्त=भयंकर। समुद्विग्न=व्याकुल। ऊष्मता=गर्मी।

ससंदर्भ व्याख्या—कवि इन पंक्तियों में ग्रीष्मकालीन तप्तता का वर्णन कर रहा है। वह कहता है—

रेत के समूह के कण गरम हो कर तपे हुए लोहे के कण समान हो गये थे। धरती की मिट्टी जलते हुए भाड़ की गर्म बालू के समान हो गई थी। ग्रीष्मकालीन ताप बहुत ही भयंकर और असह्य था। सभी मानव अत्यन्त व्याकुलता का अनुभव कर रहे थे। प्राणियों की मधुर शांति को नष्ट करने वाली ग्रीष्म की गर्मी बहुत ही भयंकर थी। भाव यह है कि ग्रीष्म का ताप इतना उग्र और भयकर था कि व्यक्तियों के लिए शांति से जीवन बिताना संभव नहीं था।

विशेष—उपमा अ ंलकार के सहारे तथा वर्णनात्मक शैली में ग्रीष्म के ताप का वर्णन बहुत ही मधुर है।

किसी घने··· ······ग्राम था॥ ६१—६२॥

शब्दार्थ—पल्लववान-पत्रों से संयुक्त। प्रगाढ़ा-छाया=गहरी छाया। स-व्यग्रता=बैचेनी के साथ। दुरन्त-काल=भयंकर समय। निद्रित=निद्रामग्न। अपार निस्तब्ध=पर्याप्त शांत।

संदर्भ सहित व्याख्या—पूर्व सदर्भानुसार ही कवि हरिऔध कह रहे हैं—

ग्रीष्म का ताप बहुत ही भयंकर था तथा जैसा कि कहा जा चुका है व्यक्ति ताप के कारण ही सुखद जीवन नहीं बिता रहे थे। फिर भी किसी घने पत्तों वाले व प्रगाढ़ छाया वाले कुञ्ज में प्राणी अपनी जिन्दगी बिता रहे थे। इतने पर भी ग्रीष्म-ताप से वे बहुत ही व्यग्र थे।

सभी मानव समूह ग्रीष्मातप के कारण अपने-अपने घरों में निद्रितसा पड़ा हुआ था। गर्मी के भयंकर प्रकोप के कारण एक भी व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं आ जा रहा था। सम्पूर्ण ब्रज-प्रदेश निस्तब्ध था। कहीं भी कोई हलचल नहीं दिखाई दे रही थी। भाव है ग्रीष्मताप से सभी शांत और निस्तब्ध थे।

विशेष—उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

स्व-शावकों··· ·· ······के भगी। ६३—६४॥

शदार्थ—स्व-शावकों=अपने बच्चों। अबोल=शांत। स्वकीय-नीड़

में=अपने नीड़ में। दीर्घ दाह्य=प्रचन्ड गर्मी। वर-वृक्ष=श्रेष्ठ छायादार वृक्ष। प्रतप्त=तपती हुई, गमनाभिशंकया=गमन की आशंका से। पदांक=पांवों को।

प्रसंग सहित व्याख्या—गर्मी के ताप के कारण पक्षियों का समूह अपने द्वारा निर्मित नीड़ों में अपने बच्चों सहित शांत भाव से बिना कुछ भी बोले पड़ा हुआ था। वन में गर्मी इतनी अधिक थी कि उसके भय से मुख में रहनेवाली जिह्वा भी अपने घर को छोड़ने में असमर्थ थी। भाव यह है कि ग्रीष्म ताप के कारण बातचीत करना भी संभव नहीं था।

किसी शीतल कुञ्ज की छाया में अथवा किसी वृक्ष के नीचे पशु भी शक्तिहीन होकर चरणहीन से पड़े हुए थे। इसे देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानों पैरों की गति इस भय से कि कहीं मुझे तप्त पृथ्वी पर ही चरण-निक्षेप न करना पड़े, चरणों को छोड़ कर भाग गई थी। भाव यह है कि ग्रीष्म के ताप से चरणों की गति भी असहाय सी मंद पड़ गई थी।

विशेष—हेतूत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकार है। वर्णन में रसनीयता विद्यमान है। कवि भावुक हो उठा है।

प्रचण्ड लू थी ... ...कुंज में ॥६५-६६॥

शब्दार्थ:—प्रचण्ड=भयंकर। घाम=धूप। विलुप्त=लुप्त। अखण्ड राज्य=एकछत्र राज्य। गौ पालक=गौ को पालने वाले। अमनोज्ञ=बुरे या जो सुन्दर न हो। वनस्थिता=वन में स्थित। विराम-कुंज=विश्राम।

ससंदर्भ व्याख्या:—प्रसंग और संदर्भ पूर्ववत् ही है। कवि कह रहा है—ग्रीष्म काल में प्रचण्ड लू चल रही थी। धूप बहुत ही तीव्र थी। पवन भी वह तो धीरे ही रही थी, किन्तु उसमें अंधड़ का सा गर्जन था। ग्रीष्म वेला में अन्य सभी प्रभाव लुप्त हो गये थे और केवल गर्मी का ही एक छत्र राज्य था—तात्पर्य यह है कि ग्रीष्म का प्रकोप सर्वत्र छाया हुआ था।

गर्मी की इस वेला में अनेक ग्वाले गायों और उनके बछड़ों को लिए जैसे तैसे दिवस बिता रहे थे। स्वयं कृष्ण भी वन में स्थित एक विश्रामदायक कुंज में ऐसी दुपहरी को बिता रहे थे।

परन्तु प्यारी... ... ... है लगी ॥६७-६८॥

शब्दार्थ:—विनष्ट=नष्ट। अचिन्त्य=अकल्पित और अनायास ही। दूरागत=दूर से आगत। भूरि=पर्याप्त। अजस्र=निरन्तर। उत्थित=उठते हुए। कान लगा कर=यह एक मुहावरा है, अर्थ है ध्यानपूर्वक सुनना।

अकल्पनीय और अनायास ही दूर से आये तीव्र शब्द को सुन कर स्तब्ध रह गये। घोर शब्द निरन्तर सुनाई दे रहा था।

कृष्ण ने शोर को कान लगाकर ध्यानपूर्वक सुना और वे बार बार उस उठते हुए शोर को सुन कर बैचेन होने लगे। तुरन्त ही उन्हें ज्ञात हो गया कि वन मध्य में आग लगी हुई है।

गये उसी ओर ... ...संग ने ।।६९–७०।।

शब्दार्थ :—गवादि=गाय आदि। व्रज-व्योम चन्द्र=व्रज प्रदेश के आकाश में प्रकाशित चन्द्रवत कृष्ण। पूष्ण=सूर्य।

व्याख्या:—पूर्व प्रसंग और सन्दर्भानुसार कवि हरिऔध कह रहे है—कृष्ण ने जैसे ही जाना कि वन के मध्य में आग लगी हुई है तो वे अनेक गोपग्वालों को साथ लिए उधर जाने को उद्यत हुए क्योंकि वे जानते थे कि कुछ समय पूर्व ही गाय आदि को लिए गोप-ग्वाले उधर ही गये थे। यह सोचते ही कृष्ण को अपने बन्धु वर्ग की विशेष चिन्ता हुई। व्रज प्रदेश में चन्द्रमा की भांति शीतलता और प्रकाश फैलाने वाले कृष्ण एक बारगी चिन्तित हो उठे।

ग्रीष्मातप की प्रचण्डता का ध्यान किये बिना तथा गर्मी की, सूर्य की और समीर की भयकरता का ध्यान न करते हुए व्रजेश कृष्ण अपने शांति-कुन्ज को छोड़ कर साहसी गोप-वर्ग को साथ लेकर उसी दिशा की ओर दौड़ पड़े।

विशेष:—वर्णन से सिद्ध है कि कृष्ण लोक-रक्षक थे। वे अपनी सुख शांति को छोड़कर भी लोक-कल्याण के मार्ग पर धावित थे। आग लगने से पूर्व कृष्ण विश्राम कर रहे थे, किन्तु दावाग्नि का पता चलते ही उधर दौड़ पडे। यह कार्य कृष्ण के लोकोपकारी रूप को प्रस्तुत करता है।

निकुन्ज से बाहर ... ...व्यापिनी ।।७१–७२।।

शब्दार्थ:—निकुन्ज=कुन्ज। धूमपुन्ज—धूंए के समूह का। मलीन—कालिमापूर्ण। दिगन्त व्यापिनी=दिशाओं में व्याप्त हो जाने वाली भयंकर आग।

व्याख्या:—हरिऔध पूर्वोक्त प्रसंग में ही कह रहे है—

कृष्ण जैसे ही विश्राम कुन्ज से बाहर आये वैसे ही उन्हें अपने सामने ही दक्षिण दिशा में धूम्र का समूह अथवा पर्वत दिखाई पड़ा। आग प्रज्वलित होने से सर्वत्र धूंआ ही धूंआ दिखाई देता था। यह धूआ सम्पूर्ण दिशाओं को मलिन कर रहा था।

कृष्ण अभी कुछ ही दूर गये थे कि उन्हें आग की लपलपाती लपटें दिखाई देने लगीं—उस आग की जो वनस्थली के मध्य प्रज्वलित हो रही थी। यह आग धीरे-धीरे समस्त दिशाओं को लपेटती जा रही थी। तात्पर्य यह है कि संपूर्ण दिशाओं में आग ही आग दिखाई देती थी।

प्रवाहिता ··· ··· ··· ··· वनस्थली ।।७३–७४।।

शब्दार्थ:—प्रवाहित=प्रवाहित हो रही थी। उद्धत=तीव्र । विधूनिता=प्रताड़ित होकर। भयंकरी=डरावनी। प्रलयंकरी समा=प्रलय काल के समान। वंश=बांस। महाशब्दित=घोर शब्दायमान।

प्रसंगः—पूर्वपदानुसार ही रहेगा।

व्याख्याः—आग की लपटें बड़ी तेजी से बढ़ रही थीं क्योंकि उनके बढ़ने में तीव्र और उद्धत वायु की प्रेरणा थी। हवा से विधूनित या प्रताड़ित होने से आग की लपटें बढ़ती ही जाती थीं। इस प्रकार अंध पवन से आन्दोलित होकर अग्नि-शिखायें अत्यन्त भयंकर और प्रलयकारी दृष्य उपस्थित कर रही थीं। प्रलय कालीन दावाग्नि का सा समाया-दृश्य बना रही थीं।

अनेकों पेड़ जल रहे थे। बहुत से पेड़ों की गांठें सशब्द या घोर शोर के साथ फटती जा रही थीं। बांस के वृक्षों के अपार समूह में जैसे ही आग लगी वैसे ही भयंकर शब्द हुआ और सम्पूर्ण वनस्थली महान् शब्दायमान हो गई। बांसों के फटने से भयकर ध्वनि स्वभावतः होती ही है।

विशेषः—उपमा अलकार का प्रयोग किया गया है। वर्णन में यथार्थ और दृष्टि की सूक्ष्मता दिखाई देती है।

अपार पक्षी ··· ··· ··· कांपता ।।७५–७६।।

शब्दार्थ:—त्रस्त=भयभीत होकर। सरीसृपादि=रेंगने वाले जन्तु यथा सर्पादिक। लखा=लक्ष्य किया या देखा। प्रवीर=बहादुर और साहसी

ससंदर्भ व्याख्या:—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध अग्नि की तीव्रता और भयंकरता का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—

अग्नि की तीव्रता बहुत बढ़ी हुई थी। सभी पशु-पक्षी भयभीत होकर बड़ी व्याकुलता से इधर-उधर दौड़ते दिखाई देते थे। भाव यह है कि ग्रीष्मा-तप और दावाग्नि का प्रकोप सर्वत्र फैलता दिखाई दे रहा था। सरीसृप या रेंगने वाले जीव-जन्तु व्याकुलता को अनुभव करके यत्र-तत्र दौड़ रहे थे।

कृष्ण ने समीप जाकर इस अग्नि-दाह के भीषण काण्ड को देखा। कवि कहता है कि त्रिलोकों में ऐसा कौन वीर और साहसी है जो इसे देख कर कांपता नहीं ? भाव यह है कि भीषण काण्ड सभी के हृदयों को कंपा देने वाला था।

प्रचण्डता में··· ··· ··· ···पलायनेच्छु हो ।।७७–७९।।

शब्दार्थ :—दुरन्तता—भयंकरता। विवर्द्धिता—बढ़ती हुई। तूल-पुंज—रुई के ढेर के समान। समूल—जड़ सहित। प्रस्तर खण्ड—पत्थरों के खण्ड। तृण-तुल्य—तिनके के समान। त्राण—रक्षा। शिखाग्नि—आग की लपटों से। पलायनेच्छु—भागने के इच्छुक।

व्याख्या :—सूर्य की गर्मी की प्रचण्डता बढ़ती जा रही थी और साथ ही दावाग्नि की भयंकरता भी बढ़ती जा रही थी। इस भयंकर दृश्य को देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानों आज ब्रज भूमि जल कर नष्ट हो जायगी। पर्वताकार वृक्ष आग के प्रभाव से रुई के ढ़ेर के समान जड़ सहित पल भर में भस्म हो जाते थे। इतना ही नहीं बड़े-बड़े पत्थरों के टुकड़े आग के प्रभाव में शीघ्र ही तिनके के समान जलकर खाक हो जाते थे। अनेक पक्षी आकाश के मध्य भाग में उड कर भी शिखाग्नि से त्राण पा सकने में असमर्थ थे। सहस्त्रों पशु-पक्षी कीट पतंगों के समान पलायनेच्छु होकर वहां अपने प्राण त्याग रहे थे। भाव यह है कि आग इतनी तीव्र थी कि आकाश के मध्य विचरण करने वाले पक्षी भी उसके ताप से अपने प्राणों की रक्षा करने में असमर्थ थे।

विशेष :—आग के व्यापक प्रभाव की चर्चा सरल ढग से की गयी है। पाठकों के मन पर इसकी व्यापकता सहज ही देखी जा सकती है। उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

जला किसी का ··· ··· ··· ···थी हुई ॥८०-८२॥

शब्दार्थ :—आर्त्त-निनाद—दुख की चीख या पुकार। प्रज्ज्वलिताग्नि—प्रज्ज्वलित अग्नि। दिवांधता—दिन को अन्धकार मय बना देने वाली। कारिणि—करने वाली। राशि—समूह। घोरा-ध्वनि—शोर कने वाली ध्वनि। त्रास—वर्द्धिनी—भय उत्पन्न करने वाली। विलोका—देखा। करुणा-निकेत—करुणा के घर। गवादि—गाय आदि। संज्ञा—चेतना।

ससंदर्भ व्याख्या :—इन पंक्तियों में कवि दावाग्नि से जलने वालों की स्थिति का परिचय दे रहे हैं। वे कहते हैं—

वन की आग से किसी का पैर, किसी की पूंछ जल गयी थी तो किसी का शरीर अधजला पड़ा हुआ था। आग में अनेकों जल गये थे और असंख्य जल रहे थे। सम्पूर्ण दिशायें आर्त्त पुकार करती हुई दिखाई दे रही थीं। भयंकर रूप से प्रज्ज्वलित होती हुई आग की लपटें दिवस के प्रकाश को धुंए के कारण अंधकार में परिवर्तित कर रही थीं। सम्पूर्ण वनस्थली में बहुत दूर तक नितांत कोलाहल भरी ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। यह त्रास या भयोत्पादक थी। इसी स्थल पर करुणा निकेत कृष्ण ने अपने बन्धुओं के समूह को गाय आदि के साथ देखा। उन्होने देखा कि आग की भयकरता और दुरन्तता के कारण अधिकांश गोप ग्वालों की संज्ञा या चेतना प्रायः विनष्ट होती जा रही थी।

निरर्थ चेष्टा ··· ··· ··· ··· बचा ॥८३-८४॥

शब्दार्थ :—निरर्थ—व्यर्थ या निस्सार। स्व-रक्षार्थ-अपनी रक्षा के लिए। दावाग्नि-गर्भ—आग के बीच से। अशक्त—असमर्थ। स्व-जाति—अपनी जाती। उद्धार—अवतारण। पावक—अग्नि। सधेनु—गायों के सहित।

व्याख्या :—कृष्ण ने देखा कि गोप ग्वाले आग से बचने का व्यर्थ परिश्रम कर रहे थे। उनको दावाग्नि से बचने के व्यर्थ प्रयत्न करते देख कर कृष्ण को बहुत दया आयी—उन्हें विशेषकर दया इसलिए भी आई कि वे अशक्त थे, निर्बल थे। इसी प्रसंग में कृष्ण ने अपने साथियों से कहा कि देखो बन्धुओं! अपनी जाति का उद्धार करना मनुष्य का महान् धर्म है। शीघ्र ही चल कर अग्नि में प्रवेश करें और अग्नि प्रवेश से बंधु बांधवों को गायों सहित बचा लें। भाव यह है कि कष्ट करके उन्हें बचा लेना चाहिए।

विशेष :—कृष्ण को यहां लोक और मानव कल्याण के व्याख्याता के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

विपत्ति से ··· ··· ··· ··· पंथ भी ।।८५–८८।।

शब्दार्थ :—रक्षण—रक्षा करना। सर्व-भूत—सभी प्राणियों। सहाय—सहायक होना। उबारना—उद्धार करना। जोखों—कष्टों। ज्वलदग्नि—जलती हुई आग। भव-जन्म = संसार में जन्म लेना। भस्म हो गये—जल गये। दुरूह-पंथ = कठिन पंथ। स्वल्प = थोड़ी भी देर। अगम्य = जहां गमन संभव न हो या कठिन हो।

प्रसंग सहित व्याख्या :—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि मानव धर्म की व्याख्या कर रहा है। बताया गया है कि सभी प्राणियों की विपत्ति से रक्षा करना असहाय व्यक्तियों की सहायता करना और अपनी जाति के भाईयों की संकट से रक्षा करना मनुष्य का सबसे प्रमुख धर्म कहा जाता है। भाव यह है कि असहाय और निरीह प्राणियों की रक्षा करना ही मानव-धर्म है। अपने प्राणों के मोह को त्याग करके तथा स्वयं को कठिनाईयो में डाल करके ही विश्व में महान् कार्य संभव हो सके हैं। प्राणों पर कष्ट झेल कर कार्य करने में ही मनुष्य का संसार में जन्म लेना सार्थक सिद्ध होता है। अतः हे वीरों! अपनी जाति के भाइयों की मदद के लिए स्वयं आगे बढ़ो और कार्य करो। तुम्हें तो दोनों ओर लाभ ही लाभ दिखाई देता है। यदि कर्त्तव्य का पालन किया तो वे बचा लिए जायेंगे—यदि वे बचे तो कर्त्तव्य निभाने का लाभ होगा और यदि प्राण त्याग दिये तो सुकीर्ति प्राप्त होगी। देखो वे हमारे सभी साथी शिखाग्नि से घिरे हुए है केवल एक मार्ग बचा हुआ है, भले ही वह मार्ग कठिन हो। यदि थोड़ी सी भी देर हो गई तो यह बचा हुआ मार्ग भी घिर जायगा और हम वहां प्रवेश न कर सकेंगे।

विशेष :—१. साथियों की विपत्ति में रक्षा करना मानव धर्म है। कहा गया है—"A friend in need is a ftiend indeed,"

२. मानव-धर्म का पालन करते समय कई बार प्राणों पर भी जोखिम आ सकती है, किन्तु विश्व के महान् कार्य कठिनाइयों को पार करके ही किये जा सकते हैं। कवि का यही संदेश है।

अतः न है······ ······भांति था ।।८९ से ९१।।

शब्दार्थ—अपकीर्ति=अपयश। समुत्तेजित=प्रेरित और उत्तेजित।

तथापि=तो भी, इतने पर भी। यथार्थ-रीति=उचित प्रकार से। उग्र=तीव्र। समुन्मूलन=जड़ से ही उखाड़ दिया था।

प्रसंग सहित व्याख्या—ग्रीष्म के ताप और अग्नि की प्रचण्डता से कृष्ण के सभी सखा निरुत्साहित हो गये थे। कवि ने इसी का वर्णन किया है। वह कहता है—

कृष्ण ने कहा कि देर करने से कोई लाभ नहीं है। हमें शीघ्र ही अपने कार्य में प्रवृत्त होना चाहिए। यदि हम गायों के साथ इन सभी अपने साथियों को नहीं बचा सके तो युग युगान्तर तक हमारा अपयश तीनों लोकों में फैल जायगा। यह बात कृष्ण ने बहुत ही जोर देकर कही थी, सभी को कृष्ण ने अच्छी तरह उत्साहित और उत्तेजित किया था, किन्तु इतने पर भी कृष्ण के साथी अपने कार्य में ठीक प्रकार से संलग्न न हो सके। इसका कारण यह था कि सभी गोप ग्वाले निदाघ की भीषणता और उग्रता से अपने होश-हवास खो बैठे थे। जो भी थोड़ा बहुत साहस शेष रह गया था, उसे दावाग्नि ने सभी प्रकार से समूल नष्ट कर दिया था।

विशेष—कवि ग्रीष्मातम और दावाग्नि के प्रकोप के सहारे बहुत ही यथार्थ वर्णन करने में सफल सिद्ध हुआ है।

असह्य होती...... ......को बना ॥९२ से ९४॥

शब्दार्थ—अतीव=पर्याप्त। कराल ज्वाला=भयंकर ज्वाला। तन-दग्धकारिणी=शरीर को जलाने वाली। संकुल=घिरा हुआ। भूरिशः=पर्याप्त मात्रा में। भ्रान्त=पागल विलोप=लुप्त। वल्लभ=स्वामी। निदेश=निर्देश या आदेश। क्षणेक=एक क्षण। प्रवीर से=श्रेष्ठ वीर के समान। धंसे=प्रविष्ट हुए। चमत्कृता=चौंकाते हुए।

ससंदर्भ व्याख्या—कृष्ण के साथी तो यथार्थ रीति से कार्य-संलग्न न हो सके, किन्तु, कृष्ण जुट गये। कारण उन्हें कष्ट होता था कि मैं यदि इन बधु—बांधवों की रक्षा में असमर्थ रहा तो मेरा जन्म व्यर्थ है—जीवन निरर्थक है। कवि कहता है—

कृष्ण को कराल ज्वाला की लपटें जो कि गोपों के शरीर को जला रही थी बहुत ही असह्य थी। वे कष्ट पा रहे थे। विपत्ति से भरा हुआ मार्ग जो अभी तक आग की लपटों से बचा हुआ था, उन्हें भयभीत बना रहा था। इसी कारण सभी लोग पूर्णतः भ्रान्त से हो गये थे। धीरे-धीरे इस दारुण दृश्य को देख कर उन सभी के होश बिगड़ रहे थे। कृष्ण के आदेश से वह क्षण भर के निमित्त होश में आते थे और फिर क्षणांतर में ही उनकी दशा बिगड़ जाती थी।

कृष्ण अपने साथियों की यह दुर्दशा देख कर प्रचण्ड अग्नि में प्रवेग से प्रविष्ट हुए। वे स्वयं दावानल में बड़े भयंकर वेग से प्रविष्ट हुए। उनके यकाएक इस प्रकार के प्रवेश से सभी बन्धु-बांधव चमत्कृत हो उठे—चकित हो गये।

विशेष—वर्णन शैली प्रभावोत्पादन है। कृष्ण का चमत्कृत होकर अग्नि में घुसना बहुत ही नाटकीय है। उपमा अलंकार का प्रयोग है।

प्रवेश के वाद...... ......सराहने ॥ ६५-६६ ॥

शब्दार्थ—गोपालक=गोप-ग्वालों को। कल-कीर्ति=यश की सुन्दर वेलि। सराहने=प्रशंसा करने लगे।

प्रसंग सहित व्याख्या— इन पंक्तियों में हरिऔध कृष्ण के दावाग्नि में से निकलते समय का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—

अग्नि में प्रवेश के पश्चात् कृष्ण तुरन्त ही बड़े वेग के साथ अपने सभी गोप-ग्वालों की गायों के साथ बाहर आये। उन्होंने दावाग्नि से सभी की रक्षा की और क्षण भर में ही समस्त त्रिलोक को अलौकिक या दिव्य स्फूर्ति दिखा दी और इस प्रकार यह महान् कार्य करके वसुंधरा में यश की लता के सुन्दर वीज वोये।

सभी को वचा कर कृष्ण जैसे ही दावाग्नि से वाहर आये वैसे ही वही मार्ग जो वचा हुआ था, तुरन्त ही अग्निमय हो गया प्रचण्ड ज्वाला से घिर गया। यह दृश्य देख कर सभी कृष्ण को आदर दे दे कर सराहना करने लगे या सम्मान और प्रशंसा देने लगे।

विशेष—कृष्ण के प्रवेश के वाद तुरन्त दावाग्नि से निकलना नाटकीय त्वरा भले ही प्रदर्शित करता हो, यथार्थता और स्वाभाविकता से परे है—अलौकिक है। दिव्योपम है।

अभागिनी है...... ......कृष्णचन्द्र को ॥६७ से ६६॥

शब्दार्थ—अभागिनी=दुर्भाग्यशाली। कौस्तुभ=एक मूल्यवान मणि। विलोकता=दिखाई देता। उत्कंठित=उल्लासित। आनन=मुख।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में वृद्ध गोप कृष्ण के गुणगान के अन्तर्गत उनकी याद करता हुआ कह रहा है—

कृष्ण जो अपार गुणशाली और लोकोपकार की भावनाओं से भर पूर थे, वे अव हम से वियुक्त हो गये हैं। व्रज की भूमि वहुत ही अभागिनी हैं कि कृष्ण विछुड़ गये है। व्रजेश (नन्द) का जो मूल्यवान रत्न हम से वियुक्त कर के हरा गया है वह वहुत ही कष्टदायक है। हम वस्तुत: अभागे हैं कि हमारे ही हाथों से व्रज-भूमि का रत्न छिन गया है। व्रजवासियों का प्रतिनिधि वृद्ध गोप कहता है कि चाहे हमारे पास धन न होता, रत्न भले ही डूव जाता। हमारी गायों का समूह भले ही हम से छूट जाता और यह धरित्री भी नहीं मिल पाती, समस्त सम्पदा भी यदि चली जाती तो भी विशेष शोक न होता किन्तु कमलवत् सुन्दर कृष्ण का मुख सदैव हमें दिखाई देता रहता।

गोप ने कहा—मैं एक वार और सुन्दर वृन्दावन रूपी आकाश की गोदी में कृष्ण के मुख रूपी चन्द्रमा को देखने के लिए सदैव आकुल व्याकुल रहता हूं।

द्वादश सर्ग

कथासार

प्रिय प्रवास का द्वादश सर्ग भी कृष्ण के गुण-कथन और संस्तुति आदि से भरा हुआ है। प्रारंभ में ही कवि ने बताया है कि गोप-गण कृष्ण विषयक चर्चा कर ही रहे थे कि एकायक वहां एक आभीरों का दल आ पहुंचा। वह आभीर दल बहुत ही दुखी था और दुखातिरेक से क्षुब्ध अनेक बातें करता हुआ कृष्ण की चर्चा करने लगा। उस दल ने एक दिवस की घटना सुनाई—

सावन का सुन्दर महीना था। आकाश में मेघ घिर-घिर आते थे और उनकी उमड़न-घुमड़न से वसुधा उल्लसित हो रही थी—बगुलों की पंक्ति भी आकाश में उमड़ती दिखाई देती थी। वायु के आन्दोलित होने से लतायें और वनस्पतियां हिलती-डुलती दिखाई देती थीं। लतायें फूलों से लद् गई थीं। ऐसे ही स्वर्णावसर पर एक दिवस यह व्रजभूमि दुखाब्धि में निमग्न हो गई थी। यदि उस दिन कृष्ण सहायता न करते तो सभी का जीवन समाप्त हो जाता। आज जो हम यहां एकत्र हैं, वे कभी भी यहां न होते। इस वर्णन के मध्य में ही कवि हरिऔध ने प्रकृति का वर्णन बड़ी ही भावुकतापूर्ण किया है। घटाओं का घिरना, बिजली का चमकना, सर्वत्र हरियाली और उसका उल्लास दिखाई देता था। कवि के ही शब्दों को देखिये—

घहरता गिरि—सानु समीप था।
बरसता छिति—छू नव—वारि था॥
घन कभी रवि—अन्तिम-अंशु ले।
गगन में रचता बहु—चित्र था॥

नवप्रभा परमोज्ज्वल—लीक-सी।
गति—मती कुटिला—फणिनी—समा॥
दमकती दुरती घन—अङ्क में।
विपुल केलि—कला—खनि दामिनी॥

× ×

वसुमती पर थी अति—शोभिता।
नवल—कोमल—श्याम—तृणावली॥
नयन—रंजनता मृदु—मूर्ति थी।
अनुपमा—तरु—राजि—हरीतिमा॥

इस प्रकार प्रकृति का सुन्दर वर्णन द्वादश सर्ग के प्रारम्भ में देखने को मिलता है। इसी प्रकार के मनोहर वातावरण में एक दिवस

तूफान आया। चारों ओर घनघोर घटायें घिर आयीं। अंधकार धीरे-धीरे गाढ़ा होता गया, वज्रोपम शोर करती और कडकड़ाती बिजली चमकने लगी। मेघ उमड़ते-घुमड़ते घिरने लगे। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो प्रलयकालीन मेघ उमड़ते चले आ रहे हो। अंधकार की सघनता इतनी बढ़ी कि दिन में भी अमावस्या का सा अंधकार प्रतीत होने लगा। सर्वप्रथम तो बूंदें गिरीं और तदनन्तर मूसलाधार वृष्टि होने लगी।

मेघ गर्जन से सभी ब्रजवासी भयभीत हो उठे। वृक्षों की बड़ी-बड़ी डालियां भी टूट-टूट कर गिरने लगी। वृक्षों से समूह जड़ से उखड़ गये। घर भी गिरने लगे। पर्वतों की चोटियां प्रयंकारी दृश्य से टूट-टूट कर गिरने लगी। बादल ऐसे उमड़ते थे मानों प्रलय खण्ड घिरे रहे हों। दिवस तो जैसे-तैसे बीत गया और रात आ गई। रात्रि होने पर भी मेघों का प्रकोप शांत नहीं हुआ। सभी सरोवर जल से आपूरित हो गये। निरन्तर जल बरसने से सम्पूर्ण ब्रजभूमि जल प्रलय का सा दृश्य प्रस्तुत करने लगीं किन्तु वर्षा बन्द नहीं हुई। सभी व्यथित व्यक्ति एकत्र होकर नन्द के पास गये।

नन्द स्वयं ही परेशान थे। सभी को आया जान कर उनकी चिन्ता और भी बढ़ गई। वे सोचने लगे कि शीघ्र ही इनकी रक्षा की जानी चाहिए। लोक रक्षा का भाव तो नन्द के मन में आया, किन्तु वे कोई समुचित साधन या समाधान न पा सके। अनेक विवेकशील प्राणी भी इस सम्बन्ध में कोई सुझाव या निष्कर्ष न दे सके। सभी सोच-विचार में लगे हुए थे तभी एक पीले वस्त्र पहिने बालक वहां दिखाई दिया। यह बालक कृष्ण था। कृष्ण को देख कर सभी ब्रजवासी आनन्दित हुए और सभी उनकी सराहना करने लगे। कवि के शब्द देखिए—

तड़ित—सी कछनी कटि में कसे।
सु—विलसे नव—नीरद—कांति का॥
नव—बालक एक इसी घड़ी।
जन—समागम—मध्य दिख पड़ा॥

ब्रज—विभूषण को अवलोक के।
जन—समूह प्रफुल्लित हो उठा॥
परम उत्सुकता—वश प्यार से।
फिर लगा वदनांबुज देखने॥

कृष्ण ने सभी उपस्थित सज्जनों से कहा कि—बादलों को इस प्रकार घिरा हुआ जान कर तो ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति पर्याप्त क्रोध में है। ऐसी परिस्थिति में पर्वत की कंदराओं में निवास करने के अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं है। ऐसा अन्य कोई साधन भी तो नहीं दिखाई देता है जिससे सभी की रक्षा की जा सके। अतः सभी प्रकार से पर्वताधिपति गोवर्धन की शरण में जाना उचित है। वह ग्राम के सन्निकट है और उसमें कई गुफायें भी हैं। उस स्थान पर सरलता और आसानी से रहा जा सकता है।

कृष्ण के इस प्रस्ताव पर पर्याप्त वाद-विवाद हुआ, किन्तु अन्ततोगत्वा यही तय किया गया कि गोवर्धन पर्वत की शरण में जाये बिना अन्य कोई अवलम्ब नहीं है। यह निश्चय क्रियान्वित होने में बिजली की कड़क, वर्षा की निरन्तरता और अंधकार बाधक बन कर आया। सभी व्यक्ति निरुत्साहित हो गये। इस पर कृष्ण ने सभी को कहा कि विपत्ति से घबराना ठीक नहीं है, हमें निश्चेष्ट बैठे रहने की अपेक्षा संघर्ष सह कर कार्य करना चाहिए। कार्य करते हुए यदि प्राणों का बलिदान भी हो जाय तो कोई बात नहीं है। देखिए कृष्ण के उत्प्रेरक शब्द—

विपद—संकुल विश्व—प्रपंच है।
बहु—छिपा भवितव्य रहस्य है॥
प्रति—घटी पल है भय प्राण का।
शिथिलता इस हेतु—अश्रेय है॥

विपद से वर—वीर समान जो।
समर—अर्थ समुद्यत हो सका॥
विजय—भूति उसे सब काल ही।
वरण है करती सु—प्रसन्न हो॥

पर विपत्ति विलोक स—शंक हो।
शिथिल जो करता पग हस्त है॥
अवनि में अवमानित शीघ्र हो।
कवल है बनता वह काल का॥

कृष्ण के उपर्युक्त प्रेरणास्पद कथनों से सभी व्यक्ति उत्साहित हो गये और कर्म का पाठ पढ़ कर घर की ओर चलने लगे। सभी व्यक्तियों ने घर से पर्वत की ओर जाने का निश्चय किया। कृष्ण अपने कुछ उत्साही मित्रों को साथ ले कर ब्रजवासियों की सहायता करने लगे। जल वर्षा से पृथ्वी के ऊंचे भाग बचे हुए थे, कृष्ण के संकेत से सभी ब्रजवासी उसी स्थान पर पग रखते हुए आगे बढ़ रहे थे।

कृष्ण उस स्थान पर गये जहां बहुत से गरीब लोग रहते थे। कृष्ण ने अनेक प्रयत्न करके उन्हें सुरक्षा के साथ पर्वत पर पहुंचाया। रास्ते को पार करते समय कृष्ण जहां कहीं भी किसी को कठिनाई में फंसा देखते थे, वे वहीं पहुंच जाते थे। कृष्ण के प्रयासों से सभी सुरक्षित भाव से और कष्ट को सहते हुए भी प्रसन्नतापूर्वक बच गये थे और अपने अभीष्ट स्थान पर पहुंच गये थे। कृष्ण ने अपने विविध प्रयत्नों से सभी ग्रामीणों को गो आदि पशुओं के साथ पर्वत की गुफाओं में सुरक्षित पहुंचा दिया।

प्रकृति सात दिवस तक क्रुद्ध रही। निरन्तर वर्षा होती रही। प्रकोप में कोई कमी नहीं आई। इस घोर कष्ट और प्रलयंकारी जल-दृश्य में भी कृष्ण निरन्तर कार्य करते रहे। सभी व्यक्ति निरन्तर कृष्ण को कार्य संलग्न देखते थे। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि कृष्ण ही हमारे भाग्य-विधाता हैं। दिन रात कृष्ण सभी ब्रजवासियों की रक्षा में लगे रहे। कृष्ण के इस कार्य को देख कर सभी कहने लगे कि कृष्ण ने अपने साहस से गोवर्धन पर्वत को अपनी अंगुली पर धारण कर लिया है। कवि ने इस घटना को बुद्धि सम्मत

बनाने का प्रयत्न किया है। अलौकिकता को छोड़ कर बौद्धिक निर्णय पर इस प्रसंग को प्रस्तुत करना हरिऔध की मौलिकता ही कही जा सकती है—

लख अपार प्रसार गिरीन्द्र में ।
ब्रज-धराधिप के प्रिय पुत्र का ।
सकल-लोग लगे कहने उसे ।
रख लिया उंगली पर श्याम ने ।।

इस प्रकार कृष्ण के प्रयत्नों से ब्रज की आपदा नष्ट हुई । धीरे-धीरे पवनादि का प्रकोप शांत हुआ और ब्रज देश जो भीषण जल-प्लावन से उजड़ गया था, वह फिर से बस गया । गोप-मण्डली-आभीरों का दल कहने लगा-हे उद्धव जिस कृष्ण ने अपने प्राणों पर संकट लेकर यह खेल खेला था—या हमारी रक्षा की थी, उसकी अनुपस्थिति हमें क्यों न खलेगी । सच बात यह है कि अब हमारे मुख में शर्म भी नहीं रही हैं जिससे कि हम अपनी व्यथा-दशा कह सकें । अतः तुम उद्धव उनसे जा कर कहना कि वे स्वयं ही यहां आकर हमारी दशा को निहार लें । कृष्ण ने जिस ब्रज-प्रदेश की रक्षा वर्षा के प्रकोप से की थी; वही अब उनके विरह में अश्रु-जल में डूबता दिखाई दे रहा है ।

आभीरों के इस दल की बातें जैसे ही समाप्त हुयीं वैसे ही एक अन्य गोप अपनी बातें कहने के लिए तैयार हो गया । उसने कहा—उद्धव जी आपकी बातें बहुत ही सरस, गंभीर और प्रभावकारी हैं । सभी की यह कामना है कि आप की बात सुनें । कई बार आपको यह लगता होगा कि हम ब्रजवासी आपकी बातें क्यों नहीं सुनते हैं, किन्तु इसका कारण यह है कि हम सभी प्रतिक्षण कृष्ण की धुन में लगे रहते हैं—तात्पर्य यह है कि सदैव कृष्ण की याद में खोये रहते हैं । उस गोप ने कहा कि इस पृथ्वी पर अनेक ऐसे नररत्न हुए हैं जिनके अहसानों के भार से पृथ्वी दबी हुई है । कृष्ण एक ऐसे ही रत्न हैं । वे सदैव लड़ाई झगड़ों को शांत किया करते थे । यदि कृष्ण कभी भी किसी वृद्ध व्यक्ति को अपमानित देखते थे तो वे समझाया करते थे । यद्यपि वे राजपुत्र थे, किन्तु फिर भी अहंकार उन्हें छू तक नहीं गया था । आयु में कम होकर भी वे महात्मा के समान आचरण करते थे । उनके इन्हीं गुणों के कारण हमारा मन कृष्ण के दर्शनों के लिए व्याकुल है । इस कथन के तुरन्त बाद ही कृष्ण ने उद्धव की ओर दृष्टि डाली । उद्धव ने परिस्थिति को समझ लिया तथा उन सभी को मधुर वाणी में समझा दिया । अन्त में बताया गया है कि सभी गोप-ग्वाले कृष्ण का गुणगान करते अपने-अपने घर चले गये ।

समीक्षात्मक विशेषतायें

१. द्वादश सर्ग में प्रकृति की सुन्दर झांकी देखने को मिलती है । कवि हरिऔध ने वर्षा के कोमल और कठोर दोनों ही रूपों का वर्णन प्रभावशाली शैली में किया है । आलम्बन रूप में किया गया यह वर्णन हरिऔध काव्य की उपलब्धि है ।

२. गोवर्धन-लीला का वर्णन अलौकिकता से दूर है । कवि ने गोवर्धन-धारण की घटनाओं को बहुत ही बौद्धिक धरातल पर प्रस्तुत करने की प्रचेष्टा की है । कृष्ण का अलौकिक व्यक्तित्व इस घटना के माध्यम से

लौकिक सा बन गया प्रतीत होता है। कृष्ण के इस घटना से सबन्धित सभी कार्य व्यावहारिक और स्वाभाविक हैं। ऐसा नहीं लगता कि कृष्ण कोई अलौकिक रूप लेकर आये हों। वे मानव है।

३. कृष्ण के व्यक्तित्व को लोकोपकारी और लोक रक्षा के कवच से ढ़क दिया गया है। कृष्ण रसिया नहीं हैं किन्तु फिर भी 'मन बसिया' बने हुए हैं। इस व्यक्तित्व-निर्माण की पृष्ठभूमि में द्विवेदी युग की महती प्रेरणा विद्यमान है।

४. कृष्ण के गुणों का वर्णन करते हुए यह ध्यान कवि ने रखा है कि उनका रूप सौन्दर्य ही नहीं वरन् मानसिक चित्र भी सामने खुल कर आ जावे। एक चित्र देखिये—

बातें बड़ी सरल थे करते विहारी।
छोटे बड़े सकल का हित चाहते थे।
अत्यन्त प्यार दिखला मिलते सबों से।
वे थे सहायक बड़े दुख के दिनों में॥

५. सर्गान्त में कुछ नीतिपरक और उपदेशपरक बातें भी प्रस्तुत की गयी हैं। उदाहरणार्थ कहा गया है—

विद्या सु संगति समस्त सु नाति शिक्षा
ये तो विकास भर की अधिकारिणी हैं।
अच्छा बुरा मलिन–दिव्य स्वभाव भू में
पाता निसर्ग कर से नर सर्वदा है॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि द्वादश सर्ग अपने आप में कई विशेषताओं से युक्त है। उसकी विशेषतायें कवि की मौलिकता की प्रमाण हैं।

व्याख्यायें

ऊधो को यों........ **........सुनाया॥१॥**

शब्दार्थ—यक दल=एक दल का समूह। नाना बातें=विभिन्न प्रकार की बातें।

सप्रसंग व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—

जब अनेक गोप-ग्वाले उद्धव को अनेक बातें बता रहे थे तभी वहां पर एक युवक आभीरों का समूह आया। उस समूह के व्यक्तियों ने उद्धव को देखा और यह मालूम किया कि ये उद्धव जी कृष्ण के सखा हैं। यह ज्ञात हो जाने पर उन्होंने बड़ी दुखपूर्ण वाणी में अनेक बातें कहीं और तदनन्तर कृष्ण का सुयश गा-गा कर सुनाया।

विशेष—इसमें अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।

सरस सुन्दर .... **....... चित्र था। २—३॥**

शब्दार्थ—विलसती=शोभा पाती थी। छविवती=शोभाशाली।

वक=बगुला। मालिका=समूह। घहरता=फैलता। गिरि-सानु=पर्वत की चोटी। छिति=क्षिति या पृथ्वी। अंशु=किरण।

सप्रसंग व्याख्या—इन पंक्तियों में सावन मास की मधुरिमा का वर्णन बहुत ही मादक शब्दावली में किया गया है। गोपों का समूह कहता है—

सुन्दर श्रावण-मास था। चारों ओर आकाश में बादल घिरते घूम रहे हैं। आकाश की इस सुन्दर छवि के मध्य में ही बगुलों की पंक्ति विलसती दिखाई दे रही थी। कवि कहता है कि पर्वत की चोटियां समीप ही थीं तथा सभी मेघ पृथ्वी को स्पर्श करके वर्षा करते थे। बादल कभी-कभी इन्द्रधनुष की शोभा को लेकर आकाश में विभिन्न प्रकार के रंगीन चित्र बना दिया करते थे। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि बादल सूर्य की अन्तिम किरण को लेकर आकाश में विविध चित्र बनाता था।

नव-प्रभा········ ········**सरसा रसा**॥४—५॥

शब्दार्थ—नव-प्रभा=नवीन प्रभा या कांति। परमोज्ज्वल=परमस्वच्छ। लीक सी=लकीर के समान। गति-मती=गतिशील। कुटिला=टेड़ी-मेढ़ी। फणिनी-समा=सर्पिणी के समान। दुरती=छिपती। घन-अङ्क=बादल की गोद में। विपुल=पर्याप्त। केलि-कला=क्रीड़ायें। खनि=खान। दामिनी=विजली। विहरता=विहार करता था। रस-सेक=रस-सिक्त। सरसा-रसा=पृथ्वी सरस बन सके।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध विद्युत की प्रशंसा कर रहे हैं। वे कहते हैं—नवीन प्रकाश की रेखा जैसी एक टेढ़ी नागिन के समान अनन्त कलाओं और क्रीड़ाओं से युक्त बिजली मेघों के अङ्क में कौंध जाया करती थी। इतना ही नहीं कभी कभी विविध रूपों में विहार करती हुई बदलियां (बादल) आकाश में दिखाई देती थीं। कभी बादल वर्षा करते हुए धरित्री को रस-सिक्त करते हुए सरस बना रहे थे। वर्षा जल की फुहारों से पृथ्वी सरस दिखाई देती थी।

विशेष—उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है।

सलिल पूरित···· ·· ········**पुंज के** ॥६ से ८॥

शब्दार्थ—सलिल पूरित—जलसे भरी हुई। सरसी—छोटी तलैया। सर-वृन्द—तलाबों के समूह। सुप्लावित—भिगोकर। स-प्रमोद—आनद के साथ। वसुमती—धरती। तृणावली—घास। नयन-रंजनता—नेत्रों को रंजित या आनन्दित करने वाली। तरु राजि—वृक्षों की शोभा या समूह। हरीतिमा=हरियाली। सुठि—सुन्दर। विमोहते—मोहित।

प्रसंग सहित व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि श्रावण मासीय वर्षा की अधिकता का वर्णन कर रहा है। वह कहता है कि वृष्टि की अधिकता से सम्पूर्ण पृथ्वी जल मग्न हो गई। सभी तालाब और तलैया आदि जलमग्न हो गये। जल की अधिकता के कारण तालाब उमड़ पड़ते थे। अनेक नदियां

भी अपनी प्रवाह की दिशा में प्रसन्नता और वेग के साथ वही चली जा रही थीं।

नई और कोमल घास धरित्री पर अपार शोभा पा रही थी। वृक्षों के समूह की हरियाली आंखों की प्रसन्नता की मधुर प्रतिमा थी। उसके कारण नेत्रों को पर्याप्त प्रसन्नता का अनुभव होता था। भाव यह है कि नयनों को रंजन प्रदान करने वाली हरियाली अद्भुत शोभा के साथ सर्वत्र फैल रही थी। पृथ्वी की शोभा अपने आप में न्यारी ही लग रही थी। प्रतीत होता था मानो ऋतुराज का आगमन हो गया हो।

वर्षा काल में वृक्षों के पत्तों पर जल की बूंदें पड़ गई थीं अब धीरे-धीरे हवा के चलने से पत्तों में कंपन आने लगा था और इस प्रकार वे अपने अंक से जलबिन्दुओं को गिरा रहे थे। ग्रीष्म में अंधड़ चलते रहने से जिन वृक्षों पर धूल आदि जम गई थी वह वर्षा काल में जल से घुल गई था। पवनान्दोलित होकर जल धुले पादपों के समूह किस का मन नहीं मोहते थे? अर्थात् सभी के मन को आकर्षित और वशीभूत कर रहे थे।

विशेष—वर्षाकाल का वर्णन बहुत ही मादक और मनहरण है। कवि मस्ती भरी वर्णन-प्रणाली से सभी का मन मोह लेता है।

विपुल मोर…… ……गान थे ॥६ से ११॥

शब्दार्थ—विपुल = पर्याप्त, मरकतोपम—मरकत या नीलम के समान, पुच्छ-प्रभाव—पूछों के प्रभाव से। प्रमत्त-मस्त। पुलक—प्रसन्नता। विमोहक मजुता—मोहित करने वाले सौन्दर्य। पिक-पुंज—कोयलों का समूह स-रव—कोलाहल के साथ। पावस—वर्षा। मेक—मेढ़क।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार ही कवि श्रावण-मासीय प्रकृति के उल्लास का वर्णन कर रहा है। वह कहता है—

श्रावण के वर्षा भरे मास में अनेक मोर मोरनियों के साथ विनोदपूर्वक बिहार करते दिखाई देते थे। भाव यह है कि मस्ती भरे वातावरण में मोर-मोरनियां अपने-अपने प्रिय मयूरों के साथ विनोदमग्न होकर भ्रमण करते दिखाई देते थे। उनकी पूंछों की छटा निराली थी। वह मन को मोहने वाली थी, उसकी उपमा मरकत मणि से दी जा सकती है। मयूरों के नृत्य से सम्पूर्ण उपवन की छटा अनेक मरकत मणियों से युक्त हो जाती थी।

कवि हरिऔध कहते हैं कि चातक भी पागल पपीहा के समान हर्षोल्लसित होकर बार-बार पी-पी की ध्वनि कर रहा था। वसंत की ऋतु को भी मोहित करने वाले सौन्दर्य को देखकर कोयलों का समूह कूक रहा था। वसंत को भी आकर्षित करने में सक्षम यह छवि कोयल की कूक से बड़ी ही मनहरण हो गयी थी।

वर्षा ऋतु, में मेढ़कों का साम्राज्य होता है। जलभरे तालाबों में वे टर्र-टर्र की ध्वनि करते हुए दिखाई देते हैं। इसी पर कल्पना करता हुआ कवि कह रहा है कि जल में मेढ़क जोर-जोर से वर्षा-नृप के यश का गुण गान कर रहे हैं। धरित्री पर झींगुर भी उसी वर्षा के राजा का यशोगान झंकार के

रूप में कर रहे हैं। झींगुरों की झंकारमयी ध्वनि ऐसी प्रतीत होती है मानो वर्षा-राजा का गान कर रही हो। भाव यह है कि वर्षा ऋतु में मेंढ़कों की टर्र-टर्र और झींगुरों की झंकार स्वभावतः दिखाई देती है। कवि ने इसी कल्पना पर उत्प्रेक्षा की है।

विशेष—वर्णन प्रभावशाली और मनोरम है। कवि कल्पना बड़ी मधुर दिखाई देती है। वर्षा ऋतु का ऐसा अप्रतिम वर्णन हिन्दी महाकाव्यों में कम ही मिलता है।

सुखद पावस········ ······**पयोद की** ।।१२ से १४।।

शब्दार्थ—अति-प्रीति—परमप्रीति। वसुमति अनुराग स्वरूपिणी—धरती के प्रेम की प्रतिमाएं। उपकारिता—लाभ। म्लान—उदास। फलिता—फलने वाली। रम सी गई—प्रतिष्ठित हो गई। उपजती—उगती। अवलोक—देखकर। महिमण्डल—पृथ्वीमण्डल। प्रियकरी—प्रिय। प्रतिपत्ती पयोद की—बादलों की महिमा।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध कहते हैं कि सभी नगरवासी वर्षा ऋतु के सुन्दर रूप को देखकर अपनी प्रीति प्रकट कर रहे थे। धरती के प्रेम की प्रतिमा के समान अनेक वीर बहूटियां पृथ्वी पर विचरण करती हुई शोभा दे रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि वे सुख प्रदान करने वाली वर्षा ऋतु के प्रति प्रेम का प्रकाशन कर रही हों।

ग्रीष्म के ताप से जो लतायें और बेलें सूख गयी थीं वे सभी वर्षा ऋतु के प्रभाव से हरी-भरी दिखाई दे रही थीं। वर्षा ऋतु में सूखी हुई लताओं को भी फलों से लदा हुआ देख कर तथा भली भांति पुष्पित देख कर सभी व्यक्तियों के हृदय में वर्षा ऋतु के सुखद शासन के प्रति उपकार भाव भर गया था। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्षा ऋतु के आगमन से सभी व्यक्तियों के हृदय में प्रकृति की भांति उल्लास भाव भर गया।

पृथ्वी पर अनेक प्रकार के फूल और फलों की लतायें तथा जड़ी बूटियां उग आयी थीं। पृथ्वी पर उगी हुई ऐसी प्रतीत होती थी मानो धरती पर बादलों का गौरव उतर कर शोभित हो रहा हो।

विशेष—इन पंक्तियों में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग किया गया है तथा वर्षा ऋतु का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया गया है। कवि ने अपनी मौलिक सूझ-बूझ का परिचय दिया है।

रसमयी······ ······**पोत का** ।। १५ से १७ ।।

शब्दार्थ—रसमयी—रस से युक्त। भव—संसार। भूतल— पृथ्वी। उदक=पानी या जल। तृणराजि—पत्तों का समूह। बुध—चतुर। भुजपोत—भुजाओं के जहाज का।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि ससार में जल की ही महिमा है। यदि यह न हो तो व्यक्ति का जीवन दूभर हो जाय। कवि कह रहा है—

वर्षा के दिनों में संसार की सभी वस्तुएं रसमयी प्रतीत होती हैं। अतः सभी वस्तुओं को रसयुक्त देखकर तथा सम्पूर्ण पृथ्वी में सरसता को व्याप्त देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उदक अर्थात् जल के लिए जो रस अर्थात् जल या आनंदमय नाम दिया गया है, वह यथार्थ है। कारण वर्षा के कारण सभी सूखी और अलसायी वनस्पतियां फिर से हर्षित हो जाती हैं।

देखो न तृण-राजि जो ग्रीष्म ताप के कारण मृतप्राय या सूखी सी हो गयी थी वही वर्षा काल आने पर जल की सहायता से जीवित हो गई है। भाव यह है कि उसकी शुष्कता समाप्त हो गई है। इसी प्रकार जो जीवित थे, वे वर्षा के मादक प्रभाव के कारण सुजीवित होकर आनंदित हो उठे हैं। फिर ऐसी परिस्थितियों में विद्वान् लोग यदि जल को जीवन कहते हैं तो उचित ही है।

गोप ने कहा कि ऐसा ही मधुर वातावरण था कि एक दिन दुख के समुद्र में डूबने लगी—तात्पर्य सभी व्यक्ति दुखी और संतप्त होने लगे। किन्तु अच्छा यह हुआ कि डूबती हुई इस ब्रजभूमि को ब्रज-विभूषण अर्थात् कृष्ण की भुजाओं का सहारा मिल गया। कृष्ण की भुजाओं ने समुद्र का कार्य किया जैसे समुद्र में जहाज पार उतरने में सहायक होता है उसी प्रकार ब्रज-वल्लभ कृष्ण की भुजाओं के जहाज से सभी ब्रजवासी अवलम्ब पा गये।

विशेष—१. यमक और सांगरूपक अलंकारों का प्रयोग किया है। सांगरूपक का प्रयोग ब्रजधरा एक बार इन्हीं दिनों पतित थी दुख वारिधि में हुई आदि पंक्तियों में देखा जा सकता है।

दिवस एक प्रभंजन······ घेरते ॥१८ से २०॥

शब्दार्थ = प्रभंजन = अंधड़ या तूफान। भयावह = भयंकर। गाढ़मसी = गाढ़ी स्याही। प्रकम्पितकारिणी—कंपित कर देने वाली। अशनिपात = व्रज का गिरना। विदारण = चीर कर। चालित = चलाये हुए या प्रेरक।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध वर्णन करते हैं कि एक दिवस बहुत ही भयंकर वातावरण हुआ। वर्षा काल में ही मेघों की घटाएं प्रकोप लिए सामने घिर आयीं। घटायें इतनी काली और गाढ़ी थी कि चारों ओर गहरा अंधकार छा गया और सम्पूर्ण लोक प्रकंपित हो उठा।

मेघ घिर रहे थे, सभी ओर घनघोर हो रहा था। जब कभी भी विद्युत कड़कती थी तभी सभी दिशाओं में ऐसा कम्पन होता था, मानो वज्र गिर गया हो। वायु का प्रवाह जो निरंतर गति से प्रवाहित होता रहता था, उसे विदीर्ण करती हुई विद्युत आकाश में चमकती थी।

कवि कहता है कि अत्यन्त भयंकर वेग से चलते हुए गर्जना करते हुए तथा वायु से आन्दोलित मेघ चल रहे थे। वे भयंकर गर्जना करते हुए

टूटते से जान पड़ते थे। बादल ब्रज भूमि पर घिरते उमड़ने दलों के रूप में घिरते हुए आ रहे थे। भाव यह है कि वेग से उमड़ते हुए मेघ ब्रजभूमि पर छाते गये।

तरल तोयधि...... ......**कर्ण भी** ।।२१ से २३।।

शब्दार्थ = तोयधि = सागर। तुंग तरंग = ऊंची लहर के समान। निविड = घने, असितता = कालिमा रवकारिता = गर्जना। प्रतीति = विश्वास, कज्जल = काजल। कोटिशः करोड़ों। प्रति घटी = प्रत्येक घड़ी। उर दारक दामिनी = हृदयको विदीर्ण करने वाली बिजली। गुरू-गर्जना = गंभीर गर्जना। पवि = वज्र।

सप्रसंग व्याख्या पूर्व संदर्भानुसार ही कवि वर्णन कररहा है कि तरल रूप में बादल घूमते दिखाई देते थे और सर्वत्र निविड़ अंधकार छाया हुआ था। धीरे-धीरे बादलों की श्यामता बढ़ती जा रही थी। बादलों के तीव्र रूप से घिरते रहने के कारण श्यामता तो बढ़ ही रही थी साथ ही भयंकर गर्जना भी बढ़ती जा रही थी। भाव है धीरे धीरे बादल उमड़ते घिरते आ रहे थे।

बादलों के इस उमड़ने घुमड़ने को देखकर ऐसा प्रतीत होता था जैसे ब्रज भूमि पर प्रलय के बादल आ घिरे हों या ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे आकाश-मण्डल में जलभरे काले काजल के करोड़ों पर्वत एकत्र हो गये हों। परिणामतः सारा गगन मण्डल श्याम वर्ण का दिखाई देता था।

कवि का कथन है कि उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे प्रत्येक पल हृदय को चीरने वाली बिजली ब्रजभूमि पर गिर रही हो। बादलों के मध्य चमकती विद्युत और उसकी कड़क से पृथ्वीवासियों का हृदय दहल जाता था और ऐसा प्रतीत होता था मानो बिजली हृदय को विदीर्ण कर देगी। कवि कहता है कि इतना गुरु-गर्जन असह्य हो गया था और इस भयंकर और हृदय विदारक गर्जना को तो वज्रोपम कानों वाला व्यक्ति भी सुन सकने में असमर्थ था।

विशेष—१. उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग किया गया है। गगन मण्डल में अथवा जल आदि पंक्तियों में अलंकार का सौन्दर्य दिखाई देता है।

२. वर्णन शैली सरल और द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों से मिलती है।

तिमिर की वह...... ...**मध्य था** ।।२४ से २६।।

शब्दार्थ—तिमिर = अंधकार। तमोमय = अंधकार से युक्त। वर-वासर = श्रेष्ठ दिवस। असितता = श्यामता या कालिमा। भाद्र-कुहू = भाद्रपदी अमावस्या। प्रलय-कालिक = प्रलयंकारी। जलद-नाद = बादलों की गर्जना। जलपात = जलवर्षण। पीवर = शक्तिशाली।

व्याख्या –प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध वर्णन कर रहे हैं—सर्वत्र अंधकार का साम्राज्य बढ़ता जा रहा था। जहां भी दृष्टि जाती थी वहीं

तक सभी कुछ अंधकारमय प्रतीत होता था। जो दिवस चमकता था। श्रेष्ठ प्रकाश को धारण किया करता था वही घन गर्जना और असितता के कारण भाद्रपदी अमावस्या की निशा जो श्यामता की खान होती है, बन गया था।

वर्षा के निरंतर बढ़ते हुए वेग का चित्रण करते हुए कवि कह रहा है कि पहले तो वर्षा ध्वनि बाँध कर एकसार होती रही। तदनन्तर शीघ्र ही जल वेग से पड़ने लगा। जल की तीव्रता और जल-वर्षण की घनता के कारण सर्वत्र प्रलयकारी दृष्य उपस्थित हो गया। शनैः शनैः मूसलाधार वर्षा होने लगी।

कवि वर्णन करता है कि बादलों का भयंकर शब्द और प्रभंजनकारी गर्जन जल बरसाते हुए भयंकर शब्द कर रहा था। इससे वातावरण में भयंकर भय उत्पन्न हो गया था। इस गर्जन-तर्जन से शक्तिशाली व्यक्ति अथवा जिनका हृदय शक्ति-सम्पन्न या मजबूत था, वे भी कंपित हो उठे थे। इस प्रकार शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों के हृदय को भी कंपित करने वाली ध्वनियों से व्रजभूमि का कण-कण भर गया था।

विशेष—१ अतिशयोक्ति, उपमा अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

२. वर्षा के निरंतर बढ़ते हुए रूप का और तज्जन्य शोर का वर्णन बहुत ही यथार्थवादी है।

स बल भग्न······ ······हुवा थमी ।।२७ से २९ ।।

शब्दार्थ—स बल = बलसहित या शक्तिशाली। भग्न हुई = टूट गईं। क्षण-प्रभा = विद्युत। पतित = गिरना। शत-खण्ड = सैकड़ों खण्ड या टुकड़े हो गये। सदन = घर। बिज्जु = बिजली। प्रमाद = आलस्य। विचूर्णित = खंडित या चूर्ण-चूर्ण। शृंग = चोटियां। तम-तोम प्रगाढ़ता = अंधकार की भयंकरता या घनता।

व्याख्या—कवि इन पंक्तियों में पूर्व सदर्भानुसार वर्णन करता हुआ कह रहा है। वह कहता है—

बादलों की गुरु-गंभीर गर्जना और विद्युत की कड़क के कारण बहुत से शक्तिशाली वृक्षों की डालियां टूट-टूट कर गिरने लगीं। वे जब टूटती थीं तो बहुत ही गंभीर शब्द करती थीं। विद्युत भी जब कभी गर्जना करती हुई पतित होती थी तो वह वृक्षों के समूह को क्षणभर में ही सैकड़ों टुकड़ों में बदल देती थी।

कवि कहता है कि इस भयंकर दृष्य के कारण विद्युत और बादलों की गर्जना के कारण अनेक घर बार नष्ट हो रहे थे और इस प्रकार घरों के नष्ट होने से अनेक व्यक्तियों के प्राणों पर संकट आ गया था। भाव यह है कि वर्षा के भीषण प्रकोप से घर के घर ढहते जाते थे। ऐसी स्थिति में निर्धनों के प्राणों पर संकट आ जाना बहुत ही स्वाभाविक था। विद्युत भी इस भयंकर वातावरण में बहुत ही क्षुब्ध हो रही थी। उसके प्रकोप से बहुत से पर्वतों की चोटियां खण्डित हो रही थीं

भाव है जहां भी और जिस किसी पर्वत शृङ्ग पर विद्युत गिर पड़ती थी वहीं वे चूर्णवत् हो जाते थे।

इसी प्रकार के वातावरण में दिन तो जैसे-तैसे कर के बीत गया, रात आई और फिर दूसरा दिन भी हो गया, किन्तु वर्षा और विद्युत के प्रकोप में तनिक भी कमी नहीं आई, दृष्य ज्यों का त्यों बना रहा। उसमें अंधकारपूर्ण दृष्य में कोई भी कमी नहीं आई। वह यथावत ही रहा। न तो जलपात या जलवर्षण ही रुका और न हवा ही थम सकी। दृष्य की भयंकरता और विशद व्यापकता में कहीं भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

विशेष—दिवस बीतने और फिर रात बीतने के बाद दिन का वर्णन कर के यह कहना कि दृष्य में कोई भी कमी नहीं हुई, बहुत ही नाटकीय है। शैली की त्वरा देखते ही बनती है।

सब जलाशय··· ··· अधीर हो ।।३० से ३२।।

शब्दार्थ—लघु गर्त्त = छोटासा गड्ढ़ा। गुरु-नादिनी = भयंकर नाद करने वाली। रविनंदिनी = यमुना।

व्याख्या प्रसंग सहित—कवि हरिऔध इन पंक्तियों में वर्षा के प्रभाव को व्यंजित कर रहे है। वे कहते हैं—

जल की इतनी अधिकता हुई थी कि सभी जलशय जल से भर गये थे और इसी कारण निशा-दिवस ब्रज भूमि जलमग्न बन गई थी। यह वर्षा का ही प्रभाव था कि सभी नगर और ग्राम जलमग्न हो गये थे। छोटे-छोटे तालाब बहुत ही विशद तलाव बन गये थे। छोटे-छोटे गड्ढ़े भी छोटे-मोटे तालाबों में परिवर्तित हो गये थे। यमुना जो वर्षातिरेक के कारण तरंगमयी बन गई थी वह भी अब समुद्र के समान उफनती हुई जल-पूर्ण दिखाई दे रही थी।

अभी तक जल-वृष्टि में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ था। पहले की भांति ही जल बरस रहा था। इस निरंतर जल वर्षण को देख कर सभी ब्रजवासी व्याकुल हो उठे। उनमें से ही बहुत से ब्रज-भूप नंद के पास गये और शरण मांग कर अपने कष्ट के सम्बन्ध में मत व्यक्त करने लगे। सभी व्यक्ति बहुत ही व्याकुल और अधीर होकर ही वहां गये थे।

प्रकृति को······ ······दिखा पड़ा ।।३३ से ३५।।

शब्दार्थ—कुपिता = क्रुद्ध। अवलोक के = देखकर। समागत = आये हुए जानकर। अपर = दूसरा। बहुज्ञ = बहुत। शुभ-सम्मति = कल्याणकारी सम्मति। तड़ित = विजली। सु-विलसे = विलास। नव-नीरद = नये बादल। जनसमागम = मनुष्यों के झुंड के मध्य में।

ससंदर्भ व्याख्या—कवि इन पंक्तियों में ब्रजवासियों का व्यथातुर और अधीर होकर ब्रज-पति नंद के पास जाना चित्रित कर रहा है। नन्द जो

की मन्त्रणाओं को असफल बना रही थी। भाव यह है कि दृष्य इतना प्रकम्पनकारी और भयप्रद बन गया था कि उसे देखकर गोवर्धन पर्वत तक जाने का साहस किसी भी व्यक्ति में नहीं हो रहा था।

इस प्रकार की परिस्थिति में कमल नयन कृष्ण ने सभी जन-समूह को ओजमयी वाणी में ललकार कर कहा कि बिना कर्म किये और अचेष्टित रहकर जीवन त्यागने से कहीं अच्छा है कि बचाव का उपाय करते हुए मरण प्राप्त हो। भाव यह है कि अकर्मण्य रहकर जीवन त्यागना कायरों का काम है जबकि कर्मठ बन कर तथा अपनी रक्षा के निमित्त विविध प्रयत्न करके प्राणों को छोड़ना कहीं अधिक वरेण्य और सुन्दर है।

कृष्ण ने कहा कि सम्पूर्ण संसार विपत्तियों का संकुल है। इसमें अनेक विपत्तियां हैं तथा इसमें अनेक रहस्य छिपे पड़े हैं। प्रतिक्षण मनुष्य को अपने प्राणों का भय लगा रहता है। इन सबसे (विपत्तियों) छुटकारा पाना अकर्मण्य होकर संभव नहीं है। परिणामतः प्र येक व्यक्ति को अपने बचाव का साधन ढूंढना चाहिए। इस प्रकार के अवसरों पर शिथिलता प्रदर्शित करना या का-पुरुष की भांति आचरण करना अ-श्रेय या अकल्याणकारी है।

विशेष—१. कृष्ण के कथन के माध्यम से कर्मठता का संदेश दिया गया है। गीता का संदेश ही प्रकारान्तर से यहां प्रस्तुत किया गया है।

२. संसार आपदाओं का घर है। इसके गर्भ में अनेक रहस्य छिपे हुए हैं। मनुष्य कर्मठ रह कर ही इनसे छुटकारा पा सकता है। कुरुक्षेत्र के कवि दिनकर ने भी यही बात कही है—

यह अरण्य झुरमुट जो काटे, अपनी राह बनाले।
क्रीत दास यह नहीं किसी को, जो चाहे अपनाले॥

३. मानव जीवन क्षण-भंगुर है। मालूम नहीं मनुष्य को कब मृत्यु का साक्षात्कार हो जाय। वस्तुतः ये पंक्तियां दार्शनिक सी प्रतीत होती हैं। कवि का संदेश इन्हीं में प्रतिध्वनित है।

विपद से……… ………मात्र को ॥४५ से ४७॥

शब्दार्थ—समर-अर्थ=युद्ध के निमित्त। समुद्यत=तत्पर। भूति=ऐश्वर्य। पग हस्त=पद और हाथों को। अवनि=पृथ्वी। अवमानित=अपमानित। कवल=ग्रास। प्रतिद्वन्द्विता=होड़। विधेय=उचित।

प्रकृति जिस प्रकार आकाश में घिरे हुए बादलों के रूप में क्रुद्ध है उससे तो आसार अच्छे नजर नहीं आते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह सहज ही शांत होने वाली नहीं है। जब प्रकृति का कोप शांत नहीं होगा तो विपत्ति भी टलना संभव नहीं है।

इसलिए तजके...... ...... अन्य है ।।३६ से ४१।।

शब्दार्थ—तजके–छोड़कर। त्राण–रक्षा का। सयत्न–प्रयत्नशील होकर। गिरि-राजपर्वत राज गोवर्धन। दरियाँ–गुफायें। वृहत्-बड़े बड़े। वारिद–गात=मेघ जैसे शरीर वाले। तर्क-वितर्क=वाद–विवाद। अवधारित=निश्चित। अवलम्ब=सहारा।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों कवि हरिऔध कृष्ण के कथन को प्रस्तुत कर रहे हैं। कृष्ण ने कहा कि यह प्रकृति का कोप शीघ्र ही शांत होने वाला नहीं है। अतः हमें स्वयं कोई उपाय खोजना होगा। इसके निमित्त हमें गिरि–कन्दराओं को छोड़कर अन्य कोई चारा नहीं है। हमारी रक्षा अब तो इन गिरि कंदराओं से ही हो सकती है—कोई अपर यत्न भी तो इस समय संभव नहीं है। ऐसी परिस्थिति में हमें अपने–अपने घरों को छोड़कर गिरिराज या गोवर्धन पर्वत की शरण में ही चलना चाहिए।

गिरिराज गोवर्धन की शरण में जाना इसलिए उचित है क्योंकि उसमें बहुत सी पवित्र कंदरायें और बहुत बड़ी–बड़ी गुफायें हैं। इस प्रकार उन गुफाओं और कंदराओं में हम अपनी रक्षा कर सकते हैं। दूसरी बात यह है कि यह पर्वत हमारे ग्राम के भी पर्याप्त निकट है। संकट के इन क्षणों में जब कि पल-पल कठिनाई और विपत्ति बढ़ती जा रही है तब गोवर्धन के अतिरिक्त अन्य कोई गमन–स्थल भी दिखाई नहीं देता है।

कृष्ण के इस कथन को सभी ने सुना और समझा। कृष्ण के इस सुझाव पर पहले तो पर्याप्त तर्क-वितर्क हुआ, किन्तु बाद में इसे स्वीकार कर लिया गया। सभी ने यही निश्चय किया कि गोवर्धन-पर्वत की शरण में जाये बिना कोई अन्य चारा ही नहीं है। यही शरण का और संकट से छुटकारा पाने का एक मात्र अवलम्ब है।

पर विलोक....... ....अ-श्रेय है ।।४२ से ४४।।

शब्दार्थ—तमिसा=अंधकार। तड़ित-पात=विद्युत पात या बिजली का गिरना। प्रभंजन भीमता=अधंड की भयंकरता। सलिल-प्लावन=जल मग्नता। वर्षण-वारि=पानी का बरसना। स-ओज=उत्साहसहित। अचेष्टित=बिना कर्म के। चारु सचेष्ट हो=प्रयत्नपूर्वक कार्य करना सुन्दर और श्रेष्ठ है। विपद-संकुल=विपत्ति मंडित या विपत्ति से घिरा हुआ। भवितव्य=घटित होने वाली। अश्रेय=अकल्याण कारी।

ससंदर्भ व्याख्या—कवि हरिऔध पूर्व संदर्भानुसार वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि अन्धकार की सान्द्रता, विद्युत का पात और आंधी की भयंकरता के साथ ही भयंकर वर्षा और वर्षा जल में निवासों की जल मग्नता सभी मन

की मन्त्रणाओं को असफल बना रही थी। भाव यह है कि दृश्य इतना प्रकम्पनकारी और भयप्रद बन गया था कि उसे देखकर गोवर्धन पर्वत तक जाने का साहस किसी भी व्यक्ति में नहीं हो रहा था।

इस प्रकार की परिस्थिति में कमल नयन कृष्ण ने सभी जन-समूह को ओजमयी वाणी में ललकार कर कहा कि बिना कर्म किये और अचेष्टित रहकर जीवन त्यागने से कहीं अच्छा है कि बचाव का उपाय करते हुए मरण प्राप्त हो। भाव यह है कि अकर्मण्य रहकर जीवन त्यागना कायरों का काम है जबकि कर्मठ बन कर तथा अपनी रक्षा के निमित्त विविध प्रयत्न करके प्राणों को छोड़ना कहीं अधिक वरेण्य और सुन्दर है।

कृष्ण ने कहा कि सम्पूर्ण संसार विपत्तियों का संकुल है। इसमें अनेक विपत्तियां हैं तथा इसमें अनेक रहस्य छिपे पड़े हैं। प्रतिक्षण मनुष्य को अपने प्राणों का भय लगा रहता है। इन सबसे (विपत्तियों) छुटकारा पाना अकर्मण्य होकर संभव नहीं है। परिणामतः प्र येक व्यक्ति को अपने बचाव का साधन ढूंढना चाहिए। इस प्रकार के अवसरों पर शिथिलता प्रदर्शित करना या का-पुरुष की भांति आचरण करना अ-श्रेय या अकल्याणकारी है।

विशेष—१. कृष्ण के कथन के माध्यम से कर्मठता का संदेश दिया गया है। गीता का संदेश ही प्रकारान्तर से यहां प्रस्तुत किया गया है।

२. संसार आपदाओं का घर है। उसके गर्भ में अनेक रहस्य छिपे हुए है। मनुष्य कर्मठ रह कर ही इनसे छुटकारा पा सकता है। कुरुक्षेत्र के कवि दिनकर ने भी यही बात कही है—

यह अरण्य झुरमुट जो काटे, अपनी राह बनाले।
क्रीत दास यह नहीं किसी की, जो चाहे अपनाले॥

३. मानव जीवन क्षण-भंगुर है। मालूम नहीं मनुष्य को कब मृत्यु का साक्षात्कार हो जाय। वस्तुतः ये पंक्तियां दार्शनिक सी प्रतीत होती हैं। कवि का संदेश इन्हीं में प्रतिध्वनित है।

विपद से……… ………मात्र को ॥४५ से ४७॥

शब्दार्थ—समर-अर्थ=युद्ध के निमित्त। समुद्यत=तत्पर। भूति=ऐश्वर्य। पग हस्त=पद और हाथों को। अवनि=पृथ्वी। अवमानित=अपमानित। कवल=ग्रास। प्रतिद्वन्द्विता=होड़। विधेय=उचित।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध कहते हैं कि जो व्यक्ति वीर के समान धैर्य धारण करके विपत्ति से जूझने के लिए तत्पर होता है, उसकी इस पृथ्वी में विजय होती है और संसार के सभी लोग उसे विजय-श्री की माला पहनाकर वरण करते हैं। ऐसे व्यक्ति के स्वागत में सभी को प्रसन्नता होती है।

इसके साथ ही जो व्यक्ति विपत्ति को देखकर शंकित हो जाते हैं, डर जाते हैं और भय से ही मार्ग पर बढ़ते हुए अपने पदों और हाथों को पीछे खींच लेते हैं, वे कायर होते हैं। इस प्रकार के कायर व्यक्ति पृथ्वी में

अपमानित होते हैं और शीघ्र ही संसार से विदा होकर काल के ग्रास बन जाते हैं ।

जब कभी भी संकट काल आ पहुंचता है तो प्रतिक्षण प्रतिद्वन्द्विता होती रहती है । ऐसे क्षणों में धैर्य को धारण करके संकट निवारण के लिए प्रयत्न करना ही मानव मात्र के निमित्त हितकारी होता है । भाव यह है कि संकट काल में मनुष्य को उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

विशेष—१. इसमें कायरता की निन्दा और कर्मठता की संस्तुति की गई है । कर्मठता का संदेश ही इन पदों का प्रतिपाद्य है ।

२. संसार में होड़ और प्रतिद्वन्द्विता तो सदैव रही है और रहेगी अतः इसी भय से मार्ग से पीछे हट जाना श्रेयस्कर नहीं है ।

सुफल जो…… ……प्रयाण में ।।४८ से ५०।।

शब्दार्थ—सुफल=सुन्दर फल । निंद्य-विमूढ़ता=निन्दास्पद मूर्खता । प्रबोधित=उत्तेजित । प्रयाण=चलने या प्रस्थान के निमित्त ।

सप्रसंग व्याख्या—कृष्ण ने जैसे ही देखा कि सभी व्यक्ति निरुत्साहित हो रहे हैं तो वे कहने लगे—

संकट के क्षणों में जो फल मिलता है, वह सुन्दर होता है । अतः वह भले ही छोटा फल हो किन्तु उसे महान ही समझना चाहिए । संकट के स्रोत में पडकर मानव यदि थोडी सी भी सफलता प्राप्त कर ले तो उसे महान ही समझना चाहिए क्योंकि संकट पार कर सफलता को प्राप्त करना कठिन होता है । इसी प्रकार इस घोर वर्षा के संकट काल में यदि हम सहस्त्रों मरते हुए व्यक्तियों में से सौ को भी बचा सके तो वही बहुत बड़ी सफलता होगी ।

कृष्ण ने कहा अतः इस समय जो मूर्खता मन में घर किये हुए है उसे छोड़कर सभी को प्रयत्नपूर्वक महा भयानक काल में सचेष्ट होकर कार्य करना चाहिए । साथ ही इस संकटकाल में व्रजेश को अपना सहायक समझ कर कार्य करो ।

कृष्ण के इस ओजस्वी भाषण और वार्ता को श्रवण करके सभी व्रजवासी प्रवुद्ध हो गये तथा अपने तन और मन में चेतनता का अनुभव करते हुए 'प्रयत्न' और 'कर्म' का मंत्र दुहराते हुए घर की ओर गये । घर जाकर सभी कृष्ण द्वारा निर्दिष्ट मार्ग या गमन स्थल की ओर प्रयाण करने लगे ।

विशेष—१. कृष्ण के लोक रक्षक रूप के साथ-साथ यह भी बताया गया है कि वे भाषण देने और प्रबोधन देने में भी पर्याप्त निपुण थे । उनकी वाणी में जादू था ।

२. संदेश है कि संकटों के बाद मिली थोडी सफलता ही पर्याप्त होती है ।

बहु चुने…… ……मग्न को ।।५१ से ५३।।

शब्दार्थ—बहु चुने=बहुत से चुने हुए । सकल=सभी । उन्नत=ऊंचे । सतर्कता=सावधानी से । उदक=पानी ।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध कृष्ण द्वारा किये गये अनेक साहसिक कार्यों का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—

बहुत से चुने हुए दृढ़ चरित्र वाले साहसी और वीर गोपों को अपने साथ लेकर कृष्ण सहायतार्थ आगे बढ़े। वे शीघ्र ही उचित प्रकार से सभी की उपयुक्त सहायता करने में जुट गये।

सामान्यतः वर्षा का प्रकोप बहुत भीषण था, किन्तु फिर भी कुछ छोटे-बड़े ऊंचे ऐसे स्थल अवश्य थे जहां पर होकर जाया जा सकता था। कृष्ण के स्पष्ट निर्देश से सभी व्यक्ति उन्हीं उन्नत मार्गों से होकर बड़ी सतर्कता से गिरिवर गोवर्धन की अंक में जाने लगे।

कहीं पर तो महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण किसी गिरे हुए को सहारा देते थे, और कहीं जल में डूबते हुए को बचाते थे।

पहुंचते बहुधा...... ......ब्रजेन्द्र का ॥५४ से ५६॥

शब्दार्थ—अकिंचन=गरीब या दरिद्र। असम्बल=जिनका कोई भी सम्बल न हो। रुज-ग्रस्त—रोगी या रोग से ग्रस्त। गहवर=गुफाओं और कंदराओं। कु-पथ=कठिन पथ।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कृष्ण द्वारा की गयी असहाय व्यक्तियों की सहायता का वर्णन किया जा रहा है। कवि कहता है—

कृष्ण यदा-कदा उस भाग में जाकर भी अकिंचन व्यक्तियों की सहायता करते थे जो असहाय थे। वे सभी भांति उन्हें सुविधा पहुंचाते थे और फिर कुशल निर्देशन में उन सभी को पहाड़ की गोद में पहुंचा देते थे।

ब्रज प्रदेश में बहुत से असम्बल व्यक्ति भी थे तो बहुत से ऐसे भी थे जो रोग ग्रस्त थे। कुछ स्त्रियां दुर्भाग्य का समय आया जानकर वैधव्य जीवन व्यतीत कर रही थी। इन सभी दुखी दलितों को कृष्ण सहायता पहुंचा रहे थे और उन्हें यत्नपूर्वक गिरि गहवर में पहुंचा रहे थे।

इतना ही नहीं यदि कभी कोई भी व्यक्ति कुमार्ग पर चला जाता था तो कृष्ण उसके कष्ट को निवारित करते थे। कृष्ण उसके दुख से दुखी हो जाते थे और उसे कुठौर से सही मार्ग की ओर पथ-संकेत देते थे।

विशेष—कृष्ण के लोक रक्षक और असहाय के सहायक व्यक्तित्व का प्रदर्शन किया गया है।

जटिलता पथ...... ......को मिली ॥५७ से ५९॥

शब्दार्थ—जटिलता=कठिनता। तम गाढ़ता=अंधकार की गहराई। उदक-पात=पानी का वर्षण। गिरीन्द्र=पहाड़ों के अधिपति। फलद=फल प्रदान करने वाले। तदपि=तो भी।

सप्रसंग व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार ही कवि वर्णन कर रहा है। वह कहता है—मार्ग अत्यन्त कठिन था। सर्वत्र घना अंधकार छाया हुआ था। वर्षा हो रही थी—इतनी भयंकर वृष्टि थी कि सभी को मार्ग

भ्रष्ट होने और गिर जाने का भय था। अत्यन्त प्रचण्ड आंधी चल रही थी। इन सभी के साथ होने के कारण प्रत्येक मार्ग पर कोई न कोई अत्यन्त दुखभरी घटनायें घट गयी थीं। भाव यह है कि अति वृष्टि के कारण कहीं मार्ग में दरार पड़ गयी थी तो कहीं कोई वृक्ष टूटकर गिर गया था।

इतने कष्टपूर्ण मार्ग में भी कृष्ण ने बड़े साहस और सुप्रबंधमय कौशल से ब्रज के एक भी व्यक्ति को कष्ट न सहने दिया। बाढ़ के प्रकोप से एक भी व्यक्ति डूब न सका और गिरीन्द्र से गिरकर एक भी व्यक्ति प्राणों का विसर्जन न कर सका। इसका कारण यह था कि इन सभी की रक्षा करने वाले संसार के पालक कृष्ण थे।

कवि का कथन है कि आंखों के लिए केवल विद्युत ही एक मात्र सहारा थी। विद्युत की सहायता से ही राह में दृष्टि कुछ देखने में समर्थ थी। यदि विद्युत न होती तो कुछ भी दिखना सम्भव नहीं था। भाव यह है कि अन्धेरा अत्यंत ही भयंकर था और वातावरण बहुत ही भीषण था। परिणामतः कहीं भी कुछ भी दिखाई नहीं पडता था। इतने पर भी कृष्ण को अपने प्रत्येक कार्य में सफलता मिली। वे कोई भी मार्ग निराशा का न देख सके।

विशेष—कृष्ण की प्रबंधक योग्यता का परिचय इन पंक्तियों से मिलता है।

परमसिक्त·····   ······शतशः बने ॥६० से ६२॥

शब्दार्थ—परम सिक्त = पूर्णत भीगना। वपु = शरीर। उग्र = तीव्र या तीक्ष्ण विराम—विश्राम। शर—वेग—बाण या तीर के वेग से। ओक = घर। सु दक्षता = सुन्दर कौशल। स्तभित = चकित। शतशः = सैकड़ों रूपों में दिखाई देते थे—'ब्रज-विभूषण थे शतशः बने'।

सप्रसंग व्याख्या—इन पंक्तियों में भी कवि हरिऔध पूर्व संदर्भानुसार अपने आराध्य कृष्ण की कार्य दक्षता का वर्णन कर रहे हैं। वे कह रहे हैं—

कृष्ण असहाय और निराश्रित व्यक्तियों की निरन्तर सहायता कर रहे थे। इस कार्य में उनको शीघ्रातिशीघ्र इतस्ततः दौड़ना पड़ता था। वर्षा निरन्तर हो रही थी, परिणामतः उनका शरीर पूर्णतः भीग गया था। वर्षा के साथ ही समीर भी बहुत उग्रता से चल रहा था। वर्षा की भयंकरता और समीर की तीक्ष्णता शरीर को प्रभावित कर रही थी। इस प्रकार के वातावरण में भी कृष्ण को विराम नहीं मिल रहा था।

आवश्यकतानुसार कृष्ण बाण या तीर के वेग से विपत्ति से घिरे हुए स्थान और व्याकुलता सम्पन्न घरों में पहुंच जाते थे। भाव यह है कि कृष्ण जहां भी विपत्ति को देखते थे, वहीं भाग कर वैसे ही पहुंच जाते थे जैसे बाण तीव्रता से लक्ष्य पर पहुंच जाता है। इतना ही नहीं वे तुरन्त ही लक्ष्य पर पहुंच कर विपत्ति का विनाश भी ठीक वैसे ही कर डालते थे जैसे तीर लक्ष्य पर जाकर प्रहार कर देता है।

कृष्ण की अलौकिक स्फूर्ति और कार्य-दक्षता को देखकर सम्पूर्ण

गोप-समूह चकित और स्तम्भित हो रहा था। वे सभी कृष्ण के त्वरापूर्ण कार्य-कौशल को देखकर यह समझते थे कि कृष्ण शतशः विभक्त होकर कार्य-संलग्न हैं। भाव यह है कि वे शीघ्रता से यत्रतत्र कार्य करते देखे जाते थे।

विशेष—१. 'कृष्ण थे शतशः बने' पंक्ति में बुद्धि की प्रेरणा है। कृष्ण के स्फूर्तिमय व्यक्तित्व के प्रकाशन के लिए यह पंक्ति बहुत ही नाटकीय दिखाई देती है।

२. 'पहुंचते शर वेग से विपट-संकुल आकुल ओक में' आदि पंक्तियों में प्रभावशाली प्रभाव साम्याधारित उपमा का प्रयोग किया गया है। इससे भाव-प्रकाशन में स्पष्टता और व्यावहारिकता आ गई है।

स-घन गोधन…… ……**प्रबन्ध से** ॥ ६३ से ६५ ॥

शब्दार्थ—पवनादि=पवन आदि। प्रभेद=अन्तर। क्लान्ति=थकान। दरी=गुफा। चारु-प्रवन्ध=सुन्दर प्रबन्ध।

व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार कवि हरिऔध कह रहे हैं कि कृष्ण ने शीघ्र ही सम्पूर्ण ग्राम को गोवर्धन के मध्य जाकर बसा दिया। वे कहते हैं—

सम्पूर्ण धन, गायों और सम्पत्ति आदि के साथ सभी ब्रजवासियों को कमल-नयन कृष्ण ने पूर्ण कुशलता के साथ क्षणांतर में गोवर्धन पर्वत के मध्य में बसा दिया। उन्होंने प्राकृतिक भयंकरताओं की तनिक भी चिन्ता नहीं की और उल्टे उन्हें तुच्छ समझ कर टाल दिया। भाव यह है कि वे सभी प्रचण्ड आघात कृष्ण के समक्ष तुच्छ थे—या वे उनकी शक्ति के सम्मुख नत हो गये थे।

इस प्रकार छः सात दिनों तक प्रकृति कुपित रही। वर्षा, अन्धड़ आदि के प्रकोप में कोई भी कमी या कोई भी अन्तर नहीं आया। इतने पर भी कृष्ण यत्न के साथ कार्य संलग्न रहे। उन्हें इस कार्य में तनिक भी क्लान्ति या थकान नहीं हुई।

गोवर्धन पर्वत की प्रत्येक गुफा, प्रत्येक कन्दरा कृष्ण के सफल प्रयत्नों से सुरक्षित रही। सभी लोग कुशलता के साथ रहने लगे। कृष्ण का प्रवन्ध बहुत ही उत्तम था।

भ्रमण ही करते…… ……**बलवीर की** ॥ ६६ से ६८ ॥

शब्दार्थ—सकल काल—सभी क्षणों में। रक्षण में—रक्षा कार्यों में। प्रसार—फैलाव। गिरीन्द्र का—पर्वताधिपति गोवर्धन। दुख-वार—कष्ट के बाद।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कृष्ण के गोवर्धन-पर्वत को उंगली पर धारण करने वाली घटना का वर्णन किया है। कवि कहता है—

कृष्ण सदैव अपने कार्य में संलग्न रहे। सभी व्यक्तियों ने उन्हें संकट काल में भी प्रसन्नता का अनुभव करते हुए कार्यरत देखा। ऐसा एक भी

क्षण न था जबकि कृष्ण व्यर्थ ही बैठे समय को गंवा रहे हों। दिन में तो वे कार्यरत रहे ही, रात में भी उनको शांति नहीं मिली क्योंकि वे ब्रजवासियों की रक्षा में निशा-दिवस लगे ही रहे।

कृष्ण की कार्य-क्षमता व कार्य तत्परता को देखकर सभी आश्चर्य चकित रह गये। उनका यह प्रसार देखकर सभी लोग यही कहने लगे कि कृष्ण ने तो गोवर्धन पर्वत को अपनी अंगुली पर धारण कर लिया है; तभी तो वे सभी की रक्षा करने में सफल हुए हैं।

कवि हरिऔध कहते हैं कि जब ये दुख-क्षण व्यतीत हो गये तो लोगों को शांति मिली और पवनादि के प्रकोप के शांत हो जाने से सब को सन्तोष हुआ। इस प्रकार बाधा और विघ्नों के समापन पर व्रज प्रदेश फिर से पर्वत के मध्य बस गया। कृष्ण के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही यह कार्य संभव हो सका। इसी कारण कृष्ण को इस कार्य से परम कीर्ति प्राप्त हुई।

विशेष—कृष्ण की कार्य तत्परता, कार्य दक्षता और लोक रक्षकता के गुणों को इस वर्णन से उभारा गया है। कृष्ण के पारम्परिक व्यक्तित्व के प्रति नयी दृष्टि लेकर वर्णन की ओर अग्रसर होना हरिऔध की मौलिकता ही है।

अहह ऊधव······ ······**निमग्न है** ॥ ६९ से ७१ ॥

शब्दार्थ—परम प्राण—परम प्रिय प्राण। विलपे—विलाप करना।

व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में बताया गया है कि आभीरों का दल जब वर्षा के प्रकोप, कृष्ण की सहायता और गोवर्धन धारण की घटना को उद्धव को सुना चुका तो अन्त में कहा—

हे उद्धव इस प्रकार के साहसी, प्राणाधिक प्रिय कृष्ण अब हमारे नेत्रों से दूर हो गये हैं। जिस कृष्ण ने प्रेम के साथ, साहस के साथ हमारी सहायता की वही हम से दूर हो गये हैं। ऐसी स्थिति में ब्रजवासियों का विलाप सार्थक है। सच बात तो यह है कि अब कथन में शक्ति शेष नहीं रह गई है। अतः हे उद्धव बड़ी दीनता के साथ हमारी विनय है कि अब तो स्वयं ब्रज विभूषण कृष्ण आकर अपनी आंखों से ब्रज की दुखपूर्ण दशा को देखे।

कृष्ण ने जल-निमग्न होती हुई इस ब्रजधरा की रक्षा की थी; उदारता के साथ इस भूमि का कष्ट निवारण किया था। वही कृष्ण द्वारा रक्षित धरा अब (ब्रजभूमि) कृष्ण के ही विरह में नेत्रों से निकले आंसुओं के प्रवाह में डूब रही है। ऐसी परिस्थिति में कृष्ण का ही आकर देखना उचित है।

समाप्त ज्योंही······ ······**कार्यकारी** ॥ ७२ से ७४ ॥

शब्दार्थ—यूथ—समूह ने। अतीव—अत्यन्त। स्वकीय—अपनी। मनोज्ञा—मधुर। नाना—विभिन्न। प्रसूत—उत्पन्न। भवदीय—आपके। मुखाब्ज—मुख-कमल। सुखेच्छुकों—सुख के इच्छुकों। वचनोपयोगी—वचनों

के उपयुक्त । यथोचित—जितना उचित था । कुटिलता—कुटिल व्यवहार, बुरी प्रवृत्ति ।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध कह रहे हैं कि जैसे ही आभीरों के दल ने अपना कथन समाप्त किया वैसे ही उसी समय एक अन्य गोप अपनी अत्यन्त प्यारी बातें सुनाने लगा ।

आपके मुख कमल से जो मधुर, आकर्षक, मनोहर रहस्यों से भरी तथा अनुपम बातें निकल रही हैं वे सभी सुखेच्छु सुनना चाहते हैं । आपकी बातें सभी को सुख प्रदान करने वाली हैं । गोप ने कहा कि गोकुल के दुखी और विरह-सतप्त व्यक्तियों का बड़ा सौभाग्य है कि आपके चरण-कमल यहां पड़े । भाव यह है कि आप कृष्ण-सखा है, अतः हम कृतार्थ हैं, किन्तु भाग्य की कैसी विडम्बना है जो आपके ये हितकारी वचन पूरी तरह से सफल नहीं होते । हमें पूर्ण शांति प्रदान नहीं करते है ।

प्रायः विचार...... ......बिताते ।। ७५-७७ ।।

शब्दार्थ—अघाती—तृप्त । प्रवंचित—धोखे । रसज्ञा—रसमय ।

ससंदर्भ व्याख्या—कवि हरिऔध कहते हैं गोप ने उद्धव से कहा कि प्रायः आपके मन में यह विचार उठता होगा कि हम किस कारण से हितकारी बातें नहीं सुनना चाहते हैं । इसका कारण कोई अन्य नहीं है । वस्तुतः हम कृष्ण के प्रेम में इस तरह जकड़े हुए हैं कि हम सिवाय उनकी बातों के अन्य कुछ सुनना ही नहीं चाहते हैं । हम सभी को श्याम की लौ लगी है ।

हे उद्धव हमारे नेत्र कृष्ण की न्यारी (अद्भुत), छटा को देखना चाहते हैं । जिह्वा भी अन्य कुछ न कह कर कृष्ण का यशोगान करते रहना ही पसन्द करती है और कान भी उसकी बात सुनना चाहते हैं । इस प्रकार हमारे शरीर की समस्त इन्द्रियां कृष्ण के लिए लालायित हैं । हमारे रोम-रोम में कृष्ण बस गये हैं ।

कवि हरिऔध कहते हैं कि यदि कभी हमारे नेत्र और कान कृष्ण की शोभा और कीर्ति रहित हो जाते हैं तो हमारी जिह्वा उनके सुन्दर गुणों का गान करने लगती है । इसीलिए ब्रजवासी पागल होकर कृष्ण की लीलाओं का गान करते हुए कुछ समय व्यतीत करते रहते हैं ।

संसार में...... ......दिनों में ।। ७८-८० ।।

शब्दार्थ—नृ रत्न—नर रत्न । अवनि—पृथ्वी । कृतज्ञा=कृतज्ञ या अहसानमन्द । द्विदशः वत्सर—बारह वर्ष । विहारी—विहार करने वाले ।

प्रसंग—इन पंक्तियों में कवि कृष्ण को 'नर-श्रेष्ठ' की अभिधा से मंडित करके उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं का वर्णन कर रहा है । कवि हरिऔध कह रहे हैं—

गोप ने कहा कि संसार में सदैव ऐसे महापुरुष हो गये हैं, जिनके कार्यों से पृथ्वी कृतज्ञ हुई है । कृष्ण एक ऐसे ही नर-रत्न हैं । आज के युग के

महापुरुषोचित सभी गुण उन्हें नर-रत्नत्व प्रदान करते हैं। इस ब्रजभूमि में रह कर जो कार्य कृष्ण ने कर दिखाये; उन्हें कभी भी ऐसी विषम परिस्थिति में कोई अन्य नहीं कर सकता है। आश्चर्य तो तब होता है जबकि हम देखते हैं कि बड़े-बड़े कार्य और वह भी केवल बारह वर्ष की अवस्था में ही कर डाले। ऊधो तुम ही बताओ कि ऐसी मदद करने वाले कृष्ण नर-रत्न क्यों न कहलावेंगे।

आगे की पंक्तियों में वही गोप कृष्ण के अन्य गुणों की ओर ध्यान आकर्षित कर रहा है। वह कहता है कि कृष्ण बहुत ही सरस और मन लुभाने वाली बातें करते थे। वे छोटे से लेकर बड़े तक स ी की हित कामना किया करते थे। आपत्ति के दिनों में वे हमारे सच्चे सहायक थे! वे जब भी कभी किसी से मिलते थे तो बड़ी प्रिय पद्धति से।

विशेष—कृष्ण को अवतारी पुरुष कह कर जहां भागवत आदि में महान् बताया गया है वहां इन पंक्तियों में कवि हरिऔध ने उन्हें एक ऐसे महापुरुष के रूप में चित्रित किया है जो युग पुरुष भी है। लोक-कल्याण की भावना उनके रोम रोम में भरी हुई है।

वे थे विनम्र ···· ····उसे थे ॥ ८१-८३ ॥

शब्दार्थ—विनोदित=विनोद करने वाले। तिरस्कृत—अपमानित।

व्याख्या—पूर्व प्रसंग और संदर्भ के अनुसार ही कवि इन पंक्तियों में भी गोप के माध्यम से कृष्ण के गुणों का बखान कर रहा है। कहता है—

कृष्ण का स्वभाव बहुत ही विनम्र था। वे जब कभी भी अपने से बड़ों से मिलते थे तब बड़ी शिष्टता से बातचीत किया करते थे। यदि कोई उनके समक्ष विरोधी बातें करता था; तो वे उसे पसन्द नहीं करते थे। वे स्वयं भी कभी किसी से अप्रसन्न नहीं हुआ करते थे। छोटे-छोटे बालकों से वे बड़ी प्रीति के साथ मिलते थे। वे उन सभी खेलों को बच्चों के साथ खेला करते थे जो कि विनोदकारी होते थे। वे अपने सभी साथियों को विभिन्न प्रकार के मधुर-मधुर फल खिला-खिला कर सभी को प्रसन्न रखते थे। सभी से मधुर-मधुर वार्ता किया करते थे। कृष्ण यदि किसी स्थल पर कलह, शुष्क व्यर्थ-विवाद देखते थे तो वे उसे तुरन्त शांत करा दिया करते थे। वे विवाद को और कलह को कभी भी पसन्द नहीं करते थे। यही कारण है कि वे देखते कि कोई बलवान कमजोर को सता रहा है तो वे उस शक्तिशाली को अनेक प्रकार से तिरस्कृत और अपमानित करते थे। इस प्रकार उसकी अवमानना करके उसे बुरा कार्य करने से रोकते थे।

होते प्रसन्न······ ······कृपा से ॥ ८४-८६ ॥

शब्दार्थ—स्व-कृत्य—स्वयं का कार्य। विशिष्ट-पद—विशेषाधिकारी। नितान्त—बहुत ही। निरादृत—अपमानित। शास्ति—उपदेश। मद—अहंकार। विमोचन—नष्ट। निकेत—घर या सदन।

ससंदर्भ व्याख्या--कवि हरिऔध इन पंक्तियों में भी कृष्ण के स्वभाव का परिचय दे रहे हैं। कहते हैं यदि कृष्ण यह देखते कि कोई भी व्यक्ति अपने कार्य को प्रेमपूर्वक कर रहा है तो वे बड़े प्रसन्न होते थे। इसी प्रकार यदि कोई किसी विशेष पदाधिकारी की प्रतिष्ठा का तिरस्कार करता था तो यह देखकर उनके हृदय को बड़ी चोट पहुंचती थी। कृष्ण माता-पिता और उम्र में बड़े व्यक्तियों को यदि कभी किसी स्थान पर निराद्रित होते देखते थे तो वे बड़े खिन्न होते थे। साथ ही छोटों को और पुत्रों को बहुविध शिक्षा और उपदेश दिया करते थे।

यद्यपि कृष्ण राज पुत्र थे, किन्तु उनके व्यक्तित्व में अहंकार नाम की कोई चीज नहीं थी। प्राय: वे गरीबों के घर जाकर उनका हाल पूछते थे। वे अकिंचन व्यक्तियों के दुख को भली भांति जानते थे। अतः उसे दूर करने के लिए बड़ी मनोरम बातें किया करते थे। इस प्रकार सभी के दुखों का विमोचन या निवारण करते रहते थे। दुखों का निवारण करना कृष्ण के लिए बहुत ही आसान था।

रोगी दुखी······ ······कर्म द्वारा ॥ ८७-८६ ॥

शब्दार्थ--आपद--विपत्ति। निकेत--घर। सुपूजित=आदर पाते रहे। शुभ कर्म—कल्याणकारी कर्मों के द्वारा।

व्याख्या—पूर्व संदर्भ में ही गोप कह रहा है कि कृष्ण रोगियों, आपत्ति में पड़े हुए व्यक्तियों की सदैव अपने हाथों से सेवा किया करते थे। ब्रजभूमि में ऐसा कोई भी घर नहीं था जहां कि व्यक्ति दुखी हों, किन्तु कृष्ण वहां अनुपस्थित हों। भाव यह है कि जहां भी कोई दुखी और विपदा का मारा दिखाई देता था; कृष्ण वहां तुरन्त जाकर आवश्यक सहायता करते थे, उसे विविध प्रकार से धैर्य बंधाते थे।

ब्रज-प्रदेश में जितने भी संतानहीन व्यक्ति थे, वे कृष्ण को ही अपना पुत्र और सर्वस्व समझते थे [आखिर क्यों न कहें-या समझें; उनके कार्य ही ऐसे थे।] कृष्ण को पाकर निःसंतान व्यक्ति भी स्वयं को संततिवान कहते थे। इसके अतिरिक्त जिनके पास संतान थी; वे भी अपनी संतानों से अधिक कृष्ण का ही भरोसा किया करते थे। यदि किसी घर में कृष्ण जाते थे तो वे घर के बच्चों से अधिक मान पाते थे। कोई कह सकता है कि वे राजपुत्र थे इसलिए सम्मान पाते थे, किन्तु यह बात नहीं है। इसका कारण उनके गुण थे। वे तो सदैव ही अपने शुभ कर्मों के द्वारा पूजे जाते थे।

विशेष—'होते सुपूजित सदा शुभ कर्म द्वारा' पंक्ति लिखकर कवि हरिऔध ने यह भी बता दिया है कि व्यक्ति की महत्ता उसके शुभ कर्मों से होती है तथा उन्हीं से उसे सम्मान मिलता है।

भू में सदा········ ········सर्वदा है ॥ ९० से ९२ ॥

शब्दार्थ—भूत हित—सबका हित सोचने से। यदपि=यद्यपि। वरबोध=श्रेष्ठ ज्ञान। निसर्ग—स्वभावतः या प्रकृति।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में भी कृष्ण के शुभ कर्मों और उनके लोक हितकारी रूप का वर्णन किया गया है, कवि हरिऔध कहते हैं—

प्रायः देखा जाता है कि पृथ्वी पर मनुष्य जो सम्मान पाता है वह या तो धन–सम्पत्ति के द्वारा या राज्याधिकार के कारण, किन्तु उसकी पूजा इन दोनों में से किसी एक से भी नहीं होती है। उनकी पूजा तो निःस्वार्थ भाव से किये गये लोकहितकारी कर्मों से ही होती है। यद्यपि अभी कृष्ण की अवस्था थोड़ी है तब भी वे शुभकर्म में लगे हुए हैं तात्पर्य शुभकर्मरत रहते हैं। स्वभावतः उनके अन्दर इस प्रकार का बोध देखकर तो यहां प्रमाणित होता है कि वे महात्मा हैं।

विद्या, सुन्दर संगति, समस्त नीतियां और शिक्षा से व्यक्ति का विकास भर होता है। उसके स्वभाव की अच्छाई–बुराई तो प्रकृति से ही बनकर आती है। व्यक्ति के स्वभाव में यदि कोई दिव्यता है या मलिनता है तो वह प्रकृति का ही वरदान है। आगे चलकर विद्या, संगति और शिक्षा से इनका विकास होता रहता है। परिणामतः व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। भाव यह है कि प्रकृति और वातावरण दोनों का प्रभाव व्यक्ति के विकास में सहायक होता है।

विशेष—व्यक्ति के आन्तरिक गुणों का महत्व है।

ऐसे--सुबोध········ ········करें वे ।। ९३ से ९५ ।।

शब्दार्थ—मतिमान—बुद्धिमान। उचिताभिलाषा—उचित कामना। मेदिनी=पृथ्वी। निरस्त—परास्त।

व्याख्या—गोप ने उद्दव से कहा कि जो व्यक्ति इतना मतिवान है और कृपालु है–ज्ञानी है वह यदि मथुरा को छोड़कर यहां आज तक नहीं आया तो इसका कारण यह नहीं है कि कृष्ण व्रज की भूमि को भूल गये हैं। इसका कारण हमारी समझ में तो कोई दूसरा ही है। इस संसार में अनेक महान व्यक्ति आये और गये, किन्तु सभी अपनी इच्छाओं को पूरी कर सके हो–यह बात नहीं है। बात यह है कि जब कभी भी वे राजनीति के दांवों के कारण उचित कार्य करने में भी अपने लोक–कल्याण के उद्देश्य में बाधा देखते हैं तो उसे नहीं करते हैं। कृष्ण के यहां आने से भी सम्भवतः लोकोपकार में विघ्न पहुंचता होगा, तभी शायद वे नहीं लौटे हैं। यदि यह बात न होती तो वे अवश्य आ जाते।

गोप ने कहा कि हे उद्धव ! यही सब सोच विचार कर मैं अज्ञानी सा हो जाता हूं। मैं क्या कहूं–कुछ भी तो मेरी समझ में नहीं आता है। अतः विवश होकर मैं यही कामना करता हूं कि वे कोई ऐसी युक्ति करें जिससे व्रज का हित हो सकें।

है रोम रोम······ ······प्राणियों का ।। ९६ से ९८ ।।

शब्दार्थ—उर के तम—हृदयांधकार। ज्योति विहीन—प्रकाशविहीन।

द्युति—कांति । रोम-कूप—रोओं से । नाद—ध्वनि । कु प्रपंच—बुरे प्रपंच की । चिन्तनायें—विचारनायें ।

व्याख्या—गोप ने कहा कि हे उद्धव ! हमारे शरीर का रोम-रोम कहता है कि कृष्ण आवें और दर्शन देकर कृतार्थ करें । अपने मनोहर मुख की कांति से लाभान्वित करावें । हमारे हृदयों में जो अधंकार भर गया है, उसे दूर करके प्रकाश किरण भर दें । हमारी आंखों की ज्योति उनकी राह देखते देखते मन्द पड़ गई है, अतः वे यहां आकर ज्योतिहीन नेत्रों को प्रकाश और द्युति-प्रदान करें । मैं तो सदैव हृदय से यह कामना करता हूं तथा मेरे शरीर के रोम-रोम मे यही नाद आता है कि यदि ब्रज में आने पर किसी छल की संभावना हो तो वे कभी भी ब्रज भूमि में न आवें । ऐसा कौन होगा जो अपने सुख के लिए कृष्ण के सुख और कल्याण को भुला देगा ? अर्थात् ऐसा कोई भी तो नहीं है । वस्तुतः जो कृष्ण हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय है उसकी शुभ चिन्तना का ध्यान करना हमारा कर्त्तव्य है । ऐसी परिस्थिति में कृष्ण का कोई भी अहित संभव नहीं है ।

यों सर्व वृत्त······ ·······पंथ में ।।९९ से १०१।।

शब्दार्थ—सर्व-वृत्त=सभी वृतान्त । उन्मना=उदास । वदन=मुख । उद्विग्नता=बैचेनी । वाञ्छा=इच्छा । प्रसूत=उत्पन्न । खर-दृष्टि=तीव्र-दृष्टि से. । शांतिकरी=शांति उत्पन्न करने वाली । दुख-दग्धितों=दुख से जले हुओं का । तदुपरान्त=तत्पश्चात । बखानते=वर्णन करते । विबुध-पुगंव=ज्ञानियों में श्रेष्ठ । विमोहित=वेसुध ।

व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार ही हरिऔध कहते हैं कि गोप जब अपनी सभी बातें कह चुका तो उसने उन्मन भाव से (उस आभीर ने) उद्धव के मुख को देखा । उसकी तीव्र दृष्टि से गोप की दृढ़ता और अटल इच्छा व्यक्त हो रही थी । उद्धव ने ज्योंही उसकी अवस्था को देखा तथा गोप गणों की खिन्नता को देखा त्योंही वे शांति प्रदायिनी वाणी में कहने लगे—वे ऐसे वचन कहने लगे जिससे कि दुख में दग्ध व्यक्तियों को कुछ शांति प्राप्त हो । इस वार्ता के उपरांत सभी ब्रज विभूषण की कीर्ति वखानते हुए अपने-अपने घरों को गये । मार्ग में उन सभी की बातें सुन सुनकर उद्धव भी (जो ज्ञानियों में श्रेष्ठ थे) सुधबुध भूल गये ।

विशेष—गोप-ग्वालों का कृष्ण के प्रति अनुराग व्यक्त किया गया है साथ ही ज्ञानियों में श्रेष्ठ उद्धव को भी सुध-बुध खोये बताया गया है । सूरदास के उद्धव तो कृष्ण से यहां तक कह गये थे—

मेरो कह्यौ पवन को भुस भयो गावति नन्दकुमार ।

त्रयोदश सर्ग

कथासार

त्रयोदश सर्ग प्रियप्रवास की कुछ रम्य और मधुर घटनाओं का समीकरण है। इसमें कुछ घटनाओं के माध्यम से कृष्ण के चरित्रोत्कर्ष की व्यंजना की गई है। सर्ग का प्रारम्भ वृन्दावन के रमणीय स्थान से होता है। यह स्थान वृन्दावन के अंक में बसा हुआ था। यहां रंग-बिरंगे फूल खिले हुए थे और स्थान-स्थान पर घने वृक्षों की छाया बहुत घनी थी। कहीं-कहीं निर्मल जल से भरे तालाब थे, जिनमें पक्षी और मछलियां क्रीड़ा किया करती थीं। इस छटा को देखकर मन में अनेक रमणीय कल्पनायें बनती थीं। इनकी हरियाली ऐसी प्रतीत होती थी मानो कोई हरा-भरा बिछौना बिछा हो।

इसी रमणीक और मन-भावन स्थान पर अनेक गाय और उनके बछड़े चरते रहते थे। कुछेक गायें ऐसी भी थीं जो वट-वृक्ष की छाया में बैठी जुगाली कर रही थीं। बैल अपनी ध्वनि करते हुए इधर-उधर घूमते नजर आते थे। सैंकड़ों व्यक्ति अपनी-अपनी गायों की रक्षा में लगे हुए थे। कुछ विषाण बजा रहे थे और कुछ कृष्ण के चरित्र का गान कर रहे थे। कुछ ऐसे मस्त गोप भी थे जो कि वृक्षों के नीचे बैठे मधुर फलों का स्वाद ले रहे थे। कवि हरिऔध ने वृन्दावन के विशाल अङ्क में वसुंधरा के इस दृश्य का वर्णन बहुत ही मनोहर दृष्टि से किया है।

कवि ने इसी स्थल पर सूचना दी है कि इस मधुर और आकर्षक स्थल को देखकर एक बार मन बहलाव के निमित्त उद्धव भी वहां जा पहुंचे। उद्धव को आया जानकर सभी की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। सभी को समाचार जानने की अभिलाषा ने बहुत ही उत्साहित कर दिया और उन सभी ने कृष्ण के विषय में पूछा। पहले तो सभी ने कृष्ण का गुणगान किया, तदनन्तर एक वृद्ध ग्वाले ने दग्ध हृदय से उद्धव से कहना प्रारम्भ किया—

मुकुन्द चाहे वसुदेव पुत्र हों।
कुमार होवें अथवा व्रजेश के।
बिके उन्हीं के कर सर्व गोप हैं।
बसे हुए हैं मन प्राण में वही।।

"वस्तुतः कृष्ण वसुदेव के पुत्र हों या नन्द के हम सभी तो उनके प्रेम में प्रमत्त होकर उन्हीं के हाथों बिक गये हैं। हम व्रजवासी तो यही जानते हैं कि उनकी माता यशोदा ही हैं। भले ही वे देवकी के पुत्र हों, किन्तु वे व्रज के एक मात्र आधार हैं। वे व्रज का विस्मरण नहीं कर सकते हैं और हम उनका विस्मरण नहीं कर सकते हैं। कृष्ण के यहां अनुपस्थित होने के कारण ही हम सभी व्यथित हैं। उनके जीवन में व्यर्थ के प्रपंच फैल गये हैं—

तभी तो वे मथुरा से लौटने का नाम नहीं लेते हैं। अन्त में दुखी होकर उस गोप ने कूटनीति की निन्दा की और कहा—

सदा बुरा हो उस कूट-नीति का।
जले महापावक में प्रपंच सो।
मनुष्य लोकोत्तर श्याम सा जिन्हें।
सका नहीं रोक अकान्त कृत्य से॥

भाग्य की विलक्षणता और शक्ति का कोई पारावार नहीं है। इसके समक्ष अच्छे-अच्छे व्यक्ति भी विवशता का अनुभव करते हैं—हार मान बैठते हैं। कृष्ण का व्यक्तित्व विलक्षण है—अनिर्वचनीय है। इसी विलक्षणता के कारण तो कृष्ण ने हम सभी को मानवता का नया आदर्श प्रस्तुत किया है। यही आदर्श हम सबकी प्रेरक शक्ति है; उसी के सहारे हमारे जीवन की गाड़ी खिसक रही है। कृष्ण राजपुत्र होकर भी मदहीन थे और सभी गोप-ग्वालों के साथ समानता का व्यवहार करते थे और आनन्द से विहार करते थे।

आगे कवि ने कृष्ण की विहार-लीलाओं का वर्णन किया है। कहा गया है कि कभी तो कृष्ण यमुना के जल में तैरते थे और कभी कदम्ब के वृक्ष पर बैठकर वंशी बजाया करते थे। कृष्ण इतने बुद्धिमान थे कि उन्होंने अपनी बुद्धि के द्वारा ही बहुत सी जड़ी-बूटियों का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। वे छोटी सी वस्तु के प्रति भी सतर्कता से आचरण करते थे और उसे जानने का प्रयास करते थे। वन का मामला ही विचित्र होता है। वहां वनैले और विषैले व घातक पशुओं का भय रहता है। कृष्ण इसी ज्ञान के बल पर तो उन्हें पहचान कर मार डालते थे। इसी वन में एक भयंकर सर्प रहता था। उसकी भयंकरता को देखकर सभी भयाक्रान्त होकर घबराहट का अनुभव किया करते थे। उसकी भयानकता से बाराह तक घबराते थे। सामान्यतः वह पहाड़ की गुफा में रहता था, किन्तु कभी-कभी वह बाहर भी आया करता था। वृक्षों के समूह की जड़ों को उसका विषैला प्रभाव सहन करना पड़ता था। उसके विषैले फूत्कार से बहुत सी शिलायें तक चूर्ण-चूर्ण हो जाती थी। वह जब कभी भी बाहर निकालता तो तीव्र भूख के कारण ही; अन्यथा अन्दर खोह में ही रहता था।

वृद्ध गोप ने कहा एक दिन की बात है कि कृष्ण अपने साथियों के साथ पुष्पसज्जित वृक्ष के नीचे बैठे थे। सूर्य आकाश में काफी ऊंचा चढ़ आया था। गोप अपनी गायों के साथ इधर-उधर घूम रहे थे। इसी क्षण कृष्ण को दूर से ही एक कोलाहल सुनाई दिया। कोलाहल को सुनते ही कृष्ण एक ऊंचे पेड़ पर चढ़ गये। वृक्षारोहण के बाद उन्होंने देखा कि सांप भयंकर फूत्कार के साथ अनेक वन्य पशुओं को मार रहा है। कृष्ण इस दृश्य को देखकर चुप न रह सके। उनके क्रोध का पारावार न रहा। वे शीघ्र ही वृक्ष से नीचे उतरे और उसी दिशा की ओर दौड़े जिधर सांप यह कृत्य करने में संलग्न था। कृष्ण के इस कृत्य का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

स्व-लोचनों से इस-क्रूर-काण्ड को।
विलोक उत्तेजित श्याम हो गये।

तुरन्त आ पादप-निम्न दर्प से।
स-वेग दौड़े खल-सर्प ओर वे ॥
समीप जाके निज मंजु वेणु को।
बजा उठे वे इस दिव्य रीति से।
विमुग्ध होने जिससे लगा फणी।
अचेत - आभीर सचेल हो उठे ॥

कृष्ण की बंशी की मादक ध्वनि को सुनकर सांप अपनी भयंकरता को भूल गया। उसकी मधुर ध्वनि से विमुग्ध होकर अचेत सा होने लगा। कृष्ण ने उसे वशीभूत करके मार गिराया। कृष्ण का प्रभाव ही था कि सांप भी वशीभूत हो गया और अचेत व्यक्ति भी चेतना सम्पन्न होकर रम्य सांस लेने लगे। कृष्ण की सहायता इस कार्य में और भी व्यक्तियों ने की। मरणोपरांत सांप का शरीर कई महीने तक वन में पड़ा रहा। कुछ समय पश्चात् वह भी विलीन हो गया।

इसी प्रकार एक बहुत ही बलवान घोड़ा था। वह शक्तिशाली तो था ही; साथ ही भयंकर भी था। उसकी भयंकरता सभी पशुओं के लिए घातक थी। उसकी दौड़ने की शक्ति अपार थी। जब वह दौड़ता था तो पृथ्वी भी प्रकंपित हो उठती थी। बड़े-बड़े वृषभ उसे देखकर डर जाते थे। बड़े से बड़े शक्तिशाली व्यक्ति भी उसका सामना नहीं कर सकते थे। आभीर जाति के लोग उससे इतने डरते थे कि जब कभी भी वह कठोर-ध्वनि करके दौड़ता था तो उसके पैरों की टापों को सुनकर सभी वृक्षों पर चढ़ जाते थे। जो भी मनुष्य उस घोड़े के सामने पड़ जाता वह अपने प्राणों को बचाने में असमर्थ होता था। कृष्ण ने एक डण्डे से उसे मार-मार कर अधमरा कर दिया था। धीरे-धीरे वह भी समाप्त हो गया। कृष्ण के इस अपार साहस से सभी स्तंभित रह गये।

गोप ने बताया कि इस वन में सर्प और इस भयंकर अश्व के अतिरिक्त और भी कई क्रूर और भयावने वनैले पशु थे। कृष्ण ने अपनी अपार शक्ति और कौशलपूर्ण कार्यों से वन की इस व्याधि को समाप्त किया था। कृष्ण के कारण ही इस वन की भयंकरता नष्ट हो गई थी। इसी वन में एक व्योम नाम का व्यक्ति रहता था। उसके कारनामों से भी सभी व्यक्ति दुखी थे। वह एक क्षण भी चुप नहीं रहता था—कोई न कोई झगड़ा-टंटा मचाया करता था। उसके दुष्कृत्यों से सभी परेशान थे। वह कभी तो बैलों और गायों को चुरा लेता था, कभी उन्हें पानी में डुबो देता था और कभी उन्हें मार डालता या अंगहीन बना देता था। इतना ही क्यों वह अनेक गोप-कुमारों को बहुत ही कष्ट देता था—कभी मारकर और कभी पर्वत की भयंकर कंदराओं में डाल कर।

कृष्ण इस पक्ष में थे कि वह कैसे ही सुधर जावे, किन्तु उस पर उनके उपदेशों का कोई भी असर नहीं हुआ। शिक्षा और उपदेश का कोई प्रभाव जब उस पर न पड़ा तो कृष्ण बड़े ही क्रोधित हुए। उन्होंने क्रोधित होकर कहा—

देखो व्योम! मैंने तुम्हें सुधारने का पर्याप्त प्रयत्न किया, किन्तु तुम

अपनी हरकतों से बाज नहीं आये। अव लोक-कल्याण का ध्यान करते हुए यह उचित ही जान पड़ता है कि तुझे मार दिया जाय। यद्यपि यह ठीक है कि हिंसात्मक कार्यवाहियां अच्छी नहीं होती हैं, किन्तु कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में वह भी अच्छी बन जाती हैं। घर के सुख और कल्याण की दृष्टि से हिंसा भी अहिंसा ही कही जाती है। दुष्टात्मा को सुरक्षित रखने का कोई भी अर्थ नहीं होता है। उसे मार देना ही उचित होता है। अतः अव तू सावधान हो जा। तुझे मारना ही अच्छा है। कृष्ण की इन बातों से व्योम को भी क्रोध आ गया और उसने एक लाठी उठाकर कृष्ण को मारी, किन्तु कृष्ण ने बड़ी स्फूर्ति से वही लाठी छीनकर उसी से उस पर प्रहार किया। वह मर गया। हे उद्धव! कृष्ण के गुणों का गान करते हुए हमारे हृदयों में बड़ा सन्तोष होता है। कृष्ण ने जिन-जिन स्थानों पर लीलाएं की है, वे स्थान अपनी पवित्रता और विचित्रता के कारण स्मरणीय वन गये हैं। वास्तव में कितना अच्छा होता यदि कृष्ण यहां आ गये होते।

इस गोप की बातें समाप्त होते ही एक दूसरा गोप बोला— न मालूम हमें कृष्ण का दर्शन-लाभ कव प्राप्त होगा? उद्धव तुम्हीं बताओ वनमाला-धारी कृष्ण व्रज के इन कुंजों में कव मुरली वजायेंगे, कव विहार करेंगे? उद्धव! हमारे वन विहारी कृष्ण नित्य-प्रति अपने मित्रों के साथ देवताओं और दानवों की कथायें सुनाया करते थे। कृष्ण का खेल सारी प्रकृति को आनंदित करता था। उनकी क्रीडाओं के साथ कोयल और चातक के स्वर भी सुनाई पड़ने लगते थे। कृष्ण जव यहां थे तव तो फूलों और पत्तों के गहने धारण किया करते थे, किन्तु वे अव तो सोने के आभूषण धारण करते होंगे, सिर पर छत्र धारण करते होंगे और चंवर डुलाया करते होंगे। उस समय तो वे मोतियों से अधिक फूलों को प्यार किया करते थे। उद्धव बताओ क्या अव भी कृष्ण उस रूप में हैं या वदल गये हैं? एक समय था जवकि कृष्ण दुखियों के घर जाकर उन्हें सान्त्वना देते थे—कष्ट मिटाते थे और भटके हुओं को मार्ग दिखाते थे। अव तो ऐसा लगता है कि कृष्ण हमें भूल गये हैं। वर्षा जिस प्रकार सम्पूर्ण वनस्पति को आनंदित और उल्लसित करती है; उसी प्रकार कृष्ण-दर्शन हमें आनंदित करते हैं। इस प्रकार कृष्ण-चर्चा करते-करते संध्या हो गई और सभी गोप उद्धव के साथ अपने-अपने घरों को चले गये।

समीक्षात्मक विशेषताएं

१: त्रयोदश सर्ग कई घटनाओं को अपने कथांचल में समेटे हुए है। इन विविध घटनाओं के माध्यम से भी हरिऔध का लक्ष्य यही रहा है कि वे कृष्ण के चरित्र के विविध पक्ष उद्घाटित कर सकें; किन्तु वहीं घूम फिर कर रह गयी है। जहां सूर आदि कवि कृष्ण के रसिया और छलिया रूप के जाल में उलझे रह गये हैं, वहां हरिऔध उन्हें नया रूप देने के लोभ में कृष्ण के प्रणय पक्ष को गौण कर गये हैं। अतः अनेक घटनाओं के मूल में कृष्ण का वीर, साहसी, पराक्रमी और लोकरक्षक रूप ही छिपा हुआ दिखाई देता है। कृष्ण व्यवहार कुशल, परदुख कातर, सभी के सच्चे मित्र और शिष्ट बनाकर प्रस्तुत किये गये हैं। राजपुत्र बताकर भी उन्हें मद-मोह और अहंकार

से विमुक्त बताया गया है। इन सभी परिवर्तनों के पीछे कृष्ण-चरित्र को नया विकास देने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। बौद्धिक आन्दोलनों, नवजागरण और द्विवेदीयुगीन सुधारवादी, उपदेशवादी. संयमित और मर्यादित दृष्टिकोणों के साये में ही प्रियप्रवास की सर्जना हुई है। यह सर्ग भी कृष्ण के ऊपर वर्णित रूपों की ही समष्टि है।

२ : सर्ग की भाषा शुद्ध खड़ीबोली—संस्कृत गर्भित और दीर्घ-समासान्त है जो सम्पूर्ण प्रियप्रवास में आद्यन्त विद्यमान है।

३ : वंशस्थ, मन्दाक्रान्ता और मालिनी छन्दों में लिखा गया यह सर्ग वर्णन शैली और भावानुरूप अलंकरण में आवेष्टित है।

४ : सर्ग का प्रारम्भ प्रकृति की रम्य वनस्थली से हुआ है और कृष्ण की गुणावली के साथ ही उनकी स्मृति से व्यथित व्रजवासियों के घर लौटने के वर्णन से समाप्त हुआ है।

व्याख्यायें

विशाल वृन्दावन........ ....वस्त्र का ।। १ से ३ ।।

शब्दार्थ—भव्य=सुन्दर। अतीव=अत्यन्त। उर्वरा=उपजाऊ। रम्या=सुन्दर। तृण-राजि=पत्तों के समूह। संकुला=संयुक्त। प्रसादिनी=प्रसन्न करने वाली। प्रसून=पुष्प। हरीतिमा=हरियाली। सित-रक्त=श्वेत और लाल। समुत्तमा=अत्युत्तम। समोद=आनंद के साथ। कान्त=सुन्दर। हरिताम=हरा-भरा या मनोरम।

सप्रसंग व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध वृन्दावन के अङ्क में बसी हुई धरित्री की शोभा का वर्णन करते हैं। वे कहते हैं—

विस्तृत वृन्दावन की सुन्दर गोद में एक अत्यन्त उर्वरा भूमि थी। वह बहुत ही सुन्दर थी। घास से शोभित और प्राणियों के नयनों में आनन्द भरने वाली थी। इस स्थल पर यत्र-तत्र पुष्प विकसित हो रहे थे। ये पुष्प उस स्थल को बहुत ही मनोरमता प्रदान कर रहे थे। सुन्दर घास हरीतिमा के मध्य यहां-वहां श्वेत और लाल पुष्प अपनी सुषमा बिखेर रहे थे। हरी घास के साथ ये पुष्प बहुत ही मनोहर प्रतीत होते थे।

इनकी सुन्दर सुषमा को देख कर मन में सहज ही यह सुन्दर कल्पना होती थी कि यह हरियाली-भरी घास का बिछौना बिछा हुआ है। वनस्थली की हरियाली के बीच हरा-भरा बिछौना बिछा हुआ है।

विशेष—१. प्राकृतिक शोभा का वर्णन किया गया है। उपमा अलंकार, के प्रयोग से वर्णन अधिक सुन्दर बन गया है।

२. प्रकृति की कोमलता को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हरीतिमा, समोद, हरिताम, तृण-राजि, रम्या और भव्य शङ्क आदि शब्दों का प्रयोग भावानुकूल है।

स-चारुता........ ....प्रगाढ थी ।।४—५।।

शब्दार्थ—चारुता=सुन्दरता। भूरि-रंजिता=पर्याप्त रंगी हुई।

श्वेतता रक्तिमता=सफेदी और लालीमा। स्वकीय=अपने द्वारा किये गये। विलोकनीया=दर्शनीय या देखने योग्य। प्रगाढ़=घनी।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों मे कवि हरिऔध पूर्व संदर्भानुसार ही वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—

सर्वत्र फैली हुई हरियाली को देख कर यह प्रतीत होता था मानों हरियाली सौन्दर्य के साथ सफेदी और लालिमा की गरिमा से रंगीन होकर अपनी अनुपमता के प्रकाशनार्थ आ उपस्थित हुई है।

कवि कहते हैं कि इस रमणीय धरित्री पर स्थान-स्थान पर पेड़ खड़े लहलहा रहे थे। जब उनके सुन्दर पत्रों की छाया इस पृथ्वी पर पड़ती थी तो वह पृथ्वी पर बिछौने के रूप में बिछी हरियाली को बहुत ही प्रगाढ़ या घनी करती थी। परिणामतः सौन्दर्य और अधिक बढ़ जाता था।

विशेष—१. उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया गया है। कवि-कल्पना से वर्णन साकार हो उठा है।

२. 'विलोकनीया' शब्द अप्रचलित है किन्तु कवि ने उसे प्रयोग की धरा पर ला कर नया रूप दे दिया है। 'दर्शनीया' के वजन पर 'विलोकनीया' शब्द की सृष्टि हुई है।

कहीं कहीं था ....प्रभाव से ॥ ६ से ८ ॥

शब्दार्थ—विमलाम्बु=निर्मल जल। समासादित=अमृत से भरा हुआ। मत्स्य=मछलियां। तले=नीचे। निनाद=ध्वनि। मत्त=मस्त। विमोहिता=आकर्षित। पीवरता=मोटापन।

ससंदर्भ व्याख्या—कवि इन पंक्तियों में हरियाली के अङ्क में विचरण करने वाले पशु-पक्षियों का वर्णन कर रहा है। उसका कथन है—

हरियाली से युक्त इस पृथ्वी पर कहीं-कहीं निर्मल जल भी भरा हुआ दिखाई दे रहा है। उस जल की विमलता या निर्मलता ठीक वैसी ही थी जैसी कि साधु-संतों के चित्त की होती है। उसी निर्मल जल में अनेक पक्षी-क्रीड़ारत रहते हुए विहार किया करते थे। पक्षियों के साथ ही मछलियां भी उस जल में विचरती दिखाई देती थीं। इसी पृथ्वी पर बहुतसी गायें अपने बछड़ों के साथ आनंदित हो कर चलती रहती थीं। कुछ ऐसी भी थी जो कि वट-वृक्ष की छाया के नीचे बैठी जुगाली करती रहती थीं।

इसी पवित्र और रम्य भूमि में अनेक बैल भी अपनी गर्वोन्नत आवाज का नाद करते हुए इतस्ततः भ्रमण करते दिखाई दिया करते थे। उन वृषभों का शरीर पर्याप्त मोटा था जिससे गायें इनकी ओर आकर्षित होती रहती थीं अथवा अपने मोटे शरीर से ये बैल गायों को अपनी ओर आकर्षित करते रहते थे।

विशेष—१. वर्णन सीधा और सरल है। अलंकृत है, किन्तु सहज और व्यावहारिक है।

२. निर्मल जल की उपमा साधु-संतों के विशुद्ध चित्त से दी गई है।

जल की विशुद्धता के साथ बिठाया गया शुद्धचित्त उपमान बड़ा नया और मौलिक है।

बड़े सधे गोप........ ....मण्डली ॥ ६ से ११ ॥

शब्दार्थ—सधे=संभले हुए। गवादि=गाय आदि पशुओं। प्रवृत्त=लगे हुए थे। विषाण=एक विशेष प्रकार का बाजा। रसना=जिह्वा। प्रमोद=मजाक। प्रफुल्लिता=प्रसन्नता से युक्त।

सप्रसंग व्याख्या—इस हरे-भरे स्थल पर अनेक गोप ग्वाले अपनी गायों की रक्षा किया करते थे। कवि इसी संदर्भ को प्रस्तुत करता हुआ कहता है—

यहां सैकड़ों गोप-पुत्र गवादि की रक्षा में लगे रहते थे—भाव यह है कि इस हरियाली भरे स्थान पर वे गाय आदि को चराया करते थे। ये गोप ग्वाले गाय आदि को चराते हुए विषाण नामक बाजे को बजा रहे थे और कितने ही गोप ऐसे थे जो कि कृष्ण के गुणगान में प्रवृत्त रहते थे। कुछ गोप ग्वाले अनेक मधुर फलों को तोड़-तोड़ कर खाते जा रहे थे। इस प्रकार ये गोपादि अपनी जीह्वा को भी मधुर बना रहे थे। कुछेक ऐसे भी थे जो किसी छायादार सुन्दर वृक्ष के तले बैठे अपने बन्धु-बांधवों के साथ आमोद-विनोद कर रहे थे। ऐसे ही सुन्दर समय में वन-कुञ्जों का बिहार करते हुए बलवीर या बलरामजी के भाई कृष्ण इसी स्थल पर आ पहुंचे। कृष्ण को यकायक इस ओर आता देख कर गोपों की मण्डली बहुत ही प्रमुदित हुई—प्रसन्नता की चरम सीमा पर पहुंच गई।

विशेष—हरियाली भरे वातावरण में गोपों की विभिन्न प्रवृत्तियों का वर्णन किया गया है। कवि ने गोपों के कृत्यों का एक रेखा-चित्र सा प्रस्तुत कर दिया है।

बिठा बड़े आदर........ ......में वही ॥ १२ से १४ ॥

शब्दार्थ—वृत्त=वृतान्त। सुधी=बुद्धिमान उद्धव। लोक-ललाम=संसार में सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध। विमुग्ध=मोहित होकर। व्रजेश=व्रज के ईश। बिके उन्हीं के कर सर्व गोप हैं=सभी गोप आदि उन्हीं कृष्ण के हाथ बिक गये हैं।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध ने गोप-ग्वालों द्वारा पूछे गये माधव वृत्त का वर्णन किया है। वे कहते हैं—

व्रजवासियों ने सर्वप्रथम उद्धव को बड़े आदर भाव के साथ बिठलाया और एक सच्चे जिज्ञासु की भांति उनसे कृष्ण का वृत्त (समाचार) पूछने लगे। चतुर उद्धव बड़े प्रसन्न हुए और उन सभी व्रजवासियों को व्रज के देवता कृष्ण की कथा सुनाने लगे। सबसे पहले तो सभी व्रजवासियों ने विमुग्ध होकर कृष्ण की लोकविश्रुत सुन्दर कीर्ति को बड़े ध्यान से सुना; तत्पश्चात् एक ग्वाल ने बहुत ही व्याकुल व्यथापूर्ण शब्दों में कृष्ण के बन्धु उद्धव से कहा—

हे उद्धव! कृष्ण भले ही वसुदेव के पुत्र हों, किन्तु वे हमारे हैं। इतना ही नहीं वे भले ही व्रजेश के पुत्र हों, किन्तु वे हमारे मन-प्राण में बसे हुए हैं। हम सभी गोप-ग्वालों का सर्वस्व उनके हाथों बिका हुआ है। तात्पर्य यह है कि कृष्ण किसी व्यक्ति विशेष की ही सन्तति नहीं हैं वे तो सभी ब्रजवासियों के परम हितैषी और सर्वस्व हैं।

अहो यही....... **......देव में ।। १५ से १७ ।।**

शब्दार्थ—ब्रजेश्वरी=ब्रज की स्वामिनी। देव कांगजा=देवकी। ब्रजमेदनी=ब्रज भूमि। वरंच=वल्कि। गुणावली=यशगाथा। स्वत्व=अधिकार। तुल्य=समान।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध एक गोप के माध्यम से कृष्ण के सम्बन्ध में बता रहे हैं। वे कहते हैं—

कृष्ण चाहे वासुदेव के पुत्र हों या नन्द के किन्तु इतना सत्य है कि वे सभी ब्रजवासियों के हैं। ब्रजवासी तो यही जानते हैं कि कृष्ण यशोदा जी के पुत्र हैं; यदि वस्तुतः वे देवकी के पुत्र हैं तो भी वे ब्रजवासियों के जीवन के एकमात्र आधार हैं। कृष्ण ने चाहे यदुवंशियों में जन्म लिया हो च।हे गोप-वंश में किन्तु यह नितांत सत्य है कि वे न तो ब्रजभूमि को भुला सकेंगे और न ब्रजभूमि के निवासी ही उन्हें भुला पायेंगे। कृष्ण का और ब्रजभूमि का कुछ ऐसा अटूट सम्बन्ध है कि उनका भुला पाना किसी एक के वश की बात नहीं। कृष्ण के अपूर्व गुण इस बात की स्पष्ट घोषणा करते हैं कि कृष्ण किसी एक व्यक्ति की संतति नहीं हैं, उन पर किसी एक का अधिकार नहीं है, अपितु इन पर तो सभी का समान अधिकार है। वे संपूर्ण संसार के हैं।

बिना बिलोके...... ***......कृत्य से ।। १८ से २० ।।***

शब्दार्थ—बिलोके=देखे हुए। विशोदिता=दुःखी। पिडिता=व्यथित। द्वि-दंड=दो क्षण। प्रपंच=धोखा। कूटनीति=गुप्त राजनीति। महापावक=भयंकर अग्नि। लोकोत्तर=लोक मे ऊंचा। अकांत कृत्य=अकरणीय कृत्य।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भ के अनुसार कवि हरिऔध कृष्ण के ब्रजप्रदेश में वापिस न आने से दुःखी जनता के कष्ट का तथा राजनीति की गुप्त मन्त्रणाओं का वर्णन कर रहे हैं—कृष्ण का मुख बिना देखे ब्रजप्रदेश के सभी निवासी बहुत ही दुःखी हैं, किन्तु उनके और भी अधिक दुःख का कारण यह है कि कृष्ण अभी तक वापस नहीं आए हैं। यदि कृष्ण एक बार भी वापस आकर ब्रजवासियों को दर्शन दे गये होते तो सभी का दुःख दूर हो जाता। ग्वाल ने कहा कि कृष्ण के यहां न आने के लिए वे स्वयं इतने दोषी नहीं जितनी कि यह राजनीति दोषी है। कृष्ण दयालुता, सज्जनता और सुशीलता की साक्षात् मूर्ति हैं। वे इन गुणों के अनुरूप ही आचरण करते हैं किन्तु राजनीति के फैलते हुए व्यर्थ के जाल ने उन्हें यहां न आने से रोक रखा है। यदि ऐसा न होता तो वे दो क्षण भी मथुरा में न बैठे

रहते। आगे की पंक्तियों में वही गोप राजनीति को बुरा भला कह रहा है और कहता है कि उस कूटनीति अथवा राजनीति का बुरा हो, वह राजनीतिक प्रपंच शीघ्र ही जल कर पावक में नष्ट हो जाये जिसने कृष्ण का मन वहां उलझा रखा है। कृष्ण जैसे दिव्य पुरुष के होते हुए भी राजनीति का अकरणीय कृत्य समाप्त नहीं हुआ! आश्चर्य होता है। वास्तव में कृष्ण का ब्रजप्रदेश में न आना अनुचित बात है और इसका उत्तरदायित्व राजनीति जैसे अकरणीय कृत्य के ऊपर निर्भर है।

विशेष—इन पंक्तियों में राजनीति की गूढ़ता और व्यर्थ प्रपंचता की ओर संकेत किया गया है। कृष्ण के चरित्र को दिव्य और उज्जवल बता कर यह संकेत दिया गया है कि यदि राजनीति के दावपेच न होते तो कृष्ण शीघ्र ब्रजप्रदेश में आ जाते।

विडंबना है ······ ······**गुणावली** ।। २१ से २३ ।।

शब्दार्थ—विडंबना=छलना। बलीयशी=बलवान। अखण्डनीया=जो टूटने योग्य नहीं अर्थात् अमिट। तुहिना विभूत=पाले से पराजित। विनष्ट=नष्ट। रवि वन्धु कंज=सूर्य का मित्र कमल। विभूतिशाली=ऐश्वर्यशाली। अलौकिका=दिव्य गुणों से सम्पन्न। लोकमयी=प्रकाशवान।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पक्तियों में कवि हरिऔध उसी गोप के माध्यम से भाग्य की शक्ति का परिचय दिलवा रहे हैं और कृष्ण के इस व्यवहार को भाग्य का खेल बता रहे हैं। वह कहते हैं—

भाग्य की छलना बहुत शक्तिशाली होती है। इसके सामने किसी का वश नहीं चलता। ललाट में जो लिखा होता है वह हो कर रहता है। भाग्य की लिपि अमिट है। यदि ऐसा नहीं होता तो सूर्य का मित्र कमल पाले से क्यों पराजित होता? भाव यह है कि सूर्य को देखते ही पाला नष्ट हो जाता है किन्तु भाग्य की ही बात है कि सूर्य का मित्र होकर भी कमल इस विडम्बना से बच नहीं पाता। यही बात हम ब्रजवासियों और कृष्ण के साथ भी घटित होती है। महान ऐश्वर्यशाली ब्रज के आराध्य देव कृष्ण इस ब्रज भूमि पर बारह वर्ष तक रहे। उनके यहां प्रवास काल से ब्रजभूमि को महान् प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है और गोप वंश भी महागौरवान्वित हुआ है। हे उद्धव! कृष्ण का चरित्र ही ऐसा उज्ज्वल है कि उसे जानने के लिए साधारण मनुष्य की बुद्धि काम नहीं करती है। भाव यह है कि कृष्ण के चरित्र की समस्त दिव्य विशेषताओं को सहज ही बुद्धि के द्वारा जाना और समझा नहीं जा सकता है। उनका चरित्र अलौकिक प्रकाशवान और दिव्यगुण संवलित है।

विशेष—दृष्टांत अलंकार का प्रयोग किया गया है तथा कृष्ण के चरित्र को अलौकिक गुणों से सम्पन्न बताया गया है।

अपूर्व आदर्श ······ ······**जन्तु हनिता** ।। २४ से २६ ।।

शब्दार्थ—नरत्व—मनुष्यता। समुच्चता—महानता। कानन—वन।

अनंत ज्ञानारंजन—अपरिमित ज्ञान के अर्जन के निमित्त । वांछित—अपेक्षित। हिंसृक—घातक ।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में भी कवि हरिऔध पूर्व संदर्भ के अनुसार ही कृष्ण को महान कार्यों का उल्लेख कर रहे हैं। वे कहते हैं कि कृष्ण ने मानवता का अनोखा आदर्श प्रतिष्ठित करके पशुत्व को मनुष्यत्व को बोध कराया। उन्होंने गोपों को चित्त की महानता प्रदर्शित करके उन्हें मानव बना दिया। श्याम व्रजस्वामी के पुत्र थे। उनका कार्य गायों को चराना नहीं था। जहां सैकड़ों सेवक हों वहां भला उन्हें वन में गायें चराने कौन भेजता। दूसरे शब्दों में कृष्ण का प्रमुख लक्ष्य गाय चराना न होकर परोक्ष रूप से मानवता को प्रतिष्ठित करना था। किन्तु कृष्ण आनंद सहित व्रज-वन में आते थे। उनका प्रमुख उद्देश्य अपार ज्ञान की प्राप्ति था। इसके साथ-साथ वे नहीं चाहते थे कि वन में हिंसक पशुओं का साम्राज्य बना रहे।

विशेष—कृष्ण का गाय चराना एव वन में गमन करना प्रमुख लक्ष्य न होकर मानवता की शिक्षा देना और वन में हिंसक पशुओं को नष्ट करना ही एकमात्र उद्देश्य था। इसी आदर्श को उपर्युक्त पंक्तियों में दिग्दर्शित किया गया है।

मुकुन्द······ ······इलिता ॥ २७ से २९ ॥

शब्दार्थ—अरण्य—वन। प्रफुल—प्रसन्न। सुविलास—आनंद के साथ। कलिंदजा—यमुना। कलकूल—सुन्दर किनारा। गिरि सानु—पर्वत के समीप। वीथिका—कुन्जों में। सपुष्पा—सुन्दर पुष्पों से लदी हुई। इलिता —हिलती हुई।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कृष्ण के वनविहार के सम्बन्ध में वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—हे उद्धव जब कृष्ण वन में घूमने के लिये आते थे तो बड़ी प्रसन्नता के साथ वन में विहार करते थे। यमुना के सुन्दर किनारे पर खड़े होकर वे यदाकदा जल के आनंदमय प्रवाह को देखा करते थे और कभी कभी बड़े आनंदमग्न होकर पर्वत के समीप चले जाते थे तथा वहां अनेक सुन्दर दृश्यों का अवलोकन किया करते थे। कभी-कभी वे बड़े उत्सुक भाव से प्राकृतिक छटा को देखा करते और कभी निर्झरों का सुन्दर नीर देख कर आनंदित होते थे। कृष्ण कभी-कभी सुन्दर पुष्पों के समूह में तथा सुन्दर वीथियों में शनैः शनै विनोद के साथ घूमते हुए बड़े आनंदित होते थे। इतना ही नहीं कृष्ण सुन्दर पुष्पों से लदी हुई तथा मृदुमंद गति से आन्दोलित लताओं को देख-देख कर आनंदित हुआ करते थे। लताओं का हिलना और पुष्पों का मनोहक रूप उन्हें बहुत अच्छा लगता था।

विशेष—इन पंक्तियों में कृष्ण के प्रकृति प्रेम का परिचय मिलता है।

पतंगजा सुन्दर······ ······रहस्य जानते ॥३० से ३२ ॥

शब्दार्थ—पतंगजा=यमुना। मंजु-वेणु=सुन्दर वंशी। उद्नता=

अनंत ज्ञानारंजन—अपरिमित ज्ञान के अर्जन के निमित्त। वांछित—अपेक्षित। हिंसक—घातक।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में भी कवि हरिऔध पूर्व संदर्भ के अनुसार ही कृष्ण को महान कार्यों का उल्लेख कर रहे हैं। वे कहते हैं कि कृष्ण ने मानवता का अनोखा आदर्श प्रतिष्ठित करके पशुत्व को मनुष्यत्व का बोध कराया। उन्होंने गोपों को चित्त की महानता प्रदर्शित करके उन्हें मानव बना दिया। श्याम व्रजस्वामी के पुत्र थे। उनका कार्य गायों को चराना नहीं था। जहां सैकड़ों सेवक हों वहां भला उन्हें वन में गायें चराने कौन भेजता। दूसरे शब्दों में कृष्ण का प्रमुख लक्ष्य गाय चराना न होकर परोक्ष रूप से मानवता को प्रतिष्ठित करना था। किन्तु कृष्ण आनंद सहित व्रज-वन में आते थे। उनका प्रमुख उद्देश्य अपार ज्ञान की प्राप्ति था। इसके साथ-साथ वे नहीं चाहते थे कि वन में हिंसक पशुओं का साम्राज्य बना रहे।

विशेष—कृष्ण का गाय चराना एव वन में गमन करना प्रमुख लक्ष्य न होकर मानवता की शिक्षा देना और वन में हिंसक पशुओं को नष्ट करना ही एकमात्र उद्देश्य था। इसी आदर्श को उपर्युक्त पंक्तियों में दिग्दर्शित किया गया है।

मुकुन्द······ ······इलिता॥ २७ से २९॥

शब्दार्थ—अरण्य—वन। प्रफुल—प्रसन्न। सुविलास—आनंद के साथ। कलिंदजा—यमुना। कलकूल—सुन्दर किनारा। गिरि सानु—पर्वत के समीप। वीथिका—कुञ्जों में। सपुष्पा—सुन्दर पुष्पों से लदी हुई। इलिता—हिलती हुई।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कृष्ण के वनविहार के सम्बन्ध में वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि—हे उद्धव जब कृष्ण वन में घूमने के लिये आते थे तो बड़ी प्रसन्नता के साथ वन में विहार करते थे। यमुना के सुन्दर किनारे पर खड़े होकर वे यदाकदा जल के आनंदमय प्रवाह को देखा करते थे और कभी कभी बड़े आनंदमग्न होकर पर्वत के समीप चले जाते थे तथा वहां अनेक सुन्दर दृश्यों का अवलोकन किया करते थे। कभी-कभी वे बड़े उत्सुक भाव से प्राकृतिक छटा को देखा करते और कभी निर्झरों का सुन्दर नीर देख कर आनंदित होते थे। कृष्ण कभी-कभी सुन्दर पुष्पों के समूह में तथा सुन्दर वीथियों में शनैः शनैः विनोद के साथ घूमते हुए बड़े आनंदित होते थे। इतना ही नहीं कृष्ण सुन्दर पुष्पों से लदी हुई तथा मृदुमंद गति से आन्दोलित लताओं को देख-देख कर आनंदित हुआ करते थे। लताओं का हिलना और पुष्पों का मनोहक रूप उन्हें बहुत अच्छा लगता था।

विशेष—इन पंक्तियों में कृष्ण के प्रकृति प्रेम का परिचय मिलता है।

पतंगजा सुन्दर······ ······रहस्य जानते॥३० से ३२॥

शब्दार्थ—पतंगजा=यमुना। मंजु-वेणु=सुन्दर वंशी। उद्भवा=

उत्पन्न होने वाली, परिज्ञात=विदित, स्वकीय संधान=अपने द्वारा किया गया अनुसंधान।

ससंदर्भ व्याख्या—कवि हरिऔध इन पंक्तियों में कृष्ण की निरन्तर बढ़ती हुई ज्ञानार्जन लालसा की ओर संकेत कर रहे हैं। वे कहते हैं कि कभी तो कृष्ण यमुना के स्वच्छ जल में अपने सभी साथियों के साथ जल क्रीड़ा किया करते और कभी डूबते उतराते आनन्द मग्न हो जाते थे। कभी वे कदम्ब वृक्ष की शाखाओं पर बैठ जाते थे और मस्त भाव से बांसुरी की सुरीली तान में तीनों लोकों को आकर्षित किया करते थे। कृष्ण जिस वन में विहार करते थे उसके उर्वर अङ्क में अनेक जड़ी बूटियां उत्पन्न हुआ करती थी। कृष्ण उनकी उपयोगिता पर ध्यान देते थे और उनके सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त किया करते थे। उनकी अन्वेषण प्रिय और तीक्ष्ण बुद्धि का ही परिणाम था कि वनस्थली के उर्वर अङ्क में उत्पन्न होने वाली सभी जड़ी बूटियां उन्हें ज्ञात थी।

कृष्ण के सद्गुणों का वर्णन करते हुए कवि कह रहा है कि यदि कृष्ण कभी किसी धैर्य सम्पन्न व्यक्ति को बन में जड़ी बूटियों की परीक्षा करते देखा करते थे तो वे उसे गुरुवत् समझते थे। इतना ही नहीं एक अच्छे अन्वेषक और ज्ञान पिपासु की भांति उससे सभी जड़ी बूटियों के रहस्य और मर्म को जान लेते थे।

विशेष—कृष्ण के ज्ञान-पिपासु रूप का वर्णन बड़ी व्यावहारिक शब्दावली में किया गया है। कृष्ण का सभी छोटे बड़ों को एक समान देखना और निम्न जाति के लोगों से भी ज्ञान प्राप्ति करने की आदत निम्नलिखित दोहे के भाव को चरितार्थ करती है—

उत्तम विद्या लीजिए जदपि नीच पै होय।
परो अपावन ठौर पै कंचन तजै न कोय॥

नवीन दूर्वा······ ······निरर्थक है ॥३३-३५॥

शब्दार्थ—दूर्वा=घास। खर दृष्टि=तीव्रदृष्टि। अभिवृद्धि=वृद्धि या उन्नति, तृणाति=तृण से भी। निविष्ट=एकाग्र। तृणेक=एक भी तिनका। कणिका=कण। निरर्थ=व्यर्थ या निरर्थक।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध पूर्व संदर्भानुसार कह रहे हैं कि नई ऊगी हुई घास, फल-फूल और जड़ी बूटियों की तो बात ही क्या है वे तो छोटी से छोटी लौकिक वस्तु को भी तीक्ष्ण दृष्टि से देखा करते थे। यह अवलोकन कृष्ण अपनी ज्ञानवृद्धि के लिए ही किया करते थे। कभी कभी तो ऐसा होता था कि कृष्ण तिनके जैसी साधारण और तुच्छ वस्तु को एकाग्र चित्त हो देखा करते थे। उनके इस प्रकार देखने से उनके बन्धु-बान्धव और गोप बाल उदासीन हो जाते थे। ऐसी स्थिति में कृष्ण उन्हें समझाते और कहते थे—

रहस्य से शून्य इस पृथ्वी पर एक भी तिनका और पत्र नहीं है। भाव यह है कि प्रकृति की प्रत्येक कलाकृति किसी न किसी रहस्य और

से युक्त है। निस्संदेह विश्व में एक भी तिनका व्यर्थ नहीं है। अतः अपनी दृष्टि से संकीर्ण विचारधारा को निकाल दो और इस बात को अच्छी तरह समझ लो कि धूल के भी कण व्यर्थ नहीं होते। इनकी भी उपयोगिता होती है और व्यक्ति की दृष्टि भले ही उसे न समझ सके।

विशेष—कृष्ण के ज्ञानी रूप के साथ साथ संसार की रहस्यमयता और प्रकृति के प्रत्येक कण की उपयोगिता का वर्णन किया गया है। कवि ने इतने बड़े तथ्य को सरल और सीधी भाषा में व्यक्त किया है।

वनस्थली ······ ······**उग्ररूप था ३६।। से ३८।।**

शब्दार्थ—स्ववीर्य=अपना साहस। सुयुक्ति=सुन्दर युक्ति कौशल। करालता=भयंकरता। मति-लोप-कारिणी=बुद्धि को विनष्ट करने वाली। फणी=सर्प।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध कृष्ण के अपार साहस और सुन्दर युक्ति कौशल का परिचय दे रहे हैं। वे कहते हैं कि कृष्ण यदि वनस्थली में घूमते हुए कभी भीषण जीव जन्तु और दुष्ट व्यक्ति को देखते थे तो वे तुरन्त ही उसे नष्ट कर डालते थे। इस कार्य में कृष्ण का अपार साहस और अपार बुद्धि कौशल साथ देता था। गोप ने बताया कि इसी स्थान पर एक भयंकर और घातक सर्प रहता था, जिसका स्वरूप बहुत ही भयंकर था। उस काले और भीषण सर्प के शरीर की भयंकरता इतनी अधिक थी कि अच्छे-अच्छे व्यक्तियों की बुद्धि का विनाश हो जाता था। उसे देख कर अथवा उसके घातक प्रहार से कोई भी नहीं बच सकता था। जब कभी भी वह सर्प अपने विशाल आकार को समेट कर तथा अपने फण को उठा कर मार्ग के मध्य भाग में वक्रता से बैठ जाया करता था या अपने विशाल शरीर को प्रकम्पित करता हुआ बड़े वेग के साथ चलता था तो उस समय वनस्थली में अत्यन्त दु:खदायी और भयप्रद वातावरण उत्पन्न हो जाता था। सर्वत्र उसकी भयंकरता और उग्रता ही प्रकाशित होती रहती थी।

समेट के ······ ······**सर्प था।।३९ से ४१।।**

शब्दार्थ—स्वीय=अपने। विलोल=चंचल। निपात=गिर जाना। भूतप्राण=सभी व्यक्तियों के प्राण। प्रलम्ब=लम्बा। आतंक प्रसू=भय उत्पन्न करने वाला। आरक्तिम=लाल-लाल। नेत्रवान=नेत्रों वाला। विषाक्त फूत्कार=विषैली फुफकार। निकेत=घर।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार कवि हरिऔध गोप के माध्यम से विशाल सर्प का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि जब कभी भी वह विशाल सर्प अपने भयंकर शरीर को समेट कर फन उठा कर बैठता था तो वह उस समय नेत्रों को ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई स्तूपवत् घेर सा पड़ा हो। जब कभी भी वह भयंकर सर्प अपने मुख से धीरे धीरे क्रोधित होता हुआ अपनी चंचल जिह्वा निकालता था तब सभी प्राणी भय में डूब जाते थे। इतना ही नहीं सभी प्राणियों की चेतना भयंकरता के अत्यन्त गहरे

गर्त में गिर पड़ती थी। सर्प की भयंकरता और विशालता के कारण कोई भी उसके समीप नहीं जा सकता था। वह सांप अत्यन्त लम्बा, आतंक पैदा करने वाला और उपद्रवी था। उसका शरीर बहुत मोटा और यमदण्ड के समान भयंकर था। उसके स्वरूप की भयंकरता के साथ-साथ नेत्र पूर्णतः रक्तिम वर्ण के थे। वह सर्प विषयुक्त फुफकारों का तो आश्रय ही था। भाव यह है कि वह प्रत्येक समय विषैले स्वांस फेंका करता था।

विशेष :—सर्प की भयकरता का वर्णन चित्रात्मक है। यह चित्रात्मकता स्थूल है। उपमा अलंकार और चित्रोपम शब्द दोनों ने मिलकर अभिव्यक्ति ने जीवित बनाये रखने में सहयोग दिया है।

विलोकते ही ··· ··· ··· ···वहिन थी ।।४२-४४।।

शब्दार्थ :—वरार—सूअर। विलोप—विलुप्त। वर-वारिता—श्रेष्ठ वीरता। केशरी—सिंह। दल-दग्ध कारिणी—वृक्षों के समूह को दग्ध करने वाली। विचूर्ण—चूर्ण-चूर्ण। वहुशः—बहुत सी। उद्‌बंधन—बंधन। ध्वंसिनी—नष्ट करने वाली। महादुरात्मा—महादुष्टात्मा।

ससंदर्भ व्याख्या :—प्रस्तुत पंक्तियों में भी पूर्व संदर्भानुसार कवि हरिऔध वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि भयंकर सर्प को देखते ही वाराह की वीरता भी विलुप्त हो जाती थी। उसके बज्रोपम शरीर और विषाक्त फूत्कारों को देख कर, वांजग केशरी तक अधीर और अशक्त हो जाता था। सर्प की सांसें बड़ी विषैली थीं। वे सभी को असह्य थी। वृक्षों के समूह तक को सर्प की विषाक्त सांसें दग्ध करती रहती थीं। उसकी विषैली श्वासों से ही वृक्ष की हरीतिमा नष्ट होती रहती थी। बहुत सी प्रस्तर शिलायें भी उसके विषैले प्रभाव से चूर्ण-चूर्ण हो जाती थीं। सर्प जब कभी प्रस्तर खण्ड को अपने शरीर से लपेटता था तो शिला खण्ड चूर-चूर हो जाता था। सर्प के शरीर के बंधन बड़े कठोर होते थे। सर्प के ही प्रभाव से बहुत से कीड़े-मकोड़े, पंक्षी और मृग आदि पतंग के समान जलते दिखाई देते थे। साप के क्रोध की अग्नि इतनी दुष्टात्मा थी कि उससे प्राणियों के समूह के समूह नष्ट हो जाते थे।

अगम्य कांतार ··· ··· ··· ··· समोद थी ।।४५-४७।।

शब्दार्थ :—अगम्य—कठिन अर्थात् जहाँ गति न हो। कान्तार—वन। गिरीन्द्र—पर्वताधिपति। वुभुक्षा—भूख। उग्र-वेग—तीव्र गति से। दिवसेक—एक दिवस। इतस्ततः—इधर-उधर। समोद—आमोद सहित।

ससंदर्भ व्याख्या :—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध कह रहे हैं कि वह सर्प प्रायः वीहड़ वन की एक खाई में रहा करता था किन्तु कभी-कभी भूख के कारण वह तेजी के साथ इस दिशा की ओर भी आ जाया करता था। जैसे ही वह आता था वैसे ही सभी जीवों में हाहाकार मच जाया करता था। वह वस्तुतः बहुत भयंकर सर्प था।

से युक्त है। निस्संदेह विश्व में एक भी तिनका व्यर्थ नहीं है। अतः अपनी दृष्टि से संकीर्ण विचारधारा को निकाल दो और इस बात को अच्छी तरह समझ लो कि धूल के भी कण व्यर्थ नहीं होते। इनकी भी उपयोगिता होती है और व्यक्ति की दृष्टि भले ही उसे न समझ सके।

विशेष—कृष्ण के ज्ञानी रूप के साथ साथ संसार की रहस्यमयता और प्रकृति के प्रत्येक कण की उपयोगिता का वर्णन किया गया है। कवि ने इतने बड़े तथ्य को सरल और सीधी भाषा में व्यक्त किया है।

वनस्थली ····· **······उग्ररूप था ३६।। से ३८।।**

शब्दार्थ—स्ववीर्य=अपना साहस। सुयुक्ति=सुन्दर युक्ति कौशल। करालता=भयंकरता। मति-लोप-कारिणी=बुद्धि को विनष्ट करने वाली। फणी=सर्प।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध कृष्ण के अपार साहस और सुन्दर युक्ति कौशल का परिचय दे रहे हैं। वे कहते हैं कि कृष्ण यदि वनस्थली में घूमते हुए कभी भीषण जीव जन्तु और दुष्ट व्यक्ति को देखते थे तो वे तुरन्त ही उसे नष्ट कर डालते थे। इस कार्य में कृष्ण का अपार साहस और अपार बुद्धि कौशल साथ देता था। गोप ने बताया कि इसी स्थान पर एक भयंकर और घातक सर्प रहता था, जिसका स्वरूप बहुत ही भयंकर था। उस काले और भीषण सर्प के शरीर की भयंकरता इतनी अधिक थी कि अच्छे-अच्छे व्यक्तियों की बुद्धि का विनाश हो जाता था। उसे देख कर अथवा उसके घातक प्रहार से कोई भी नहीं बच सकता था। जब कभी भी वह सर्प अपने विशाल आकार को समेट कर तथा अपने फण को उठा कर मार्ग के मध्य भाग में वक्रता से बैठ जाया करता था या अपने विशाल शरीर को प्रकम्पित करता हुआ बड़े वेग के साथ चलता था तो उस समय वनस्थली में अत्यन्त दु:खदायी और भयप्रद वातावरण उत्पन्न हो जाता था। सर्वत्र उसकी भयंकरता और उग्रता ही प्रकाशित होती रहती थी।

समेट के······ **······सर्प था।।३९ से ४१।।**

शब्दार्थ—स्वीय=अपने। विलोल=चंचल। निपात=गिर जाना। भूतप्राण=सभी व्यक्तियों के प्राण। प्रलम्ब=लम्बा। आतंक प्रसू=भय उत्पन्न करने वाला। आरक्तिम=लाल-लाल। नेत्रवान=नेत्रों वाला। विषाक्त फूत्कार=विषैली फुफकार। निकेत=घर।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार कवि हरिऔध गोप से विशाल सर्प का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि जब क[illegible] विशाल सर्प अपने भयंकर शरीर को समेट कर फन उठा कर बैठ[illegible] वह उस समय नेत्रों को ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई स्तूपवत् पड़ा हो। जब कभी भी वह भयंकर सर्प अपने मुख से धीरे धी[illegible] होता हुआ अपनी चंचल जिह्वा निकालता था तब सभी प्राणी [illegible] जाते थे। इतना ही नहीं सभी प्राणियों की चेतना भयंकरता के अत्य[illegible]

से युक्त है। निस्संदेह विश्व में एक भी तिनका व्यर्थ नहीं है।
दृष्टि से संकीर्ण विचारधारा को निकाल दो और इस बात क
समझ लो कि धूल के भी कण व्यर्थ नहीं होते। इनकी भी
होती है और व्यक्ति की दृष्टि भले ही उसे न समझ सके।

विशेष—कृष्ण के ज्ञानी रूप के साथ साथ संसार की
और प्रकृति के प्रत्येक कण की उपयोगिता का वर्णन किया ग
ने इतने बड़े तथ्य को सरल और सीधी भाषा में व्यक्त कि

वनस्थली ····· **······उग्ररूप था। ३**

शब्दार्थ—स्ववीर्य=अपना साहस। सुयुक्ति=सुन्दर यु
करालता=भयंकरता। मति-लोप-कारिणी=बुद्धि को विनष्ट क
फणी=सर्प।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध कृ
साहस और सुन्दर युक्ति कौशल का परिचय दे रहे हैं। वे कहते
यदि वनस्थली में घूमते हुए कभी भीषण जीव जन्तु और दुष्ट व्यि
थे तो वे तुरन्त ही उसे नष्ट कर डालते थे। इस कार्य में कृष्ण
साहस और अपार बुद्धि कौशल साथ देता था। गोप ने बताया कि
पर एक भयंकर और घातक सर्प रहता था, जिसका स्वरूप बहुत
था। उस काले और भीषण सर्प के शरीर की भयंकरता इतनी
कि अच्छे-अच्छे व्यक्तियों की बुद्धि का विनाश हो जाता था। उ
अथवा उसके घातक प्रहार से कोई भी नहीं बच सकता था। ज
वह सर्प अपने विशाल आकार को समेट कर तथा अपने फण क
मार्ग के मध्य भाग में वक्रता से बैठ जाया करता था या अपने वि
को प्रकम्पित करता हुआ बड़े वेग के साथ चलता था तो उस सम
में अत्यन्त दु:खदायी और भयप्रद वातावरण उत्पन्न हो जाता
उसकी भयंकरता और उग्रता ही प्रकाशित होती रहती थी।

समेट के······ **······सर्प था॥**

शब्दार्थ—स्वीय=अपने। विलोल=चंचल। निपात=ि
भूतप्राण=सभी व्यक्तियों के प्राण। प्रलम्ब=लम्बा। आतंक
उत्पन्न करने वाला। आरक्तिम=लाल-लाल। नेत्रवान=ने
विषाक्त फूत्कार=विषैली फुफकार। निकेत=घर।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार कवि हरिऔध गोप
से विशाल सर्प का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि जब
विशाल सर्प अपने भयंकर शरीर को समेट कर फन उठा कर
वह उस समय नेत्रों को ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई स्तू
पड़ा हो। जब कभी भी वह भयंकर सर्प अपने मुख से धीरे
होता हुआ अपनी चंचल जिह्वा निकालता था तब सभी प्राण
जाते थे। इतना ही नहीं सभी प्राणियों को चेतना भयंकरता के

विशेष :—कृष्ण की मादक ध्वनिवर्षिणी वंशी के प्रभाव की चर्चा की गई है। कवि ने बौद्धिकता की रक्षा करते हुए भी अलौकिकता को एकदम नष्ट नहीं किया है।

मुहुँ मुहु ··· ··· ··· ··· व्याल का ॥५४-५६॥

शब्दार्थ :—मुहुँ मुहु—धीरे धीरे। विमूढ़—मूर्ख। सु-कौशलों—सुन्दर कौशलादि से। वधा—मार डाला। नृपाल—नर पालक। अपूर्व—अभूत पूर्व है। विविधा—विविध प्रकार की। अशंक—शंकाहीन।

ससंदर्भ व्याख्या :—पूर्व संदर्भानुसार ही कवि कह रहा है कि धीरे-धीरे अदभुत वेणु-वादन से सर्प वशीभूत हो गया और उसे कृष्ण ने अपने सुन्दर कौशलों के सहारे अस्त्र-शस्त्र से मार डाला। कारण कृष्ण प्रजा का कल्याण चाहते थे-नरों के सच्चे पालक थे।

हे उद्धव! इसमें कोई संदेह नहीं कि कृष्ण की शक्ति विचित्र है और उनका प्रभाव तीव्र है। कृष्ण का प्रभाव तो ऐसा अदभुत है और सशक्त है कि व्यक्ति उसे पाकर सजीव हो जाता है। जो पूर्णतः निर्जीव होता है वह भी अपने लिए तो कुछ न कुछ करता ही है। जो गोप पहले ही बेहोश होकर पृथ्वी पर गिर पड़े थे; उन्होंने जब सांप का मरण और विनाश-पथ देखा तो वे सचेत हो गये। यद्यपि उनमें शक्ति नहीं रही, किन्तु फिर भी सभी ने कृष्ण को सदाशयता से समझाने-बुझाने वाला कार्य किया। सभी ने मदद की।

विशेष :—कृष्ण के कृत्यों का वर्णन किया गया है। वर्णन सुन्दर और स्वाभाविक लगता है।

कई महीने······ दिशा रही॥ ५७ से ५६॥

शब्दार्थ—अघोपनामी—बुरे नाम वाले। अपमृत्यु मूर्तिसा—दर्द नाक मृत्यु की प्रतिमा। दुरन्तता—भयंकरता। निपीडिता—नष्ट या दलित। प्रभूत—पर्याप्त। भूरि—पर्याप्त मात्रा में। अतीव—पर्याप्त।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार ही कवि वर्णन कर रहा है—कई महीने तक उस सर्प का विशाल शरीर वन की सीमा पर पड़ा रहा तथा बाद में अघ नाम वाले उस विशाल सर्प का नाम भी मिट गया। उसकी देह भी समाप्त हो गई और केवल उसका नाम ही शेष रह गया। अघ नामक सर्प के पीछे एक दन्तकथा आती है—यह अत्यन्त भयंकर सर्प था जो कि वृन्दावन में निवास करता था। इसका काम था बहुत से जंगली जन्तुओं का विनाश करना। कृष्ण इसके लिए कालस्वरूप सिद्ध हुए। उन्होंने इसे छोटी सी अवस्था में ही समाप्त कर दिया था। इस प्रकार सभी की व्याधा टल गई थी।

इसी अरण्य में काल की प्रतीमा के समान प्रचण्ड और भीषण एक बड़ा बलवान घोड़ा था। वह भी सभी वन्य पशुओं को सताया करता था।

चुकी थी कि उसे भयंकर से भयंकर कार्य करने में जरा भी दु:ख नहीं होता। वह गाय बछड़ों के समूह को जला देता और कभी कुन्ज में आग लगा दिया करता था। इस प्रकार के कार्य करने में उसे तनिक भी दया नहीं आती थी। उसकी आत्मा पूर्ण निष्करुण हो चुकी थी।

विशेष—इन पंक्तियों में पशुपाल नामक दुष्ट प्राणी के भयंकर कृत्यों को दिग्दर्शित कर व्रज की दशा का चित्रण किया गया है। ऐसे दुष्टों से सम्पूर्ण व्रजभूमि आतंकित हो चुकी थी और समस्त गोप निराश होकर भयभीत हो चुके थे। इस प्रकार का वातावरण समस्त व्रज में बना हुआ था।

अबोध-सीधे··· ···हो सकी ।।७२ से ७४।।

शब्दार्थ—अबोध=अज्ञान। मेरु गुहा=पर्वत की गुफा। विदार=विदीर्ण। कु प्रवृत्ति=बुरी प्रवृत्ति।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में उस दुष्ट के विकराल एवं भयंकर रूप को चित्रित किया गया है—वह वन में सीधे एवं अबोध गोप बालों को अनेक प्रकार के कष्ट दिया करता था। कभी-कभी वह उनको भयंकर पर्वत की गुफा में डाल दिया करता था। कभी वह भयंकर प्रहार से सिर फोड़ डालता था। इससे सभी का कलेजा विकम्पित होने लगता था। कभी वह नेत्रों को विदीर्ण कर उन्हें छोड़ डालता था। यहां तक कि वह राक्षसी प्रवृत्ति की चर्म सीमा पर पहुंच चुका था और दानवता के साथ प्राणियों के प्राणों का हनन कर डालता था।

श्रीकृष्ण ने इसके लिये अनेक प्रयत्न किए। सुधार करने के लिये प्रार्थना भी की लेकिन सभी कुछ असफल रहा। उस दुष्ट की दुष्टात्मा बदल न सकी और कोई भी कु-प्रवृत्ति दूर नहीं हो सकी।

विशुद्ध होती······ ······दृष्टि से ।।७५ से ७७।।

शब्दार्थ—प्रभूत—अत्याधिक। दूषिता—दूषित। निपीड़िता—प्रताड़ित या पीड़ित। उत्पीड़न—दु:ख। खलेन्द्र—दुष्टों का स्वामी। युक्ति—उपाय। उत्तमा—उत्तम या सर्वश्रेष्ठ। भवश्रेय—लोक कल्याण।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार उस दुष्ट को सुधारने के लिए श्याम ने अनेक प्रयत्न किए; लेकिन उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। अंतत: श्रीकृष्ण ने क्रोधित होकर उसको संहार करने तक की धमकी दी।

हरिऔध जी कहते हैं कि पूर्व पापी व्यक्ति की दुरात्मा अच्छे प्रयत्नों से शुद्ध नहीं हो सकती, और न ही उस पर अच्छी शिक्षा, उपदेश का प्रभाव पड़ सकता है क्योंकि उसकी आत्मा इतनी दूषित हो चुकती है कि उस पर इन उपदेशों, शिक्षा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

इस प्रकार अपनी पवित्र जन्मभूमि को कृष्ण उस खल से प्रताड़ित देखकर एक दिन वह खल के समीप गए और क्रोधित होकर बोले—मैंने तुझे

सुधारने की अनेक चेष्टायें की लेकिन सभी व्यर्थ हो गयीं। तूने अपनी कु-प्रवृत्तियों को त्यागने का जरा भी प्रयत्न नहीं किया। अब सर्वश्रेष्ठ युक्ति यही है कि लोक कल्याण की दृष्टि से तेरा संहार कर दूं।

अवश्य हिंसा······ ·········वध्य है ॥७८ से ८०॥

शब्दार्थ—अतिनिंद्य—अत्यधिक निंदनीय। सद्न—घर। पातकी—पापी। पिपीलिका—चींटी। किंच—किंचित मात्र। अश्रेय—हानि। पिशाच-कर्म्मी-नर—बुरे कार्य करने वाला व्यक्ति। उत्पीड़क—कष्टदायी। धर्म्म-विप्लवी—धर्म में उथल पुथल लाने वाला कार्य। पातकी—पतित व्यक्ति। वध्य—वध करने योग्य।

ससंदर्भ व्याख्या—कृष्ण खल से कहने लगे कि हिंसा वास्तविक रूप से अत्यंत निंदाजनक कार्य है, लेकिन इससे आशय यह नहीं है कि घर में ही सांप आदि प्रवेश कर जायें, फिर भी हम अहिंसा का पालन करें और घर में पापी लोगों का वास हो जाय। मानव का सबसे बड़ा एवं पुनीत कर्त्तव्य घर को विघ्नरहित बनाना तथा संसार में पापियों का नाश करना। यदि एक चींटी भी जो समस्त प्राणियों में सूक्ष्मतम है किसी की कुछ हानि न पहुंचाए तो उसको भी मारना श्रेयस्कर नहीं है। और यदि मनुष्य बुरे कर्म करता है तो उसका संहार करना पाप नहीं पुण्य है, अधर्म नहीं धर्म है। भाव यह है कि चाहे कैसा भी प्राणी हो यदि वह दूसरों को सताता है, अत्याचार करता है तो निश्चित रूप से उसको नष्ट करना एक पावन कर्त्तव्य है।

श्रीकृष्ण मानव-कर्त्तव्य की ओर इंगित करते हुए कहते हैं कि समाज को पीड़ित करने वाला, अधर्मी, अपनी जाति के शत्रु भयंकर पापी तथा संसार के जीवों पर अत्याचार करने वाले जीव क्षम्य नहीं होते वरन् उनका तो सहार ही करना पुनीत कर्त्तव्य होता है।

विशेष—इन पंक्तियों में कृष्ण ने मानवीय सत्य को उद्घाटित करते हुए बतलाया है कि वास्तविक रूप से मानव धर्म क्या है। मानव धर्म नितांत अहिसा धर्म हो ऐसा नहीं। इससे तो मानव कायर, भीरु बन जायेगा और वसु-धरा दानवीय भूमि हो जायेगी। अतः पापी, समाज उत्पीड़क, विधर्मी लोगों को अवश्य ही विनष्ट करना चाहिये। इनके नष्ट करने में ही अहिंसा का पूर्ण पालन है।

क्षमा नहीं है······ ······व्रजेन्द्र को ॥८१ से ८३॥

शब्दार्थ—उत्सादक—नाशक। उबारना—उद्धार करना। त्राण—मुक्ति। वांछनीय—अपेक्षित। यष्टि—लाठी।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार कवि वास्तविक सत्य को उद्घाटित करते हुए कहते हैं कि दुष्ट मनुष्य को कभी भी क्षमा नहीं करना चाहिये। समाज का शत्रु तो अवश्य ही दण्डनीय होता है। बुरे कर्म करने वालों को क्षमा करना धर्म परायण व्यक्तियों को कष्ट पहुंचाना है क्योंकि इससे सु-कर्मों का नाश हो जाता है और आततायी मनुष्य पनपने लगते हैं।

समुद=सहर्ष । व्यंजन=पकवान । गोपजो को=गोप कुमार को ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार कृष्ण की क्रीड़ाओं का वर्णन किया जा रहा है । इसके अतिरिक्त कृष्ण की सहृदयता की ओर भी संकेत किया गया है । श्रीकृष्ण सहृदय व्यक्तियों के प्रति अत्यन्त उदार थे । खेल में उन सहृदयों से वे हार भी खा लेते थे । बालकों को उत्साहित करने के लिए जीते हुए खेल को भी वे हार जाते थे । कृष्ण जब कभी बालकों को भूखा देखते तो शीघ्रता से पेड़ पर चढ़ जाते और अपने कर-कमलों द्वारा उन्हें मीठे-मीठे फल अत्यन्त प्रसन्न होकर स्वयं उन्हें खिलाते थे । यशोदा जी उन्हें रसीले फल और अनेक प्रकार के व्यंजन भेजा करती थीं । कृष्ण गोपों को पकवान बड़ी ही मृदु वाणी के साथ खिलाते थे ।

विशेष—इन पंक्तियों में कृष्ण की सहृदयता एवं अपने सखाओं के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण अत्यन्त सुन्दर रूप में अभिव्यक्त हुआ है ।

नव किसलय…… ……होके ।।९९ से १०१।।

शब्दार्थ—किसलय—नवकुंरित पत्तियां । ललित खिलोने—सुन्दर खिलोने । अभिनव कलिका—सुन्दर पुष्प की कली । पंकज—कमल । सखा-वृन्द—सखा साथी । अनुदिन—प्रति दिन । मंजुता—सुन्दरता । समासीन होकर—बैठ कर ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कृष्ण की वन-क्रीड़ा का संकेत करते हुए बतलाया गया है कि किस प्रकार वे गोपों को सदैव मनो मुग्ध रखते थे । नयी-नयी कोपलों (पत्तियों) एव मोटी पत्तियों से अत्यंत सुन्दर खिलौने तैयार करते थे और उन्हें गोपों को बांट कर उन्हे सदैव हर्षित बनाये रखते । इसके अतिरिक्त नयी-नयी कलियों एवं पुष्पों से सुन्दर सुन्दर मालायें तैयार करते थे एवं आभूषण बनाते थे और अपने ही हाथों से अपने सखाओं को मुदित भाव से पहिनाते । इस प्रकार से कृष्ण अपने सखाओं को अत्यंत सुखी बनाने के लिये सदैव कुछ न कुछ उपक्रम किया करते थे । श्याम देवताओं एवं दानवों की विभिन्न कथायें प्रतिदिन बड़े ही माधुर्य पूर्ण ढंग से कहते थे और सुखदायी वृक्ष की छाया में बैठ कर उन्हें अनुपम बातें सुनाया करते थे और सबको हंसा हंसा कर आनंदित किया करते थे ।

ब्रज घन…… ……मनों को ।।१०२ से १०४।।

शब्दार्थ—अभिमुख=मुख के सामने । कोकिलाएं=कोयले । शारिका=मैना । शुकी—तोती । कलादी—मोर । पटुता=कुशलता ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कृष्ण की मधुर ध्वनि की ओर संकेत किया गया है । जब श्याम क्रीड़ा में भाग लेते तो अत्यंत तल्लीन हो जाते थे । जब भी वे कुञ्जों में मधुर स्वर के साथ कूकने लगते तो अनेक वन की कोयलें भी कूकने लगतीं । भाव यह है कि उनका स्वर कोयल से भी मधुर था । यदि कृष्ण चातक और पपीहा मैना अथवा तोती की मधुर बोली बोलते तो उस जाति के अनेकों पक्षी कलरव करने लगते और पेड़ की शाखा

पर बैठ कर मस्त होकर बोलने लगते। यदि श्याम हंस की प्रिय गति का अनुकरण करते थे तो चित्त को उनकी अनुपमता से अत्यंत प्रसन्नता होती और यदि वे मोर के समान नृत्य करते थे तो उनके अनुपम सौन्दर्य में हृदय लीन होकर मुग्ध हो जाता था।

यदि वह...... ......आलोक शाली ।।१०५ से १०७।।

शब्दार्थ—ऐण—कस्तूरी मृग। मातंक हाथी। संभार—सामग्री। अवगत—ज्ञात होना। कनक—स्वर्ण। दिव्य—अनुपम। सर्वदा—सदैव। आलोक शाली—दिव्य प्रकाशमयी।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में श्याम की दर्प युक्त आवाज, वेश-भूषा को चित्रित किया गया है। यदि श्याम कस्तूरी मृग की भांति कुलाचें भरते थे तो हरिण वर्ग उनकी समता नहीं कर पाता था। यदि वे वन में शेर की भांति गर्जना करते तो वन का मस्त जीव हाथी भी विकम्पित होने लगता। कृष्ण जब नवीन पत्तियों, पुष्पों, फलों आदि सामग्री से अपनी राजसी वेष को सज्जित करके राजा के समान बैठ जाते थे तो उनकी शोभा, दीप्ति देखते ही बनती थी। इस राजसी ठाट से मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे बंधु कृष्ण मथुरा में मुकट धारण करके सोने के आभूषण पहिनते हैं जिनमें आलोक मयी रत्न जडित हैं।

विशेष—उपर्युक्त पंक्तियों में कृष्ण के स्वाभाविक सौन्दर्य की ओर सहज प्रकाश डाला गया है। प्राकृतिक फल-फूल, पत्तों से सज्जित वेष भूषा ही उनको राजशाही जैसी प्रतीत होती।

शिर पर उनके है...... ......प्रासाद से भी ।।१०८ से ११०।।

शब्दार्थ—पाट—सिंहासन। परिकर—फैंटा। शतशः—सहस्र। विभवों—वैभव। अनुरागी—प्रेमी। स्वर्ण पर्यंक—सोने का पलंग। चंद्रातप-चंदोवा। मय—एक असुर का नाम।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कृष्ण के सहज स्वभाव का वर्णन किया गया है। यद्यपि उन्हें महत्, राजसी वेषभूषा प्राप्य थी लेकिन उनका वास्तविक प्रेम तो कुन्जों, कालिन्दी तट ही से था।

कृष्ण के ललाट पर छत्र शोभित होता था। सेवक गण उन पर चंवर डुलाते थे। उनके कई सिंहासन हैं जो रत्नों और हीरों से शोभित होते हैं। सुन्दर वस्त्र और केश वाले सैकड़ों उनके अनुचर हैं। अनेक गगनचुम्बी महल उनके निवास के लिये हैं। इन सब वैभव सम्पन्न साज-सज्जाओं की जहां (ब्रज में) कोई कमी नहीं थी। लेकिन श्याम का वास्तविक प्रेम तो पुष्प के कुन्जों से ही था। सोने के पलंग से अधिक प्रिय उनको हरी-हरी घास की कोमल, रम्य भूमि थी। अपूर्व शोभित शामयानों की अपेक्षा उन्हें ब्रज का खुला नीला गगन अधिक प्रिय था। अनुपम, दिव्य महलों से अधिक उन्हें सुन्दर कुन्जें प्रिय थीं।

समधिक मणि-मोती...... ......बाधा ।।१११ से ११३।।

शब्दार्थ--मोहनी—मोहित करने वाली । सुललित—अत्यंत सुन्दर । शोभा निधाना—शोभा के निधि अर्थात कृष्ण । गेह—घर । सर्ग संयूत— संसार से उत्पन्न ।

व्याख्या—इन पंक्तियों में हरिऔधजी ने कृष्ण के प्रकृति प्रेम का वर्णन किया है । कृष्ण सदैव प्रकृति की शीतल गोद में रहना चाहते थे । प्रकृति के समस्त उपकरण उनको अन्य वैभवों के समक्ष अत्यंत सुखकारी लगते थे । कृष्ण मणि, मोती आदि से अधिक नवविकसित पुष्पों को अधिक चाहते थे । स्वर्णभूषणों से अधिक सुखकारी वे पुष्पों के आभूषणों को मानते थे । अब न जाने इस प्रकृति-प्रेमी कृष्ण को इन कुञ्जों के पुष्पों की याद क्यों नहीं आती । न जाने वे क्यों इन सबको भूल गये हैं । नित्य नवीन पल्लवित कुञ्जें वह अभिनव भूमि उन्हें पता नहीं अब क्यों नहीं याद आती ।

कृष्ण प्रायः अपने सखाओं से उनके गृह की कष्ट गाथाओं को सुनकर अत्यंत दुःखित होते और वन को त्याग कर उन घरों में जाते और उनके कष्टों को निवारित करते । इस प्रकार सांसरिक कष्टों को दूर करने में भी तल्लीन रहा करते थे ।

विशेष—आचार्य धनंजय ने जिन गुणों को एक नेता के लिये अनिवार्य बतलाया है वे सभी गुण कृष्ण में हैं । वे सरल मृदु भाषी, विनीत, एवं परहित चिंतक हैं । सखाओं के श्याम उन्हें केवल मुग्ध कर हृदय को हर्षित ही नहीं करते बल्कि उनके कष्टों के साथ भी जूझते हैं और उनके दुःखों को दूर कर परम आनंदित करते हैं ।

यदि अनशन...... ......पिपासा ।।११४ से ११६।।

शब्दार्थ—अनशन = प्रातव्य के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा होना । रूज ग्रसित-- बीमार होना । कलह वितण्डावाद—लड़ाई झगडे । प्रथित—प्रसिद्ध । उत्सुका—उत्सुक । प्रलोभी –लालची या इच्छुक । सरसिज—कमल ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कृष्ण के परहित चिंतक रूप को प्रतिष्ठित किया गया है । यदि किसी घर के लोग भूखे होते तो उन्हें श्याम अन्न तथा अन्य द्रव्य प्रदान करते थे । बीमार व्यक्ति को औषधि देते थे । यदि घर में पारिवारिक कलह हो जाती तो उसे अपने मृदु वचनों से शांत कर देते ।

विरहाकुल गोप नयनों से अश्रुओं की धारा प्रवाहित करके आज भी परम प्रिय कृष्ण के आने का पथ देखते हैं । उनकी आंखें कृष्ण के पथ की ओर लगी हुई हैं । परन्तु उस कृष्ण ने हाय ! हमारी जरा भी सुधि नहीं ली है । उस दयानिधान कृष्ण की दया आज न जाने कहां चली गई है । कैसी विडम्बना है !

व्रज भूमि अत्यंत उत्सुक होकर उनकी (कृष्ण की) चरण रज को चाहती हैं । वृक्षों का समूह कृष्ण के कर कमलों का स्पर्श चाहता है । इसे

देखने की प्यास ब्रजवासियों की बहुत ही तीव्र हो गई है और हम कृष्ण मुख के दर्शनों के लिये अत्यंत उत्कंठित हैं।

विशेष—कृष्ण जिस प्रकृति को निरन्तर देखते रहना चाहते थे, अब वही प्रकृति उन्हें स्मरण कर रही है। कृष्ण मथुरा जाकर उन सबको भूल गये हैं। कृष्ण दर्शनों के लिए प्रकृति की आकुलता विरह की अभिव्यक्ति को सजीव बना देती है।

प्रतपित…… ……निज गेह को ॥ ११७ से ११९॥

शब्दार्थ—प्रतपित = तप्त। रश्मियों = किरणों। प्रतिपल = प्रतिक्षण। समुत्कण्ठ = ऊंचा कण्ठ करके। नव जलद शरीर = नवीन मेघ जैसी शोभा वाला। लोहित = लाल। गेह = घर। सकल = समस्त।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पक्तियों में कृष्ण की विरहाकुलता मेघों तक पहुंच कर उनसे वर्षा की कामना करने लगी है। समस्त ब्रजवासी कृष्ण दर्शनों के अत्यंत व्याकुल है। इसी विरह की आकुलता का उदाहरण के द्वारा पुष्ट कर प्रेषित किया गया है। कवि कहता है कि जिस प्रकार मोर सूर्य की किरणों से तप्त होकर मेघ की प्रतिक्षण बाट जोहता है उसी प्रकार गोकुलवासी भी विरहाग्नि से तप्त होकर कृष्ण मुख दर्शनों के लिये व्याकुल है और निरन्तर उनके दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। नवीन जलधारा का जल जिस प्रकार वृक्षों को जीवन प्रदान करता है और वही उनका जीवनाधार होता है, उसी प्रकार कृष्ण का यहां आना भी उतना ही मंगलकारी होगा एवं वृक्षों को पानी के सदृश्य नव जीवन प्रदान करेगा। उनके आगमन से सम्पूर्ण ब्रजवासी मुग्ध हो जायेंगे और उनमें जीवन का संचार प्रारम्भ हो जायेगा। इस विरह कथा को सुनते-सुनाते संध्या हो गई और आकाश लाल हो चला। अतः सभी ग्वालबाल बुद्धिमान उद्धव को साथ लेकर अपने-अपने घरों को चल दिये।

विशेष— सायं तक गोकलवासियों ने जो अपनी विरह कथा उद्धव को कही है वह अत्यंत ही सजिव एवं मार्मिक बन पड़ी है। मार्मिक इसलिए है कि ब्रजवासियों में भावों की वह व्यथा है जिसे सुनकर उद्धव जैसे तार्किक तो क्या बड़े बड़े मनीषी द्रवित होकर कृष्ण के विरह में आंसू बहाने लगते हैं।

चतुर्दश सर्ग

कथासार

प्रियप्रवास का चौदहवां सर्ग अन्य सर्गों की भांति कृष्ण द्वारा किये गये विविध कार्यों के आधार पर उनकी गुणावली प्रस्तुत करता है। यमुना के किनारे स्थित सुन्दर कुञ्ज के वर्णन से चतुर्दश सर्ग की कथा प्रारंभ होती है। सर्ग की कथा इस प्रकार है—

यमुना के किनारे एक अत्यन्त रमणीय कुञ्ज थी। उद्धव उसी में बैठे थे। उनका चित्त प्रसन्न था। यमुना जल की धारा मन्द-मन्द गति से प्रवाहित हो रही थी। सूर्य की रश्मियां चतुर्दिक फैल रही थी। ऐसे सुन्दर वातावरण में उद्धव दृष्टि इधर-उधर फैल रही थी। लगता था कि जैसे सौन्दर्य और आकर्षण दोनों ही धरती पर आ उतरे हों। ऐसे वातावरण में उद्धव ने देखा कि बालाओं का समूह आ रहा है। सभी बालायें बहुत ही सुन्दर थी।

यमुना का जल बड़ी मनहरण गति से प्रवाहित हो रहा था। उसके प्रवाह को लक्ष्य करके एक बाला ने कहा कि मेरा मन बहुत दुखी है और इस दुख का कारण यह यमुना का किनारा है। इसे देखते ही मुझे कृष्ण का स्मरण हो आता है। इसके नीले जल को देखकर कृष्ण के नीले शरीर की याद हो आती है। 'लीलामग्ना जलद—तन की मूर्ति है याद आती' बालिका की इन बातों को सुनकर एक अन्य बालिका को रोना आ गया। वह इतनी रोई कि रोते—रोते उसकी आंखें लाल हो गयीं। वह अपने आंसुओं को रोकने का निरन्तर प्रयास कर रही थी किन्तु विरह का कष्ट इतना तीव्र था कि उसके आंसू रोके नहीं रुकते थे। इसके विपरीत उसके आंसू और तेजी से बहने लगते थे। सखियां भी परेशानी का अनुभव करने लगी।

इसी समय एक सखी बोली—हे बहिन यदि ऐसे रोवेगी तो बात कैसे बनेगी। इस प्रकार निरन्तर रोते रहने से तेरी आंखों की ज्योति नष्ट हो जावेगी। ज्योति के नष्ट हो जाने पर कृष्ण के दर्शन कभी संभव भी हो तब भी नहीं हो सकेंगे। रोने से तेरे प्राणों की रक्षा भी संभव नहीं जान पड़ती है। तेरा कृष्ण का देख लेना ही श्रेयस्कर है। उनके देखे बिना स्वप्न में भी तुझे आराम नहीं मिलेगा। इस सखी को रोता हुआ देखकर एक अन्य बाला ने कहा कि हे सखी इसके रोने में ही भलाई है। यह रोवेगी तभी इसके मन को आराम मिलेगा। स्पष्ट ही रोने से मन को शांति प्राप्त होती है। आंखों से आंसू बरसने का अर्थ ही यह है कि हृदय का दुख—भार हल्का हो जाये। भाव यही है कि रोने से दुख दर्द दूर भले ही न हो—दुखी

व्यक्ति को एक आवश्यक तोष मिलता रहता है। कवि के ही शब्दों को देखिये—

जो बालायें विरह–दुख में दग्धिता हो रही हैं।
आंखों का ही उदक उनकी शांति की औषधि है।।

वस्तुत: कृष्ण की बातें सुनने वाले सभी दुखी हैं। जिस किसी ने भी एक बार कृष्ण को देख लिया और समझ लिया है वह उन्हें कभी नहीं भुला सकता है। रही इस सखी की बात यह तो उनके ही सहारे है। इसके जीवन का आधार तो कृष्ण ही है। इस तरह इसका दुखी होना स्वाभाविक है। यों अन्य गोपियां भी बहुत दुखी हैं, किंतु इसकी स्थिति विषम है। इस प्रकार की वार्ता से सभी गोपियां रो पड़ी। उनका रुदन सुनकर उद्धव भी उनके पास आ गये। उद्धव के आगमन से थोड़ी देर के लिए सभी का दुख दूर हो गया। उन्होंने बड़े आदर के साथ उद्धव को अपने पास बिठाया। तदुपरांत वे कृष्ण विषयक वार्ता करने लगी।

उद्धव ने कहा कि समय की गति बड़ी विचित्र है। कहा नहीं जा सकता कि कब क्या हो जाय। ऐसी परिस्थिति में यह नहीं कहा जा सकता है कि कृष्ण कब आकर तुम्हें दर्शन देंगे। हां, यह बात सत्य है कि आज भी कृष्ण वृन्दावन की कुञ्ज गलियों और तुम सभी को प्रेम के कारण याद करते हैं। वे न तो तुम्हें भूले हैं और न अपने माता पिता को ही। वही पहली सी आदत है किन्तु परिस्थितियों का दबाव है कि वे आप सभी से नहीं मिल पा रहे हैं। कवि ने लिखा है—

प्यारा वृन्दा–विपिन उनको आज भी पूर्व सा है।
वे भूले हैं न प्रिय जननी औ न प्यारे-पिता को।
वैसी ही हैं सुरति करते श्याम गोपांगना की।
वैसी ही है प्रणय–प्रतिमा–बालिका याद आती।।
प्यारी बातें कथन करके बालिका बालकों की।
माता की औ प्रिय–जनक की गोप गोपांगना की।
मैंने देखा अधिकतर है श्याम को मुग्ध होते।
उच्छ्वासों से व्यथित उर के नेत्र में वारि लाते।।

कृष्ण को व्रज से अपार स्नेह है किन्तु तुम उनकी परिस्थिति को समझती नहीं हो। वे हृदय से सभी को चाहते हैं और वे अपने प्राणों से भी अधिक विश्व–प्रेम को महत्व देते हैं। लोक कल्याण बहुत बड़ी वस्तु है। उसके समक्ष मनुष्य के व्यक्तिगत स्वार्थ छिप जाते हैं। कृष्ण एक ऐसे ही व्यक्ति हैं जो लोक हित की कामना से अपनी सभी इच्छाओं को दबा लेते हैं। कर्त्तव्य को ही वे श्रेष्ठ कर्म समझते हैं। अगर कोई दुखी होता है तो वे तुरन्त उसके दुख को दूर करने का प्रयत्न करते हैं। अपराध के लिए तो वे अपने मित्र को भी दण्ड देने से नहीं चूकते हैं। कुछ राजनीतिक परिस्थितियां भी ऐसी हैं जो कृष्ण को उलझाये हुए हैं—कृष्ण चाहते हुए भी उनसे बच नहीं पाते हैं। ऐसी स्थिति में मैं यह नहीं कहता कि कृष्ण यहां नहीं आयेंगे किन्तु यह भी नहीं कहता कि कब आयेंगे। भाग्य का खेल बड़ा प्रबल होता है। न मालूम भाग्य की कौन सी शक्ति उन्हें यहां ले आवे। व्रजवासियों को

अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। कृष्ण की प्रसन्नता के निमित्त यही उचित है। गोपियों ने कुछ देर तो कृष्ण के मित्र उद्धव की बातों को सुना फिर बोली— हम मूर्ख हैं। आपकी बातों को भला क्या समझें? जिस मार्ग पर ज्ञानी भी विचलित हो जाते हैं, उस पर हम अबोध बालिकायें कैसे कदम बढ़ा सकती हैं। हम कृष्ण के लिए सभी कुछ छोड़ सकती हैं, किंतु कृष्ण को छोड़ना कठिन है। कृष्ण हमारे रोम रोम में रम गये हैं। इस जीवन में उन्हें भुला पाना संभव नहीं है। हममें से बहुत सा बालिकाओं ने तो उन्हें वरण करने के निमित्त चित्त में बसा रखा है। और जो चित्त में बस जाता है उसे आसानी से नहीं निकाला जा सकता है। कवि ने लिखा है–

भूला जाता वह स्वजन चित्त में जो बसा हो।
देखी जा के सु-छवि जिसकी लोचनों में रमी हो।
कैसे भूलें कुंवर जिनमें चित्त ही जा बसा है।
प्यारी शोभा निरख जिसकी आप आंखें रमी हैं।

गोपियों ने कहा कि आप यह कहेंगे कि क्या इतनी सारी गोपियों से कृष्ण विवाह कर लेते? इसका उत्तर देना व्यर्थ है। कारण प्रेम अंधा होता है वहां तर्क नहीं चलता है। अतः प्रेमाविष्ट होकर प्रेमी यह कभी नहीं सोचता है कि परिणाम क्या होगा? यदि सौन्दर्य है तो उस पर सभी आसक्त होते ही हैं। भोले व्रजवासी लोग क्या समझें? हमें तो ऐसा उपाय बता दो जिससे कृष्ण यहां पर आ जायें और हम उनके दर्शन करके कृतार्थ हो जायें।

उसी क्षण एक अन्य शोकाकुल बाला ने कहा–'अब मैं जिस चित्र का वर्णन कर रही हूं वह बड़ा अद्भुत है। सम्पूर्ण धरती पर शरद की कमनीयता बिखरी हुई थी। चन्द्रिका की स्वच्छ आभा भी सर्वत्र दिखाई दे रही थी। सम्पूर्ण दिशाओं में सतोगुण का प्रसार हो रहा था। तालाबों में कमल खिले हुए थे। वृक्ष चांदनी में नहाये हुए थे। वन की धरती सुगंधि और सौन्दर्य से भरी हुई थी। ऐसे मधुर समय में यकायक कृष्ण की वंशी बज उठी। बांसुरी को सुनकर सभी व्रजवासी वन विहार की इच्छा से घरों से निकल पड़े। जनता बड़े उत्साह के साथ एकत्र होती गई। दलों में बंटकर सभी ने सुन्दर क्रीड़ा प्रारम्भ कर दी। मनोहर कंठ से सुन्दर वाद्यों के साथ सभी मस्त होकर नाचने गाने लगे। कवि ने इसका वर्णन यों किया है–

मंजीर नूपुर मनोहर किंकिणी की।
फैली मनोज ध्वनि मंजुल वाद्य की सी।
छेड़ी गई फिर स–मोद गई बजाई।
अत्यन्त कांत कर से कमनीय वीणा॥

× × ×

मीठे मनोरम स्वरांकित वेणु नाना।
होके निनादित विनोदित थे बनाते।
थी सर्व में अधिक मंजुल मुग्धकारी।
वंशी महा मधुर केशव कौशली की॥
हो हो सुवादित मुकुन्द सदंगुली से।
कान्तार में मुरलिका जब गूंजती थी।

तो पत्र-पत्र पर था कल नृत्य होता ।
रागांगना-विधु–मुखी चपलांगिनी का ।।

कृष्ण की मधुर ध्वनि से सभी विमुग्ध हो गये । तदनंतर कृष्ण ने सभी से कहा वन की शोभा देखकर सभी वन में अपना आना सार्थक करो । कृष्ण के कथनानुसार सभी वन-श्री को देखने में मस्त हो गये । गोपियां अनेक स्थानों पर बैठ गयी । कृष्ण सब लोगों के बीच आकर मधुर बातें सुनाने लगे । कभी पर्वत की शोभा के दर्शन कराते थे और कभी यमुना के और कभी लता पुष्पों के । गोपियों ने कहा कि उस रात का दृष्य क्या भुलाया जा सकता है ? उस रात जो मधुर वंशी रव हुआ वह भी अभूतपूर्व था—अश्रुत-पूर्व था । आज भी हम उसकी याद में व्यथित रहती हैं । कृष्ण हमारे सच्चे हितकार हैं; उनके बिना हमारी कल्याण कामना करने वाला कोई नहीं है । अतः हे उद्धव ! तुम हमारी इतनी विनय सुन लो कि कैसे ही कृष्ण वापस आ जावें । इस प्रकार बातों ही बातों में सारा दिन बीत गया किन्तु गोपियां ऊबी नहीं । संध्या हो गई, सभी अपने अपने घरों की ओर चली गयीं । उद्धव ने सभी को समझा बुझा कर घरों को भेज दिया ।

सर्ग समीक्षा

१. इस सर्ग में गोपियों की विरह–वेदना का चित्रण किया गया है । इस चित्रण में योग की प्रधानता है, किन्तु अस्वाभाविकता का नामोनिशान नहीं है ।

२. गोपियों के प्रेम की एकनिष्ठता व्यंजित है । शरदकालीन रात्रि का वर्णन कवि की सूक्ष्म भावनाओं का चित्रात्मक विधान है ।

३. प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा बड़ी मनोरम है । कवि ने अपनी भावुक कल्पना के सहारे बहुत ही हृदयहारी वर्णन किया है ।

४. इस सर्गान्तिर्गत कृष्ण की कथा के दो महत्वपूर्ण प्रसंगों का चित्रण है । (१) उद्धव द्वारा दिये गये योग के उपदेश में भ्रमरगीत की परंपरा का निर्वाह किया गया है (२) शरदकालीन वन–विहार एक प्रकार से कृष्ण की रास–लीला का ही परिवर्तित रूप है । भ्रमरगीत प्रसंग भले ही न हुआ हो, किन्तु उसी पद्धति को अपनाया गया है । हरि औध ने भ्रमरप्रसंग इसलिए नहीं रखा है कि वे सुधारवादी थे–नैतिकतावादी थे । यही कारण कृष्ण लोकोपकारी हैं ।

५. कृष्ण की रासलीला का वर्णन शरदऋतु-वर्णन में ही प्रकारांतर से किया गया है । इस वर्णन में भी कहीं कोई मर्यादा विरोधी और अमर्यादित बात नहीं है । प्रकृति चित्रण चित्रात्मक कम स्थूल और इतिवृत्तात्मक अधिक है । यत्र–तत्र प्रकृति चित्रण के सहारे उपदेश देने की प्रवृत्ति को भी काम में लिया गया है ।

व्याख्यायें

कलान्दी के······ ······पल्लवों से ।। १ से २।। ।

शब्दार्थ—कालिन्दी–-यमुना । पुलिन–-किनारा । कुंजातिरम्या—

अत्यन्त रम्य । द्रुम—पेड़ । विटप—वृक्ष । शोभिता—शोभित । ललित सुन्दर । पुष्पभारा वनम्रा—पुष्पों के भार से झुकी हुई । मुदित—प्रसन्न एकदा—एक बार । लीलाकारी—क्रीड़ाशील । सोहता—शोभित होता थ पल्लवों—पत्तों ।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध प्रकृति की सु शोभा का वर्णन करते हुए कह रहे हैं—

कालिन्दी के किनारे पर एक अत्यन्त रमणीक कुञ्ज था । उस कु में मुग्ध करने वाले अनेक छोटे-छोटे वृक्ष भी थे । प्रत्येक वृक्ष की गोद क्रीड़ाशील, सुन्दर तथा फूलों के भार से लदी हुई लतायें शोभा दे रही थ एक दिन उद्धव प्रसन्नचित्त वहीं बैठे थे । सामने क्रीड़ाशील नदी का दिखाई दे रहा था । सूर्य की किरणें धीरे-धीरे दिशाओं में फैल रही थ वायु उमंगित होकर पल्लवों से क्रीड़ा कर रही थी । भाव यह है कि प क्रीड़ा कर रहा था ।

बालाओं का…… ……आती ।। ३–४

शब्दार्थ—इसी काल—इसी समय । ध्वनित—गुञ्जित । मजीरकों- पायल । छविमयी—शोभाशाली । कतिपय—कुछ । उदक—जल । विर वदना—नीरस वदन से । उन्मना—उदास । लीलामग्ना—लीला में मग्न जलद-तन—बादलों का श्याम तन या शरीर ।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रकृति के रम्य वातावरण के वर्णन के अनंतर हरिऔध कह रहे हैं कि बालिकाओं का एक समूह प्रकृति के सुरम्य वातावरण में आता दिखाई दिया । यह बालिका-दल अपने हृदय में अनेक आशाओं को संजोये हुए था । अपनी आशाओं को यह अपने सुन्दर पायलों के माध्यम से व्यक्त कर रहा था। हरिऔध कह रहे हैं कि इस सुन्दर मण्डली में अनेक सुन्दरी बालायें जो भोलीभाली थीं आती दिखाई दीं । इन बालिकाओं में से एक ने जैसे ही यमुना का नीला जल देखा वैसे ही उसे कृष्ण के सांवले शरीर की याद आ गई । याद में खोयी सी बालिका बड़े उदास भाव से कहने लगी— हे सखी यमुना का किनारा मुझे अत्यधिक उदासी प्रदान करता है । इसे देखते ही मुझे लीला-बिहारी कृष्ण की सांवली मूर्ति की याद होने लगती है । श्याम का शरीर यमुना के नीले और श्याम जल के समान था । इसी कारण उस जल को देखते ही गोपी को कृष्ण की स्मृति हो आती है ।

श्यामा बातें…… ……सिधाके ।। ५ से ७ ।।

शब्दार्थ—श्रवण करके = सुन करके । अरुण = लाल । वारि धारा = जल की धारा । लोचनों = नेत्रों । मर्मज्ञ = मर्म को जानने वाली । ज्योतिशाली = प्रकाशप्रद । श्यामली = श्याम वर्ण की । बहु-व्यथित = बहुत ही दुखी । कृशित = कमजोर । मुदित = प्रसन्न । सुखित = सुखी । सिधाके = जा कर ।

ससंदर्भ व्याख्या—कवि हरिऔध इन पंक्तियों में कह रहे हैं कि दुखी गोपी का दुखी हृदय देख कर एक अन्य बालिका को भी कष्ट हुआ । वह अपार कष्ट

के साथ रोने लगी। उसका रुदन पर्याप्त हृदक-विदारक था। उसके दोनों नेत्र रोते रहने के कारण लाल हो गये। वह प्रयत्न करके अपने रुदन को रोकना चाहती थी। उसे कृष्ण की याद में सभी के सामने रोने में लज्जानुभव हो रहा था। अतः वह अपने नेत्रों से बहने वाली वारिधारा को रोकना चाहती थी। ज्यों-ज्यों वह रोकने का प्रयत्न करती त्यों-त्यों उसके नेत्रों में आंसू अधिक आ जाते थे।

उस सखी को इस प्रकार रोते हुए देख कर एक मर्मज्ञ सखी कहने लगी--हे भगिनी तू यदि इस प्रकार रोती रहेगी तो कैसे काम चलेगा ? इस प्रकार रोने से तो तेरे नेत्रों की ज्योति मंद पड़ जायगी और फिर कृष्ण के दर्शन कर पाना तेरे लिए कैसे संभव होगा। भाव है रोने से नेत्रों की ज्योति कम हो जायगी और ज्योति कम होने से कृष्ण के दर्शनों में कठिनाई होगी। अतः हे बहिन तू रोना छोड़ दे। इनता ही नहीं यदि तू ऐसे ही रोती रही तो तेरा दुख बढ़ता जायगा और विरह-विदग्ध इस शरीर में प्राणों का रहना भी कठिन है। भाव यह है कि तेरे सूखे से प्राण भी नष्ट हो जायेंगे। कहना यह है कि इस प्रकार कृष्ण का दर्शन किये बिना तेरा मरना भी ठीक नहीं है। कारण अतृप्ति को भोगती हुई यदि तू स्वर्ग भी चली गई तो भी तुझे शांति नहीं मिल सकेगी। सखी कहना चाहती है कि तू रोना-धोना बन्द कर दे और कृष्ण को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न कर।

मर्मज्ञा का कथन······ ······चे हैं॥ ८ से १०॥

शब्दार्थ—मर्मज्ञा--बुद्धिमती। कामिनी—स्त्री। खेदिता--दुखी या व्यथातुर। विरह-दव--विरहाग्नि। दग्धिता--जल रही हैं। उदक--जल। बहुविध दुखों--बहुत से दुखों। वर्द्धिता--बढ़ती हुई। समाच्छन्न--आच्छादित होना। निर्छूता--दूर हो जाती। म्लानता--उदासी। पर्जन्यों सा--बादलों के समान। जीवनाधार—जीवन के एकमात्र सहारे।

ससंदर्भ व्याख्या--बालिका को रोती हुई देख कर एक सखी ने तो उसे रोने से मना किया और दूसरी ने अपने ढंग से तर्क दिया और कहा--

बुद्धिमती कामिनी का रुदन विषयक कथन सुन कर एक स्त्री ने कहा कि हे सखी तू मेरी इस सखी को रोने दे। यह खिन्न बालिका है। जो बालायें विरहाग्नि में झुलस रही हैं, उनके जीवन का रोने के अतिरिक्त उपचार ही क्या है। उनकी विरहाग्नि को बुझाने के लिए तो नेत्रों से निकलकर बहने वाली अश्रुधारा ही सर्वोत्तम औषधि है। आंसू बहने से हृदय का दुःख भार कम हो जाता है।

विविध प्रकार के दुखों और बढ़ी हुई विकलताओं के कारण उच्छ्वास रूपी वाष्प उठा करती है। यह भाप बालकों के हृदयाकाश पर घिर कर उसे ढक लेती है। जब तक यह उच्छ्वास रूपी वाष्प की घटा मेघों के समान आंसू बन कर आंखों से न बरसे तब तक उसकी वेदना दूर नहीं होती है। आकाश में आच्छादित मेघ-घटा भी बरसने के अनंतर ही श्वेतिमा और हल्कापन धारण करती है। स्वभावतः रोने से हृदय शांत हो जाता है।

कवि हरिऔध कह रहे हैं कि जिस किसी ने भी कृष्ण की प्रिय श्रुतिसुखद बातें सुनी हैं और जिस किसी ने भी उनका अनुपम बदन देखा है वे कृष्ण के अभाव में दुःख का अनुभव करें तो स्वाभाविक ही है। कृष्ण की याद आते ही ऐसे व्यक्ति दुखी हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में जो कृष्ण को ही अपना जीवनाधार माने बैठी है वह रोये न तो क्या करे? भाव यह है कि कृष्ण को जीवनाधार मानने वाली इस गोपी को कृष्ण का अभाव खटकता है। दुख-भार हल्का करने का अन्य कोई साधन इस कामिनी के पास नहीं है। अतः तू इसे रोने दे।

विशेष—सांगरूपक अलंकार का प्रयोग बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। कवि ने सामान्य से तथ्य को आलंकारिक भाषा शैली प्रदान करके बहुमूल्य बना दिया है। कृष्ण के विरह की कथा को व्यावहारिक स्तर प्रदान किया है।

प्यारे भ्राता ... ... जनों का ॥११-१३॥

शब्दार्थ :-स्वजन = आत्मीय जन। कम्पित = प्रकम्पित होकर। उन्मादकारी = उन्मत्त करने वाला। उन्मुक्त धारा = स्वच्छन्द धारा। प्रमित = थोड़ी। तेजस्विता = वेग। विभ्रान्तकारी = पागल बनाने वाला। प्रशभित = शांत।

ससंदर्भ व्याख्या :-कृष्ण सभी के प्रिय थे। उनके गुण, व्यवहार ने सभी को प्रभावित कर रखा था। इसी संदर्भ में कवि हरिऔध कहते हैं - जो स्त्रियाँ कृष्ण को प्रिय भाई-पुत्र और स्वजन की भांति चाहती हैं वे भी आज कृष्ण के विरह में परम व्यथित हैं और विरह आग में जलते रहने के कारण उदास हो रही हैं। जो बालायें कृष्ण को अपना हृदय सर्मपित कर चुकी हैं वे हृदय से और शरीर से श्याम की ही हैं। अतः उनका कृष्ण विरह में कष्ट पाते रहना स्वाभाविक है। यदि वे विरह विदग्ध होकर रोती कलपती प्राण दे दें तो क्या आश्चर्य है?

हरिऔध कहते हैं कि जैसे ही गोपिका ने ये सभी बातें कह कर सभी को सुनाई वैसे ही सभी गोप-बालायें-करुण स्वर में कम्पित हो उठीं और आखों से रुदन के परिणामस्वरूप अश्रु-धारा प्रवाहित होने लगी। उद्धव ने ज्यों ही गोपियों को रोते और व्यथातुर होते देखा तो वे तुरन्त ही उनके निकट गये। कुञ्ज को त्याग कर उनके मन की बात जानने को उत्सुक हुए। जिस प्रकार समतल पृथ्वी को पाकर जल की स्वच्छन्द धारा अपने वेग को त्याग कर थोड़ी शान्त हो जाती है, उसी प्रकार उद्धवजी को निकट आया जान कर गोपियों का दुखावेग शांत हो गया जो उन्हें प्रसन्न बनाने वाला था।

विशेष :-वर्णन सहज और स्वाभाविक है। उदाहरण अलंकार का प्रयोग बहुत ही औचित्यपूर्ण है।

प्यारी बातें ... ... याद आती ॥१४-१६॥

शब्दार्थ :-सविधि = विधिपूर्वक। सम्मान सिक्ता = आदर से युक्त।

अज्ञात बेंडी = अपरिचित और टेढ़ी या रहस्यमय। सुरति = स्मृति। गोपांगना = गोपियों की। प्रणय-प्रतिमा = प्रेम की साक्षात मूर्ति।

सप्रसंग व्याख्या :—इस पंक्तियों में उद्धव समय की विचित्रता और और उसकी अपरिचितता की स्थिति का रहस्योदघाटन कर रहे हैं। वे कह रहे हैं–

ऊधोजी जैसे ही निकट आये; वैसे ही गोपियों ने उन्हें बड़े सम्मान और आदर भाव से बिठाया। सभी ने विधिपूर्वक अपने मन की बातें कही। तदनन्तर गोपियों ने कहा कि आज तक कृष्ण यहां क्यों नहीं आये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों वे कमल पगों (कृष्ण के पग) की प्रेयसी गोपियों को भूल गये हैं। यदि उन्हें हमारी याद होती तो आज तक एकाध बार तो आते।

उद्धव ने कहा कि समय की गति बहुत ही गूढ़ और विचित्र है। कहा नही जा सकता है कि कब क्या हो जावे। वस्तुतः विधि का विधान और समय का ढर्रा बेंडा ही है। अच्छा उद्धवजी हमें तो एक बात बता दो कि वृन्दावन बिहारी वन में कब तक आवेंगे। उद्धवजी ने कहा कि कृष्ण कब तक और कैसे ब्रज में आवेंगे; यह कहा नहीं जा सकता है। फिर मैं उद्धव इस प्रश्न की उलझन में क्यों पड़ूं? यह प्रश्न दुख भरा है।

हां इतना जरूर कहा जा सकता है कि आज भी कृष्ण को वृन्दवन से वही प्यार है जो पहले था। वे अभी तक अपनी प्यारी माता और पिता तथा सगे सम्बन्धियों को भूले नहीं हैं। गोपियों की स्मृति आज भी कृष्ण को सताती है। गोपियां जो प्रणय की प्रतिमायें थीं, वे सभी पूर्ववत ही याद आती रहती हैं।

विशेष :—कृष्ण को ब्रज की स्मृति होती रहती है। इस बात की ओर उद्धव के माध्यम से संकेत कराया गया है।

प्यारी बातें ··· ··· ··· ··· कोस होता ॥१७–१९॥

शब्दार्थ :—कथन करके = कह करके। वारि लाते = आंसू भरते। प्रतिपल घटी = प्रतिक्षण और प्रति घड़ी। अवनि = पृथ्वी। सनेही = स्नेही। कुंवर वर = कुमारों में श्रेष्ठ। कोटिशः = करोड़ों कोस दूर होना।

प्रसंग सहित व्याख्या :—इन पंक्तियों में हरिऔधजी पूर्व संदर्भानुसार ही वर्णन कर रहे हैं–

उद्धव ने कहा कि प्रायः मैंने कृष्ण की उदास मुखमुद्रा देखी है। वे बालक बालिकाओं की प्रिय और सुखद बातों को याद करके व्यथित होते हैं। उन्हें माता-पिता और गोप-गोपियों की याद आती है। प्रायः इन सभी को याद करके वे क्षुब्ध हो जाया करते है तथा ऊंची ऊंची सांसें लेकर आंखों में आंसू भरे हुए मैंने कृष्ण को व्यथित देखा है। भाव यह है कि तुम यह मत समझो कि कृष्ण तुम्हें भूल गये हैं। वे तुम सभी की याद में उच्छ्वास लेते हैं। कृष्ण सायं प्रातः प्रत्येक पल और प्रत्येक घड़ी तुम सब की याद

करते रहते हैं। जब कभी उन्हें नींद आती है और वे स्वप्न देखते हैं तो वह स्वप्न भी व्रज भूमिका का ही देखते हैं। उनका मन-मधुप सदैव व्रज के कुन्जों में घूमता रहता है। मथुरा में तो कृष्ण का केवल शरीर भर घूमा करता है। प्रत्येक व्यक्ति मुझ से यही पूछता है कि व्रज भूमि का अनुरागी होने पर भी कृष्ण यहां क्यों नहीं आते हैं? कोई यह पूछता है कि तीन कोस चल कर आना कृष्ण निमित्त करोड़ों कोस के समान कैसे हो गया है। भाव यह है कि तीन कोस तो बहुत दूर भी नहीं है फिर भी कृष्ण इधर क्यों नहीं आते हैं।

दोनों आंखें सतत ··· ··· ···सैकड़ों लालसायें ।।२०–२२।।

शब्दार्थ :—सतत = लगातार, निरन्तर। दर्शनोत्कंठिता = दर्शनों के निमित्त उत्कंठित। अतिशयता = अतिशयोक्ति। संतप्ता = संतप्त हृदय। विरह विधुरा = वियोग से व्यथित। विपुल सुख = पर्याप्त सुख। भरित = भरे हुए। लालसायें = कामनायें।

ससंदर्भ व्याख्या :—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध कृष्ण के विरह में व्यथित व्यक्तियों के कष्ट और अपार प्रेम का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि जिन व्यक्तियों की दोनों आंखें कृष्ण के दर्शनों के निमित्त उत्कंठित रहती हैं और जो मार्ग देखते-देखते दिन बिता देते हैं, यदि वे व्याकुल होकर इस प्रकार की बातें पूछते हैं तो इसमें न तो अतिशयोक्ति ही है और न कोई आश्चर्य ही है। भाव यह है कि कृष्ण के विरह में इस प्रकार की बातें करना स्वाभाविक ही है।

आगे की पंक्तियों में उद्धव ने कहा है कि विरहाकुल तथा विरह संतप्त गोपियों तुम विरह में परेशान रहती हो—यहां तक तो ठीक है किन्तु यह भी सच है कि कोई भी कृष्ण के मर्म को नहीं जानता है और न उसका ज्ञाता ही है। कृष्ण वस्तुतः पृथ्वी के सभी निवासियों की हित कामना करते हैं। वे विश्व-प्रेम के विश्वासी हैं तभी तो उन्हें अपने प्राणों से भी अधिक विश्व प्रेम प्यारा है।

यदि एक बार मन में लोक कल्याण की भावना उत्पन्न हो जाती है या व्यक्ति लोक मंगल की बात सोचने लगता है तो मनुष्य को सभी सुख और स्वार्थ तुच्छ प्रतीत होने लगते हैं। इस प्रकार के लोक-सेवी व्यक्ति योगियों के समान आचरण करते हैं और उन्हीं के समान हृदय की सभी उच्छाभिलाषाओं को कुचल देते हैं।

ऐसे-ऐसे······ ·········उसी वे ।।२३ से २५।।

शब्दार्थ—चक्षु—नेत्र। व्रती—नियमपालक। निष्कामी—कामना रहित। अपर-कृति—दूसरे की कृति। कूलवर्ती—किनारे पर रहने वाले। मीमांसा—आलोचना। स्वीय—अपने। वांछा—इच्छा। च्युत—अलग। सुमन लतिका—पुष्पों से लदी लतायें।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार ही कवि हरिऔध उद्धव के माध्यम से कह रहे हैं कि कृष्ण के चक्षुओं के सामने लोक-कल्याण के ऐसे-ऐसे काम हैं जिनके कारण वे अन्य सभी वासनाओं तथा आकर्षणों को भूल गये हैं। लोक कल्याण के आगे सभी वासनाओं को भूल जाना स्वाभाविक है। कृष्ण ने सच्चे व्रती की भांति अपने मन में लोकोपकार का व्रत धारण कर लिया है। अत: जैसे निष्काम व्यक्ति संसार से मुक्ति पा लेता है, उसी प्रकार वे भी सांसारिक वासनाओं से पर्याप्त ऊपर उठ चुके हैं।

सर्वप्रथम तो कृष्ण अपने सभी कर्मों की समीक्षा और परीक्षा करते हैं। तदन्तर वे अभीष्ट कार्य में धैर्य के साथ लग जाते हैं। किसी भी इच्छा या वासना के कारण वे कभी भी अपने प्रधान कर्त्तव्य से नहीं हटते हैं। यदि कृष्ण के मन में इच्छा हो रही हो कि मैं वन में जाऊं और वहां घूम कर कुसुम-वन में प्रवाहित होने वाली वायु का आनन्द लाभ करूं; वन विहार करूं, उसी समय कहीं कोई दुखी व्यक्ति दीख जाय तो वे वन विहार की कामना छोड़ देंगे और उससे सहायता देने के लिए तुरन्त पहुँच जावेंगे।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध ने कृष्ण के 'परदुखकातर' गुण को प्रस्तुत किया है। वन-विहार की अपेक्षा दुखी जनों की सेवा करने वाला गुण लोकोपकार के सन्निकट है।

जो सेवा हो…… ……शास्ति देंगे ॥२६ से २८॥

शब्दार्थ—वेले = समय या वेला में। आर्त-वाणी = दुखीजनों की वाणी। कथन = कहे। गेहों = घरों। वर्धिता = बढ़ती हुई। जातीय = जाति का। दुष्टात्मा = दुष्ट आत्मा वाला, पातकी = पापी, शास्ता = शासक। शास्ति = उपदेश।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्ति में भी हरिऔधजी पूर्व संदर्भानुसार कृष्ण के गुणों का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं—

कृष्ण कभी अपने माता-पिता की सेवा करते हों या अपने गुरूजनों को सम्मान प्रदर्शित कर रहे होते तो वे उन सभी को छोड़ देते थे, यदि उसी क्षण किसी दुखी व्यक्ति की आर्त-वाणी सुनाई पड़ जाती थी। दुखिया जनों को देख कर वे उन्हें शरण दिया करते थे और इस कार्य के लिए वे बड़ों की सेवा को भी छोड़ देते थे।

इसी प्रकार जब कभी भी वे अपने घर में बैठे कार्य करते रहते थे तो उसी समय यदि कोई व्यग्र मनुष्य आकर अपनी बात कहता था तो वे उसी की सहायता करते थे। ऐसे क्षणों में आया व्यक्ति यदि कहता कि बढ़ती हुई अग्नि-ज्वाला घरों को जला रही है तो वे अपने अनेक महत्वपूर्ण कार्यों को छोड़ देते थे और तुरन्त उसी स्थान की ओर दौड़ पड़ते थे।

इसी प्रकार वे यह कभी नहीं चाहते थे कि कोई उनका ही प्राणी दुष्टतापूर्ण कर्मों में संलग्न हो जाय। ऐसे लोगों को वे मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते थे। इसी संदर्भ में कवि कहता है कि—कृष्ण का कोई भी मित्र या उनका जातीय बंधु दुष्टात्मा बन जाता और कुल का दुश्मन बन कर

विशिष्ट पाप किया करता था तो वे अपने हृदय की अन्य सभी वेदनाओं को भूल जाया करते थे और अच्छे शासक और उपदेशक की भांति उसे समझाया करते थे या शुद्ध-बुद्धि की ओर ले जाते थे।

विशेष—इन पंक्तियों में कृष्ण की शुद्धात्मा और सफल उपदेशकता की ओर संकेत किया गया है।

हाथों में…… ……रही हैं ॥२९ से ३१॥

शब्दार्थ—न्यस्त = सौंपा हुआ। पीड़ाकारी = पीड़ा देने वाला। निहित = छिपा हुआ। बहु-फलद = बहुत ही फलदायक। लोकोपकारी = लोक का उपकार करने वाले। अवलि = पंक्ति। अधुना = आज भी। स्वल्प = थोड़े भी। बाधाकारी = बाधा पहुंचाने वाली।

व्याख्या—हरिऔध कर रहे हैं कि यदि कृष्ण ने कोई ऐसा कार्य हाथ में लिया हो जिसके कारण सम्पूर्ण कुल को, सभी जाति को और सभी सम्बन्धियों को कष्ट होता हो और उससे समाज का कल्याण होता हो तो वे दुखी हो कर भी उसी कार्य में संलग्न हो जाते थे। उसे करने में सुखानुभव करते थे। भाव यह है कि अपने सम्बन्धियों के कष्ट से वे कष्टानुभव करते थे, किन्तु समाज कल्याण की भावना से प्रेरित होने के कारण उन्हें सुखोपलब्धि ही होती थी।

आज श्याम के नेत्रों के समक्ष अच्छे-अच्छे बहुत ही फलप्रद व लोक-कल्याण करने वाले बहुत से कार्य हैं। कृष्ण सदैव ही उन्हें कम करने में रत रहते हैं। यही कारण है कि मन से अच्छी और प्रिय लगने वाली व्रजभूमि में वे नहीं आ सकते हैं।

कृष्ण के मथुरा से लौट कर न आने के और भी बहुत से कारण हैं। विशेषकर कुटिल राजनीति इसमें बाधक बनी हुई है। यदि थोड़ी भी लापरवाही की गयी तो इससे बहुत ही कष्ट होने की संभावना है। इसके विपरीत यदि उन राजनीति के दाव-पेचों को बुद्धि की जागरुकता के साथ सुलझाने का प्रयास किया जाय तो लाभ की मात्रा बढ़ सकती है। भाव यह है कि इस समय मथुरा में राजनीतिक स्तर पर भी बड़ी विषम परिस्थिति बनी हुई है। यदि उसकी ओर से बेखबर हो कर कृष्ण इधर लौट आवें तो भारी कष्ट का सामना करना पड़ेगा।

विशेष—कृष्ण के व्रज वापस न आने का कारण राजनीतिक बताया गया है तथा गोप-गोपियों के मानस को बौद्धिक स्तर पर लाने का प्रयास किया है।

तो भी मैं…… ……माया निमग्ना ॥३२ से ३४॥

शब्दार्थ—प्राण-प्यारे = प्राणों के समान प्रिय। निर्मोही = मोहहीन। भावी = भवितव्य या भविष्य में घटित होने वाली घटनायें। प्रबला = शक्तिशाली। बली = बलवान। मेदिनी = पृथ्वी। संतप्ता = दुखियारी

बालायें। सलिल नयना = अश्रु सिक्त नयनों वाली। मोहमाया-निमग्ना = मोह माया में डूब न जायें।

व्याख्या--हरिऔध कहते हैं कि उद्धव ने पहले तो कृष्ण के गुणों की चर्चा की और तदन्तर कहा कि कृष्ण मथुरा की राजनीति में उलझे हुए हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि नन्द के प्राणाधिक पुत्र कृष्ण ब्रज में आवेंगे ही नहीं। वे आवेंगे और अवश्य आवेगे। ब्रज भूमि को भुलाना उनके वश की बात नहीं है। जो ब्रज भूमि उन्हें सर्वाधिक प्रिय है और जिसे वे सबसे अधिक चाहते हैं कृष्ण उसे निर्मोही बन कर छोड़ नहीं पावेंगे। भाव है कि ब्रज को कृष्ण के लिए छोड़ पाना संभव नहीं है।

उद्धव ने कहा कि आप सभी इस तथ्य से परिचित हैं कि भावी इच्छा बड़ी प्रबल होती है और उस ब्रह्म की इच्छा के सामने किसी का कोई वश नहीं चलता है। तभी तो संसार में बहुत से काम होते होते रह जाते हैं। यदि कभी ऐसा ही कुअवसर ब्रजभूमि के ऊपर भी दिखाई दे तो ब्रजवासियों को धैर्य की आवश्यकता है। उस समय आप सभी को अपने हृदय की शक्ति को खो नहीं देना चाहिए।

हे प्राचीन और समझदार गोपियों ब्रज में बहुत सी ऐसी बालायें हैं जो संतप्त हैं—कृष्ण विरह में परेशान हैं और सदैव उनकी याद में आंखों में आंसू भरे रहती हैं किन्तु तुम्हें उन्हें समझ बुला कर धैर्य बंधाना चाहिए। तुम्हारा कार्य यही है कि तुम उन्हें धैर्य और संयम की समुचित शिक्षा दो क्योंकि यदि तुम ऐसा करोगी तो वे मोह-माया निमग्न हो पावेंगी। अतः सभी को समझ बूझ से कार्य करना चाहिए।

विशेष—उद्धव ने मनोवैज्ञानिक ढंग से गोपियों से यह भी कह दिया है कि बहुत संभव है कृष्ण आवे ही नहीं, किन्तु ऐसी परिस्थिति में भी धैर्य और संयम की आवश्यकता है। यदि कोई विरहिणी बाला रोई तो तो कृष्ण का हृदय उमड़ पड़ेगा। परिणामतः लोकोपकार के कार्य में बाधा पड़ेगी।

जो बूझेगा······ चैन कैसे। ३५ से ३७॥

शब्दार्थ—भव = संसार। श्रेय = कल्याण। मर्म = रहस्य। गुरू-गरिमा = गंभीरता और महत्ता। ब्रज अधिप = ब्रजेश्वर कृष्ण।

व्याख्या—हरिऔध उद्धव के कथन द्वारा इन पंक्तियों में लोक-सेवा के मर्म को समझा रहे हैं। वे कहते हैं कि--यदि ब्रज के निवासी यह नहीं समझेंगे कि लोक-सेवा का क्या अर्थ है और इसका मूल्य क्या है? तो यहां के निवासी संसार में कल्याण का अर्थ भी नहीं समझ पायेंगे। जो व्यक्ति इस प्रकार की परिस्थितियों में भी संसार के प्रेमी व्यक्तियों की गुरुता और गंभीरता को नहीं समझ सकेगा; वह कृष्ण के हृदय को पीड़ा प्रदान करने वाला सिद्ध होगा। भाव यह है कि कृष्ण उससे कष्ट का अनुभव करेंगे।

कवि उद्धव के ही माध्यम से आगे की पंक्तियों में मानव-हृदय की व्याख्या करता हुआ कह रहा है कि प्रायः सभी मनुष्यों का हृदय एक सा ही

हैं। भाव यह है कि हम प्रेमाम्बुधि में गोते लगा चुकी हैं फिर यह कैसे हमारी समझ में आयेगा। ज्ञान को हृदयंगम करना तो ज्ञानियों का काम है।

हो जाते......   ......कैसे ॥४१ से ४३॥

शब्दार्थ—भ्रमित = भ्रमपूर्ण। भूरि ज्ञानी = पर्याप्त ज्ञानी। मंद्-धी = मंद बुद्धियों के लिए। तरी = नौका। भू-व्यापी = पृथ्वी पर्यन्त। सलिल-निधि = जल की सम्पदा। जतन = यत्न या विधि। भुवि-विभव = संसार का वैभव। सम्पदा = सम्पत्ति। जलद-तन = बादलों के समान श्याम शरीर वाले कृष्ण। श्यामली = श्यामवर्ण वाली।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध कहते हैं कि योगियों का मार्ग बड़ा कठिन होता है। जिस योग-मार्ग पर चलते समय महान ज्ञानी और विद्वान् भी स्खलित हो जाते हैं उस पथ पर हम जैसी बुद्धिहीन नारियां कैसे अपना काम चला सकती हैं। सच भी है जो नाव छोटे-छोटे तालाबों और नदियों में डूब जाती है वही नाव विशाल संसार में फैली विस्तृता को किस प्रकार पार कर सकती है? यही हाल अपनी बुद्धि का होना है। जो बुद्धि संसार में फैले विशाल-सागर वत् कार्यों में पड़कर भ्रमित हो जाती है, वह भला योग साधना की सफलता को कैसे प्राप्त कर सकती है।

हे उद्धव! हम तुम्हारे कहने से सभी भोगों और सांसरिक इच्छाओं को छोड़ देगी। माता—भाई, बहिन और अपने सभी प्रियजनों को भी छोड़ देगी। इतना ही नहीं हम अपने तन और मन की सम्पदा को भी भुला देगी, किन्तु हमें यह तो बताओ कि हम श्यामली मूर्ति कृष्ण को कैसे भुला सकेंगी? अर्थात् कृष्ण को छोड़ पाना हमारे निमित्त आसान काम नहीं है।

जो प्यारा है ...   ...काढ़ देवें ॥४४ से ४६॥

शब्दार्थ—अखिल = सम्पूर्ण। देही = शरीरधारी। रमा = रमा हुआ या बसा हुआ। उद्योगी = प्रयत्न करके।

ससंदर्भ व्याख्या—उद्धव के कथन को सुनने का लाभ ब्रजवासियों ने अवश्य उठाया, किन्तु फिर भी उन्होंने अपने मन की व्यथा को ही कह डाला; गोपियां कहती हैं—

जो व्यक्ति सभी सांसारिक व्यक्तियों को प्यारा है तथा जो प्रत्येक व्यक्ति के रोम-रोम में रमा हुआ है, उस व्यक्ति को कोई पृथ्वी पर रहकर कैसे भुला सकता है? भाव यह है कि जिस कृष्ण की मूर्ति हमारी आंखों में बसी हुई है वह आसानी से कैसे निकाली जा सकती है? कारण वह व्यक्ति तो प्राणों और हृदय में बसा हुआ है।

उस सम्बन्धी को कैसे भुलाया जा सकता है जो हमारे मन में बस गया हो और जिसकी शोभा नयनों में रम गयी हो। हम कृष्ण को कैसे भुला सकती है? क्योंकि हमारा हृदय ही उसमें लवलीन है और उनकी शोभा को

निरखकर हमारे नयन उसी में रम गये हैं। अब उद्धव! तुम्हीं बताओ कि हमारे ये नेत्र कैसे संभलें।

हे उद्धव! यदि कोई कहे तो गोपियां अपने प्रिय हृदय को ही शरीर से निकाल दें, (हम उसे अलग कर सकती हैं।) किन्तु हमसे यह संभव नहीं जान पड़ता है क्योंकि जब तक शरीर में प्राण हैं तब तक यह कार्य संभव नहीं है। प्रयत्नपूर्वक भी हम कृष्ण को शरीर से या हृदय से नहीं निकाल सकती हैं।

मीठे…… ……लग्न होते ॥४७ से ४९॥

शब्दार्थ——कूटती = पीटती हूं। पग-युगल = पदयुग्म। उमग = उमगित। ठौरों = स्थान। ललक = ललचाकर। लग्न = लीन।

व्याख्या——पूर्व संदर्भानुसार ही कवि हरिऔध कहते हैं गोपियों ने कहा——जिस कृष्ण के मीठे-मीठे वचन हमें नित्य प्रति मोहित किया करते थे आज हम अपने कानों से उसी की मधुर वार्ता सुना करती हैं। जो कृष्ण सदैव नेत्रों में बसा करते थे वे आज भूले से भी कहीं नहीं दिखाई देते हैं। भाव है कि एक समय तो कृष्ण सदैव नयनों में रहते थे और आज वह समय है कि उनके दर्शन भी दुर्लभ हो गये हैं। विधि की कैसी विडम्बना है।

विरहिणी गोपी ने कहा कि अब मैं अपने प्रिय कृष्ण के विरह में व्यथित होती रहती हूं और अपने कलेजे को पीटती रहती हूं। एक समय तो यह था कि मैं अपनी आंखों से कृष्ण के दोनों चरणों की सुषमा को देखा करती थी और आज मेरा भाग्य ऐसा खोटा हो गया है कि उनके चरणों की धूल भी कहीं दिखाई नहीं देती है। गोपी ने व्यथातुर होकर कहा कि आज भी ब्रज में अनेक ऐसे स्थल हैं जहां जाने पर कृष्ण की स्मृति हो आती है और दोनों आंखें भर आती हैं। जिस-जिस स्थान पर कृष्ण ने सुन्दर क्रीडायें की हैं वहां पर आज भी हृदय उमड़ा पड़ता है। वहां जाकर हृदय उसे देखने में ही लीन हो जाता है।

विशेष——स्मृति संचारियों का अच्छा प्रयोग हुआ है। भाषा भावोपम और शैली सरल और व्यावहारिक है।

फूली डालें…… ………न सोना ॥५० से ५२॥

शब्दार्थ——नीप = कदम्ब। नीलाम्बु = नीला जल। अम्बुदों सी = मेघों जैसी। सरि = सरोवर व सरिता। प्रथित = प्रसिद्ध। पाथोधि = पवित्र सागर। आसीना = बैठी हुई। मलिन वदना = उदास मुख वाली। उद्विग्न = व्यथित। रोना-धोना = रोना पीटना।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्वसंदर्भानुसार कवि हरिऔध कह रहे हैं कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि हमारे लिए कृष्ण को भुला पाना बहुत कठिन है। सच बात यह है कि कदम्ब के वृक्ष की पुष्पों से लदी हुई डालों को देखकर मन के सर्वस्व कृष्ण की छवि नेत्रों के समक्ष नाच उठती है। यमुना

के किनारे आने पर जब नीला जल दिखाई देता है तो आंखों के सामने कृष्ण की मेघ जैसी शोभा घिर आती है।

गोपियों ने कहा कि अनुपम सौन्दर्यशाली यमुना का जल भले ही सूख जावे, कुञ्जों का समूह भले ही जलकर नष्ट हो जावे, हमारी आंखें फूट जावें। गोपियों का हृदय भी नष्ट हो जाय सारा वृन्दावन उजड़ जाय और कदम्ब का वृक्ष भी गिर जाय तब भी पावन गुणों के समूह-सागर जैसे कृष्ण कैसे भुलाये जा सकते हैं। भाव यह है कि कृष्ण को भुलाने के लिए हमें अनेक कष्ट सहने पड़ेंगे तब कहीं उन्हें भुलाने की योजना बन सकती है। इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि हम कृष्ण को भुलाने में समर्थ हो ही जायेंगे।

हे उद्धव! तुम्हारे सामने जो बहुत सी मलिन वदना बालिकायें बैठी हुई हैं उन्हीं को देखो। ऐसी बालिकायें ब्रज में बहुत बड़ी संख्या में हैं। जब ये बालिकायें व्याकुल होकर रोती हैं और सोना तक छूट जाता है। केवल रोना ही उनके वश में रह जाता है। उस समय किसी का हृदय भी दुख से भर उठता है।

पूजायें क्यों ...कैसे ॥५३ से ५५॥

शब्दार्थ—विविध = अनेक, वांछा = कामना, विफल = निष्फल, प्रेमोन्मत्ता = प्रेम से उन्मत्त, प्यारा-जलद = प्रिय बादल की सी सांवली मूर्ति, अनुरत = अनुरक्त, धूम = धुएं, आसक्ता = आसक्त या लवलीन।

व्याख्या—सन्दर्भ पूर्वानुसार ही है। कवि हरिऔध कह रहे हैं कि गोपियां सदैव ही कृष्ण की परम अनुरागिनी रही हैं। इन गोपियों ने कई वर्षों तक विविध क्रियायें, व्रत और साधनायें, विविध प्रकार से की हैं। इनकी ये क्रियायें बड़ी भक्ति और मेहनत का प्रदर्शन करती हैं। अनेक क्रियायें करके गोपियों ने यह कामना की थी कि हम कृष्ण से ब्याही जावें। आज कृष्ण के प्रवास काल से गोपियों की वरण-कामना विफल होती जा रही है। ऐसी स्थिति में गोपियों का दग्ध होना स्वाभाविक है।

कवि कहता है कि ये गोपियां अपने हृदय से कमल से नेत्रों वाली कृष्ण छवि की प्रेमिका रह चुकी हैं। इन्होंने अपने भोले भाले हृदय को कृष्ण को समर्पित कर दिया है। यदि गोपियों की आंखों में कोई छवि बसती है तो वह मन-मोहिनी मूर्ति कृष्ण की ही तो है, ऐसी स्थिति में प्रेमोन्मत्त गोपियां इस पृथ्वी पर कृष्ण के लिए क्यों न कष्ट सहती हुई दुख उठावेंगी। भाव यह है कि कृष्ण के प्रति गोपियों का प्रेम अनन्य और एकनिष्ठ है।

सच भी है जिन गोपियों के नेत्रों में नीले सांवले रंग वाला कृष्ण समाया हुआ है वे किसी अन्य में कैसे अनुरक्त होंगी या हो सकेंगी? कृष्ण को छोड़कर अन्य में अनुरक्त होने का अर्थ है बादल को छोड़कर धुयें में मन लगाना। वस्तुतः जो गोपियां अपने स्वयं के प्रिय पर कृष्ण में अनुरक्त हो चुकी हैं वे अपने हृदय-तल में किसी अन्य को कैसे स्थान देंगी। भाव यह है कि गोपियों का तन-मन तो कृष्ण में बसा हुआ है फिर किसी दूसरी ओर दृष्टि लगाना उनके निमित्त संभव नहीं है।

सोचो ऊधो ··· ··· वे हैं ॥५६-५८॥

शब्दार्थ—विपन्ना = दुखी। कटंकाकीर्ण = कांटों से युक्त। सर्वांगों = सभी अंगों। यौवनाम्बोधि = यौवन-सागर। घोरा = कठिन। महोच्छ्वास शीला = ठंडी सांसों से युक्त अपार कोलाहल वाला। तरि = नाव। शैल = चट्टान। धनी = मालिक। संकटापन्न = संकट के निकट।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध पूर्व संदर्भ के अनुसार कह रहे हैं—हे उद्धव! तुम्हीं सोचो यदि ये बालिकायें जो अपने मन में कृष्ण को वरण कर चुकी हैं, यदि कुंवारी ही रह गयीं तो सोचो क्या होगा। इन सभी के हृदय की व्यथा कितनी सीमाहीन होंगी; यह अनुमान से भी परे है। जब इन विपन्न गोपियों को यह पता चलेगा कि कृष्ण अब हमारे नहीं रहे तब उनको कितना कष्ट होगा—कितनी व्यथा होगी? उनके लिए दिवस कंटकाकीर्ण हो जायेंगे। जीवन बिताना बहुत ही कठिन हो जावेगा।

गोपियां कह रही हैं कि इन बालिकाओं के सम्पूर्ण अङ्गों में यौवन की लहरें लहर ले रही हैं। भाव है अनेक कामनायें उठ रही हैं। यौवन का यह सागर बहुत ही भयंकर है। इसमें अपार कोलाहल और भयंकर तूफानी रंगत है। वास्तव में यौवनावस्था बड़ी दुखदायी और कष्टप्रद होती है—विशेषकर जब विरह की अवस्था हो। यौवन का यह सागर तूफान की भांति ज्ञान और बुद्धि की शक्तिशाली नाव को भी तोड़ रहा है और उसकी तीव्रता और गतिशीलता से धैर्य की अडिग चट्टान भी विचलित हो रही है। सच ही है कि यौवन की मादकता मनुष्य के ज्ञान और धैर्य को विलुप्त कर देती है।

उद्धव! देखो तो सही सभी बालिकायें ऐसे भीषण यौवन के सागर में फंसी हुई हैं। इस भीषणता के साथ ही साथ काल की क्रूर आंधी भी चल रही है। जीवन की नौका वेदना की कुटिल भंवरों में फँसे गई है और कोई भी उसे किनारे लगाने वाला नहीं है। हाय! देखो तो सही वे सभी दुखों और संकटों से पूर्णत घिर गई हैं। इनकी दशा बहुत ही शोचनीय है।

विशेष—इन पंक्तियों में सांगरूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है। वर्णन अनूठा, शैली गरिमामय है।

शोभा देता······ ······बचेंगी ॥५६ से ६१॥

शब्दार्थ—सतत = लगातार। पुष्पाकलित = पुष्पों से युक्त। उत्सन्न = नष्ट। अप्रगल्भा = सीधी-सादी। संसिद्धि = सुन्दर सिद्धियां। मदन-दव = कामाग्नि। चक्री = विष्णु। पिनाकी = महादेव। देहियों = शरीरधारियों। रति-रमण = रति के पति कामदेव के बाण से।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में भी हरिऔध गोपियों की विरह-वेदना का वर्णन कर रहे हैं। पूर्व संदर्भ के अनुसार ही कवि कह रहा है—गोपियों की दृष्टि के सामने पहले तो इच्छा रूपी पुष्पों से आकलित सुख का उद्यान फलता-फूलता रहता था। भाव यह है कि गोपियां पहले अनेक प्रकार

की कामनायें करती थीं और उन्हें पूर्ण करने की सोचा करती थीं किन्तु अब दुर्भाग्य का दिन आ गया है। अब तो दुर्भाग्य के कारण शोभा का सदन सदैव नष्ट होता रहता है और इतना ही नहीं अब तो सभी कुसुम भी प्रफुल्लित होकर विकसित नहीं होते हैं। भाव यह है कि कृष्ण के विरह में अब सम्पूर्ण पुष्प भी पल्लवित नहीं होते हैं।

गोपियां बहुत ही सीधी, सरल और अप्रगल्भ हैं। इनके समक्ष छल-कपट की बात करना तो नितान्त हास्यास्पद है। ये बालायें भोली-भाली होने के कारण कामाग्नि की ज्वाला को कैसे सहन कर सकती हैं? यह काम की ज्वाला तो बुद्धि और शास्त्रीय मर्यादा को और कुल की लज्जा को भी नष्ट कर देती है। इसकी ज्वाला तो कठोर तप से प्राप्त सिद्धियों को भी जला देती है, फिर ऐसी दशा में तो बालिकाओं की दशा क्या होगी? कहा नहीं जा सकता है।

वस्तुतः ये अप्रगल्भा बालिकायें कामदेव के बाणों के प्रहार को नहीं सहन कर सकती हैं फिर देखते नहीं कामदेव के सामने विष्णु भी तो चकित हो जाते हैं। महादेव भी कांपने लगते हैं। यह कामदेव का प्रभाव ही है कि इन्द्र के हृदय में भी हलचल मच जाती है। सभी प्राणी अत्यधिक व्याकुल हो जाते हैं। ऐसे काम के बाण जो विष्णु से लेकर साधारण पुरुषों तक को व्यथित कर देते हैं, उन्हें भला ये कोमल शरीरिणी ब्रजांगनायें कैसे सहन कर सकेंगी। भाव यह है कि गोपियां काम-बाणों की चुटीली मार को सहन नहीं कर सकती हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में रूपक, उपमा अलंकारों का प्रयोग किया गया है। गोपियों की विरह-व्यथा शब्दों से परे हृदय को प्रभावित करती है।

जो होके······ ······को ॥६२ से ६४॥

शब्दार्थ—वज्र = कठोर। दग्धकारी = जलाने वाला। रक्षिता = सुरक्षित। प्रत्यंगों = प्रत्येक अंग में। कूटादिकों = कूट आदि। उन्मादिनी = मस्त। रोमांचकारी = रोमांचक। तुल्य = समान। स्नेहोत्फुल्ला = स्नेह से उत्फुल्ल। विकच-वदना = विकसित वदन। बालिकांभोजिनी = बालिका रूपी कमलिनी।

समंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में हरिऔध कहते हैं कि काम का जो बाण-बड़ा कोमल होने पर भी वज्र जैसा कठोर हो जाता है, फूल जैसा कोमल होकर भी विरह में भाले के समान पीड़ा प्रदान करने वाला बन जाता है। उसके आघात या प्रहार को कोमलांगी गोपियां कैसे सहन कर सकेंगी? काम का नशा शरीर के अंग-अंग में फैल जाता है। वह विरह में भयंकर विष से भी अधिक पीड़ाकारी हो जाता है। वस्तुतः उसमें शराब से भी अधिक नशा होता है। प्रेम की पीर का नशा कामदेव को जाग्रत कर देता है। फिर भला गोपियां क्यों न उन्मत्त होंगी? अर्थात् अवश्य होंगी। कामदेव विकसित वदना और कमलिनी के समान प्रसन्न वदना गोपियों को जब पीड़ित करेगा तो वे सभी कांतिहीन हो जायेंगी-ठीक वैसे ही जैसे कमलिनी बर्फ के गिरने से झर जाती है। कामाग्नि से दग्ध होकर ये बालिकायें बहुत अधिक पीड़ा देनी वाली

और रोमांचक हो जायेंगी। हाय ! फिर कोई कैसे उन्हें आंखों से देखने का हौसला करने में समर्थ हो सकेगा ? अर्थात् नहीं कर पायेगा।

विशेष—ये अलंकृत पद हैं। इनमें व्यतिरेक और 'उदाहरण' अलंकारों का प्रयोग बड़े कौशल से किया गया है।

मेरी बातें...... ......बालिकायें ॥६५ से ६७॥

शब्दार्थ—अकले = अकेले, बुध विदिता = विद्वानों द्वारा जानी हुई, अंधता = अंधेपन का, विधु = चन्द्रमा, धाता = विधाता, हेत = निमित्त।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध पूर्व संदर्भानुसार ही वर्णन कर रहे हैं। कवि कहते हैं कि मेरी बातों को सुनकर अगर आप यह पूछने लगें कि कृष्ण तो अकेले हैं फिर वे सैकड़ों गोपिकाओं के साथ विवाह कैसे कर सकते हैं ? इसके उत्तर में हे उद्धव ! मै यही कहूंगी कि आप जैसा बुद्धिमान और ज्ञाता पुरुष भी विद्वानों द्वारा प्रवर्तित प्रेम की अन्धता का मर्म नही समझ सकता। भाव यह है कि प्रेम के मार्ग पर अग्रसर होने वाले प्रेमीजन किसी कार्य का आगा-पीछा नहीं सोचते। वे तो अपने अभीष्ट की ओर बढ़ते रहते हैं।

उद्धव जी। आप तो जानते होंगे कि लाखों तारिकायें एक ही सुन्दर चंद्रमा से प्रेम करती हैं और इसी प्रकार लाखों कमलनियां भी तो एक ही सूर्य के प्रेम में अनुरक्त रहती हैं। अतः यदि सभी बालिकायें और गोपियां कृष्ण के प्रेम में लीन हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। सच है प्रेमी के हृदय की बात प्रेमी ही जानता है। आप जैसे ज्ञानवान प्रेम के मर्म को क्या जान सकते हैं।

गोपियो ने उद्धव से कहा कि यदि ब्रह्मा ने संसार में सौन्दर्य का निर्माण किया है तो उसे देख कर उस ओर मोहित होना स्वाभाविक है। यह तो सामान्यसा तथ्य है कि जहां सौन्दर्य है वहां आकर्षण अवश्य होता है। सौन्दर्य अपनी ओर आकर्षित करने वाले स्वाभाविक गुण से सदैव संयुक्त रहता है। फिर कृष्ण जैसा आकर्षक व्यक्तित्व देखकर बहुत सी पुष्पवदना बालिकायें इनकी ओर क्यों नहीं आकर्षित होगीं।

विशेष—इन पदों में सौन्दर्य और आकर्षण का पारस्परिक सम्बन्ध बताया है। साथ ही साथ प्रेम की गहनता और गम्भीरता का उल्लेख बड़े मनोवेग से किया गया है।

जो मोहेंगी...... ......चिंतामणि है ॥६८ से ७०॥

शब्दार्थ—जतन = प्रयत्न, उदभ्रांति = पागल, शोक-मग्ना = शोक में डूबी हुई, वृष्णि वंशी = यादव वंश के, सुकृति = भाग्यवान, चारु = सुन्दर, चिंतामणि = चिन्ताओं को दूर करने वाला।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार ही विशिष्ट गोपी उद्धव से कह रही है कि हे उद्धव जो गोपियां कृष्ण के सौन्दर्य पर मुग्ध हैं

होता है। जिस बात से एक व्यक्ति को कष्ट होता है; उससे दूसरा भ पाता है। जो कष्ट एक व्यक्ति को प्रबलता से कष्ट देते हैं वे ही दू भी कष्टप्रद सिद्ध होते हैं। भाव यह है कि कष्ट की बात सभी को क सुख की बात सभी को सुख प्रदान करती है। मानव हृदय शुद्धता का प होता है।

उद्धव ने कहा कि यदि व्रज की बालिकायें ऐसे ही रोती रहेंगी तो रोने से नित्य प्रति उनके कष्ट और भी अधिक बढ़ते जायेंगे। व्रजवासी के विरह में यदि ऐसे ही कष्ट पाते रहे तो उससे कृष्ण को शांति भ मिलेगी? भाव यह है कि व्रजवासियों का दुख कृष्ण के निमित्त भी कष्ट अशांति लेकर आयगा। (उद्धव व्रजवासियों को बौद्धिक खुराक खिल हैं—उनका लक्ष्य है कि कैसे ही व्रजवासी कृष्ण को भुला दें।)

जो होवेगा…… **……बात बूझे ॥३८ से**

शब्दार्थ—स्वच्छन्दचारी = स्वतन्त्र विचरण करने वाला। नागत सौन्दर्य या सुन्दरता। सत्कार्यों = शुभ कर्मो। अल्प = थोड़ी। अभि चकित। अर्थ = निमित्त। मोहो = मोहित। लख के = देखकर। दुख-ः = दुखों का अन्त हो जायगा। वेधिनी = बिद्ध करने वाली। खिन्न दुखित। म्लान = उदास। उन्मना = उदास।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में भी हरिऔध पूर्व संदर्भानु उद्धव के माध्यम से कह रहे हैं कि कृष्ण के चित्त की शांति बहुत आवश है। कवि कह रहा है—

यदि कृष्ण का चित्त शान्त और सभी प्रकार को चिन्ताओं से स्वच्छ होकर विचरण न करेगा तो उन्हें शांति नहीं मिल सकती है। यदि कृ को शांति नहीं मिलेगी तो वे लोक-कल्याण के कार्य करने में कैसे समर्थ सकेंगे? हे गोपियों! तुम स्वयं ही सोचो कि अपने परम प्रिय कृष्ण के का में थोड़ी सी भी बाधा पहुंचाना तुम्हारे लिए क्या उचित है? भाव है तुम्हें ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे कृष्ण के लिए परेशा हो जावे।

अत: तुम सभी को शनैः शनैः अपने को वश में करना चाहिए और योग-साधना को अपना लेना चाहिए। संसार की भलाई के निमित्त तुम्हें अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़ देना चाहिए। वासना के चिन्ह या प्र जहां कहीं भी तुम्हें दिखाई पड़े वहां नहीं जाना चाहिए और उनसे दूर रहकर अज्ञान और मोह को छोड़ देना चाहिए। यदि तुम सभी इस प्रकार का प्रयास करोगे तो तुम्हारे सभी कष्ट दूर हो जायगें। कष्टों का गमन शीघ्र ही सुख और शांति का प्रदाता सिद्ध होगा।

उद्धव के इन वचनों को सभी गोपियों ने उदास भाव से सुना। वे विनय पूर्वक सुनती तो रही, किन्तु कष्ट का अनुभव भी करती रहीं। तदनंतर वे दुखी हुई—उदास हुई और आश्चर्यचकित होकर बोलीं—हम अबोध हैं, मूर्ख हैं फिर तुम्हारी इन ज्ञानपूर्ण बातों को कैसे समझ सकती

हे उद्धव ! सभी ब्रजवासियों की यही एक आशा है कि कृष्ण लौट आवें और सभी को अपने दर्शन देकर कृतार्थ करें। कृष्ण के लौटने की एक आशा ही तो है जो सभी ब्रजवासियों को थोड़ी बहुत शांति प्रदान करती है। हे उद्धव ! तुम इन ब्रजवासियों की सुन्दर आशा को तोड़ो मत—उस पर तुषारापात मत करो। यदि निराश होकर ब्रज की सम्पूर्ण पृथ्वी के लोग कृष्ण के विरह में प्राणोत्सर्ग कर बैठे या जीवन को नष्ट कर बैठे तो तुम्हें इससे क्या मिलेगा।

देखो सोचो...... ......**जिलादो** ।।७४।।

शब्दार्थ—प्रेमोन्मता = प्रेम में मस्त। विपुल व्यथिता = पर्याप्त दुःखी।

व्याख्या—पूर्व संदर्भ में गोपी कह रही है कि हे उद्धव कृष्ण के विरह में उनके माता-पिता की दुःखमय और सोचनीय अवस्था को देखो। प्रेम में उन्मत्त और पर्याप्त दुःखी राधा को देखो। गोप ग्वाले और गोपियों को भी देख कर थोड़ा बहुत तो पसीजो। भाव यह है कि इन सबके प्रति द्रवीभूत होकर इन्हें कृष्ण में मिलने की आशा बंधाओ। इस प्रकार हे उद्धव ! कृष्ण के विरह में मृतक प्राणियों को जीवन दान प्रदान करो।

बोली सशोक...... ......**होतो** ।।७५ से ७८।।

शब्दार्थ—अपरा = दूसरी। लौटाल = लौटा लाना। लावण्य धाम = सौन्दर्य के स्थान। ककुभ = दिशा। अमिता = पर्याप्त। सिताभा = श्वेत कांति। उत्फुल्ल = प्रसन्न। प्रतिभाति = प्रतीत होती है। प्रसार = फैलाव। सितता = श्वेतता। कांतार = वन।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में एक अन्य गोपिका कृष्ण के चरित्र का उद्घाटन करती हुई स्मृति के आधार पर एक घटना का वर्णन कर रही है। वह कहती है-शोक निमग्न एक दूसरी गोपिका ने कहा कि हे उद्धव ! तुम कृपा करके ब्रजभूमि के लोगों को जीवनदान प्रदान करो। तुम करुणा प्रदर्शित करते हुए तुरन्त मथुरा चले जाओ और कृष्ण को ब्रज में लौटा लाओ। कृष्ण मेघ के समान हैं वे अपने दर्शनों से ही सबको हराभरा कर देंगे। हे उद्धव ! मैं अब तुम्हें एक ऐसा लोकप्रिय और विश्व को मोहित करने वाला कृष्ण के चरित्र का एक अंश सुना रही हूं। तुम कुछ ऐसा यत्न करो जिससे कृष्ण ब्रज में लौट आवें और सौन्दर्य के धाम कृष्ण अपनी दिव्य कलाओं के माध्यम से सबको आनन्दित करें।

गोपी एक विशिष्ट अवसर का वर्णन करती हुई कहती है कि एक बार पृथ्वी पर शरद ऋतु का सौन्दर्य बिखरा हुआ था। नीला आकाश निर्मल हो गया था। दिशाओं में पर्याप्त श्वेतिमा छा गई थी। प्रकृति बड़ी उल्लासमय प्रतीत हो रही थी। काँश के वन खिले हुए श्वेत पुष्पों के माध्यम से समझदार व्यक्तियों को यह बता रहे थे कि जिस प्रकार हमारे सफेद फल चारों ओर खिले हुए हैं उसी प्रकार संसार में पवित्रता और सतोगुण का ही विकास होता है।

शोभा निकेत······ ······कीर्ति जाते ।।७९ से ८२।।

शब्दार्थ—नवमौक्तिक = नये मोती । श्वोच्छदका = निर्मल जल । विचिशीला = लहरों वाली, सरितातिभव्या = अत्यन्त सुन्दर नदी, उच्छ्वास = शक्ति, उत्कट = तीव्र, आवर्त्तजाल = भंवरों का समूह, कर्णभेदी = कानों को भेदने वाला । धरा विलोपी = पृथ्वी को छिपाने वाला । विमलांवुवती = स्वच्छ पानी वाली अर्थात् नदी । मुदिता = प्रसन्न । कर्दम = कीचड़ । धौत = पवित्र या धवल । कृति = पुण्यशाली ।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध एक गोपी के माध्यम से एक सुन्दर नदी का वर्णन करा रहे हैं। गोपी कहती है, अत्यन्त सुन्दर यमुना नदी धीरे धीरे बह रही थी । वह शोभा की खान थी । उसकी कांति अत्यन्त उज्ज्वल और आकर्षक थी। यमुना नदी के पानी की बूंदे नवीन मुक्ताओं के समान चमक रही थी। उसके स्वच्छ जक्ष में बीच बीच में सुन्दर लहरें उठती गिरती दिखाई देती थी । वर्षा ऋतु के समय में यमुना अत्यन्त वेग और शक्ति के साथ प्रवाहित होती थी । पानी के तीव्र वहाव के कारण नदी के किनारे पानी में डूब जाते थे और वे टूट-टूट कर पानी में गिरने लगते थे । परिणामतः उनके आवाज से कान फटे जाते थे, किंतु अब यमुना का वेग शांत हो गया था । अब तो यमुना के प्रवाह में धरित्री को वहा कर ले जाने वाला भंवरों का समूह भी नहीं था—वह भंवरों वाला जल जो प्रायः वर्षा ऋतु में देखा जाता था । निश्चय ही अब तो यमुना नदी धीर प्रशांत और स्वच्छ जल वाली हो गई थी ।

आकाश की शोभा दर्शनीय थी। मेघों से शून्य आकाश बहुत ही आकर्षक लगता था। दिशारूपी नयी वधुयें कालिमा से विलीन हो गई थी। भाव यह है कि दिशाओं में कालिमा का नामोनिशान नहीं था। धरित्री की शोभा बड़ी सुन्दर और स्वच्छ प्रतीत होती था। कारण सम्पूर्ण कीचड़ सूख गया था और परिणामस्वरूप जल से धुली हुई श्वेतिमा तथा निर्मलता ही सर्वत्र दिखाई दे रही थी। शरद ऋतु की इस वेला में वन में नदी के किनारे की भव्य गुफाओं में निर्मल जल के झरने मद मंद गति से प्रवाहित हो रहे थे। उनमें निरन्तर एक अदभुत ध्वनि गूंजा करती थी। वे कृतज्ञ भाव से शरत्ऋतु के सुन्दर सुयश का गान कर रहे थे।

विशेष—कवि हरिऔध ने इन पंक्तियों में बड़ा मनोरम और प्रभावशाली वर्णन किया है। यह शुद्ध प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत आता है। इनमें उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों का सुन्दर नियोजन हुआ है। इसी प्रकार कुछेक स्थलों पर कवि की मौलिकता का पता चलता है।

नाना नवागत······ ······मराल माला ।।८३ से ८५।।

शब्दार्थ—नाना = विविध, नवागत = नये आये हुए, विहंग वरूथ = पक्षियों के समूह. वापी = तलैया, तड़ाग = तालाव, मिष = बहाने से, अवलोकते = देखते थे, विलसते = आनन्दित और उत्साहित होते थे, पसार = प्रसार या फैला कर, शत सह = सैकड़ों, विभूतियां = सम्पत्तियां, सितासित =

श्वेत और काले, प्रान्तर = सीमा भाग, सोहती = शोभित होती, मराल माला = हंसों की माला ।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में हरिऔध पूर्व उल्लिखित गोपी के माध्यम से शरद ऋतु का वर्णन कर रहे हैं । वे कहते हैं—

अनेक नवागत पक्षियों के समूह द्वारा वापियां तथा तालाव आदि सुशोभित हो रहे थे । तालावों में कमल खिलते दिखाई दे रहे थे । ऐसा प्रतीत होता था मानों तालाव खिले हुए कमलों के बहाने प्रसन्न नेत्रों से उन पक्षियों को देख रहे थे और उनकी शोभा पर आकर्षित हो रहे थे । अनेक तालाव अपनी गोद मे असंख्या कमलों को धारण किये हुए अपनी शोभा के द्वारा सबको मोहित कर रहे थे । उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानों वे अपने हाथों को फैला कर शरद-ऋतु से सम्पत्तियां मांग रहे हों । गांव के सीमा भागों में प्रिय-सुन्दर रंग वाले तथा श्वेत एवं काले वर्ण के खंजन पक्षी दिखाई देते थे । ब्रज में आनंदमग्न होकर हंसों का समूह तालावों के किनारे विराजमान था ।

विशेष—इन पदों में उपमा और उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग किया गया है । वर्णन मनोरम और शैली प्रभावोत्पादक है ।

प्रायः निरम्ब…… ……की ।।८६ से ८८ ।।

शब्दार्थ—निरम्बु = जलहीन । पावस = वर्षा काल । नीरद = बादल । प्रान्तर = सीमा भाग । मुदिता = प्रसन्न । नवोदिता = नवीन उदित हुई । राका = पूर्णिमा । बिभा = कांति । लसती = शोभायमान । सिता = श्वेत । निर्मेघ = मेघहीन । कलाकर कल = चांद की चांदनी । मनोहर = सुन्दर ।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार ही कवि कह रहा है कि अदभुत शोभा वाले विशाल आकाश में तथा हर्षोत्फुल धरती पर नये उदित हुए अगस्त नक्षत्र की कीर्ति बिखरी हुई थी । उससे वर्षा के बादल भी जलहीन या निरम्बु दिखलाई पड़ते थे । इतना ही नहीं अगस्त नक्षत्र ने कीर्ति के कारण ही सभी मार्ग और प्रान्तरों या सीमा भागों पर जल को सुखा दिया था । वर्षा-ऋतु की समाप्ति पर जब अगस्त्य नक्षत्र उदित होता है तब पानी सूख जाता है और बादल बरस चुकने के कारण जलहीन हो जाते हैं ।

आगे की पंक्तियों में कवि हरिऔध कह रहे हैं कि क्वार का महीना था । पूर्णिमा की सुन्दर और आकर्षक निशा सर्वत्र फैली हुई थी । चन्द्रमा अपनी समस्त कलाओं के साथ आकाश के वक्ष पर शोभित हो रहा था । चंद्रमा की धवल और शुभ्र कांति से सभी दिशायें ज्योतिर्मय प्रतीत हो रही थीं—उनमें एक आकर्षक विमलता विलसित थी । इस प्रकार के सौन्दर्य के साथ ही पृथ्वी पर श्वेतिमा बिखरी हुई दिखाई दे रही थी । भाव यह है कि सर्वत्र चांदनी फैली हुई थी । रात्रि के वातावरण में भव्यता थी । सुन्दर शरदागमन के अवसर पर चांद की अनुपम चांदनी की निर्मलता का दिशाओं से मेघ शून्य आकाश तथा सुन्दर धरित्री से मिलन हो रहा था । यह मिलन अत्यन्त कमनीय था । सर्वत्र ज्योत्स्ना का राज्य था ।

प्यारी-प्रभा······ ······प्रक्रिया थी ।। ८६ से ६१ ।।

शब्दार्थ—प्रभा = कांति, रजनिरंजन = रात का प्रेमी चन्द्रमा, नग = पर्वत, तयन = सूर्य, स्नात से = नहाये से, पादप = वृक्ष, विकच = खिली हुई, विचित्र-तर = वैचित्र्यपूर्ण, रजत-पत्र = चांदनी के पत्तों के समान, पयोधिपय = समुद्र के पानी से, प्लाविता = डूबी हुई, प्रथित = प्रसिद्ध, पारद-प्रकिया = पारा चढ़ाने की क्रिया ।

ससंदर्भ व्याख्या—शरद ऋतु का ही वर्णन चल रहा है । कवि गोपी के माध्यम से कह रहा है—रात्रि के प्रेमी चन्द्रमा की चन्द्रिका जब पर्वतों पर पड़ती थी तो उन्हें असंख्य नये हीरों से अलंकृत कर देती थी । चन्द्रिका तो श्वेत होती है और हीरे भी श्वेत ही होते हैं । जब चन्द्रिका सूर्य की पुत्री यमुना के जल पर पड़ती थी तो ऐसा प्रतीत होता था मानों उसमें मणियों और मोतियों का सुन्दर चूर्ण मिला रही हो ।

कवि कहता है कि सभी वृक्ष चांदनी में स्नात दिखाई दे रहे थे । वृक्षों के प्रत्येक पत्र कांतियुक्त दिखाई देता था । विकसित लतायें तथा खिली हुई वेलियां तथा पुष्पों के भार से लदी हुई शाखायें अत्यन्त अनोखी तथा स्वच्छ चांदनी में डूबी हुई थीं । भाव यह है कि सर्वत्र चन्द्रिका का राज्य था । धरित्री पर चांदनी बिखरी हुई थी । उसे देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानो सम्पूर्ण धरा चांदनी के पत्तों से भर गई हो । (बड़ी सुन्दर कल्पना है) या ऐसा लगता था मानों क्षीर सागर के दूध से भर गई हो । वृक्षों और लताओं के एक-एक पत्ते पर बिखरी हुई चन्द्रिका ऐसी लग रही थी मानों सब पर पारा चढ़ा दिया गया हो ।

था मंद-मंद······ ······चकोरी ।। ६२ से ६४ ।।

शब्दार्थ—विधु व्योम शोभी = आकाश में शोभित होने वाला चन्द्रमा, अंशु = किरण, तारक-मुक्त-माला = तारा गणों की माला, दिव्यांबरा = पवित्र और सुन्दर अम्बर वाली, पुरन्ध्री = गृहिणी ।

ससंदर्भ व्याख्या—शरद ऋतु का वर्णन किया जा रहा है । कवि हरिऔध गोपी के माध्यम से ही वर्णन करते हुए कह रहे हैं—सर्वत्र चांदनी बिखरी हुई थी । उसे बिखरी देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानों आकाश में विराजमान चंद्रमा धीरे-धीरे मन्द हास्य बिखेर रहा हो और उसके हास्य के कारण ही धरती पर अमृत बिखरा पड़ा हो । यह अमृत सुन्दर किरणों के द्वारा मनुष्यों की आखों मे प्रवेश करके उनके मन को मस्त बना रहा था ।

पूनम के चांद रूपी मुख वाली रात रूपी गृहिणी अत्यन्त कांतिमान तथा आकर्षक थी । उसने तारागण रूपी अत्यन्त निर्मल मोतियों की माला धारण कर रखी थी तथा दिव्य चांदनी का बना हुआ अलौकिक वस्त्र धारण किया हुआ था । उधर पूनम की निशा चन्द्रिका के कारण स्वर्गीय व दिव्य आकाश वाली हो गई थी । सम्पूर्ण रात्रि पूर्णतः कांतियुक्त थी । चन्द्रमा अपनी उज्ज्वल शोभा के कारण सूर्यवत् दिखाई दे रहा था । चतुर चकोरी कभी तो आकर्षित होकर चांदनी का पान करती थी और कभी उसके तीव्र प्रकाश के कारण आश्चर्यचकित हो जाती थी । शोभा बड़ी दिव्योपम थी ।

विशेष—उत्प्रेक्षा और भ्रम अलंकार के सहारे कवि ने शरद की कमनीयता और उसका निशा में फैली श्वेत चन्द्रिका का मनोरम वर्णन किया है। भावुकता के दौर में लिखी गई ये पंक्तियां अत्यन्त मोहक और आकर्षक बन गई हैं।

ले पुष्प ....गणागुणी की ॥ ९५ से ९७ ॥

शब्दार्थ—सौरभ = सुगन्धि, पय-सीकर = जल की बूंदे, रजत पत्रवती = चांदी के पत्तों वाली, मनोज्ञा = आकर्षक, सुमयूख = सुन्दर किरण, सिक्ता = भीगी हुई, वन-मेदिनी = वन की धरती, सत्पुष्प सौरभवती = सुन्दर पुष्पों की सुगंधि से युक्त, आनंद-कंद = आनंद के निधान, गणाग्रणी = गोपों गणों में अग्रणी।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व ससंदर्भानुसार ही कवि कहता है—पुष्पों की गंध लेकर तथा जल की बूंदों को लेकर अत्यन्त मधुर और प्रिय पवन मंद-मंद गति से प्रवाहित हो रहा था। वह सुन्दर चन्द्रमा की चन्द्रिका से युक्त होकर अत्यन्त आकर्षक तथा आनंददायिनी प्रतीत हो रही थी। वन की पृथ्वी सुन्दर गंध से सुवासित थी। वह सर्वाङ्ग समुज्ज्वल और शुभ्र प्रतीत हो रही थी। वन की पृथ्वी सुन्दर पवन के प्रवाह से मस्त और मादक थी तो सुन्दर और निर्मल जल के कारण दिव्य और सुन्दर किनारों वाली थी। चांदनी सर्वत्र सुशोभित थी—चांदी के पत्तों से युक्त थी। वह अत्यन्त शांत और सरस थी तथा चन्द्रमा की सुन्दर किरणों से सिंचित थी।

गोपी ने कहा कि इस प्रकार के शरदकालीन कमनीय वातावरण में जबकि वसुन्धरा का सौन्दर्य अलौकिक और अपूर्व था, वातावरण अलंकृत था, कृष्ण को रसीली और मधुर ध्वनि करने वाली वंशी की आवाज सुनाई पड़ी। कृष्ण ब्रज के गोपों के अग्रणी और आनंद के निधान थे। उनकी वंशी की मादक ध्वनि सर्वत्र प्रभाव डालने में समर्थ रहती थी।

भावाश्रयी...... ......मेदिनी में ॥ ९८ से १०० ॥

शब्दार्थ—भावाश्रयी = भावों की निधि। आदौ = आदि में। मरुत = वायु। प्रमुद-वर्द्धक = आनंद की वृद्धि करने वाले। निकेतनों = घरों को। जनताति = अति उमंगित जनता। तथांगनायें = उनकी स्त्रियां।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में गोपी शरदकालीन वातावरण में कृष्ण की मधुर मुरली की ध्वनि को सुन कर हुए कार्यों का वर्णन कर रही है। वह कहती है—मुरली विविध भावों की खान थी। उसमें मोहित करने वाला स्वर विद्यमान था। सर्वप्रथम तो उसकी ध्वनि पवन के साथ सभी दिशाओं में व्याप्त हुई, तदनंतर वह ध्वनि बहुत से कृष्ण के भक्तों और भावुकों के हृदय में सुनाई पड़ी। यह ध्वनि ऐसी थी जैसे किसी के कानों में आनंद को बढ़ाने वाली अमृत की बूंद पड़ जाये। भाव यह है कि उसे सुन कर सभी भाव-विभोर हो गये। गोपियां कृष्ण की मुरली की ध्वनि से पूर्णत: विमोहित हो गयीं और गोपों का समूह भी उसके स्वर से विमुग्ध हो गया।

ब्रज की सम्पूर्ण धरती में आनंद की लहर दौड़ गई। व्यक्तियों के हृदय में आनंद का अंकुर उगने लगा।

कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुन कर सभी ब्रजवासी अपने-अपने घरों से बाहर निकल आये। जनता अत्यन्त उमंगित भाव से घरों से निकल कर उस ओर दौड़ी जहां से कृष्ण की वंशी की ध्वनि आ रही थी। गोप और उनके साथ बहुत सी उनकी गोपियां या स्त्रियां भी उस आकर्षक ध्वनि को सुन कर बड़ी रुचि के साथ वन की मेदिनी में बिहार करने के निमित्त आ गयीं।

उत्साहिता········ ········कमनीय वीणा ॥ १०१ से १०३ ॥

शब्दार्थ--उत्साहिता = उत्साहित, विलसिता = आनंदित, रुचिर-क्रीड़न = सुन्दर क्रीड़ा, पुलिन = किनारे, तपनांगजा = यमुना।

ससंदर्भ व्याख्या—कृष्ण की मुरली की मधुर आवाज सुन कर बहुत से व्यक्ति उत्साहित और विलसित हुए तथा उसी स्थान पर आ गये। कृष्ण ने सभी को आया जान कर सुन्दर क्रीड़ा की व्यवस्था की अथवा यमुना के किनारे पर एक सुन्दर और मनभावन क्रीड़ा की योजना बनाई। सभी ने अनेक समूहों में विभक्त हो कर जंगल में सुन्दर क्रीड़ा प्रारम्भ की। सभी उपस्थित जन बाजे बजाने लगे और मधुर ध्वनि में गाने लगे। सभी के हृदय मस्ती और आनंद में झूमने लगे। मंजीरों, नूपुरों तथा करधनी की मधुर ध्वनि मीठे बाजों की ध्वनि के समान फैलती चली गई। किसी ने अत्यन्त कोमल हाथ से पहले तो वीणा के तारों को छेड़ा और फिर उसे बजाना प्रारंभ कर दिया।

थापें मृदंग········ ········चपलांगिनी का ॥ १०४ से १०६ ॥

शब्दार्थ--सधी = संतुलित, स्वर-सप्तक = सात स्वर, श्रुति मनोहरता = कानों की मुग्धता, स्वरांकित = स्वरों से युक्त, निनादित = बज कर, सुवादित हो कर = सुन्दर रूप से बज कर, सदंगुली = अच्छी अंगुली से, रागांगना विधु मुखी चपलांगिनी = प्रेम भरी चन्द्ररूपी मुख वाली चंचल किरण।

सप्रसंग व्याख्या--पूर्व संदर्भानुसार ही कवि कहता है—मृदंग के ऊपर जो सधी हुई थापें पड़ती थीं, वे सातों स्वरों को और भी सुखद बना रही थी। वे ध्वनि में अनेक उपायों से मिठास के सार को मिला कर उसे कानों के निमित्त मुग्धकारी बना रही थीं। मधुर, रमणीय और विविध प्रकार के स्वरों से युक्त वंशी-वाद्य सभी को बजाते हुए आनंदित होते थे। इन सभी वाद्यों में सर्वाधिक मधुर और आकर्षक ध्वनि कृष्ण की वंशी की थी। वे अपनी वंशी को बड़े कौशल से बजाते थे। कृष्ण की श्रेष्ठ अंगुलियों से स्पर्शित हो कर वन में जब मुरली की ध्वनि गूंजती थी तो वृक्षों के पत्ते-पत्ते पर नृत्य का सा दृश्य दिखाई देता था और पत्ता-पत्ता नृत्यमग्न हो कर झूमता रहता था। प्रेम भरी तथा चन्द्रमा रूपी मुखवाली चंचल किरण वृक्ष के

पत्ते-पत्ते पर सुन्दर नृत्य करती थी। भाव यह है कि कृष्ण की मुरली में ऐसा जादू था कि चांद की किरणें भी नृत्यमग्न सी प्रतीत होती थी।

विशेष——इन पदों में की गई कल्पना सुन्दर है।

भूव्योम...... ......प्रफुल्लिता थी ।। १०७ से १०६ ।।

शब्दार्थ——भू व्योम-व्यापित = पृथ्वी और आकाश में व्याप्त, कलाधर = चन्द्रमा, मिलित = मिल कर, लसाती = शोभित होती थी, उत्फुल्ल = प्रसन्न, विकच = विकसित, लालित्यधाम = सौन्दर्य का धाम, अश्वेतसरि = श्याम-सरिता, तदगता = वैसे ही, विहसिताति = अत्यन्त विहंसती हुई, प्रफुल्लिता = प्रसन्न।

ससंदर्भ व्याख्या— पूर्व संदर्भानुसार कवि वर्णन कर रहा है-धरती और आकाश में विकीरित चांदनी में बांसुरी का स्वरामृत मिल कर सभी के मन को मुग्ध करता था। परिणामत: धरती में अनुपम आनंद की धारा प्रवाहित हो रही थी और सर्वत्र अदभुत सौन्दर्य बिखरा पड़ा था।

इस प्रकार के वातारण में वृक्षों का समूह विशेष प्रसन्न दिखाई दे रहा था। विकसित पुष्पों का समूह माधुर्य की वर्षा कर रहा था। मंजुल-लतायें मनोरम वातावरण में पर्याप्त विकास पा रही थीं। नयी विकसित लतायें सौन्दर्य का धाम बनती जा रही थी। यमुना का सौन्दर्य भी किसी प्रकार कम नही था। अनेक प्रकार की क्रीड़ायें करती हुई, कल-कल ध्वनि करती हुई तथा सौन्दर्य और शोभा की खान यमुना की धारा भी अत्यन्त उल्लसित और आनंदमग्न दिखाई दे रही थी। यमुना भी कृष्ण की वशी से निकली मधुर लहरी के ऊपर मस्ती से प्रभाहित होकर नाच रही थी। वह मुरली की ध्वनि पर ही आसक्त थीं और अत्यन्त उत्साहित और हर्षित थी।

पाई अपूर्व··· ···बनाती ।।११० से ११२।।

शब्दार्थ—सित-चन्द्रिका = श्वेत चन्द्रिका, उरस्थल = हृदय स्थल, वेणु-निनाद = वंशी का स्वर, मीड़ = संगीत की तान, मत्तप्राय = मस्ती से भूमती हुई, वहु-पान्थ = वहुत से मार्गों।

व्याख्या—पूर्वसंदर्भानुसार ही कवि हरिऔध कह रहे हैं—शीतल मंद समीर जो अभी तक प्रवाहित हो रहा था; वह अब पूर्णत: शांत और स्थिर होकर कृष्ण की वंशी की ध्वनि से विमोहित हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो पवन उसकी मधुर ध्वनि से विमोहित होकर ही अचंचल बन गया था। श्वेत चन्द्रिका भी सर्वत्र फैल रही थी। उसका सौन्दर्य भी मनहरण था। लगता था जैसे कृष्ण को वंशी से ही मोहित होकर श्वेत चांदनी माधुर्य के साथ हंसती थी। चांदनी का रंग सफेद होता है और हंसी भी सफेद होती है, इसलिए चांदनी को हंसता हुआ कहा गया है।

स्त्री और पुरुष सभी मधुर कंठ से गीत गाते थे। उनका गाना पृथ्वी पर सभी को आमोदमग्न बनाता था। चंचल उमंग भरने वाली तथा रसीले

गलों से उत्पन्न संगीत-लहरी सभी व्यक्तियों के हृदय रूपी वाद्यों को बजा रही थी। भाव यह है कि सभी के हृदय में विभिन्न भाव उमड़ रहे थे। प्रवाहित पवन गले से निकले स्वरों को, वंशी की अनुपम संगीत लहरी को, मृदंग की मोहक ध्वनि को तथा वीणा की मोड़ों को लेकर हर्ष के साथ विचरण करती हुई मार्ग के पक्षियों को, मृगों को, मनुष्यों और किन्नरों को मस्त बना रहा था। जो कोई भी यह संगीत सुन लेता था वह उसमें ही तल्लीन हो जाता था।

विशेष—हरिऔध वर्णनों के कवि हैं। अतः जहां भी उन्हें वर्णनों का अवसर मिलता है, कर देते हैं। यह स्थल भी ऐसा ही है।

हीरा समान······ ······गूंजता था ॥११३ से ११५॥

शब्दार्थ—नाना विहग = बहुत से पक्षी, रव = शोर, पिक काकली = कोयल की मधुर आवाज, सुवाद्य = सुन्दर वाद्य, स्वन = ध्वनि, कल वादिता = मनोहर संगीत, समुदिता = समोद, रसार्द्र = रस से भीग कर, सकल वाद्य = सभी बाजे।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध कृष्ण की मुरली की ध्वनि की विशिष्टता का वर्णन कर रहे हैं। जिस प्रकार अनेक सोने के गहनों में भी हीरे का छिपा रहना सभव नहीं है और वह स्पष्ट चमक उठता है तथा जैसे विविध पक्षियों की आवाज में कोयल की आवाज छिप नहीं पाती—वह अलग ही प्रतीत होती है, उसी प्रकार विविध वाद्यों के संगीत में कृष्ण की वंशी की आवाज मिल नहीं रही थी और उसका अनुपम माधुर्य अलग ही बिखरा पड़ता था।

जैसे-जैसे कृष्ण की वंशी का मधुर संगीत बढ़ता जाता था वैसे-वैसे माधुर्य की वृद्धि होती जाती थी-सभी के हृदय संगीत के प्रभाव से घिरते जा रहे थे। सभी अपने आपको भूलते जा रहे थे। कृष्ण की मुरली की ध्वनि से रसासिक्त होकर सभी गोप-ग्वाले अपने शरीर की सुधि भी भूल बैठे थे। यकायक गायन बंद हुआ और सभी वाद्य रुक गये केवल वंशी का स्वर ही गूंजता रह गया।

होती प्रतीति······ ······दिशायें ॥११६-११८॥

शब्दार्थ—प्रतीति = आभास, अभिमंत्रिता = अभिमंत्रित, वशीकरणादिकों = वशीकरण आदि, ऋजु = कोमल, रंध्र = छिद्र, उरवेधक = हृदय को विद्ध करने वाले, चारु तानें = सुन्दर तानें, मुग्धकरी = मोहित करने वाली. चावों = उमंगों।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत कवितांश में हरिऔध गोपी के माध्यम से कह रहे हैं—यकायक जैसे सभी वाद्यों की ध्वनि बंद हो गई वैसे ही कृष्ण की वंशी की ध्वनि भी बढ़ती गई। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानों मुरली अभिमंत्रित है या मंत्रविद्ध है। मंत्रविद्ध होने से मुरली के संगीत ने सभी को मदहोश कर दिया। उसके सातों सीधे छिद्र उन्माद, मोहन और वशीकरण,

उच्चाटन और मारण के सुन्दर आश्रय प्रतीत होते थे। भाव है कि ये सभी वशीकरण के तत्त्व उनकी बांसुरी में थे। उसने सभी को बेसुध कर दिया था। बेसुध करना ही मारण था। उस संगीत के कारण सभी लोगों का मन संसार की सारी अन्य वस्तुओं से विरक्त हो गया था, यही उच्चाटन का रूप था जो घटित हुआ। कृष्ण ने अपनी वंशी से सभी प्रिय रागों को बजाया। राग-रागिनियों के जितने भी पुत्र-पुत्रियां होते हैं, वे सभी कृष्ण ने बजाये। उनका स्वरूप सभी के आगे रखकर अपना आकर्षण मंत्र फेंका। भाव सभी रागों को बजाकर उनका परिचय दिया। कृष्ण ने उन रागों से अनेक मुग्धकारी और चारु तानें निकालीं। ये तानें हृदय को बेधने वाली थीं। (रागों के पुत्रों व पुत्रियों से तात्पर्य विभिन्न स्वर-लहरियों से है।) यकायक ही उनकी वंशी की तानें रुक गयीं। सभी जिस आनंद में अवगाहन कर रहे थे उससे निकलकर चेतना सम्पन्न हुए। मुरली की ध्वनि से सभी अपनी सुधि-बुधि खो बैठे थे अब मुरली के बंद होते ही वे फिर सचेत हो गये। उमंग के साथ सभी के कंठ से आनद की ध्वनि निकलने लगी और उससे सभी दिशायें निनादित हो उठीं।

माधो विलोक····   ····कलाकी ॥११९ से १२१॥

शब्दार्थ—मुद = प्रसन्न, सुखित = सुखी।

व्याख्या—प्रसंग और संदर्भ पूर्वानुसार ही है। कवि कहता है कि कृष्ण ने सभी का आनंदित और प्रमत्त देखकर कहा कि सभी वन की सुन्दर छटा को देखो। तुमने अपने घरों से यहां आने का जो कष्ट किया है, उसे सार्थक करो तथा शोभामयी प्रकृति की गरिमा को देखो और आनंदलाभ करो। उस स्थान पर वन में स्त्रियों के बीसों समूह थे। इसी प्रकार पुरुषों के भी अनेक दल थे। हजारों की संख्या में ऐसे दल थे जिनमें स्त्री और पुरुष शामिल थे। कृष्ण की बातें सुन-सुनकर सभी वन की छटा देखने को लालायित हो रहे थे। सभी समूह आनंद के साथ वन विहार करते हुए दृश्यों का अवलोकन करते हुए आनंदित हो रहे थे। कभी तो समूह अपना हृदय नयी लता को अर्पित करता था और कभी चांदनी के सुन्दर यश का गान करता था।

आभा अलौकिक···   ···सिक्त बातें ॥१२२ से १२४॥

शब्दार्थ—वल्लभा = प्रिया, कलाकरमुखी = चंद्रमुखी, गर्विता = गर्वोन्नित, अलि दारु बेधी = लकड़ी को काटने वाला भ्रमर, अवधारता = निश्चय करता था, उद्दाम = महान्, विच्छिन्न = अलग, चन्द्रकरद्यौत = चांद की किरणों से धुले हुए, मधु सिक्त = मधुर।

ससंदर्भ व्याख्या—वन की सुन्दर सुषमा सभी को आकर्षित कर रही थी। सभी स्त्रियों और पुरुषों के दल वहां पर आनंद विभोर हो होकर भ्रमण कर रहे थे। कवि कहता है कि प्रेमीजन अपनी प्रियाओं को यह दृश्य दिखलाते हुए भ्रमण कर रहे थे और उन्हें चन्द्रवदनी की अभिधा से संबोधित

करते थे। ऐसे अवसर पर यदि रूप गर्विता नायिकायें उनका तिरस्कार कर देती थीं तो भी वे प्रसन्नता का अनुभव करते थे।

प्रेमियों का समूह कमलों से भरे हुए तालाब के तट पर जाता था और आनंद मग्न हो जाता था। लकड़ी तक को काट डालने वाला भंवरा कमल में बंद था। उसे बंदी देखकर प्रेमियों का समूह प्रेम की अपार महिमा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करता था। कई गोपियां अपने दलों से अलग हो गई थी और सभी से अलग-अलग वन में मुक्त बिहार कर रही थी। उन्हें अकेले में ही आनंद का अनुभव हो रहा था। वे या तो अलग वन में बिहार कर रही थीं या फिर चांदनी से धुले स्थानों पर बैठकर परस्पर मधुर वार्ता कर रही थीं।

कोई प्रफुल्ल **···कीट कैसा ॥१२५-१२७॥**

शब्दार्थ—प्रफुल्ल = प्रसन्न, प्रसून = पुष्प, आलोक = प्रकाश, मण्डित = शोभित, कीट = मुकुट।

ससदर्भ व्याख्या—वन-बिहार के दृश्य को देखकर कवि वर्णन कर रहा है। कोई पुरुष तो फूलों से लदी हुई लता को हाथ से हिलाकर फूलों के समूह की वर्षा करके मन से प्रसन्न होता था। कोई पत्तों और फूलों से युक्त सुन्दर शाखा अपनी प्रिया के हाथ में रखता था।

कृष्ण धीरे-धीरे उस समूह में आकर मधुर-मधुर बातें करते थे अथवा भावों से भरे स्वर में कोमलता का पुट देकर अमृतभरी मुरली बजाते रहते थे। प्रकाश से आलोकित कान्तिसम्पन्न पर्वत की श्रेणियां दिखाकर श्याम जनसमूह से यह कहा करते थे—देखो पर्वतराज के ऊपर के भाग पर चन्द्रकांत मणियों से सुशोभित अपार शोभा का मुकुट सुशोभित है। चन्द्रकांत मणियों से तात्पर्य चन्द्रमा की चांदनी से है।

विशेष—वर्णन बड़ा मधुर और सुखप्रद है।

धारा-मयी··· **····आता ॥१२८ से १३०॥**

शब्दार्थ—धारामयी = धारा से युक्त, अमल श्यामल = पवित्र और श्यामवर्णी मयंक = चन्द्रमा, खचित = युक्त, असेत-शाटी = काली साड़ी, वन-भू-वधू = वन की भूमि रूपी वहू हसिता = हास्य पूर्ण, भाषते = बोलते, पतिरता = पति में अनुरक्त, अवलम्बिता = सहारे, मलिनान्तरों = कुटिल हृदय वालों का।

सप्रसंग व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में पूर्वसंदर्भानुसार ही कवि कह रहा है—प्रवाहित श्वेत और स्वच्छ यमुना में तारागणों सहित चन्द्रमा की छाया देखकर कृष्ण ऐसा सोचते थे कि वन की धरती रूपी प्रसन्न वधू ने रत्नों से जड़ी हुई काली साड़ी पहन ली है। कृष्ण वन विहार करते जाते थे और सभी को उसका आनंदानुभव कराते जाते थे। वन में बहुत सी लतायें हंसती हुई प्रकाशित और विकसित थीं। वन में फैली और विकसित लतायें वृक्षों से लिपटी हुई थीं। उन सभी को इस प्रकार लिपटी देखकर कृष्ण ने

बताया कि लता एक सच्ची पत्नी की भांति वृक्ष से लिपटी हुई है। पति-पत्नी की भांति ही लता और वृक्षों का कैसा आनंदमय जीवन है। इसके साथ ही कृष्ण प्रकाश से सुशोभित वृक्षों के समूह के नीचे छाये हुए अन्धकार को हाथ के संकेत से बताकर कहते थे—जिस प्रकार ये वृक्ष ऊपर से प्रकाशवान और भीतर से अंधेरे से युक्त हैं उसी प्रकार भीतर के कुटिल व्यक्ति भी ऊपर से भले दिखाई देते हैं। भाव यह है कि बाहर की मधुरता भीतर की कुटिलता को व्यक्त करने में सदैव समर्थ नहीं होती है।

ऐसे मनोरम··· ···कारिणी की ।।१३१ से १३३।।

शब्दार्थ—प्रभामय = कांति युक्त, म्लाना = उदासीन, सरोजिनी = कमलिनी, तमोमय = प्रकाश रहित या अंधकार सहित, उत्कर्ष = उन्नति, शशी = चन्द्रमा, वारि राशि = पानी का समूह, मिष = बहाने, हृष्ट = प्रसन्न, मयंक आभा = चन्द्रमा की कांति, ककुभ = दिशा, अतिकांत = अत्यन्त सुन्दर, रंजन कारिणी = आनंददायिनी।

ससंदर्भ व्याख्या—इस प्रकार के रमणीय और कांतिमान समय में भी कमलिनी को पूर्णतः उदास और म्लान देखकर कृष्ण कहा करते थे, कमलिनी जैसे उदास है, वैसे ही पतिविहीना स्त्रियां भी निराश और उदास रहती हैं। पति के बिना स्त्री का जीवन पूर्णतः अंधकारमय होता है ठीक वैसे ही जैसे इस मनोरम वातावरण में भी कमलिनी म्लानमना है। सरोवरों में विकसित कुमुदों को देखकर कृष्ण सभी से यह सुन्दर बात कहते थे कि अपने अंक में पले चन्द्रमा के इस विकास को देखकर चन्द्रमा का जल कुमुद के फूलों के बहाने प्रसन्न हो रहा है, सभी ओर मयंक की आभा बिखरी हुई थी। उसे बिखरी देखकर श्याम सभी से आनंद के साथ कहा करते थे—पृथ्वी पर समस्त दिशाओं में कीर्ति और कान्ति छाई हुई है, इस समय प्रत्येक धूल का कण रंजनकारिणी प्रतीत होता था।

विशेषः—अपह्नुति और उपमा अलंकार का प्रयोग किया गया है। प्रकृति वर्णन के माध्यम से स्त्री-पुरुषों के सम्बंधों पर भी प्रकाश डाला गया है।

फूलों दलों··· ···मृगांक ।१३४ से १३६।।

शब्दार्थः—दमकती = चमकती, द्युति = शोभा, आपाद मस्तक = सिर से पांव तक, कमनीय = सुन्दर, ताटवी = वन में, मृगांक = चन्द्रमा।

ससंदर्भ व्याख्याः—कवि कह रहा है कि कृष्ण जब पुष्प के दलों पर ओस की बूंदों को शोभित देखते थे तो आनन्दपूर्वक कहा करते थे कि यह तो वनदेवियों ने कृपा की है। इसकी सुन्दर कला पर तो हजारों सुन्दर मुक्ताओं को न्यौछावर किया जा सकता है। कृष्ण यदि आपाद-मस्तक (सिर से पैर तक) सुन्दर पौधों को खिलता देखते थे तो बड़ी प्रसन्नता से कहा करते थे—चांद की चांदनी से सिंचित होकर ये छोटे-छोटे वृक्ष आनन्द में फूले नहीं समाते थे। यह आनन्द सिर से लेकर पैर तक व्यक्त हो रहा है, कृष्ण जब

चन्द्रमा को देखते थे तो भी आनन्दित होते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि यह चन्द्रमा सौन्दर्य की धरित्री का सुनहरा सुमेरु पर्वत है। सौन्दर्य भी इससे सुशोभित है। यह चन्द्रमा मनोहरता रूपी वन का कल्प वृक्ष है। यह समस्त सौन्दर्य इसी का परिणाम है। वस्तुतः यह चन्द्रमा आनन्द रूपी संसार की अमूल्य मणि है।

विशेषः—उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक अलंकारों का प्रयोग किया है। कल्पनाएं बड़ी सुन्दर बन पड़ी हैं।

है ज्योति…… ……प्रशंसा ।। १३७ से १३९ ।।

शब्दार्थः—पयोनिधि = दूध का सागर चन्द्रमा, ज्योति-आकर = प्रकाश की निधि, अभिराम = सुषमा, यामिनी = रात्रि, विलोकी = देखी, रस-सरी = रस की सरिता, शर्वरी = रात्रि, समाँ = दृश्य।

ससंदर्भ व्याख्या.—कवि पूर्व संदर्भानुसार कह रहा है कि यह चन्द्रमा प्रकाश की खान है, अमृत का समुद्र है, रात्रि का सुन्दर तथा प्यारा प्रियतम है, प्रकृति के मस्तक का भव्य आभूषण है और चन्द्रिका का आकर्षक प्रिय और सर्वस्व है।

गोपी ने कहा कि जैसी सुन्दर यह रात्रि हुई या व्यतीत हुई वैसी मनोरम और आनन्दप्रद रात्रि किसी भी व्यक्ति ने इससे पूर्व नहीं देखी थी। इस रात्रि में जो रस की धारा प्रवाहित हुई वैसी रस-धारा आज से पूर्व इस व्रज-धरा पर कभी भी प्रवाहित नहीं हुई। भाव-यह है कि रास की रात सभी ने आनन्द से व्यतीत की। रास की इस रात्रि में जैसी मधुर मुरली बजी और जैसी मृदंग आदि की ध्वनि सुनाई पड़ी वैसी कभी नहीं देखने सुनने में आई। नृत्य और गायन भी अप्रतिम था। उसका आकर्षण सभी को प्रभावित करता था, वस्तुतः इस महारात्रि में नृत्य, गायन और वादन का कुछ ऐसा समा बंधा कि यदि करोड़ों मुखों से भी उसकी प्रशंसा की जाय तो भी संभव नहीं है।

न्यारी छटा…… ……बिना जनाते ।। १४० से १४२ ।।

शब्दार्थः—निनाद = ध्वनि, उत्फुल्ल = प्रसन्न।

व्याख्याः—गोपी पूर्व संदर्भानुसार कह रही है कि जिस किसी भी व्यक्ति ने—चाहे गोप हो चाहे गोपी, कृष्ण के शरीर की अनुपम कांति को देखा है तथा जिसने वंशी की ध्वनि सुनी है और जिसने इस रात्रि बेला में हुए विहार को देखा है, उसके हृदय से कृष्ण किस प्रकार निकलेंगे? भाव है कृष्ण को भुलाना कठिन है।

चाहे सूर्य की रश्मियां अपने ताप को छोड़ दें और चाहे चन्द्रमा अपने माधुर्य को छोड़ दे, किन्तु व्रजवासियों के हृदय से कृष्ण की मूर्ति निकाली नहीं जा सकती है। कृष्ण की उत्फुल्ल मूर्ति गोप-गोपियों के हृदय से नहीं निकल पायगी। स्पष्ट शब्दों में जैसे सूर्य 'ग्रीष्मता' को और चन्द्रमा 'मधुरता' को नहीं छोड़ सकता है वैसे ही व्रजवासी कृष्ण को नहीं छोड़ सकते हैं। देखो

उद्धव ! यमुना वही है, यमुना का जल वही है, स्थान वही है, कुञ्जों का वैभव भी वही है जो वनस्थली में कृष्ण के समय में था। पुष्प जिस प्रकार पहले खिला करते थे वैसे ही अब भी खिलते हैं, व्रज भूमि में भी कोई अन्तर नहीं आया है, केवल कृष्ण के अभाव में इस सभी सौन्दर्य की प्रतीति वैसी नहीं रही है।

कोई दुखजीन...... ......कृपाधिकारी ॥ १४३ से १४४ ॥

शब्दार्थः—पसीजता = द्रवीभूत होता है, विषादवश = दुख के कारण, प्रबोध कर = समझा-बुझाकर, धरा = पृथ्वी, भूरि = पर्याप्त।

ससंदर्भ व्याख्या:—गोपी ने उद्धव से कहा कि हे उद्धव ! कोई तो दुखी व्यक्ति को देखकर द्रवीभूत होता है तो कोई दुखातिरेक से रोने लगता है और कोई समझदार दूसरे व्यक्ति को सन्तुष्ट करता है, किन्तु ऐसा सच्चा हितकारी कोई नहीं जो कृष्ण को यहां ले आवे।

अतः हे उद्धव ! तुम व्रज भूमि के सच्चे हितैषी बनो और कृष्ण को इस स्थान पर ले आओ ! मुझ सेविका की यही विनय है। व्रजवासियों के समान कोई दूसरा व्यक्ति दुखी नहीं होगा। अतः अनाथ के समान ये व्रजवासी तुम्हारी और कृष्ण की पर्याप्त कृपा के अधिकारी हैं।

बातों में··· ···विदा हुए ॥ १४५ से १४७ ॥

शब्दार्थः–आलोचित = आलोचना की हुई या कही हुई।

व्याख्या:–सर्ग की समापन पंक्तियों में हरिऔध कहते हैं–सभी गोप-गोपियां बातों में उलझी रही किन्तु फिर भी ऊबी नहीं। वे निरन्तर अपनी व्यथायें कहती रही। कुछेक पीछे से आई गोपिकायें भी अपने-अपने ढंग से उत्सुकतावश अपनी व्यथाओं का वर्णन करने लगीं। संध्या हो जाने पर कृष्ण के बुद्धिमान मित्र उद्धव ने सभी गोप-गोपियों को समझा बुझाकर अपने वृत्त को समाप्त कर दिया।

इसके उपरान्त गोपियां उद्धव की प्रशंसा करती हुई तथा पावन प्रेम का स्मरण करती हुई घर चली गई और उद्धव भी व्रज की वधुओं को सान्त्वना देकर विदा हो गये।

पंचदश सर्ग

कथा सार

मुझे मेरे प्रियतम का अवलम्ब तो प्राप्त हो गया है। तू बड़ा आकर्षक है। यदि मैं तुझे अपनी गोदी में ले पाती तो मेरा बहुत कुछ दुःख शांत हो जाता। आ तुझे गोदी में लूं। हाय ! यह क्या हुआ ? चरण चिन्ह विलीन हो गया। हे धूल अब तुझे ही अपने आंचल में बांध लेती हूँ।

हे तरणिजा (यमुना) ! तू तो मेरा दुःख सुन ही ले। कृष्ण ब्रज में क्यों नहीं आते ? क्या उन्हें यहां आना अच्छा नहीं लगता। मैंने जिसके ऊपर अपने प्राणों का बलिदान कर दिया है वह इतना कठोर कैसे हो गया है ? हे सखि ! जिसे हम हृदय में देवता की भांति स्थापित करके सदैव पूजती हैं वह क्यों हमें अपने हृदय में स्थान नहीं देता है। मुझे यह विरह वेदना कब तक मिलती रहेगी। हे यमुने ! जब मेरे ये अंग ही अपने नहीं हैं और निरंतर मुझे कष्ट देते रहते हैं तो फिर मैं प्रियतम के बारे में क्या विचार करूं। मेरे अपने अंग ही जब कृष्ण में लीन हो चुके हैं तो इसमें कृष्ण का क्या दोष है। मैं कब तक अपनी इच्छाएं दबाती रहूं। कब तक मैं दुःख की अग्नि में हृदय की आहुति देती रहूं। वह यमुना को सुना-सुना कर पुनः कहती है कि तेरे किनारे कृष्ण नित्य घूमने आते हैं। किसी दिन उन्हें अपने प्रिय कल कल नाद से मेरे हृदय की पीड़ा को सुना दे। तेरा अहसान मैं कभी न भूलूंगी। यदि भाग्यवश मैं तेरी धारा में गिर पड़ूं तो मेरे शरीर को ब्रज की धरती में मिला देना और फिर मेरे शरीर पर बहुत ही सुन्दर नीले पुष्प खिलाना। श्याम उन पुष्पों को उठायेंगे तो मेरी आत्मा को बहुत ही सुख प्राप्त होगा।

इस प्रकार वह बालिका विविध विलाप करती हुई घर लौट जाती है। कुंजों में छिपे उद्धव को वह बालिका बहुत ही व्याकुल बना गई। यद्यपि उद्धव छिप छिपकर सर्वत्र ही उसके साथ गये थे किन्तु उनका ज्ञानशास्त्र उस पवित्र और निश्छल प्रेम के समक्ष फीका पड़ गया।

सर्ग समीक्षा

इस प्रकार इस सर्ग में विरह का विस्तृत वर्णन पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया गया है जिसे पढ़ कर उसके मस्तिष्क में स्वतः ही घटनाओं की तस्वीर बनती चली जाती है। इस प्रसंग में भी भ्रमरगीत का सा संकेत है। यह सर्ग 'भावोत्कर्षता' की दृष्टि से महत्वपूर्ण है तथा इसमें कवि की सहज भावुकता अपने सहज रूप में अभिव्यक्ति पा सकी है। कवि की रम्य और भावश्लथ कल्पनाएं प्रभावोत्पादक हैं। कवि की मौलिकता ऐसे ही स्थलों पर मिलती है।

व्याख्यायें

छाई प्रात :...... **व्यथा से ।।१ से ३।।**

शब्दार्थ—सरस = रस से सिक्त, पल्लवों में = पत्तों में, आभा = शोभा, पुष्पादि को = पुष्प आदि, उन्मत्ता = उन्मत्त या मत्त, उत्कण्ठा = उत्सुकता, विटप मय = वृक्षों का समूह, दृग-युगल = नेत्र युगल, विकच = विकसना या खिलना, भानु = सूर्य, लालिमा = अरुणिमा ।

ससदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में राधा की विरह व्यथा अभिव्यक्त की गई है । विरह व्यथित राधा पागल की जैसी स्थिति को पहुँच चुकी है ।

कवि हरिऔध जी कहते हैं कि प्रात:काल पुष्पों और पत्तों पर अत्यन्त मधुर शोभा बिखर रही थी, उद्धव अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में कुन्जों में भ्रमण कर रहे थे, इसी समय भावों में विमुग्ध एक बाला जो कि अनुपम शोभा से युक्त थी, उनकी दृष्टि में आई । भाव यह है कि दिखाई दी ।

उस बाला की क्रियायें ही अभिनव थी । कभी वह पुष्पों आदि प्रकृति समूह से बातें करती तो कभी उन्मत्त होकर अन्य क्रियायें करने लगती । उद्धव भी सीधे न थे, वे उस बाला की इस अवस्था का भेद लेने के लिए वृक्षों की ओट में मौन होकर बैठ गये और उत्सुकता से उसे देखने लगे ।

उस बाला राधा के सामने अनेक प्रकार के पुष्प खिले हुए थे, ये विविध प्रकार के पुष्प राधा के हाथों में सूर्य रश्मियों के समान शोभित होते थे । उसमें एक पुष्प अपनी अरुणिमा के साथ अत्यन्त शोभित हो रहा था । उसके पास जाकर बड़ी व्यथा से राधा बोली ।

आहा कैसी तुझ...... **......हो गई है ।।४ से ६।।**

शब्दार्थ—लसी = शोभित हुई, अनूठी = अनोखी, अवनि = धरणी, समुद = विमुग्ध, सरस रसना = रसासिक्त जिह्वा, कुंठित = अवरुद्ध या बन्द, अटन करते = घूमते हुए ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तयों में राधा रक्तिम पुष्प को देख कर अपने प्रिय कृष्ण की याद करने लगती है । और उसी में कृष्ण के सौन्दर्य का आरोपण करती हुई उसे और भी निकटता, स्निग्धता, सरसता से देखती है ।

अरे पुष्प ! तुझ पर आज कितनी मधुर शोभा छा रही है । आज तूने ऐसी कांति कैसे पाई ? दसरे शब्दों में आज तू इतना कांतिवान क्यों लग रहा है । आज ऐसी इच्छा उमड़ रही है कि तुझे चूमूं और जी भर कर तेरा अवलोकन करूं और तुझे अपने हृदय-तल से लगा लूं । आज तू इतना शोभाशाली क्यों दिखाई दे रही हैं । क्या मेघ जैसी कांति वाले अर्थात् कृष्ण ब्रज में आ रहे हैं ? या तू ने उन्हें कुन्जों में भ्रमण करते हुए देख लिया है, या उन्होंने ही हर्ष सहित तेरा स्पर्श किया है । भाव यह है कि किसी न किसी

प्रकार से पुष्प को कृष्ण का संसर्ग अवश्य प्राप्त हुआ है जिसके कारण वह इतना शोभित, कांतिमान नजर आ रहा है। तेरी प्रिय रस सिक्त अरुणिमा से यह प्रतीत होता है कि तेरा हृदय तल कृष्ण के रग में डूबा हुआ है। मेरी इस समय क्या स्थिति हो रही है ? शायद तुझे कुछ भी मालूम नहीं है। मैं इस समय अत्यधिक आकुल हो रही हूं लेकिन तू मुझ से जरा बोलता तक नहीं। क्या ये तेरी रसमयी जिह्वा बंद हो गई है ? आशय यह है कि मेरी विकल स्थिति को देख कर तुझे कुछ सहानुभूति के वचन कहने चाहिये।

विशेष—उपर्युक्त पंक्तियो में पुष्प को मानव के रूप में देखा है। अतः मानवीयकरण अलंकार है। मनुष्य अपनी भावनाओं के अनुकूल प्रकृति को भी देखना चाहता है। राधा कृष्ण के विरह में विकल है, फिर उसको खिलता हुआ फूल या हंसती हुई कलिकायें कैसे रिझा सकती हैं। अतः पुष्प का उपहास करना एक ओर तो स्वाभाविक, सहज है, दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक भी है।

हाँ। कैसी मैं······ ······ऊधो-सखा के ॥७ से ९॥

शब्दार्थ—निठुर = निष्ठुर, वंचिता = दूर होना, सदय = सहृदय, पातकी-पाटल = पापी गुलाब, ऊधो सखा = उद्धव के मित्र कृष्ण।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में राधा की उपहास प्रक्रिया बढ़ती जा रही है, उसकी (पुष्प की) महक अब बदली हुई लगती है। राधा पुष्प को सम्बोधित करते हुए कह रही है कि हाय ! मैं कितनी निष्ठुर प्रकृति की हो गई हूं जो तेरे से स्वयं ही अलग होकर देख रही हूं। और इन पंखड़ियों को सजीव बना रही हूं। अरे तेरा जन्म तो कांटों से हुआ है और काष्ट तेरा साथी है फिर तू सहृदय होकर मेरे कष्टों को दूर कैसे कर सकता है। दूसरे शब्दों में तू तो कठोर प्रकृति का है मुझे फिर सांत्वना क्यों देने लगा।

व्यग्र बालिका फिर जूही के निकट जा कर करने लगी कि इन पापी गुलाबों ने मेरी बात जरा भी नहीं सुनी। वास्तव में नारी की पीड़ा नारी ही जान सकती है। जूही ! आज तू ही विकसित हो रही है, अतः मुझे तुम्हीं शांति प्रदान करो। तेरी गन्ध मुझे सदैव ही मोहक प्रतीत होती थी। लेकिन आज वह जरा भी अच्छी नहीं लगती। इसका कारण या तो यह हो सकता है कि तेरी गन्ध बदल चुकी है, तू ही बदल गई है या तेरा सर्वस्व कृष्ण के साथ चला गया है।

छोटी-छोटी······ ······बीच डूबी ॥१० से १२॥

शब्दार्थ—खचित = युक्त, छवि = शोभा, श्यामता = कृष्णता, चारुता = सुन्दरता।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कृष्ण की श्यामता जूही की कलियों में दिग्दर्शित की गई हैं लेकिन वह जूही पूर्व शोभित न होकर बदली हुई लगती है-जूही के सभी पत्ते नील वर्ण के होते हैं। यह विकसित होकर

मेरी व्यथा को शांत नहीं कर सके, तुम कठोर प्रकृति के तो मेरी व्यथा को जान ही नहीं सकते ।

चम्पा तू है ....असम्मानिता है ।।२८ से ३०।।

शब्दार्थ—सुरभि = सुन्दरता, सत्पुष्प = सच्चा फूल, भृंग = भौंरा, परम = रहस्य या मर्म, सर्वाङ्गों = सभी अंगों में, गर्भ-आधान = गर्भ स्थिर करना । मंजु = सुन्दर ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में विरही राधा अपनी व्यथा को चम्पा से कहती है । समान वर्ग के लोगों में परस्पर दुःख के सुनने की अधिक सहज अनुभूति होती है । चम्पा का फूल भी भौंरा के द्वारा परित्यागित होता है । दूसरी ओर राधा भी ऐसी ही परित्यागिता है । ऐसी स्थिति में विरह-व्यथित बालिका चम्पा से कहती है कि—चम्पा तू खिली हुई है, तुझ में रूप और रंग दोनों ही है । एक सत् पुरुष के गुण तुझ में पाये जाते हैं । लेकिन इतना होने पर भी भौंरा तेरे पास नहीं आता है । तुझ में ऐसी कौनसी कमी है । तेरे को इसकी कुछ भी चिंता रही है । न तेरे को अपनी इस पीड़ा का मर्म पता है । तूने इसके रहस्य को जानने का जरा भी प्रयत्न नहीं किया । तूने भंवरे के साथ ऐसा कौनसा अपराध किया है जिसके कारण वह तेरी सुधि भी नहीं लेता है । और मेरे जैसे ही तू अपने प्रिय से वंचित है । भाव यह कि तुझ में (चम्पा में) रूप और गुण सभी कुछ होने पर प्रिय तेरे ऊपर कृपा नहीं करता है ।

भंवरा अपने समस्त अङ्गों में सरस पराग-रज को लेकर जब फूलों पर बैठता है तो बीज का जन्म होता है । वह फूलों के मधुर रस को जानता है और उसकी गुञ्जार बहुत ही मधुर गुनगुनाहट में करता फिरता है । ऐसे प्रिय एवं सरस गुणों से सिक्त होने पर भी तू परित्यक्ता है ।

विशेष—एक दुःखी हृदय अपने जैसे दुःखी हृदय की व्यथा सुनकर या कह कर अपने भार को थोड़ा हल्का महसूस करने लगता है । यही कारण है कि राधा बेचारी चम्पा से ही अपनी व्यथा कहती है क्योंकि चम्पा के रूप एवं रस से सम्पन्न होते हुए भी भौंरा उसके पास नहीं आता है । इसी तथ्य का उद्घाटन उपर्युक्त पंक्तियों मे किया गया है ।

जो आंखों में....... .... " भी रंगेगा ।।३१ से ३३।।

शब्दार्थ—उदधि = समुद्र, विरह दव = विरह की आग, रुचिर सितता = सुन्दर श्वेत रंग ।

ससंदर्भ व्याख्या—कवि हरिऔध इन पंक्तियों में राधा के माध्यम से उसकी विरह व्यथा को कुन्द से कहलाता है । क्योंकि श्वेत रंग ही ऐसा है जिस पर समस्त रंगों का प्रभाव हो सकता है । इसीलिए अब उस बालिका को इस श्वेत कुंद से ही है । उस प्रिय की छवि मेरी आंखों में मूर्तिवत् हो गई हैं । वे मेरे हृदय सागर के लिए पूर्णिमा के चन्द्रमा की सदृश्य हैं, भाव यह है कि जिस प्रकार सागर में पूर्णिमा की ज्योत्सना लहराती है उसी प्रकार

अत्यन्त शोभा से युक्त दिखाई देती है। इसकी शोभा नीले आकाश में पूरित तारों जैसी दृष्टिगत होती है। लेकिन आज सम्पूर्ण स्थिति ही उल्टी हो गई है। आज पहली सी सम्पूर्ण शोभा नष्ट हो चुका है, उसका रूप बिल्कुल परिवर्तित होकर सामने आता है।

जूही की कली पत्तियों के मध्य खिली हुई है। उसका नील वर्ण सर्वत्र नजर आता है। लेकिन अब उसमें पूर्व सौन्दर्य कहां चला गया है? अब तेरी गति कैसी हो गई है? क्या यह सब कहानी मुझे न बतायेगी। भाव यह है कि राधा जूही की कली से भाव तादात्म्य स्थापित करके अपनी व्यथा को सुन कर शांति प्राप्त करना चाहती है। मैं तुझ में कई बातें नवीन देखती हूं। तू मेरी वेदना को अब इतना अधिक क्यों बढ़ा देती है। तुझे मेरी वंचित स्थिति को देख कर दुःख नहीं होता। क्या तू ने भी प्रिय के निष्ठुर होने का रंग प्राप्त कर लिया है। भाव यह है कि तू भी प्रिय के समान निष्ठुर हो गई है।

हो-हो पूरी······ ······चमेली न देगी ॥१३ से १५॥

शब्दार्थ—मर्म्म = रहस्य, अपर = अन्य, = युक्त भोगी = अनुभवी, भगिनि = स्त्री।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार राधा की विरह व्यथा अभिव्यक्त की गई है—जूही, तू चकित होकर मेरी व्यथा को सुन रही है या तू मेरी स्थिति को देख कर हंस रही है। मैं तो तेरा इन सब बातों का रहस्य भी नहीं जानती। तू तो स्वयं ही निराश है फिर क्या आशा की जाय। भाव यह है कि तू निराश होकर मुझ में आशा की स्निग्ध लहरें कैसे उदीप्त कर सकती है।

हरिऔध जी कहते हैं कि सुखी मनुष्य दुःखियों की विरह व्यथा को कैसे जान सकते हैं, जब तक वे दुःखों के भुक्तभोगी न हों? जूही तू तो हरे-हरे पल्लवों के मध्य फूली हुई अत्यन्त शोभनीय लगती है फिर तू मलिन पुष्प के कष्टों को कैसे जान सकती है।

चमेली को सम्बोधित करती हुई राधा कहती है कि तू बिल्कुल कोरी (शून्यवत्) है या तुझ में प्रेम का रंग भी है। यदि उस रंग में रंगित है तो क्या तुम प्रेम भरी निगाह से मुझे न देखोगी? हे प्यारी बहिन! मैं तुझ से आज दो एक प्रश्न पूछूंगी, क्या तुम उनका सहृदयता से उत्तर दोगी?

विशेष—इन पक्तियों में चमेली को बहिन बना कर फिर उससे अपनी विरह-व्यथा कहना अत्यन्त सहज एवं स्वाभाविक बन पड़ा है क्योंकि बहिन ही ऐसी रहस्यपूर्ण बातों का उत्तर देकर सांत्वना प्रदान कर सकती है।

थोड़ी लाली······ ······आन्दोलिता है ॥१६ से १८॥

शब्दार्थ—पुलकित = प्रफुल्लित, विपिन-पति = वन का पति,

तुम्हारे मुख चंद्र की चांदनी मेरे हृदय सागर में लहराने लगती है। वह कृष्ण अपनी वंशी की ध्वनि से सरस स्वरों में अमृत बरसाता है। ऐसे मेरे श्याम की विरहाग्नि से मैं पीड़ित हूं।

अब राधा श्वेत रंग के पुष्प कुन्द को ही बहिन के रूप में देखकर उससे सहानुभूति पाना चाहती है। हे बहिन मेरी और तेरी वेदना किसी हद तक मिलती जुलती हैं। अतः तेरे से ही अपनी कष्ट गाथा कह कर, आ तुझे गले लगा लूं। संसार में ऐसी अनेकों स्त्रियां हैं जो अपना अपराध जाने बिना ही दिन-रात अश्रु प्रवाहित करती रहती हैं। मैंने अब तक ऐसा देखा है कि श्वेत रंग ही ऐसा है कि जिस पर किसी भी प्रकार का रंग चढ़ाया जा सकता है। इसलिए मेरे को तेरे से आशा हो गई है; तू मेरी व्यथा को अवश्य ही शांत करेगा। और मेरे हृदय रंग में तू रंग सकेगा। क्योंकि अब गुलाब, जूही, माधवी से आशा करना तो व्यर्थ ही है क्योंकि उनका स्वयं का रंग है। उन पर मेरा कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। अतः अब हे कुन्द ! तू ही मेरी व्यथा को सुन।

क्या है होना··· ···पा सकेगा ।।३४ से ३६।।

शब्दार्थ—विकच = विकसना या खिलना। रंग राती = प्रेम रग में रंगी हुई। स्वीया = अपना। शोकोपहत = दुखी। प्रथित = प्रसिद्ध। कष्टिता = दुखिया।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में राधा अपनी व्यथा को एक मुरझायी कलिका के सदृश्य समझती है। अतः इसी का उपालंभ पुष्प से देने लगती है—हे पुष्प ! क्या विकसित होना, खिलना, प्रफुल्लित होना तुम्हीं जानते हो। तू पत्तियों की सुरभि कांति के मध्य खिला हुआ बड़ा ही मोहक लगता है। लेकिन हाय ! एक मुरझायी कलिका की क्या हालत होती है जो बिना प्रफुल्लित हुए ही अपने जीवन को खो बैठती है।

मुझे तो अब सरस कलिका ही आनंदित करती है, क्योंकि वह मेरी तरह ही यौवन प्राप्त न होने से पहिले ही घृणित हो जाती है क्योंकि वह मेरी तरह ही मुरझाकर म्लान हो जाती है। अरे पुष्प क्या तू इसे विकसित कर अपने जैसा ही बना लेगा या तू इसके दुःख से दुःखी होकर स्वयं म्लान बन जायेगा। भाव यह है कि पुष्प को भी राधा अपने भावों के अनुकूल देखना चाहती है। वास्तविक रूप से एक विरही से इसी साम्य स्थिति की आशा की जा सकती है। यदि मेरे हृदय में तू जरा भी प्रसन्नता की लहर दौड़ा देगा तो मैं अपने जीवन में अत्यंत उत्फुलता प्राप्त कर लूंगी। तू यदि मेरी व्यथा से किंचित मात्र भी द्रवित हो जायेगा तो मेरी इस स्थिति से परिचित हो जायेगा। भाव यह है कि जरा भी सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से तू मुझे देखेगा तो मैं प्रफुल्ल रह सकूंगी।

विशेष—विरही-जन्य व्यथा अत्यन्त ही मार्मिक शब्दों में अभिव्यक्त की गई है। एक विरही यही चाहता है कि वह भी विरही होकर दग्ध हो और उसे सहानुभूति की दृष्टि से देखे। इसी बात को उपर्युक्त पंक्तियों में व्यंजित किया गया है।

हो जावेगी...... ...... बनाया ॥३७ से ३६॥

शब्दार्थ—चित्तामोदी = चित्त को आनंदित करने वाला। अलि अवर्ग = भंवरों का समूह। विध्वंसिनी = विनष्ट करने वाली। विहग = पक्षी। धाता = विधाता।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार विरह व्यथित राधा पुष्प को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे पुष्प तेरी कोमलता संदिग्ध हो जावेगी यदि तू किसी दुःखी के हृदय से द्रवीभूत न हो सकेगा। फिर तेरे को सुमन नाम से कोई नहीं पुकारेगा; क्योंकि कोमल हृदयी तो व्यथित हृदय से द्रवीभूत हो जाते हैं।

अब विरही बाला केतकी पुष्प को ही अपनी व्यथा सुनाना चाहती है। अरे केतकी! तेरा शरीर सोने जैसा है। तेरे को मनमोहक प्रसन्नता भी विधाता ने प्रदान की है। लेकिन विधाता की स्थिति भी बड़ी विडम्बनापूर्ण है। जिस पुष्प को इतनी सुरभिता प्रदान की है, जिस पुष्प को मोहकता प्रदान की है उसी को कांटों से भी परिपूर्ण बनाया है। उसी के पराग कणों में लिपट कर भंवरे अंधे हो जाया करते हैं। जिस विधाता ने कालिन्दी जैसी सरिता दी है, कमनीय कुंजे दी हैं, परम आकर्षक वृन्दावन विपिन दिया है, बहुत सुन्दर वृक्ष तथा अनुपम लतायें दी हैं, विविध रंगों वाले पक्षी दिये हैं उसी ने हमारे कृष्ण को हम से पृथक कर दिया है। विधि का विधान जटिल ही नहीं, अकथनीय एवं अनुपम है।

क्या थोड़ा भी ....भरा है ॥४० से ४२॥

शब्दार्थ—उभय = दोनों, छिन्न = अलग, यातना = कष्ट, विपद्मय = कष्टमय।

ससंदर्भ व्याख्या—कवि हरिऔध इन पंक्तियों में विधाता की विचित्र स्थिति को दिग्दर्शित कराते हुए कहते हैं कि विधाता वास्तव में बड़ा मूढ़ है, क्या उसकी जटिलताओं का पार पाया जा सकता है? यदि यह जटिलता कुटिलता न होती तो संसार कितना सुखपूर्ण एवं आनंदित होता। भाव यह है कि ईश्वर की कृतियां बड़ी अनोखी एवं टेढ़ी हैं, इन्हीं के कारण संसार में मोहकता एवं सरसता कम हो जाती है। मैंने अधिकांश रूप से यह देखा है कि भंवरे पुष्पों पर मुग्ध होकर कभी भी सुख नहीं पाते। उन्हें तो अपना जीवन तक दे देना पड़ता है। पराग कणों की धूलि उसके दोनों नेत्रों को अंधा बना देते हैं। उसके पंख भी कांटों में उलझकर नष्ट हो जाते हैं।

प्रेमियों की यह क्या स्थिति होती है? उन्हें कड़ी-कड़ी यातनाएं सहनी पड़ती हैं, कष्टमय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। जीवन वाटिका का प्रेम मार्ग बड़ा ही कंटकीय होता है। ऐसी प्रेमियों की स्थिति होती है, जिसमें फंस कर वह कभी सुख तो पा ही नहीं सकता।

विशेष—प्रेम का पथ कभी सीधा नहीं होता। सीधा चाहे घनानंद जैसे कवियों के लिए हो लेकिन वह कंटकीय अवश्य होता है। प्रेम की रीति

बड़ी ही निराली होती है। इसी निरालेपन एवं विधि की विचित्रता को उपर्युक्त पंक्तियों में अभिव्यक्त किया गया है।

पूरा रागी……… ………मैं रहूंगी ॥४३ से ४५॥

शब्दार्थ—रागी = प्रेमी, गाढ़ी = प्रगाढ़ता, नवल = निर्मल, पगा = पगा हुआ, लिपटा हुआ, पान्थ = पथिक, पक्कता = परिपक्वता, परम-सुख = पवित्र आनंद या अनुपम सुख, लालिमा = अरुणिमा (प्रेम का रंग भी लाल होता है)।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में विरही बालिका बन्धूक पुष्प से ही अपनी व्यथा कहती है। बेचारी वह करे भी तो क्या? उसकी कोई सुनता भी तो नहीं है, सुनता भी तो अनाकानी कर उसे अनसुनी सी कर देता है। लेकिन विरही हृदय चुप कैसे रह सकता है—हे वन्धूक पुष्प तेरा हृदय पूर्णतः अनुरागी होता है, तू ही प्रेम की सीमाओं से भिज्ञ हो सकता है। तेरे निर्मल तन की प्रगाढ़ अरुणिमा यह प्रदर्शित करती है कि तू अपने पति सूर्य के प्रेम रंग मे पूर्णतः सिक्त है। आशय यह है कि मधूक पुष्प का रंग लाल होता है एवं सर्य का रंग भी लाल होता है। अतः दोनों की प्रकृति में साम्य होने से प्रेम की सुदृढ़ता स्वाभाविक ही हो जाती है। तेरे जैसे प्रेम-पथिक ही प्रेमी हृदय की परिपक्वता को अभिव्यक्त करते हैं। मैं जब जब तुझे देखती हूं तो अत्यन्त सुखी होती हूं। क्या तू मेरी प्रार्थना को सुनेगा, ऐसी कितनी प्रार्थनाओं के उत्तर तू दे पायेगा?

सबसे पहला प्रश्न तो है कि मैं प्रिय के रंग में कैसे रंग सकती हूं? मेरा रंग तो स्वर्ण है, मेरे प्रिय कृष्ण सांवले हैं तो तू ही बता यह वर्ण भेद दूर कैसे हो सकता है? जैसे तू (बन्धूक) अपने प्रिय के रंग में रंगा हुआ है मैं भी वैसे ही अपने को रंगना चाहती हूं।

पूरा ज्ञाता…… ……श्यामता ॥४६ से ४८॥

शब्दार्थ—ज्ञाता = जिसे सभी बातें ज्ञात हों। नीतियों = रीतियों, युक्तियां = उपाय, उत्तमा-शांति = उत्तम शांति, पक्कता = परिपक्वता, सर्वाङ्ग में = सभी अंगों में. वेलि अंक = वेलों की गोद में, अतीव = अत्यधिक, कमनीय = सुन्दर।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार राधा वन्धूक पुष्प को सम्बोधित करती हुई कहती है कि तू प्रेम की रीतियों को समझता है। इसलिए मैं तेरे से कुछ युक्तियां पूछती हूं। मैं जब तक कृष्ण रंग में लिप्त न हो जाऊंगी तब तक मुझे शांति कैसे प्राप्त होगी?

हे पुष्प! तुझ में प्रेम की अनन्यता है। मानव-वेश में पैदा होने पर भी मुझ में यह कमी है। यदि मेरे समस्त अंगों में कृष्ण रंग नहीं रमा तो मेरे लिये बड़ी ही लज्जास्पद बात हो जायेगी और यह बात मेरे लिये परम दुःख की होगी।

समस्त रंगीन पुष्पों एवं माधवी जैसे रंग हीन पुष्पों से राधा अपनी दारुण कथा कह कर श्याम-घटा फूल से ही अपनी व्यथा कहती है; क्योंकि इसका रंग भी श्याम है। सुन्दर बेलों की रमणीय गोद में यह श्याम-घटा पुष्प खिला हुआ था। राधा कहती है कि तुझे यह अत्यन्त सुन्दर श्याम रंग कैसे प्राप्त हुआ ? यह कौन से तेरे पूर्वजन्मों का फल है।

विशेष—श्याम-घटा पुष्प का रंग सांवला होने पर उसी से विरही-राधा को सहानुभूति है क्योंकि उसने अपने प्रिय को अपना लिया है। इसी तथ्य का उद्घाटन उपर्युक्त पंक्तियों में किया गया है।

हरीतिमा...... ......शरीर में। ४९ से ५१॥

शब्दार्थ—हरीतिमा = हरा, लसी हुई = शोभित हुई, नितान्त = बिल्कुल, विनोद-वर्द्धिनी = आनन्द को बढ़ाने वाली, निमग्न = डूबना, अल्प = थोड़ा, अभागिनी = दुर्भाग्यशाली।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार राधा पुष्प से कहती है कि तेरे समीप का भाग हरियाली लिये हुए है। मध्य भाग मनोहर श्वेत है तथा तेरे आगे का भाग नीला है जो कि तेरे सौन्दर्य में अनुपमता ला देता है और आनन्द की वृद्धि करता है। हे पुष्प ! तू भी अनेक रंगों से युक्त है। इसी को देख कर अत्यन्त दुःख होता है। यदि तेरा रंग केवल श्याम ही होता तो संसार में तेरी कीर्ति अपूर्व होती। इसके बावजूद भी तू कम भाग्यशाली नहीं है, तुझ में कुछ श्याम रंग है ही। अभागिनी तो मुझ जैसी ही है जिसमें जरा भी श्याम रंग नहीं है। भाव यह है कि तूने तब भी कुछ हद तक श्याम रंग को अपना लिया है। मैं तो किंचित मात्र भी उसको नहीं अपना सकी हूं। इससे अधिक दुर्भाग्य की बात मेरे लिये क्या हो सकती है ? दूसरे शब्दों में मैं अत्यन्त अभागिनी हूं।

न स्वल्प होती...... ......मुखारविन्द को॥ ५२ से ५४॥

शब्दार्थ—सर्व-काल में = सभी कालों में, श्यामलांगता = श्याम रंग, तुरंग = घोड़ा, सु-आनना = सुन्दर मुख वाली, मदीप = मेरे, मुखारविन्द = मुख कमल।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार इन पंक्तियों में उसी पुष्प को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे पुष्प तुझ में गन्ध की कोई कमी नहीं होती है इसीलिए सर्व कालों में तेरा सम्मान रहेगा। समस्त व्रज-भूमि में तेरी श्यामलता का आदर होगा।

अरे सूर्यमुखी ! तुझे मैं बड़ी ही प्रफुल्लता से देखा करती हूँ। जिस ओर सूर्य का मुख होता है उसी तरफ तेरा मुख भी घोड़े के समान तुरन्त ही मुड़ जाता है। भाव यह है कि तू सदैव अपने प्रिय मुख के दर्शन कर परमानंदित होता रहता है। पहले मेरे दिन भी तुम्हारे जैसे प्रफुल्लता के थे। सम्पूर्ण दिन अतीव प्रसन्नता से व्यतीत किया करती थी। उन दिनों जब मैं अपने प्रिय मुख को देखती तो मुझे सदैव अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होती।

विशेष—दूसरों की प्रसन्नता में विरह-व्यथा एक सूल का कार्य करती है। इसमें प्रिय-मिलन जन्य स्मृति बड़ी ही स्वाभाविक बन पड़ी है।

परन्तु मेरे अब······ ······विपत्ति का । ५५ से ५७ ।

शब्दार्थ—तथैव = तथापि, विभावरी = रात, स्वीय = अपने, निशांत = रात्री की समाप्ति पर, घोरा = घोर, रजनी-वियोग = रात्री-विरह, नृलोक = नर लोक, विपदावसान = दुःखों के दूर होने पर।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार दुःख दलित बालिका कह रही है कि ओ सूर्यमुखी ! मेरे अब पहिले जैसे दिन नहीं रहे हैं। न अब पहली जैसी प्रफुल्लता ही रही है। जिस प्रकार रात्रि-भर तू प्रिय वियोग में खिन्न रहती है उसी प्रकार मैं दिन-रात सदैव वियोग-व्यथा में तड़पती रहती हूं। रात्रि व्यतीत होने पर तेरी विपदा तो विनष्ट हो जाती है और प्रातः ही अपने प्रिय के अंक में विराजमान हो जाती है लेकिन मेरी विरह-रजनी कभी नष्ट नहीं होगी। भाव यह है कि मेरी व्यथा का कभी अन्त नहीं है।

संसार में वह नारी अत्यन्त भाग्यशालिनी होती है जिसकी विपदाओं का अन्त होकर फिर आनन्दित होने लगती है। लेकिन वह नारी तो अत्यन्त दुर्भाग्यशाली होती है जिसका दारुण दुःखों का कभी अन्त ही नहीं होता। आशय यह है कि मैं भी ऐसी ही दुर्भाग्यशालिनी हूं। मेरे प्रिय बड़े निष्ठुर हैं; वे न कभी आयेंगे और न मेरे दुःखों का कभी अन्त ही होगा।

कुवलय कुल······ ······भू पड़ी है । ५८ से ६० ॥

शब्दार्थ—कुवलय कुल = कमल का फूल, ऊबती = मन का हट जाना, कतिपय = कुछ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार विदग्ध राधा भ्रमर से कहती है कि तू अभी कमल के फूल से निकला है। कितने ही विकसित प्रिय पुष्पों का पराग भी ग्रहण किया है। हे भंवरे अब तू मालती की कुन्ज में मत जा। मैं अपनी व्यथाओं से अकुला उठी हूं। अतः तू ही मुझे कुछ सांत्वना प्रदान कर। ओ भंवरे ! मैं आज कुसुमों के पास इसलिये आई कि ये प्रफुल्लता की प्रतिमूर्ति हैं। हाय ! मुझे ये सुख किस प्रकार दे सकेंगे ? क्योंकि ये स्वयं ही विभिन्न कष्टों से दुःखित हैं। दुःखी मनुष्य दूसरों को कैसे सुख दे सकते हैं जबकि स्वयं ही वे अपने कष्टों में फंसे हैं।

अरे भंवरे ! मैंने कई कुसुमों को मुरझाते हुए देखा है। कई पुष्पों को कीड़ों के द्वारा विनष्ट होते भी देखा है। कितने ही अपने मुख पर प्रचण्ड आंधी के आघात सह रहे हैं। और कितने ही पुष्पों की पंखुड़ियों को मैंने पृथ्वी पर पड़ी हुई भी देखा है। भाव यह है कि पुष्प भी अपने जीवन में प्रसन्न नहीं है।

विशेष—आनन्दित एवं सुखी व्यक्ति ही दूसरों को सुख प्रदान कर सकते हैं। दुःखी अपनी परेशानियों के कारण दूसरों का ध्यान ही नहीं कर

सकते। इसी तथ्य को उपर्युक्त पंक्तियों में उद्घाटित किया गया है।

तदपि इन सबों में··· ···वंचिता हो ।। ६१ से ६३ ।।

शब्दार्थ—वृत्ति = प्रकृति या स्वभाव, ईदृशी = ऐसा, सौम्यता = शिष्टता, चपल = चंचल, ढीठ = जिद्दी, कौतुकी = कौतुक करने वाला अवगत होगा = ज्ञात कर सकेगा या जान सकेगा।

ससंदर्भ व्याख्या—विरह-व्यथित राधा की यह नीति है कि पहले कर्त्ता की सहानुभूति प्राप्त करना। यदि इसमें सफल नहीं होती तो कटूक्तियां सुनाना। किसी भी कुसुम ने उसकी व्यथा को नहीं सुना और न ही श्यामल भंवरे ने। पुष्प से वह कहती है कि तुम सब में बड़ी ऐंठ भरी है। दुःखी मनुष्यों को देखकर ये कभी भी दुःखित नहीं होते हैं। संसार के मनुष्यों की भी यही प्रवृत्ति होती है कि वे दूसरों की दग्ध एवं दारुण दशा से कभी भी व्यथित नहीं होते। कुसुम भी पृथ्वी के जीव हैं अतः इनका भी ऐसा स्वभाव पाया जाना स्वाभाविक है।

ओ भंवरे ! तुझ में भी शिष्टता नहीं है। मेरे दुःख को तूने मन से नहीं सुना। तू बड़ा ही चंचल, जिद्दी, कौतुकी है। तू किसी भी पुष्प पर स्थायी नहीं रहता। एक पुष्प से पराग ग्रहण करके तुरन्त दूसरे पर पहुंच जाता है। तू किसी की व्यथा को सुनता नहीं। सुने भी तो कैसे ? तू तो बड़ा चंचल वृत्ति का है। भाव यह है कि स्थिर चित्त के लोग ही दूसरों की व्यथाओं को सुन सकते हैं। यदि तू अपनी गुनगुनाहट त्याग कर थोड़े समय के लिये धैर्य से मेरी व्यथा को सुनेगा तो ज्ञात होगा कि एक बालिका अपने प्रिय के प्रेम से वंचित होकर कितनी विदग्ध है।

अलि यदि··· ··श्यामली-मूर्ति को ।। ६४ से ६६ ।।

शब्दार्थ—क्षिति तल = भूमि की सतह, प्रिय वपु = सुन्दर शरीर।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार विदग्ध राधा कहती है कि हे भंवरे ! यदि मन से मेरी व्यथा को तू नहीं सुनेगा तो भी मैं अपने दुःख को तुझ से अवश्य कहूंगी। उनसे अपनी इस व्यथा को कह कर मैं प्रसन्न अवश्य होती हूं जिनकी इस पृथ्वी पर श्यामली मूर्ति है। भाव यह है कि जिन जिन का श्याम वर्ण है, उनसे अपनी व्यथा कह कर मुझे शान्ति अवश्य प्राप्त होती है।

ओ भंवरे ! इस पृथ्वी पर तो क्या आकाश में भी श्याम वर्ण के जो मेघ घूमते हैं उनको ही मैं एकटक देखा करती हूँ और उनसे न जाने क्या क्या कहती रहती हूँ। आशय यह है कि श्याम वर्ण में मुझे अपने प्रिय कृष्ण के गुणों का ही आभास होता है। इससे उनसे मैं अपनी कथा को कह ही डालती हूँ। अरे मधुकर सुन ! इससे तुझे गर्वित नहीं होना चाहिये। तेरा श्याम वर्ण कृष्ण के अनुपम शरीर जैसा नहीं है। लेकिन जब कभी मैं तुझे देखती हूँ तो कृष्ण की मुझे याद आ जाती है।

विशेष--राधा का उपालंभ तीखा होने पर मीठा होता है। अपनी व्यथा को सुनाने को किसी न किसी प्रकार बाध्य अवश्य कर लेती है। अन्तिम पंक्तियां स्मरण अलंकार का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

तव तन पर··· ···कंटकों से ॥ ६७ से ६९ ॥

शब्दार्थ-पीत आभा = पीली शोभा, लसी = शोभित हुई। सृजा = सृजन किया या सृष्टि की, विद्ध हो = फंस जाने पर।

ससंदर्भ व्याख्या-पूर्व संदर्भानुसार राधा कहती है कि हे भंवरे! तेरे तन पर जैसी पीत आभा है उसी प्रकार मेरे प्रियतम की कमर का सुन्दर वस्त्र शोभित होता है। तेरी गुनगुनाहट को सुन कर प्रिय वंशी का मधुर गान ध्वनित हो उठता है। जब विधाता ने विरह की सृष्टि की तो स्मृति की सृष्टि करके कौनसी चातुरी की। इस स्मृति के कारण ही सभी प्राणी दुःखी रहते हैं। इसी ने प्राणियों के मध्य पीड़ा का बीज बो दिया।

हे भ्रमर! इसी प्रेम के हाथों में पड़कर तू कितनी यातनायें सहता है। विधिवश कमल के पराग के वशीभूत हो, उसके कांटों से विद्ध होकर कितने ही कष्ट भोगता है।

विशेष-हरिऔध ने इन पंक्तियों में स्मृति का मनोवैज्ञानिक रूप प्रस्तुत किया है। इसके कारण ही मानव हृदय में दुःख की उद्दीप्ति होती है। दूसरे प्रेम के वशीभूत हो पड़े पड़े कष्ट सहना, कंटकों से गुजरना एवं अन्ततः अपने को प्रेम में ही समर्पित कर देना आदि भावों की अभिव्यक्ति भी उपर्युक्त पंक्तियों में हुई है।

पर नित ·· ···इन्द्रियां हैं ॥७० से ७२॥

शब्दार्थ—बुध = ज्ञानी, तदुपरि = इसके बाद, मति-शाली = बुद्धि-शाली।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में राधा अपनी व्यथा की तुलना भंवरे से करती हुई कहती है कि जितनी मैं वेदना पा रही हूं उसकी तुलना में तेरी व्यथा न्यूनतम है। यदि मेरा दुःख तेरा कालापन है तो तेरा दुःख तेरी पीतता के समान न्यून है। दूसरे शब्दों में भंवरे पर एक पतली सी पीली धारी होती है उसी के अनुरूप तेरा दुःख है। बहुत से बुद्धिजन कहते हैं कि तेरा चित्त अनायास ही पुष्प के रूप को देखकर आकर्षित हो जाता है। बहुत से ज्ञानी पुष्प के सौरभ को ही भंवरे के आकर्षण का प्रमुख कारण बतलाते हैं। यदि हम रूप, रस और गंध को पुष्प की मोहकता का कारण मानें तो भी भंवरे को केवल तीन ही इन्द्रियां कष्टप्रद होती हैं। आशय यह है कि भंवरा रूप, रस और गंध से ही आकर्षित होता है।

पर मुझ ·· ···निर्दयी है ॥७३ से ७५॥

शब्दार्थ—सदय = सहृदय, चाव से = प्रसन्नता से।

ससंदर्भ व्याख्या—कवि हरिऔध इन पंक्तियों में भंवरे एवं राधा के

दुःख की तुलना करते हुए कहते हैं कि अबला राधा को वेदना देने वाली पांच इन्द्रियां हैं जबकि भंवरे को केवल तीन ही हैं। इसके अतिरिक्त कितने ही छल-कपट मेरे साथ अब तक हुए हैं इनकी व्यथा भी मुझे अत्यधिक व्याकुल बना देती है। आशय यह है कि मेरी दुखित एवं दारुण अवस्था तुझ से अत्यधिक बढ़कर है। जब मैं इस प्रकार दुःखी हूं तो हे कृष्ण के मित्र भंवरे तुझे मेरे प्रति सहृदय नहीं बनना चाहिये ? इतनी विकलता पर तुझे अवश्य मुझे शांति प्रदान करनी चाहिये। मेरे प्रिय तो मेरे नेत्रों से दूर होकर निष्ठुर हो गये हैं। लेकिन तू तो मेरे नेत्रों के सामने ही है अतः कम से कम तुझे तो मेरे ऊपर कृपा करनी चाहिये।

ओ भंवरे! तू नये-नये पुष्पों के पास जाकर मुग्ध होकर चाव से गुञ्जार करता है। लेकिन तू मेरी भी कुछ सुन। मेरी तू जरा भी नहीं सुनता। इतना निर्दयी तू क्यों बन गया है ?

कब टल सकता था··· ···सुधा ॥७६ से ७८॥

शब्दार्थ—कु-कपाल = बुरा भाग्य, मधुकर = भंवरा।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में भ्रमर की निष्ठुरता को उद्घाटित करती हुई बाला कहती है कि तू पुष्पों के मद में मत्त होकर मेरे मुख मंडल पर मंडराता रहता था। उसे कृष्ण टालते लेकिन वह टलता नहीं था। एक दिन वह था और एक दिन आज का भी है जबकि भ्रमर मेरी ओर देखता तक नहीं है।

अत्यधिक दुःख के भार से व्यथित होकर राधा कहती है कि दूसरों का दुःख कब कौन बांटता है ? दूसरे शब्दों मे दुःख तो सहन करना ही पड़ता है। सभी लोग वाह्य प्रेम का ही प्रदर्शन करते हैं। अगर तुम इस प्रेम का प्रदर्शन भी नहीं करोगे तो फिर सारा दोष तुम्हारे सांवले रग का होगा। अचानक ही कृष्ण दर्शन की लहर राधा के हृदय सागर में दौड़ गई। वह कहने लगी कि क्या मेरे प्रिय कल आ गये थे ? तब तो मेरे दुर्भाग्य के समस्त दिन लौट गये। मुरली की वह मधुर-मधुर ध्वनि फिर कहां से आई, वह वंशी तो हृदय की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण किये दे रही है।

विशेष—द्वितीय छंद में कवि ने दुःख की बड़ी सहज अभिव्यक्ति प्रदान की है। वास्तविक रूप से दु.ख को बांटता तो कोई नहीं है लेकिन एक सीमा तक उसे सांत्वना, साहस देकर उसके दुःख भार को हल्का अवश्य कर लिया जाता है। इसी की अत्यत स्वाभाविक एवं सहज अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में हुई है।

किस तविबल··· ···अनुकूलता ॥७९–८१॥

शब्दार्थ—मदिरता = मत्तता, मृदुता = सरसता, मधुमानता = माधुर्य, प्रतिपत्ति = प्रभाव, पोट = गांठ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में राधा कृष्ण की प्रिय वंशी से ही उसकी प्रियता का कारण पूछती हुई कहती है कि हे वंशी तूने किस काल में

कौनसा तप किया जिसके कारण पृथ्वी पर तुझे मत्तता, सरसता, माधुर्य तथा सरलता की प्राप्ति हुई। तू अपनी मधुर ध्वनि से किसको चकित नहीं करती। दूसरे शब्दों में तेरी सरस ध्वनि से समस्त पृथ्वी प्रेमासिक्त है। तेरी सुन्दर गांठों में सरसता, पवित्रता तथा मनोहरता का वास है। तेरे ये ही गुण सभी को आश्चर्य चकित कर परम आनंदित कर देते हैं।

राधा बांसुरी की मधुर ध्वनि के प्रभाव की ओर संकेत करती हुई कहती है कि तेरी गांठ में सफलता, सौन्दर्य, रुचिरता, तीव्रता, मादक, माधुर्य और सबको वश में करने वाली अलौकिक मोहिनी विराजमान है। तब तेरे प्रभाव का वर्णन क्यों न करूं। इसी के कारण तू मेरे कृष्ण की प्रिय हो चुकी है।

मुरलिके····· ··· अवलोकती ॥८२-८४॥

शब्दार्थ—कलता = सौन्दर्य। पुलकती = प्रफुल्ल होती। तव-प्रवंचित = तुझ से छली जाकर। अवलोकती = देखती।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्वसंदर्भानुसार राधा कहती है कि हे मुरलिके! तेरी ध्वनि सबको प्रिय लगती है लेकिन व्रज की गोपिकायें इसी ध्वनि से विकल क्यों हो जाती हैं। जो गोपियां नित्य पुलकती रहती थीं, हंसती रहती थीं, मधुर-मधुर बातें करती रहती थीं वे तेरी ध्वनि का आभास पाते ही बेचैन हो जाती हैं। तेरे मादक स्वर में कौनसा मंत्र फूंका हुआ है जिसके कारण सभी व्रज बालायें अत्यंत व्याकुल होकर मत्त हो जाती हैं। तेरी मधुर ध्वनि को सुनकर वे अपने-अपने घर को त्याग देती हैं। वे ज्योंही इसकी ध्वनि को सुनती हैं, उमगती हुई, प्रेम में डूबी हुई, ठगी सी अपने घरों को त्याग कर चल देती हैं।

व्रज नव-बालायें तो मुरली की ध्वनि सुनकर धोखे में पड़कर वन-वन में तेरे दर्शन के लिये घूमती फिरती हैं। उनकी दोनों आंखों से अश्रु प्रवाहित होने लगते हैं। उस ध्वनि के प्रति इतनी ललक पैदा हो जाती है कि वे कंपित हो उठती हैं और निरन्तर उसे देखने के लिये घूमती फिरती हैं। भाव यह है कि व्रज की नव-बालायें तो तेरी ध्वनि से इतनी पागल सी हो जाती हैं कि ललकती हुई, कांपती हुई, कष्ट उठाती हुई वन में कृष्ण के दर्शनों की प्यासी बनकर घूमने लगती हैं और निरन्तर घूमती ही रहती हैं।

विशेष—मुरली की मधुर ध्वनि में मादक गोपियों के अन्तःकरण का चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक एवं सहज बन पड़ा है।

यदि बजी····· ··· ····· मति हीनता ॥८५-८७॥

शब्दार्थ - मदशान्तिता = मद में मत्त करने वाली या नशा। अहर = अन्य। छिद्रवती = छिद्रों वाली। समादर = आदर। शुचिता = पवित्रता। कुलशीलता = लज्जाशील। अबलाजन = अबलायें।

ससंदर्भ व्याख्या – पूर्वसंदर्भानुसार राधा कहती है कि हे वंशी! यदि अब तूने बजना ही प्रारम्भ कर दिया है तो खूब बज। तुझ जैसी मनोहर

ध्वनि कहीं नहीं है। लेकिन इतना अवश्य कर कि इस संसार की कटुता, कर्कशता, एवं मत्तता को अपनी संगीतमयी ध्वनि से विनष्ट कर दे। अनेक छिद्रों वाली होने पर यदि तुझे कृष्ण प्रिय के आदर पात्र बनने का अनुराग है तो ऐ गौरवमयी! अपनी सरलता पावनता एव लज्जाशीलता को दूर मत करना। क्योंकि इन्हीं के कारण आदर का पात्र बना जा सकता है।

कृष्ण के हाथों में मुरली शोभित है। ओ मुरलिके! न जाने कौन से तप का यह फल तुझे मिला है। अतः अब तू बेचारी अबला गोपियों को कष्ट मत दे, जिससे तेरी अज्ञानता प्रकट हो। भाव यह है कि मुरली की ध्वनि से गोपियों को अपार व्यथा होती है। इसी का उपहास करती हुई राधा कहती है कि अब तू अधिक दुःखी मत करे।

मदीय प्यारी········ ········मदंगजा ॥८८ से ९०॥

शब्दार्थ—मदीय = मेरी । ढिग = निकट । प्रवसन = धोखा । रसोदरी = रस से परिपूर्ण । कुसंगजा = बुरे संग से उत्पन्न होने वाली। मानसजा = मन से उत्पन्न ।

ससदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में राधा कोयल को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे कुंजों की मेरी प्रिय कोयल! तू मेरे पास ही क्यों कूक उठी। क्या मेरी व्यथा से तुझे कष्ट पीड़ा एवं संकोच हुआ? जिसके कारण मेरे को सहानुभूति प्रदर्शित करने को तू कूक उठी। क्या यह तेरी कूक पुन: कुञ्जों का धोखा है? भला अब ब्रज में श्याम की बांसुरी क्यों बजने लगी। कृष्ण तो यहां है ही नहीं। वह अमृतमयी, रसासिक्त एवं मुग्ध करने वाली वह मधुर ध्वनि अब हमें कहां से सुनाई देगी।

हे कोयल! यदि तू मेरी व्यथाओं से पीड़ित हुई है तो सुन। मेरे पास बैठ! मेरी इस स्थिति को देखकर तू कहीं मत जा। मेरे समीप बैठकर हे बुरी संगत में पैदा होने वाली, मेरी गंभीर वेदना को सुन।

यथैव········ ········विमोहिता ॥९१ से ९३॥

शब्दार्थ—यथैव=जिस प्रकार। काक अंक=कौओं के घोंसले में। त्वदीय=तुम्हारे। कपाल=भाग्य। अशोभना=अशोभनीय। आविलता= कीचड़ से युक्तता। करालता=भयंकरता।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार राधा कहती है कि हे कोयल! तेरे बच्चे कोए के घोंसले में पलने पर भी उसके नहीं बन जाते हैं। वे रहते तेरे ही हैं। उसी प्रकार कृष्ण भले ही यहां पालित पोषित हो, यदुकुल में मिलने से वे उनके ही होंगे। उनके इस गमन से मैं अत्यंत दुःखी और मलिन हो गयी हूं।

राधा कह रही है कि यदि कृष्ण ब्रजभूमि को भूल जाते तो हमें उतना दुःख नहीं होता। कृष्ण की कुटिलता ने हमें भीषण दुःखदायी बना दिया है। करालता ने हमारे जीवन को विषमयी बना दिया है। मेरा जीवन

तो सब आभूषणों का ही थम गया है। हम गरीबिनी, गोकुल ग्राम की गोपिकायें मथुरा कभी नहीं जायेंगी। हम तो कृष्ण के अनन्य प्रेमी हैं। हम तो उन्हीं की कामना में निमग्न हैं। हम राजभोग लेकर क्या करेंगी। भाव यह है कि गोपियां तो कृष्ण प्रेम की ही भूखी हैं। कृष्ण प्रेम की अनन्यता इतनी प्रगाढ़ है कि उनको राजभोग जैसा आनंद भी नहीं चाहिए।

विशेष—इन पंक्तियों में गोपियों का अनन्य प्रेम अत्यन्त स्वाभाविक है इसके साथ-साथ उत्कट भी है। रसखान कवि की भांति ही कृष्ण के प्रिय कुंजों के ऊपर सर्वस्व-न्योछावर कर सकती है।

जहां न········ ······अली ॥९४–९६॥

शब्दार्थ—वांछित = अपेक्षित। भानुसुता = यमुना। कामद = इच्छा पूर्ण करने वाला। काम दुधा = कामनाओं को पूर्ण करने वाली काम धेनु। सुरेश = इन्द्र। महामना = महान। केकी = मोर। पिक = कोयल। अली = सखियां।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार राधा कहती है कि जहां पर वृन्दावन नहीं है वहां ब्रजभूमि की शोभा ही नष्ट हो जाती है। दूसरे शब्दों में ब्रजभूमि की मनोहरता वृन्दावन के कारण ही है। जहां पर यमुना अपनी प्रफुल्ल गति से प्रवाहित नहीं होती है, वहां का स्वर्ग भी हमें नहीं चाहिये। जहां पर वृन्दावन की करीलें है वे कल्पवृक्ष से भी बढ़कर हैं। यहां की गायें हमें कामधेनु से भी अधिक प्रिय है। जब हमारे नेत्रों में परमकांति वाले कृष्ण की मनोहर मूर्ति बसी है तो फिर इन्द्र की शोभा भी उसके समक्ष नगण्य है। जहां न कुंज है, न वंशी का तट है, न मोर, कोयल तथा मैना है और न जहां बड़ी भोली भाली गोपिकायें है। ऐसा स्थान चाहे हमारे लिये स्वर्ग हो हमें नहीं चाहिये। हमें केवल वही कुंज, वंशीवट, कोयल, मोर की वही मधुर ध्वनि चाहिये और कुछ नहीं। इनके बिना हमें स्वर्ग भी अपेक्षित नहीं है।

न कामुका है··· ··· ···· मलीनता ॥९७–९९॥

शब्दार्थ—कामुका = इच्छा करने वाली। अवांछिता = प्रतिकूल। वेधी = हृदय में समा जाने वाला। जिवितेश = जीवों के स्वामी, कृष्ण। नितांत = बिल्कुल।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पक्तियों में कवि हरिऔध राधा के द्वारा उसके अनन्य प्रेम को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि हमें न राज-वेश की कामना है और न नाम ही की, यदु नाथ हमें प्रिय है। हम तो ब्रज के स्वामी कृष्ण की अनन्यता में पागल, विरागिनी एवं उनके वियोग से व्यथित हैं।

कोयल को सम्बोधित करती हुई राधा कहती है कि तुझे भी हमारी उदासीन बातों एवं वेदना युक्त बातों से बड़ा दुःख हुआ है। इस स्थिति में तेरा बोलना मुझे और भी व्यथापूर्ण, दाहपूर्ण और दुविधा में डाल रहा है। भाव यह है कि तू हमारी कथा से इतनी दुःखी मत हो। इस व्यथा में तेरा बोलना मुझे और दाहक बना देता है।

नेत्रों से परिचित कराऊँगी। हे पद चिन्ह तुझे प्रियतम के चरणों जैसी सुन्दर लालिमा, दर्शनीय, कोमलता तथा तीसी के पुष्प जैसी श्यामता तो नहीं प्राप्त हो सकी। दूसरे शब्दों में तू कृष्ण ना कैसे हो सकता है लेकिन तेरा सौन्दर्य हृदय को अपार शांति प्राप्त करा रहा है। तेरा सौन्दर्य ही मुझ वियोगिनी को अत्यधिक सांत्वना प्रदान करता है।

संयोग से...... ...... मुझे ॥१६६ से १०८॥

शब्दार्थ—विदूर = पृथक, अतीव = अत्यधिक, विलोप = विलीन।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार विदग्ध बालिका पद चिन्ह को सम्बोधित करती हुई कहती है कि तू संयोगवश कृष्ण पद-कमलों से पृथक होकर पृथ्वी पर अचेत अवस्था में पड़ा है। उसी प्रकार मैं भी श्याम के चरण अरविन्द से पृथक होकर एक विचित्र मदहोशी में पड़ी हूँ। हे पदांक! यदि तुझे मैं अपने अङ्क में रख लेती तो मेरे दुःखों की व्यापकता कुछ अलग ही होती अर्थात् समाप्त प्रायः हो जाती, उसे प्राप्त कर मैं एक दिव्य पदार्थ की प्राप्ति कर लेती तथा मेरा शेष जीवन अत्यन्त शांतिमय व्यतीत होता। भाव यह है कि उस चरण धूलि को यदि प्राप्त कर धारण कर लिया जाय तो अपार शांति प्राप्त हो लेकिन उसका गोदी में उठा पाना तो कदापि सम्भव नहीं है।

हे प्रिय पदांक! अब मैं तुझे अत्यन्त रुचि के साथ उठाती हूँ। तू मेरी गोद में आ जा। लेकिन हाय दैव! यह क्या हुआ! अब मैं क्या करूं? वह परम प्रिय पदांक अब कहाँ विलीन हो गया?

विशेष—विरहिणी राधा की विकलता अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी है जिसने अभिव्यक्ति को व्यंजकता प्रदान कर सजीव बना दिया है।

क्या है...... ......दृगों को ॥१०९ से १११॥

शब्दार्थ—युग-हस्त = दोनों हाथ, अर्चना = पूजा, जड़ = मूर्ख, विदेह = बिना शरीर के, सतत = निरन्तर।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में राधा अपना ही उपहास कर रही है तथा उसकी अकिंचना, द्रष्टव्य है। वह अपने दोनों हाथों को ही सम्बोधित करती हुई कहती है कि—क्या मेरे दोनों हाथ इतने कलंकित हो गये है। ये उस पावन पदांक को भी नहीं पा सका। ये अवश्य ही अति निंदा के योग्य हैं जो कि उस पदांक की पूजा तक नहीं कर सके। ये हाथ बड़े दुष्ट हैं। वास्तव में मैं भी अत्यन्त अज्ञानी हूं। मैं भ्रमित होकर इतना भी जान नहीं सकी जो पदांक बिना शरीर के इस बन में पड़े हैं उसे किसी अन्य के हाथों से कैसे स्पर्श किया जा सकता है।

हे पदांक की पवित्र रज! तू बहुत ही प्रशंसा के योग्य है। तुझे ही मैं अपने अंचल में बांध लेती हूं। तू ही मुझे निरन्तर सांत्वना प्रदान करती रहेगी और अंधकार में प्रकाश बता कर उसे (अज्ञान रूपी अंधकार) नष्ट

कर देगी। भाव यह है कि जब मेरे नेत्र निराशा के अंधकार में भटक जायेंगे तब तू ही धैर्य रूपी प्रकाश करेगी।

कुछ कथन……… ………प्यार-द्वारा ॥२१२ से २१४॥

शब्दार्थ—स्वकीया = अपनी, सदय = सहृदय, प्रति-पल = प्रति क्षण, केलि शीला = क्रीड़ा करती हुई, निनादी = बजाने वाले, अलिकुल मति लोपी = भ्रमरों के समूह को भ्रम में डालने वाला, पांवड़े = स्वागतार्थ वस्त्र बिछाना।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में विरही बाला अपनी व्यथा को कल कल करती हुई यमुना को ही बताती है। हे यमुने ! क्या तू सहृदय हो मेरी कुछ व्यथाओं को सुनेगी ? क्या तू प्रति क्षण क्रीड़ा करती हुई बिना सुने बहती ही चली जायेगी। तू मेरी भी कुछ सुन। हे चंचल जल वाली यमुने ! मधुर बांसुरी बजाने वाला, रमणीय अंगों वाला, भंवरों को भ्रमित करने वाला, घुंघराले केशों वाला सौन्दर्यशाली, सुन्दर मुख तथा मधुर मधुर बातें कहने वाला आज तक भी लौट कर नहीं आता। वह वहां जाकर न जाने किन कार्यों में व्यस्त हो गया है। जिस कृष्ण की ओर मेरी प्रति क्षण आंखें लगी हुई हैं वह न जाने क्यों घर नहीं आता है। उसे लौट कर घर आना न जाने क्यों अप्रिय हो गया है। जिसके लिए मैं पल-पल अपने पलकों के पांवड़े बड़े ही प्यार से बिछाती हूं, वह प्रिय कृष्ण न जाने क्यों लौट कर नहीं आता।

विशेष—विरही राधा की व्यथितता अब चर्म सीमा पर पहुंच चुकी है। उसकी आंखें निरन्तर कृष्ण दर्शन की ओर लगी हुई है। अब उससे अधिक नहीं रहा जा सकता। इसी विरह-विफलता की मार्मिकता अत्यन्त हृदयस्पर्शी बन पड़ी है।

मम उर……… ………ताक पाया ॥११५ से ११७॥

शब्दार्थ—विलसित = विमुग्ध, ताक पाया = देख पाया या दर्शन देना।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार कृष्ण की निष्ठुरता को उद्‌घाटित करती हुई राधा कहती है कि जिस कृष्ण के लिये मेरा हृदय मोम के समान कोमल है उसी ने मेरे लिये पत्थर के समान हृदय क्यों बना लिया है ? मेरी जिस चेतनता में उसकी स्मृति की चिंता बनी हुई है उसे भी वह क्यों चुरा कर ले जाना चाहता है। जिस पर मैंने अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया वही प्रियतम अब इतनी निर्दयता का व्यवहार क्यों कर रहा है। जिस कुंवर के बिना याम युगों के समान लम्बे हो गये हैं वह अब मेरे नेत्रों को अपनी सुन्दर छवि को क्यों नहीं दिखलाता है। अब वह कहां चला गया है ? जिस प्रिय को हमने अपना सर्वस्व त्याग कर प्राप्त किया, उसने हमको त्याग कर क्या पा लिया है। जिसका मुख कमल हम सर्वदा देखती रहती हैं वह हमारी ओर जरा भी नहीं देख पाता। कैसी विडम्बना है। हमारा प्रिय हमारी ओर थोड़ा भी ध्यान नहीं देता।

विलसित ·· ···　　　　　　　　　　　　　　····· अजता है ।।११९ से १२०।।

शब्दार्थ–ठौर = स्थान, निर्ममों = निष्ठुर, मद = नशा ।

ससंदर्भ व्याख्या–इन पंक्तियों में भी पूर्व संदर्भानुसार राधा कहती है कि उस कृष्ण की मूर्ति हमारे हृदय में सदैव देवता की भांति पूजित होती है वह हमारे लिए जरा भी स्थान तक नहीं देता है। वह निरन्तर मुझे कलपाता रहता है; जिसके बिना मेरे प्राण जरा भी धैर्य धारण नहीं करते। मेरे नेत्र उसी के रूप में रमे हुए हैं लेकिन वह तो निर्मम की भांति हमें रुलाता है। मेरा मन उसके प्रेम में मग्न है, लेकिन उसको तो वह स्वयं ही अज्ञान का नशा पिला रहा है। हम कृष्ण के हाथों बिक चुकी हैं लेकिन वह हमारा स्मरण तक नहीं करता। मैं भी क्या करूं। जब मेरे ये अङ्ग ही मेरा साथ नहीं देते तो और लोग क्यों साथ देने लगे। और फिर मैं अपने प्रियतम के बारे में क्या विचार करूं। जब मैं अपने शरीर का ही रहस्य नहीं जान रही हूं तो कृष्ण के विषय में तो कुछ कहना नितान्त मूर्खता ही है।

दृग अति अनुरागी···· ···　　　　　　········देख पाऊं ।।१२१ से १२३।।

शब्दार्थ–आतुरी = आतुर, उत्कट, विदलित = उद्वेलित, विरहदव = विरहाग्नि, विलंप = विलाप करना या कलपना।

ससंदर्भ व्याख्या–पूर्व संदर्भानुसार ही राधा आगे कहती है कि मेरे नेत्र कृष्ण की श्याम मूर्ति के प्रेमी हैं। मेरे दोनों कान मुरली की ध्वनि को ही सुनना चाहते हैं। प्रियतम से मिलने की उत्कट अभिलाषा निरन्तर बढ़ती जा रही है और चित्त को आतुर बना रही है। मेरा हृदय उद्वेलित हो रहा है। नशा छाया जा रहा है। यदि मैं रात भर नेत्रों से अश्रु धारा न बहाती तो विरहाग्नि मुझे सता कर भस्म कर डालती। मैं कब तक अपने हृदय को दग्ध करती रहूं। यह जला जा रहा है। मैं कब तक दुःख की अग्नि में हृदय को जलाती रहूं। मैं बन बन में विकल होऊं या पृथ्वी में समा जाऊं। मैं किस प्रकार अपने प्रियतम से मिल पाऊंगी।

विशेष—इन पंक्तियों में विरहणी राधा के गीत अत्यन्त हृदय विदारक बन पड़े हैं। जिनकी उत्कर्षता बन 'बन विलपूं या धसूं मेदिनी' में देखी जा सकती है।

तव तट पर······　　　　　　　　　　······भगाती ।। १२४ से १२६ ।।

शब्दार्थ––नित्य = प्रति दिन, मदिया = मेरी, असेतांगिनी = श्याम शरीर वाली, तरलित = चंचल, प्रतपित = दुःख से दग्ध।

ससंदर्भ व्याख्या––इन पंक्तियों में राधा यमुना को सम्बोधित करती हुई कहती है कि–हे यमुने! मेरे प्रिय नित्य ही तेरे तट पर आकर अपने भावों में मत्त होकर विचरण किया करते हैं। उनसे अपनी कल-कल ध्वनि में मेरे सभी व्यथाओं को सुना देना। प्रकृतिवश यदि मैं तेरी धारा में पड़ जाऊं तो मेरे शरीर को ब्रज भूमि में ही मिलाना। उस पर सुन्दर नीले रंग

के कुसुम खिलाना । श्याम इन पुष्पों को तोड़ेंगें । इसी से हमें अपार सुख प्राप्त होगा ।

हे यमुने ! मैं मेघ जैसी शोभा वाले कृष्ण में अनुरक्त हूं और तू भी श्याम वर्ण की है । तेरा चंचल जल है, मेरा हृदय भी अत्यधिक अशांत है । हे सखी ! अब मैं विरह-ताप में जली जा रही हूं । तू मुझे शांति प्रदान कर ।

रोई आके........ ....अल्प भी ।। १२७ से १२८ ।।

शब्दार्थ—सरल है ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध इस सर्ग को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि पहले विरही बाला ने कुसुम से आ कर अपनी व्यथा को कहा । इसके बाद भंवरे से भी अपनी दारुण कथा कही। इसके उपरान्त वंशी के द्वारा भ्रम में पड़ कर उससे भी अपनी कहानी कही । इसके बाद कोयलों की कूक भी उसका साथ नहीं दे सकीं । फिर कृष्ण पदांक से भी अपनी विरह व्यथा कही और इसके बाद यमुना के तट पर आई और उससे भी अपनी विदग्ध स्थिति की कथा कही । इसके पश्चात् वह बाला ऊधव को व्यथित करके चल दी यद्यपि ऊधव छिपे हुए थे, लेकिन सब कुछ सुना फिर भी उनका शास्त्र-ज्ञान उस अखण्ड, अपार और परम पीड़ित प्रेम के समक्ष फीका पड़ गया ।

षोडश सर्ग

कथासार

षोडश सर्ग प्रियप्रवास का महत्वपूर्ण सर्ग है। इसमें कवि ने अपनी प्रतिभा के बल पर अनेक मौलिक बातें कहीं हैं। सर्ग का प्रारम्भ वसन्त मास से हुआ है। कवि ने सर्वत्र फैली वसन्त की शोभा का वर्णन किया है। वसन्त के मधुर मास के वर्णन के समय बताया गया है कि पक्षियों की चहचहाहट मन को मुग्ध करने वाली थी। कोयल की कूक सर्वत्र गूंज रही थी। कहीं पर कमल खिले हुए थे तो कहीं कुमुद अपनी शोभा को बिखेर रहे थे। वृक्षों में नवीन पल्लव आ गये थे। फलों के भार से वृक्षों की कलियां झुकी हुई थीं। अनार और कचनार के वृक्ष मन मोहते हुए नयी शोभा बिखेर रहे थे।

वसन्त का यह सुहावना समय सामान्य जनों के लिए हर्षातिरेक से युक्त भले ही हो, किन्तु विरही ब्रजवासियों के लिए वह परम कष्टदायक ही था। नव विकसित कोपलें अग्नि बरसाती प्रतीत हो रही थीं जिससे तन और मन दग्ध होता जा रहा था। कचनार और अनार भी दुखद ही थे। पलाश पंक्ति भी बड़ी भयंकर दिखाई देती थी। कोयल की कूक भी तो बहुत आकर्षक प्रतीत नहीं हो रही थी।

कवि ने इस वर्णन के साथ ही बताया है कि कीर्तिशाली वृषभानु के घर के समीप एक अदभुत वाटिका थी। उद्धव जी जो ज्ञानियों के अग्रगण्य थे, राधा को समझाने के लिए वहीं पर उपस्थित थे। वातावरण की हर्षोत्फुल्लता भी राधा के मन को खिन्नता में बदले हुए थी। इसी वाटिका में राधा जी रहती थीं। वे कृष्ण के विरह में डूबी शांत भाव से अपने जीवन को बिताती थी। उद्धव ने उन्हें इसी वाटिका में भ्रमरों के दल से घिरा देखा। राधा की शांत, सौम्य और दिव्य मूर्ति को देख कर उद्धव का हृदय विचित्र भावों से भर गया। शांति की प्रतिमूर्ति राधा विषाद भाव को भी व्यक्त कर रही थीं। राधा ने उद्धव को अपनी ओर आता हुआ देख कर सम्मान दिया, बिठाया। उद्धव ने भी राधा को कुशल वृतान्त पूछा और फिर कृष्ण का संदेश कहना प्रारम्भ किया--

"हे प्रिय हम तुम अलग हो गये तो क्या हुआ। अन्ततः हम तुम तो एक ही हैं। मिलन की कोई आशा नहीं रही है, जो हृदय मिल कर एक हो गये थे वे ही अब विधाता के विधान के कारण पृथक हो गये हैं। कवि के ही शब्दों में—

प्राणाधारे परम-सरले प्रेम की मूर्ति राधे।
निर्माता ने पृथक् तुम से यों किया क्यों मुझे है।।

प्यारी आशा प्रिय मिलन की नित्य है दूर नहीं होती ।
कैसे ऐसे कठिन-पथ का पान्थ मैं हो रहा हूं ।।
जो दो प्यारे हृदय मिल के एक ही हो गये हैं,
क्यों धाता ने विलग उनके गात को यों किया है,
कैसे आके गुरु–गिरि पड़े बीच में हैं उन्हीं के,
जो दो प्रेमी मिलित पय औ नीर से निलशः थे ।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भोग आदि की इच्छायें बड़ी मधुर होती हैं किन्तु लोक कल्याण की भावना भोगादि से भी मनोरम होती है । आत्मा की सिद्धि का सोपान परम पद या मुक्ति की कामना है । किन्तु दूसरों के निमित्त मुक्ति की कामना को छोड़ कर अपनी आत्मा का बलिदान करने की भावना और भी पुनीत है । मुक्ति की इच्छा से किया गया तप आत्मार्थ और संकीर्ण है, उसमें आत्म त्याग की भावना नहीं है । आत्म त्यागी तो संसार के लिए अपना सभी कुछ त्याग देता है । भोग आकर्षक होकर भी हित-कर नहीं है ।

प्रत्येक व्यक्ति अपने सुख को चाहता है । सभी अपने अपने सुखों और स्वार्थों से बिद्ध हैं किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो आत्म बलिदान को चाहते हैं— स्वार्थ से परे रहते है ! भाग्य को यदि प्रबल माना जाय तो इच्छाओं की प्राप्ति के निमित्त दुख प्राप्त करना बेकार है । राधा यह कहते हुए बहुत ही दुखी थी । ब्रजोपम हृदय को समझते हुए उसने जैसे-तैसे अपनी बात कही । श्याम का संदेश सुनने के बाद उद्धव से अपने आंसू पोंछते हुए कहा—

मैं हूं ऊधो पुलकित हुई आपको आज पा के,
संदेशों को श्रवण करके और भी मोदिता हूं,
मंदीभूता उर-तिमिर की ध्वंसिनी ज्ञान आभा,
उद्दीप्ता हो उचित गति से उज्ज्वला हो रही हैं,
मेरे प्यारे पुरुस पृथ्वी-रत्न और शांत धी हैं,
संदेशों में तदपि उनकी वेदना व्यंजिता है,
मैं नारी हूँ तरल उर हूँ प्यार से वंचिता हूं,
जो होती हूं विकल विमना व्यस्त वैचित्र्य क्या हैं ।

राधा ने कहा कि हे उद्धव ! मैं कृष्ण के हृदय की बातों को भली भांति समझती हूं । मैं संयमित जीवन बिताती हूं । इतने पर भी मन में शांति नहीं मिलती है । आकाश में उड़ते हुए पक्षी मुझे प्रेरणा देते हैं कि मैं भी उड़ कर कृष्ण के पास चली जाऊं । कभी-कभी जब व्यथा का भार अधिक बढ़ जाता है तो मेरे मन में विचार आता है कि मैं वायु, बन कर ही उनके चरणों का स्पर्श करूं । मुझे जैसे ही श्याम का स्मरण आता है वैसे ही विचलित हो जाती हूं । इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि कृष्ण दर्शन की लालसा लोक कल्याण की लालसा से तीव्र है ।

रूप के आकर्षण से मोह हो जाता है और उसका जो प्रभाव पड़ता है बहुत ही व्यापक होता है । काम उसकी प्रतिमा माना जाता है जो फूलों के बाणों से सम्पूर्ण संसार को विद्ध कर देता है । उसकी समस्त लीलायें हृदय को नशीला बना देती है । उसकी शक्ति विचित्र होती है । विद्वानों की दृष्टि

में यह प्रणय नहीं है। संभोग की कामना बहुत प्रबल होती है, किन्तु प्रणय से उत्पन्न कामना ही स्थायी और प्रमुख होती है। प्रणय का मूल कारण रूप नहीं है वरन् बुद्धि की वृत्तियां हैं जो सद्गुणों को देख कर उद्दीप्त हो उठती हैं। उन गुणों के कारण ही तो प्रणय स्थायी होता है। रूप तो विकार युक्त होता है। अतः रूप के विकार के साथ-साथ ही मोह भी विकृत होता जाता है।

कवि ने यहां मोह और प्रेम का अन्तर बताया है। उसने कहा है कि मोह में अनेक वासनाओं का मिश्रण रहता है, उसमें आवेग रहता है, किन्तु प्रणय निष्काम होता है, सात्विक होता है और उसमें आत्मबलिदान की भावना भी होती है। मोह की मादकता क्षण भर में ही हृदय को घेर लेती है किन्तु, पुण्य का विकास शनैः शनैः होता है। मोह में हृदय की सभी वृतियां अपने अधीन हो सकती हैं और मनुष्य का कमजोर बना देती हैं। इसके विपरीत प्रणय पवित्र भावनाओं का द्योतक होता है। प्रणय की प्राथमिक विशेषता आत्मबलिदान की तत्परता है। प्रणय में सबसे पहले तो गुणों को ग्रहण किया जाता है। तदन्तर किसी भी कामना को स्थान मिलता है। कामना के पश्चात् दोनों के मन में सौहार्द का सहृदयता का विकास होता है। धीरे-धीरे वह स्थिति भी आ जाती है जबकि व्यक्ति अपने आपको भूल कर आत्म बलिदान कर बैठता है। रूप और मोह आकर्षण पर जीवित हैं जबकि प्रणय सहृदयता और आत्मबलिदान पर !

राधा ने कहा कि व्रज की अधिकांश बालिकायें कृष्ण पर अनुरक्त हैं। मोहाविष्ट होती हुई भी अधिकांश गोपियां प्रणय के मार्ग पर आगे बढ़ रही हैं। वे हृदय से कृष्ण को चाहती हैं, उनके लिए कृष्ण को भुला सकना आसान काम नहीं है। मैं स्वयं कृष्ण के विना एक पल भी जीवित नहीं रह सकती हूं। बहुत संभव है कि आप मेरी बातें सुनकर कहें कि मैं मोहाविष्ट हूं, किन्तु मैं प्रणय मार्ग की पगडंडी पर चल रही हूं। हमारी इन्द्रियां सात्विक विषयों में ही मुग्ध होती हैं ठीक वैसे ही जैसे एक ही फूल को पक्षी, भंवरा और माली तीन भिन्न दृष्टियो से देखते हैं, उसी प्रकार विषयों को भी विविध दृष्टियों से देखा जाता है। मेरी कामना तो यह है कि प्रियतम आवें और मुझे दर्शन देकर सुख प्रदान करें। कभी-कभी यह भाव भी उत्पन्न होता है कि वे न आवें लोक कल्याण में लगे रहें। राधा के मन की इस मनः स्थिति का चित्र कवि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

> प्यारे आवें सु-वयन कहें प्यार से गोद लेवें,
> ठंडे होवें नयन-दुख हों दूर मैं मोद पाऊं,
> ये भी हैं भाव मम उर के और ये भाव भी हैं,
> प्यारे जीवें जगहित करें गेह चाहे न आवें।

राधा कहती है कि पहले तो चन्द्रादि की शोभा को देख कर मुझे कष्ट होता था किन्तु अब नहीं होता है। अब तो मैं इन्हीं में कृष्ण के दर्शन कर लेती हूं। सम्पूर्ण संसार में कृष्ण और कृष्ण में ही सम्पूर्ण संसार दिखाई देता है। कवि ने लिखा है—

> हो जाने से हृदय तल का भाव ऐसा निराला,
> मैंने न्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये,

मेरे जी में हृदय-विजयी विश्व का प्रेम जागा,
मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय-प्राणेश ही मैं।

भक्ति से सभी का कल्याण होता है, किन्तु श्रेष्ठ भक्ति वह है जिसमें भक्त सम्पूर्ण संसार को अपने प्रेम और अपनी सेवा से भर देता है। दीन दुखियों की सहायता करना तथा उनकी सेवा करना भक्ति ही है। ईश्वर की प्राप्ति का साधन भी यही भक्ति है। प्रियतमा का काम भी प्रिय का साधन है। इसलिए प्रियतम और ईश्वर की भक्ति में कोई भेद ही नहीं है।

राधा ने उद्धव से कहा कि मैं प्रियतम के संदेशों का सुन कर उसका पूर्णतः पालन करूंगी। उनका संदेश मेरे जीवन का संदेश है। यह ठीक है कि मुझ में अभी मोह की मात्रा ही अधिक है तथा नित्य प्रति मैं प्रणय के रंग में रंगी रहती हूं, किन्तु फिर भी मैं पवित्र कार्यों में संलग्न हो जाऊंगी। तुम मुझे ऐसे ही मत समझो। मैंने कृष्ण के निकट बैठ कर भक्ति का पाठ पढ़ा है। उनसे सारी शंकायें दूर की है। अब तो आप कृपा करके कृष्ण से हमारा यह संदेश कह दीजिए—

मैं ऐसी हूं न निज दुख से कष्टिता शोक मग्ना,
हा! जैसी हूं व्यथित ब्रज के वासियों के दुखों से।
गोपी गोपों विकल ब्रज की बालिका बालकों को,
आके पुष्पानुपम मुखड़ा प्राण प्यारे दिखावें,
बाधा कोई न यदि प्रिय के चारु-कर्त्तव्य में हो,
तो वे आके जनक-जननी की दशा देख जावें।

यह ठीक है कि लाभ से लोभ ही बढ़ता है, यह भी सत्य है कि उनके आने से अनेक भ्रांतियां दूर हो जावेंगी। मैं स्वयं प्रियतम की इच्छा का पालन करना चाहती हूं—संसार के काम आना चाहती हूं! यह कह कर राधा शांत हो गई।

सर्ग समीक्षा

प्रिय प्रवास का यह सर्ग सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसमें प्रिय प्रवास का महत्व स्पष्ट हो जाता है। सम्पूर्ण प्रिय प्रवास का संदेश इस अकेले सर्ग में सन्निहित है।

१. वसन्त का व्यापक और वस्तुपरक वर्णन बहुत ही भव्य बन पड़ा है।
२. राधा के पारम्परिक चरित्र को नवीनता तथा उदात्तता प्रदान की गई है। उसमें नया मोड़ आया है।
३. मोह और प्रणय की अच्छी व्याख्या की गई है। राधा मोह को त्याग कर प्रेम और फिर भक्ति की ओर बढ़ने का प्रयत्न करती दिखाई गई है।
४. कृष्ण के संदेश का पालन करने के लिए प्रस्तुत राधा चरित्र अत्यधिक अस्वाभाविक सा हो गया है। राधा का जो प्रणय की पुजारिन थी यकायक लोक-कल्याण और विश्व प्रेम की भूमिका

पर उतर आना यथार्थ से दूर है। सूर की राधा में यह बात नहीं है। यह तो वैसी ही बात हुई जैसे कोई अभिनेत्री प्रणय का अभिनय करते-करते यकायक उपदेश देने लगे और आदर्श बघारने लगे।

५. कवि की दृष्टि लोकोपकारी है। यह सुधारवादी दृष्टि से प्रभावित है। अतः वह राधा को भी उसी स्तर पर ले आने से नहीं चूका है।

६. भक्ति का वर्णन भी पारम्परिक नहीं है। उसमें भी आधुनिक युगीन परिस्थितियों की छाया स्पष्ट दिखाई देती है। भक्ति में निष्कामता और आत्म बलिदान के साथ-साथ लोक-कल्याण का मार्ग भी सुझाया गया है।

७. प्रिय प्रवास के षोडश सर्ग पर गीता का प्रभाव परिलक्षित होता है। कवि वस्तुतः यहां गीता का ऋणी है।

८. प्रियप्रवास का यह सर्ग इसलिए भी अधिक आकर्षक और महत्व पूर्ण बन सका है कि इसमें अकेली राधा और उद्धव का वर्णन है। सभी व्रजवासियों की व्यथा-व्यंजना नहीं है। इससे प्रभाव पुञ्जीभूत हो गया है।

व्याख्यायें

विमुग्धकारी मधु··· ···कोकिल काकली मयी ।। १ से ३ ।।

शब्दार्थ–मधुमास = बसंत का माह, मंजु = सुन्दर, वासंतिका = शोभा, नवीन भूता = नवीन पल्लवों से युक्त भूमि, कूजित = पक्षियों के शोर से परिपूर्ण, पल्लवान्विता = पत्तों से युक्त, रंजिता = रंगीन, मकरन्द मोदिता = रस से सिक्त, अकीलिता = स्वच्छन्द।

ससंदर्भ व्याख्या–इन पंक्तियों में कवि हरिऔध ने बसंत मास का बड़ा ही विमुग्धकारी वर्णन किया है। प्रकृति का बसंत मानस का भी बसंत होता है। प्रकृति का जो उल्लास पृथ्वी पर दिखाई देता है वही मानस हृदय पर भी फूट पड़ता है, बसंत माह बड़ा ही विमुग्ध कर देने वाला था। पृथ्वी भी अपनी मधुर सुषमा में लिप्त थी। समस्त वन में सरस, मोहक वातावरण बना हुआ था। सारे वन में इस विमुग्धता, सौरभता से एक प्रकार का विचित्र सा वातावरण बना हुआ था। नवीन पल्लवों से युक्त भूमि में, हर्षित लताओं में, पक्षियों के समूह में, निकुञ्ज में, पक्षियों की मधुर ध्वनि से कूजित वन आदि में बसंत की अनुपम शोभा बिखर रही थी।

समस्त वन-प्रदेश कोमल पत्तों से प्रफुल्ल थी। सुन्दर पुष्पों की आभा और मकरन्द रस से वन की डालियां झुक रही थी। कोयल की संगीतमयी ध्वनि से वन गूञ्ज रहा था।

विशेष–इन पंक्तियों में बसंत के मास का वर्णन अत्यंत ही सरस रूप में चित्रित किया गया है जिससे मादकता, प्रफुल्लता से समस्त वन डालियां तक झुक रही हैं।

निसर्ग ने···· ·· प्रफुल्लता ।। ४ से ६ ।।

शब्दार्थ—निसर्ग = प्रकृति, कान्त भाव = सरस भाव, मदान्धता = मद में मत्त, मनोज = कामदेव, पीठिका समा = आसन के समान, मानस-मेदिनी = हृदय को प्रसन्न करने वाली, कलाप = समूह, प्रसूत = उत्पन्न ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार कवि वसंत का वर्णन करता हुआ कहता है कि–प्रकृति ने, सरसता ने, पराग ने प्रकृति को, कोयल को, भंवर को अत्यंत मत्तता, मादकता प्रदान की थी। भाव यह है कि सुगन्धि ने कोयल को मस्त बना दिया था तथा पुष्परज और मकरन्द ने भंवरों को मद में अन्धा कर दिया था। कहीं पर तो सरस कमलिनी सुशोभित थी जो कि बसंत की सुषमा के सदृश्य थी। वहीं पर विमुग्धकारी कुमुदनी कामदेव के परम आसन के समान शोभित थी। इसे देखकर दृश्य में कामना की उद्दीप्ति होती थी। भाव यह है कि इस सौरभ युक्त वातावरण से ब्रजवासियों की व्यथा भी अत्यधिक बढ़ रही थी। नवीन अंकुरित कलियों के समूह में अत्यन्त रमणीय पल्लवों में, पुष्पों में प्रफुल्लता पुंजीभूत हो रही थी। दूसरे शब्दों में एकत्रित राशि के समान सर्वत्र वातावरण में उत्फुल्लता ही दिखाई दे रही थी।

विमुग्धता की···· ····रंजिता ।। ७ से ६ ।।

शब्दार्थ—प्रलुब्धता = मोहकता, केली = क्रीड़ा, अन्यूनता = अधिकता, दिव्य = अलौकिक, सपत्रता = पत्रों का भार, विकास वर्द्धिनी = विकास को बढ़ाने वाली।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में हरिऔध पूर्व संदर्भानुसार ही वसंत का मादक एवं सरस वर्णन करते हुए कहते हैं कि–वृक्षों की डालियां नवीन कलिओं तथा मंजरियों से लदी हुई अत्यंत मनहरण लग रही थीं। ये माधुर्य की रंगभूमि सी प्रतीत हो रही थीं। यह स्थल मोहकता का क्रीड़ा स्थल बना हुआ था। भाव यह है कि कलियों एवं कुञ्जों की मोहकता, सौरभता से पृथ्वी एक क्रीड़ा स्थल बनी हुई थी। जहां पर सभी प्रकार की नवीन कलियां, मंजरियों से लदी हुई डालियां विद्यमान थी। वृक्षों में फलों की कोई कमी नहीं थी। फलों की अधिकता गौरव और त्याग का प्रतीक थीं। आशय यह है कि पतझड़ में वृक्ष पत्तों का त्याग कर देते हैं। इसके पश्चात वसंत की नव कोपलें एवं फल उनमें लगते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो पत्तों के त्याग के फलस्वरूप ही उनको मधुर २ फल प्राप्त हुए हैं।

वृक्षों में नवीन कोपलें शोभित थी। उन पर पुष्प रज का अंगराग भी लगा था जिससे वे प्रेम के रस से सिक्त दिखाई दे रही थी। इससे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वसंत की मधुरता उसके प्रकाश को और भी बढ़ा रही हो। उनकी मधुरता, नृत्य से ऐसा लग रहा था मानों कामदेव के विशाल और सुन्दर उत्सव का उन पर भी प्रभाव हो। बसंत कामदेव का ही महान उत्सव है।

नये नये ··· ····मंजरी ।।१० से १२।।

शब्दार्थ–प्रसून=पुष्प, ललामता=लालिमा, लोहित=लाल, अपलाशता=पत्तों का अभाव, प्रसादिका=प्रसन्न करने वाली, प्रियाल=चिरोजी का वृक्ष, प्रिय-समा=प्रिय के समान।

ससंदर्भ व्याख्या–इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार ही कवि हरिऔध कहते हैं कि नवीन-नवीन पल्लवों से युक्त वृक्षों से उनके फूलों में अत्यधिक अनुपमता आ गई थी। यहां खिली हुई बेलें बसंत की शोभा को और भी अधिक बढ़ाकर उनकी प्रसन्नता को प्रदर्शित कर रही थी। अनार और कचनार के वृक्षों में अरुणिमा बहुत शोभनीय थी। लाल रंग के पुष्पों की अधिकता के कारण पलाश में पत्तों का अभाव नहीं प्रतीत होता था। सुन्दर चिरौंजी की मंजरियां नायिका के समान बड़ी ही प्रफुल्लित थी। ये सुगन्धि से परिपूर्ण तथा मनमुग्ध करने वाली थी। जिनकी शोभा बसंत की मादकता को और भी बढ़ा रही थी।

दिशा प्रसन्ना···· ····मोदिनी ।।१३ से १५।।

शब्दार्थ–पुष्प संकुला=फूलों से भरी हुई। अलापिका=गाने वाली, सुधा=अमृत, अलौकिकी=दिव्य, धमनी समूह=नाड़ियों का समूह, मलयाचलांक=मलय पर्वत के अंक में, प्रसादिनी प्रादप=फूलों को प्रसन्न करने वाली, मोदिनी=मुग्ध करने वाली।

व्याख्या- कवि हरिऔध कहते हैं कि गंध से सिक्त सुधामयी पवन सभी की नाड़ियों में उत्फुल्लता ला देता है। मलय गिरी की गोद से आने वाली समीर किसको विनोदप्रिय नहीं लगती थी ? अर्थात चंदन की गंध से सना हुआ पवन सभी के हृदयों को विनोद से भर देता है। समस्त दिशायें ऐसे वातावरण से हर्षित हो रही थी। पृथ्वी फूलों से शोभित थी तथा वृक्षों का समूह नवीन शोभा से भरा हुआ था। बसंत में वृक्षों की वल्लरियां अपने यौवन को प्राप्त कर चुकी थी। कोयल भी अपने पंचम स्वर से समस्त आकाश मण्डल को कूजित कर रही थी।

(अपूर्व-स्वर्गीय-सुगन्ध ···············मग्न था। इस पद का अर्थ ऊपर किया जा चुका है)।

मलय पवन की क्रीड़ायें पुष्पों को गंध प्रदान करके सभी के हृदयों की प्रसन्नता को बढ़ा रही थी। नव विकसित लताएं अत्यंत विनोद प्रिय लग रही थी। इस प्रकार मलय पवन की क्रीड़ाएं दिव्य थी जो कि पुष्पों की पंक्तियों को विमोहित कर रही थी।

विशेष—प्रस्तुत पंक्तियों में बसंत माह का वर्णन बहुत ही सुन्दर किया गया है। प्रकृति की जितनी सौरभता मादकता, मनोज्ञता बसंत के माध्यम से बिखेरी गई है अन्यत्र सम्भव नहीं। लेकिन इतना लम्बा प्रकृति चित्रण अखरता अवश्य है। इसमें कहीं कहीं पुनरुक्ति का दोष भी जाता है।

बसंत-शोभा······ ······कोविदार का ।।१६ से १८।।

शब्दार्थ—प्रतिकूल=जो अनुकूल न हो। वियोग मग्ना=विरह में डूबी हुई। दहती=जलाती। विदारता=विदग्ध करता था।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध प्रकृति के विरहोद्दीपक रूप को प्रस्तुत कर रहे हैं। जो बसंत की गंध, सौरमता,मादकता उनको विमुग्ध करती है वही विरह में प्रतिकूलता धारण कर लेती है। कवि कहते हैं कि—

वियोग में डूबी हुई ब्रज धरित्री को बसंत की शोभा अब बिल्कुल प्रतिकूल बन पड़ी थी। अब वही शोभा उनकी व्यथा को बढ़ा रही थी और समस्त प्राकृतिक उपादान उनको खाने को दौड़ रहे थे। वृक्षों के समूह की कोपलें अग्नि की लपटों की भांति नयनों एवं हृदयों को अत्यंत दग्ध कर रही थी। अनार की डालें एवं कचनार की शाखायें अंगारों के समूह से लदी हुई दिखाई देती थी। कचनार का वृक्ष म्लान चित्त को और भी चीरे डाल रहा था। चिरौंजी की सौंदर्य निधान मंजरी भी बहुत पीड़ादायी बन कर विदग्ध कर रही थी।

भयंकरी ····· ······मलयानिल-क्रिया ।।१९ से २१।।

शब्दार्थ—प्रमोद नाशिनी=प्रसन्नता को नष्ट करने वाली। अतीव=अत्यधिक। इतस्ततः=इधर-उधर। मिलिन्द=भंवरा। अन्यमनस्कता-मयी=मन को उदास बनाने वाली। वांछित=अपेक्षित। विनोदनीय=विनोद के योग्य।

व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार कवि हरिऔध कहते हैं कि—पलाश वृक्ष की पक्तियां भयंकर बन कर व्याकुल बना रही थी। वे भ्रम का प्रतिरूप बन कर आनन्द को नष्ट कर रही थीं। उनकी रक्तिमता अब अशोभनीय बन कर पीड़ादायी बन रही थी। भंवरों की पंक्तियां विमूर्षितावस्था में इधर-उधर घूमती प्रतीत होती थी। कोयल की मधुर एवं मीठी ध्वनि दूषित और कलंकित प्रतीत होती थी। पुष्प की मोहकता एवं सौरमता अब बिल्कुल उदासीनता प्रदान कर रही थी। मलय पवन की क्रीड़ायें अब न ही अच्छी लगती थी और न ही आनन्दित करती थी।

विशेष—इन पंक्तियों में जिस पुष्प से चित्त की उदासीनता दूर होती थी, जिस कोयल की वाणी मधुर लगती थी अब वही कर्णकटु एवं दाहक बन रही थी। प्रकृति अब विरह को और भी बढ़ा रही थी। प्रकृति की विरह में दाहकता अत्यंत स्वाभाविक एवं सहज बन पड़ी है।

बड़े यशस्वी ···· ···· ···· ···श्यामता ।।२२–२४।।

शब्दार्थः—यशस्वी=अपार कीर्ति वाले। गेह=घर, वाटिका=बगीचा, प्रबुद्ध=ज्ञानी, ब्रज–देवी=ब्रज की देवी अर्थात राधा। शनैः-शनैः=धीरे-धीरे। शक्तिमता-विभूति=अरुण शोभा वाला।

व्याख्या :—ज्ञानी उद्धव की ज्ञान चर्चा इन पंक्तियों में प्रस्तुत की गई है। उद्धव इन्हीं दग्धता पूर्ण दिनों में वृष-भानु के निकट एक बड़ी विचित्र वाटिका में राधा से ज्ञान चर्चा के लिए गये। बसंत के आगमन से यह वाटिका अत्यन्त शोभा से युक्त बन पड़ी थी। इसमें विकास का सुन्दर व्यापार बड़ा ही शान्त और धैर्य को धारण किये हुए था।

नव विकसित वृक्षों की कोपलें स्वाभाविक विकास को पाकर लाल शोभा को आनन्द देने वाला श्याम वर्ण प्रदान कर रही थीं। भाव यह है कि उस ज्ञानी उद्धव के अरुण रंग में अत्यन्त शोभायुक्त श्याम वर्ण बडा ही कमनीय दृष्टिगत हो रहा था।

अनेक आकार-प्रकार ··· ···· ····प्रसून पुंज में ।।२५–२७।।

शब्दार्थ :–गूढ़ मर्म = गहन रहस्य, अनुराग में रंगा = प्रेम में रंजित, पसारती = प्रसारित करती, पूत = पवित्र।

व्याख्या :–कवि हरिऔध पूर्व संदर्भानुसार कहते हैं कि वृक्षों की नव कोपलें एवं उनकी अरुणिमा अनेक प्रकार से गहन रहस्य को प्रकट कर रही थीं। जो व्यक्ति पहिले प्रेम रंग में ही नहीं रंगेगा उस पर श्याम के प्रेम का प्रभाव नहीं पड़ सकता। भाव यह है कि कृष्ण से प्रेम करने के लिए पहिले अपने को प्रेममयी बनाना नितांत अपेक्षित होता है।

पुष्प श्यामल पल्लवों की गोद में अत्यन्त सुहावने एवं भाव-प्रफुल्लित लगते थे। उनकी सुगंध सभी दिशाओं में पवित्र होकर पवन के द्वारा प्रसारित हो रही थी। इस प्रफुल्ल वातावरण में भी एक प्रकार की गहन विषादिता मिली हुई थी। लेकिन उनमें संयम एवं धैर्य था। उत्फुल्ल पुष्प शांति के साथ-साथ इस वातावरण की बोझिलता को भी प्रदर्शित कर रहे थे। आशय यह है कि राधा का व्यक्तित्व इसी शांति एवं दग्धता से समन्वित था।

विशेष :–अन्तिम पद काव्यत्व की दृष्टि से द्रष्टव्य है। इस में राधा की प्रसन्नता, उत्फुल्लता ही नहीं उसके साथ साथ एक प्रकार की म्लानता एवं विषादता भी है। यह एक सहज मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है। मानव में नितांत सुख एवं दुख कभी नहीं होता। सुख के साथ दुःख एवं दुःख के साथ सुख की आशा की सरस उर्मियां कूजती रहती हैं।

स-शांति ··· ···· ···· ···· कल-कंठ-काकली ।।२८–३०।।

शब्दार्थ :—सशांति = शांति सहित, ढिंग = पास में, मिलिन्द = भौंरे, नीरव = निर्वाक, पादप = वृक्ष, कलोलना = पक्षियों की कल्लोल ध्वनि, अकुंठिता = जिसका स्वर कुंठित न हो।

ससंदर्भ व्याख्या :–प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध राधा के व्यथित हृदय के साथ साथ उसके सरस एवं आनन्दित पहलू की भी अभिव्यक्ति कर रहे हैं। कवि कहते हैं कि भंवरें शांति सहित कुञ्ज में आते हैं और पुष्प के पास जाकर बड़े ही धैर्य एवं निर्वाक रूप से मधु का पान करते हैं। भाव यह है कि भंवरे भी मधु का पान बड़ी ही सरसता एवं धैर्यता से करते हैं।

यही संयम सूत्र पक्षियों में भी पाया जाता है। विनोद के साथ अपनी मादाओं के साथ वे वृक्षों पर बैठते हैं और किलोल करते हैं। पक्षियों की कल्लोल ध्वनि में भी अपार संयम पाया जाता है। कोयल की मधुर ध्वनि न तो सभी दिशाओं में गूंज रही थी और न बिलकुल बंद ही थी। आशय यह है कि कोयल भी राधा की व्यथितावस्था से व्यथित थी।

विशेष :—इन पंक्तियों में राधा की विषादिता एवं आनन्द की समन्वित स्थिति का प्रकृति पर आरोपण बड़े ही सहज रूप में किया गया है।

इसी तपोभूमि समान ···· ···· ···· समन्विता ।।३१–३४।।

शब्दार्थ :—सुअङ्क = अच्छी गोद, समावृता = ढ़की हुई, अलिवृन्द आवृता = भंवरो के समूह से ढ़का हुआ, समन्विता = मिली हुई।

व्याख्या :—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध पूर्व संदर्भानुसार ही कहते हैं कि—इस तपोभूमि के समान वाटिका के अङ्क में एक सुन्दर कुञ्ज थी। यह अनेक बेलों एवं पुष्पों के समूहों से ढ़की हुई थी।

इसी शांत कुञ्ज में वृषभानु नन्दिनी अर्थात राधा विराजती थीं। यही पर उद्धव ने उन्हें भंवरों के समूह से ढ़की हुई पाया। वह वृषभानु नन्दिनी शांत, विषाद युक्त एवं दिव्य मूर्ति थी। इस दृश्य को देख कर भाव पूर्ण उद्धव के हृदय की दशा बड़ी ही विचित्र हो गई। उनके नेत्रों की कोमल कांति पर अपार शांति एवं विषाद अङ्कित था। उनका मुख कमल सी प्रफुल्लता, आकुलता से समन्वित था। भाव यह है कि उनके मुख पर एक ओर शांति है दूसरी ओर श्याम विरह की विषादिता है। दोनों का समन्वित रूप उनके मुख पर अङ्कित है।

सप्रीति ··· ··· ···· ····श्याम मूर्ति का ।।३५–३६।।

शब्दार्थ :—सप्रीति = प्रेम के साथ, विलोक = देखा।

व्याख्या :—ज्ञानी उद्धव को देख कर राधा के स्वागत करने की चर्चा इन पंक्तियों में की गई है। कवि कहते हैं कि—राधा उस सुन्दर कुञ्ज में उद्धव को देख कर अत्यन्त प्रेम से स्वागतार्थ खड़ी हुयीं। फिर उनको शांति एवं भक्ति भाव सहित कुञ्ज में बिठाया। उद्धव ने पहिले राधा का सम्मान सहित कुशलता का समाचार पूछा। इसके बाद विनम्रता से कृष्ण का संदेश कहना आरम्भ किया।

विशेष :—अब तक कवि हरिऔध ने प्रकृति वर्णन एवं उसका उद्दीपन रूप ही प्रस्तुत किया था। प्रमुख रूप से राधा एवं उद्धव का संवाद यहीं से प्रारम्भ होता है।

प्राणाधारे ··· ···· ···· ··· हेतु होवे ।।३७–३८।।

शब्दार्थ :—प्राणाधारे = प्राणों के आधार, सरले = सीधे हृदय की, पान्थ = पथिक, गुरुगिरी = बड़े पर्वत।

ससंदर्भ व्याख्या :–प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध उद्धव के माध्यम से कृष्ण संदेश कहलवा रहे हैं। कवि कहते हैं कि–हे मेरे प्राणों के आधार अत्यन्त सरल एवं प्रेम की प्रतिमूर्ति राधा! विधाता ने तुम को मुझ से क्यों अलग कर दिया है? हे प्रिया! आपके मिलन की आशा प्रतिदिन दूर होती जाती है। ऐसे ही पथ का पथिक होकर मैं तुम से विलग होकर पड़ा हूं। विधाता का कृत्य बड़ा ही विचित्र है। दो प्रिय दिल जहां मिलकर एकाकार हो गये हैं, उनको विधाता न जाने क्यों अलग कर देता है। वे प्रेमी हृदय दूध और नीर के समान मिल गये थे। उनके बीच में विधाता ने पर्वत के समान रोड़ा क्यों डाल दिया है। मिलन की उत्कंठा के कारण विवश होकर आकाश को, पृथ्वी को, वृक्षों को, तारागणों को, मानव मुख को प्रायः देखा करता हूं। प्रिये राधे! सर्वत्र ऐसी ध्वनि कहीं भी सुनाई नहीं देतीं जो मेरे व्यथित हृदय को शांत कर सके। सभी जगह विरह को उद्दीप्त करने वाली क्रीडायें ही नजर आती हैं।

विशेष :—इन पदों में कृष्ण विरह का वर्णन बड़ा ही मार्मिक बन पड़ा है। विशेषतः दूसरा पद तो पुरुष विरह का सर्वोत्कृष्ठ उदाहरण कहा जा सकता है।

जाना जाता ···· ··· ···· ····वही है ॥४०–४२॥

शब्दार्थ :—सर्व-संयोग-सूत्र = समस्त मिलन के सूत्र, श्रेय = प्रेम, श्रेष्ठ, लिप्सा = कामना, वाँछा = इच्छा, विशद विस्तृत, निरत = लीन, आत्मार्थी = आत्मा के हित की कामना।

ससंदर्भ व्याख्या :—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार कृष्ण कहते हैं कि—हे प्रिये! विधाता के बंधनों को समझ लेना सम्भव नहीं है। इसके बावजुद भी यह विचारना अधिक श्रेष्ठ होगा कि यदि समस्त मिलन-सूत्र असफल होते जाते हैं फिर भी इसमें कुछ न कुछ श्रेष्ठता का बीज अवश्य है। भाव यह है कि संयोग की असफलता में भी विधाता की श्रेष्ठता के बीज निहित है।

हे प्रिये! सुख का माधुर्य एवं भोग की इच्छाएं सभी अपने कल्याण के लिए होती हैं। इससे अधिक वांछित एवं अपेक्षित इच्छा परहित या जगत हित की होती हैं जिसमें आत्म उत्सर्ग की भावना होती है। यही मुक्ति का साधन है तथा यही आत्म त्यागी हो सकता है। जो व्यक्ति अपनी मुक्ति की इच्छा से तप करता है उसे आत्मार्थी तो अवश्य कह सकते हैं लेकिन आत्म त्यागी नहीं कह सकते। जिसे संसार का कल्याण एवं उसकी सेवा का कार्य ही रुचता है, वही पृथ्वी पर आत्मत्यागी कहा जा सकता है।

विशेष :—इन पंक्तियों में सांसारिक भोग की इच्छाओं को लोक कल्याण की ओर मोड़ कर एक आदर्श आत्मत्यागी का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

जो पृथ्वी के ...... सर्व भूतोपकारी ।।४३ से ४६।।

शब्दार्थ—विपुल मुख = अत्यधिक सुख, जन्हुजा = गंगा नदी, लोकोत्तरा = लोक से ऊपर, कौमुदी = चांदनी, रंजनी = मनोरम ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में लोक सेवा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए कृष्ण कहते हैं कि पृथ्वी के अधिक से अधिक सुखों का माधुर्य तो व्यास नदी के समान है । दूसरे प्राणियों की सेवा का सुख गंगा के समान है । भाव यह है कि लोक सेवा जन्य सुख की प्राप्ति गंगा के समान महान है । यदि भोगों के सुख को हम ताराओं के सुख के समान मानें तो लोक सेवा का सुख चांदनी के समान व्याप्त हो जाता है । भाव यह है कि लोक सेवा के सुख की चांदनी में भोगों के सुख के ताराओं की द्युति फीकी पड़ जाती है । सांसारिक सुखों की शक्ति बड़ी ही आकर्षक एवं रंजित होती है । लेकिन लोक सेवा के समक्ष सुख मुग्धकारी नहीं होते है । सत्यता तो यह है कि सांसारिक सुखों में कलुषता भरी है जब कि लोक सेवा के सुखों की शांति लोक से परे होती है ।

आत्मीय सुख की प्राप्ति कौन नहीं चाहता है ? अर्थात सभी प्राणी इसी की मोहकता में बंधे हुए हैं । लेकिन जो व्यक्ति ऐसे सुखों के वशीभूत न होकर आत्म उत्सर्ग द्वारा इन पर सफल हो जाता है वही प्राणी का नाम सार्थक कर पाता है । दैव की इच्छा ही सदैव प्रधान होती है । यदि इसे मानकर हम चलें तो दुःखी होना अपेक्षित नहीं होता । जो होना है वह तो होगा ही, फिर दुःखी होने से क्या लाभ ? हे प्रिये ! जो लोक सेवा का कार्य होगा वही कल्याणकारी हो सकेगा और वही विधाता को मान्य होगा । ऐसा कार्य ही सात्विक प्रवृत्ति का होता है । अतः हमें इस विरह दुःख को विधाता की देन मानकर ही चलना चाहिये ।

अतीव हो······· ·······चित्त उच्चता ।।४७ से ४८।।

शब्दार्थ—अन्यमना = उदासीनता, विषादिता = दुःख, विमोचते = देखते, कलत्रोचित = स्त्री के अनुकूल ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में राधा अपना हृदय वज्र सा कठोर बनाकर कभी अश्रु बहा कर कभी धैर्यता से अपनी बात उद्धव से कहती है—कृष्ण संदेश कह कर उद्धव शांत हो गये और राधा के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे । राधा ने अत्यंत उदास एवं दुःखी होकर अपने कमल नेत्रों से आंसू बहाती हुई संदेश को सुना और अपने हृदय को वज्र के समान कठोर बनाने का प्रयत्न किया । पुनः धैर्य के साथ शांति से, कभी आंसू बहाते कभी अपनी भी बातें उद्धव से बताने लगीं । इससे स्त्रियोचित स्वभाव की उत्कर्षता पूर्णतः प्रकट होती है ।

मैं हूं उधो······· ·······हो गई है ।। ४९ से ५१ ।।

शब्दार्थ—मोदिता = प्रसन्न, मंदीभूता = धुंधली । उर-तिमिर = हृदय का अंधकार ।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भ के अनुसार राधा कहती है कि हे उद्धव! मैं आज आपके आगमन से कृतकृत्य हुई हूं। कृष्ण समाचार के श्रवण से तो मुझे अतीव प्रसन्नता हुई है। मेरे हृदय अंधकार का मंद प्रकाश अब ज्ञान की ज्योति से पुनः उद्दीप्त हो उठा है।

मेरे प्रिय संसार के पुरुषों में श्रेष्ठ तथा शांत प्रकृति के हैं। फिर उनके संदेशों में वेदना की व्यंजना है। मैं तो नारी हूं, मेरा हृदय कोमल है तथा प्यार से वंचित भी हूं। इस पर मैं व्याकुल और दुःखी होती हूं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

राधा कहती है कि जिस प्रकार चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर रात्री की आभा मलिन हो जाती है, वसंत के अंत में वाटिका की शोभा नहीं रहती उसी प्रकार कृष्ण-चंन्द्र के चले जाने पर व्रज की कांति नष्ट हो गई है। दूसरे शब्दों में मेरी व्याकुलता और दुःख से मेरा सौन्दर्य भी मलिन हो गया है।

जैसे प्रायः ....**पास जाती** ॥५२ से ५४॥

शब्दार्थ—उद्वेगों = चित्त की व्याकुलताएं, विबुध = विद्वान पुरुष, मुहन्ता = मोह, मर्म = रहस्य, वांछा = इच्छा, विशद = विस्तृत, विहग = पक्षी।

व्याख्या—इन पंक्तियों में राधा अपनी विरह-व्यथा को बड़े ही मार्मिक शब्दों में कहती है कि जिस प्रकार वायु के झोकों से समुद्र में लहरें उठा करती हैं उसी प्रकार कुछ आवेगों के कारण मेरा हृदय भी चंचल हो उठता है। विकलताओं से पीड़ित होना अत्यन्त स्वाभाविक ही होता है। लेकिन ज्ञानी और विद्वतजन इस मोह पर विजय पा लेते हैं जिससे उनमें किसी भी प्रकार की आकुलता नहीं रह पाती।

मेरे प्रिय के विशद-उर में किन इच्छाओं का वास रहता है, उसे मैं भली प्रकार से जानती हूं। फिर भी मैं श्याम का रहस्य आपसे जानना चाहती हूं। काफी प्रयत्नों के फलस्वरूप प्रतिदिन मैं संयमित रहती हूं लेकिन विरह जन्य व्यथायें कभी कभी मुझे अत्यधिक पीड़ित कर देतीं हैं। आकाश में उड़ता पक्षी मेरे श्याम की याद दिला देता है। ऐसी इच्छा होती है कि मेरे तन पर भी पक्षियों के पंख होते तो प्रसन्नता से उड़ कर प्रिय से मिल लेती। यह उत्कण्ठा मेरे चित्त को अत्यंत व्याकुल कर देती है।

विशेष—अन्तिम पद में स्मरण अलंकार की छटा द्रष्टव्य है। विरह जन्य व्यथा अत्यन्त स्वाभाविक होकर मार्मिक हो गई है।

जो उत्कण्ठा....... ....**उद्विग्नता का** ॥५५ से ५७॥

शब्दार्थ—नित्यशः = नित्य प्रति। प्रसव करता = उत्पन्न करता। मानसों में = मनुष्यों में।

व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार राधा कहती है कि यदि किसी समय प्रिय मिलन की उत्कण्ठा अत्यधिक प्रबल हो जाती है तो ऐसी कल्पना होती

है कि मैं पवन बन जाऊं और प्रिय के चरण कमलों का स्पर्श करके अत्यन्त हर्षित होऊं। तब मुझे अपार हर्ष होता।

मैं मोह से रहित संयमित जीवन व्यतीत करती हूं। फिर भी श्याम का स्मरण होते ही अत्यन्त व्यथित हो जाती हूं। प्रिय के स्मरण में लोक-कल्याण की इच्छा भी फीकी पड़ जाती है और प्रिय लाभ की लालसा अत्यधिक बलवती हो जाती है। रूप के मोह से समस्त पृथ्वी सुन्दर दिखाई देने लगती है। इससे समस्त मानव हृदयों में मुग्धता की सृष्टि दिखाई देने लगती है। लेकिन इस मोह से ही मानवों में भ्रांतियां पैदा हो जाती हैं और मनुष्य व्याकुल हो जाता है। मन डावांडोल होकर कुछ निश्चय नहीं कर पाता है।

विशेष—इन पदों में विशेषतः अन्तिम पद में मोह की अभिव्यक्ति अधिक मनोवैज्ञानिक बन पड़ी है। इस मनोवैज्ञानिक ढंग से ही अपनी विरह-व्यथा राधा ने कही है।

जाता है… **रूपादि द्वारा ॥ ५८ से ६० ॥**

शब्दार्थ—पंचशर = पांच वाणों वाला कामदेव। [illegible] = वाण। चित्त विक्षेपशाली = हृदय को चंचल बना देने वाली। मानसी-मर्दिनी = मन को नशे से भरने वाली। ईदृशी = ऐसी। आसंग लिप्सा = मिलने की कामना। प्रणयन = प्रणय से उत्पन्न। पानी-प्रणय = पानी का प्रेम। [illegible] = भूखों की प्यास। रूप निलय = रूपवान।

व्याख्या—प्रस्तुत पंक्ति में कवि हरिऔध 'मोह' का निरूपण करते हुए कहते हैं कि—पांच वाणों को धारण करने वाला कामदेव मोह की कल्पित मूर्ति माना जाता है। यह पुष्पों के वाण से समस्त विश्व को बेध डालता है। आशय यह है कि रूप के मोह का प्रभाव समस्त संसार पर पड़ता है। इस रूप मोह की लीलाएं बड़ी ही आकर्षक, मोहक एवं मनुष्य को विमुग्ध करने वाली होती हैं। इस मोह में ऐसी शक्ति होने पर भी विद्वानों ने इसे प्रणय की श्रेणी में नहीं रखा है। यद्यपि मोह एवं प्रणय से मिलने की उत्कण्ठा अत्यन्त तीव्र होती हैं फिर भी प्रणय से उत्पन्न कामना ही स्थायी एवं सर्वश्रेष्ठ होती है।

जिस प्रकार प्यासे व्यक्ति को पानी से प्रेम केवल प्यास बुझाने तक ही होता है, भूखे को क्षुधा शांत होने तक अन्न से प्रेम होता है उसी प्रकार रूप का मोह भी क्षणिक होता है। प्यासे व्यक्ति की प्यास को हम पानी का प्रेम नहीं कह सकते हैं उसी प्रकार ही रूपवान मनुष्यों के आकर्षण को प्रणय नहीं कहा जा सकता।

मूली भूता…… **……आत्म उत्सर्ग की है ॥ ६१ से ६३ ॥**

शब्दार्थ—मूली भूता = मूल कारण। दिव्यता धाम = अलौकिक स्थान। विकृत होना = विगड़ जाना। प्रणय-शुचिता-मूर्ति = पवित्र प्रेम की मूर्ति।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध प्रणय एवं मोह के तुलनात्मक गुणोवगुणों का विवेचन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि प्रणय को जन्म देने वाली बुद्धि के व्यापार हैं जो व्यक्ति के अच्छे गुणों को देख कर और भी शक्तिवान हो जाते हैं। ये गुण नित्य नये एवं अलौकिक दिखाई पड़ते हैं। इसी कारण प्रणय के मार्ग में स्थायित्वता होती है। रूप तो विकृत हो जाता है। इसी अस्थिरता के कारण इसमें स्थायित्वता नहीं आ पाती। दूसरे रूप का विकास एक सा नहीं होता है इसमें परिवर्तन आता जाता है, तथा संयोग से यह मोह शांत हो जाता है।

मोह की प्रक्रिया विभिन्न स्वार्थ लिप्साओं, वासनाओं के मध्य से गुजरती है। मोह के अन्तर्गत आवेग होता है। लेकिन प्रणय की पवित्र मूर्ति तो बड़ी ही सात्विक वृति की होती है। इसकी चरम सीमा आत्मत्याग में होती है।

सद्यः होती...... ......उसी को ॥६४ से ६६॥

शब्दार्थ—सद्यः=शीघ्र। भावो-भेषी=भावों को जगाने वाला। समीचीन उचित। भयसी लालसा=तीव्र इच्छा। अभिधा=नाम।

व्याख्या—कवि हरिऔध पूर्व संदर्भानुसार कहते हैं कि मोह का नशा चित में अधिक शीघ्रता से चढ़ता है। प्रणय का नशा मन्द मन्द होकर हृदयों में अपना स्थान बनाता है। मोह के जन्म से सारी भावनायें कुंठित हो जाती हैं लेकिन प्रणय की जाग्रति से व्यक्ति में अच्छी वृत्तियां जगती हैं। भाव यह है कि प्रणय मानव की श्रेष्ठ वृत्तियों को जगाता है। मोह के वश में मनुष्यों में ऐसे भावों का जागरण होता है कि मनुष्य को प्रेम की भ्रांति होने लगती है। ऐसी भावनाएं न उचित होती हैं और न प्रणय का अंकुर ही। उसमें तो मोह की दूषित वासना ही होती है। प्रणय की परिभाषा करते हुए हरिऔध कहते हैं कि जिन प्राणियों में प्रिय-सुख की तीव्र इच्छा से उत्सर्ग की भावना जाग्रत हो जाती है और बिना यश एवं धर्म के ही कार्य करते हैं ऐसी निष्काम वृत्ति को प्रणय कहते हैं।

आदौ होता...... ......प्रीतिमत्ता ॥६७ से ६६॥

शब्दार्थ—आदौ=पहिले। आसंग लिप्सा=मिलन की कामना। आत्म-उत्सर्गता=आत्म बलिदान की भावना। उद्भूत=उत्पन्न। मत्तकारी=नशीले। पतंगोपमान=पतंगे के समान। भृंग=भंवरा। मीन=मछली।

ससंदर्भ व्याख्या—कवि हरिऔध पूर्व संदर्भानुसार कहते हैं कि प्रणय की वृत्ति के द्वारा पहिले गुण ग्रहण की प्रवृत्ति जाग्रत होती है। इसके बाद मिलन की इच्छा पैदा होती है। फिर दोनों पक्षों में परस्पर सहृदयता पैदा होती है। इसकी चरम सीमा आत्म त्याग में होती है।

मोह के प्रकार एवं रूप के मोह की सर्वाधिक मादकता की ओर इंगित करते हुए कवि कहते हैं कि सौरभ से, मधुर बोली से और स्पर्श से

भी मोह पैदा होता है लेकिन इन सभी मोह की मादकताओं में रूप के मोह का नशा सर्वाधिक होता है।

रूप के मोह की व्यापकता भी अधिक होती है। इससे चित्त में चंचलता उत्पन्न होती है। पतंग के समान मत्तता पृथ्वी तल पर किसी की नहीं पायी जाती। वैसे भंवरे का सुगन्धि से मोह होता है, मछली का जल से, हाथी का स्पर्श से, हिरण का स्वर से मोह होता है लेकिन पतंगे में रूप की उत्सर्गता होती है। रूप के ऊपर मरने तक मंडराता रहता है।

विशेष—इन पंक्तियों में मोह की ममता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

मोहों में है········· **·········व्यामोहकारी** ॥७० से ७२॥

शब्दार्थ—लीला निलय=क्रीड़ाओं का आधार। राका उदित विधु=पूर्णिमा का खिला चन्द्र। हृतंत्री=हृदय की वीणा। उरजयी=हृदय को जीतने वाला। विश्वव्यामोहकारी=विश्व को विमोहित करने वाला।

व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार ही कवि हरिऔध कहते हैं कि रूप का मोह सभी मोहों से व्यापक होता है। लेकिन रूप का मोह प्रेम की श्रेणी में नहीं आता। फिर रस गंध, स्पर्श से उद्भूत मोह प्रेम कैसे हो सकता है? अर्थात सौरभ से, स्पर्श से, मीठें स्वर से उत्पन्न मोह को प्रेम नहीं कहा जा सकता। प्रेम की महिमा तो बड़ी अनोखी होती है, यह मणि के समान है तो मोह कांच के समान।

रूप मोह के अन्तर्गत भी॰दोनों नेत्र रूप को देखते देखते तृप्त नहीं होते। रूप को ज्यों ज्यों निरखते हैं त्यों-त्यों नवीनता दिखती जाती है। इसकी क्रीड़ा का आधार स्वर्गीय है। जिस प्रकार चंद्रमा से आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार रूप की मादकता भी उल्लासकारी होती है।

स्वर भी अनुपम, हृदय को जीतने वाला तथा संसार को मोहित करने वाला है। लाखों पद सुनने पर भी कानों की प्यास नहीं मिटती है। वह हृदय की वीणा में स्वर्गीय संगीत का संचार करता है। ऐसा स्वर बड़ा ही अनोखा तथा हृदय को जीतने वाला होता है। यह विश्व को विमोहित करने वाला होता है।

होता है········· **·········सभी हैं** ॥७३ से ७५॥

शब्दार्थ—अग जग=जड़-चेतन। विहित विधि=उचित रीति। रंजिता=रंगी हुई। पंथिनी=गामिनी। आसक्ता=अनुरक्तता, या अनुरक्त होना।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध सौरभता और स्पर्श से उद्भूत मोह का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि स्वरों में अपार मोहकता होती है। कृष्ण की सुगन्धित तथा सरसता और स्पर्श में भी ये सारे गुण उचित रूप से व्यक्त होते हैं। वे भी इसी प्रकार मस्त और प्यासे

बना देने वाले होते हैं। इसी प्रकार का सौन्दर्य जब बढ़ जाता है तो उल्लास अत्यधिक बढ़ जाता है।

कृष्ण के रूप में भी उपर्युक्त सभी विशेषताएं पाई जाती हैं। उनकी मुरली का स्वर बड़ा अलौकिक और मधुर होता है। समस्त सात्विक गुणों के वे आगार है। ऐसे गुणों के प्रति किसके हृदयों में प्रेम व्याप्त न होगा। ब्रज में कृष्ण के प्रेम में रंगी कई बालायें हैं। राधा कहती हैं कि यद्यपि उनमें मोह की मात्रा अधिक है, फिर भी वे सभी प्रणय के मार्ग की पथिक हैं।

विशेष—इन पंक्तियों में मोह की स्वाभाविक आकर्षकता प्रदर्शित की गई है। गोपियों में मोह का आकर्षण सहज है। लेकिन इस मोह की परिणति प्रेम में बताकर गोपियों के प्रेम की व्यापकता बतलाई गई है।

मेरी भी है...... ... याद आता ॥७६ से ७८॥

शब्दार्थ—काढ़ू=निकालूं। शमित=शांत। लालसायें=इच्छायें। रव=ध्वनि। पादपों=वृक्ष।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध राधा के माध्यम से उनकी विरह स्थिति को दिग्दर्शित कर रहे हैं। राधा कहती है कि मेरी भी स्थिति कुछ कुछ उन गोप बालाओं की तरह है। मैं अपने हृदय से उस कृष्ण मूर्ति को कैसे निकालूं। जीते जी जिस प्रिय की मधुर तानों को विस्मृत नहीं किया जा सकता ऐसे प्रिय से मिलने की इच्छाओं को कैसे दबाया जा सकता है। आंखें इतनी विकल हैं कि जिधर देखती हूं उधर ही कृष्ण नजर आते हैं। कानों को भी उसी वंशी की मधुर ध्वनि सुनने की लगन लगी हुई है। यदि कोई मेरे हृदय को देखना चाहे तो उसमें भी श्याम की मञ्जु कांति दिखेगी।

राधा कहती है कि आकाश में चंद्रमा उदित होता है अथवा कहीं कोई खिला पुष्प दिखाई देता है या सुन्दर हरे पत्ते वाले वृक्षों को देखती हूं तो मेरे प्रितम का मुखड़ा याद आ जाता है।

कालिन्दी के ... ...याद आती॥ ७६ से ८१॥

शब्दार्थ—सजीले सर=सुन्दर तालाब। वारि स्रावी=आंसू बहाने वाले। बक=बगुले। वलित=युक्त। गात=शरीर।

व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार राधा वर्णन करती है कि जब मैं यमुना के तट पर या सुन्दर तालावों में फूले हुए कमल के समूह को देखती हूं तो मेरे प्रिय के हाथ पैरों की छवि आंसू भरे नेत्रों में छा जाती है। यदि तारों से भरे हुए आकाश को देखती हूं या मेघों के बीच श्वेत बगुलों की पंक्तियां को देखती हूं तो उमग कर ऐसा ध्यान आता है मानों श्याम के कण्ठ में मुक्ताओं की माला पड़ी हुई हो। यदि मधुर, मंद पवन मेरे अङ्ग को स्पर्श करती है तो प्रिय श्याम के कर-कमलों के स्पर्श का स्मरण हो आता है। जब यह पवन पुष्पों की सुगन्ध युक्त वायु को लेकर कुंजों में घूमती है तो मेरे को प्रिय

श्याम के सौरभयुक्त मुख की याद आ जाती है।

ऊंचे ऊंचे……… ………आदित्य में है।। ८२ से ८४।।

शब्दार्थ—मेरु=पर्वत। चक्षु=नेत्र। ओप=तेज।

व्याख्या—इन पंक्तियों में भी राधा पूर्व संदर्भानुसार कृष्ण के गुणों का गान करती हुई कहती है कि ऊंची ऊंची पर्वत चोटियां प्रिय के चित्त की उच्चता को प्रदर्शित करती हैं। उनके चित्त की दृढ़ता मेरु पर्वत के समान बरबस ही नेत्रों में आ जाती है। जब मैं विविध लीलायें करते हुए तथा छींटे उड़ाते हुए झरने को देखती हूं तो कृष्ण की हर्ष भरी क्रीडाओं का चित्र सामने आ जाता है। यमुना केवल प्रियतम की कांति का ही स्मरण नहीं कराती वरन् उसके कूल पर कृष्ण के द्वारा की जाने वाली समस्त क्रीड़ाओं का स्मरण होता है। और कृष्ण की सद् वृत्तियां चित्त में जगा देती हैं। संध्या की कांति में प्रियतम की कांति ही नजर आती है। रात्रि के अंधकार में मुझे ऐसा लगता है मानो इसमें कृष्ण की श्यामता ही छायी हुई है। प्रतिदिन ऊषा प्रिय के प्रेम में ही रंजित होकर आती है। सूर्य में जो तेज है वह भी प्रियतम का दिया हुआ है।

मैं पाती हूं…… ··· दिखाती। ८५ से ८७।

शब्दार्थ—अलक=लटें या वालों, कलत्रकर=हाथी की सूंड, दाड़िम=अनार, गुल्फ=टखने, वह्नि=अग्नि, दिव्य आभा=अलौकिक ज्योति।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध अलकों, नेत्रों, हाथी, दांतों, शरीर रंग की सुषमा का वर्णन कर रहे हैं। वे कहते हैं कि राधा भौंरों की पंक्ति में अलकों की सुषमा को देखती हैं। प्रिय श्याम के नेत्रों की शोभा खंजन तथा हरिणों के नेत्रों जैसी है। हाथी के बच्चे की सूंड देखकर श्याम की भुजाओं का स्मरण हो आता है तथा तोते की चोंच में श्याम की नासिका की सुषमा पाई जाती है। दांतों की ज्योति दाड़िम के दानों में दिखती है। ओठों की लालिमा बिम्बा फल में प्रकट होती है। केलों में तथा उसके तनों में उनकी दोनों जंघाओं का सौन्दर्य दिखाई देता है तथा उनके टखनों की शोभा पुष्पों में दिखाई देती है। भाव यह है कि सर्वत्र कृष्ण ही नजर आते हैं।

मद मत्त शरीर की नीलिमा नेत्रों को मुग्ध करने वाली आकाश में दिखाई देती है। पृथ्वी की शोभा, रस से सिक्त जल में तथा अग्नि की ज्योति में उनकी ही कांति नजर आती है। ऐसी अवस्था में कृष्ण को कैसे भूला जा सकता है। सर्वत्र कांति उन्हीं प्रिय की दी हुई दिखाई देती है।

विशेष—इन पंक्तियों में प्रिय के सौन्दर्य की व्यापकता सर्वत्र छिटकती हुई दिखाई गई है। प्रत्येक स्थान पर उन्हीं की शोभा दिखाई देती है।

सायं-प्रातः…… ……जीवनाधार होगा। ८८ से ९०।

शब्दार्थ—उद्विग्न=रुष्ट, संरक्षा=संरक्षण में, सयत्ना=यत्न सहित, इक्षु=ईख, प्रसुत=दूर।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में पूर्व संदर्भानुसार राधा आगे वर्णन करती हुई कहती है कि सायंकाल एवं प्रातः पक्षी चहकते हैं तथा अपनी मीठी ध्वनि सुनाते हैं, मुझे उनके कूजने में प्रियतम की वंशी की ध्वनि ही सुनाई पड़ती है। उद्धव को सम्बोधित करती हुई राधा कहती है कि आप मेरी बातों से शायद रुष्ट हो जायं और सोचेंगे कि यह विवश होकर महा मोह में पड़ गई है। सच्ची बात तो यह है कि मैं अपने सुख के लिये ही मोह में पड़ी हूं और प्रेम की मर्यादा की रक्षा में परम प्रेम के साथ लीन हूं और मर्यादा का पालन कर रही हूं।

प्रकृति का विधान कैसे नष्ट किया जा सकता है? ईख में जो मीठापन होता है, पुष्पों की पंखड़ी में जो मधुर रंग छिटकता है वह ईख एवं पुष्प के रहते नष्ट नहीं हो सकता। मेरी भी यही स्थिति है, मैं जीते जी उनसे पृथक कैसे हो सकती हूं। भाव यह है कि मेरा और कृष्ण का सम्बन्ध पुष्प उसके और रंग तथा ईख और उसके मीठेपन की भांति स्थायी एवं दृढ़ है।

क्यों मोहेंगे······ ······संयमी है। ९१ से ९३।

शब्दार्थ—सरल है।

व्याख्या—इन पंक्ति में राधा प्रेम को प्रकृति प्रदत्त एवं स्वाभाविक बतलाती हुई कहती है कि रूपवान मूर्ति को देखकर क्या नेत्र विमुग्ध न होंगे? क्या मधुर स्वर से कान विमोहित न होंगे? क्या प्रेम में रंगे हुए हृदयों में व्यक्ति डूबेंगे नहीं? अर्थात् प्रेम तो विधाता ने सृजित किया है। नेत्र रूप को देखता है, कान मधुर स्वर को सुनकर मुग्ध होते हैं। भाव यह है कि यह प्रेम होना तो अत्यन्त स्वाभाविक ही है। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है।

यदि दर्पण तथा जल प्रतिविम्ब दिखाते हैं तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। बल्कि आश्चर्य की बात तो जब है कि दर्पण और जल प्रतिबिम्ब न दिखाये। उसी प्रकार इन्द्रियां भी अपने-अपने स्वाभाविक विषयों की ओर आकर्षित होती हैं। यदि न हों तो अवश्य असामान्यता दिखेगी। भाव यह है कि प्रेम होना स्वाभाविक ही है। इन्द्रियों के देखने में, कानों के सुनने मे भी पर्याप्य भेद पाया जाता है। कोई व्यक्ति इन्हीं इन्द्रियों से वासनाओं में मत्त हो जाता है और दूसरी ओर संयमी और ज्ञानी की दृष्टि उससे भिन्न होगी। भाव यह है कि भावनाओं के आधार पर ही नेत्रों के देखने में एवं कानों के सुनने में विभिन्नता हो जाती है।

विशेष—इन पंक्तियों में राधा अधिक दार्शनिक बन गई है और जीवन की गुत्थियों को सुलझा कर रखती है।

पक्षी होता······ ······भिन्नता है। ९४ से ९६।

शब्दार्थ—अर्थी = स्वार्थी, त्रिधा = तीन, लोकोल्लासी = लोक को उल्लासित करने वाला, मदन = काम।

व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध उदाहरण सहित देखने, सुनने में भिन्नता का विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं। कवि कहते हैं कि एक खिले हुए फूल को देखकर भंवरा तो रस लेकर मत्त हो घूमता है, स्वार्थी माली उसे तोड़ लेता है तथा ज्ञानी उसको देखकर बड़ा विमुग्ध होता है। तीनों को देखने में भावना के अनुसार ही अन्तर आ जाता है। किसी रूप को देखकर कोई काम के वशीभूत हो जाता है, कोई आनन्द में मग्न हो जाता है, और कोई मग्न होकर ईश्वर की कीर्ति का गान करने लगता है। इस प्रकार तीनों की प्रखर दृष्टियों में अन्तर पाया जाता है।

सुन्दर वृक्ष के ऊपर पक्षियों का कलनाद सुनकर ज्ञानी तो परम-ईश्वर का पाठ करने लगता है, शिकारी इसको देखकर वध करने के लिये तैयार हो जाता है। इस प्रकार दोनों के सुनने में भिन्नता पाई जाती है।

यों हो··· ···· ·······राजसी-वृत्ति-शाली। ९७ से ९९

शब्दार्थ—सरल है।

व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार कवि हरिऔध कहते हैं कि इन्द्रियों के विषयपान करने में भिन्नता होती है। चखने में, सूंघने में और स्पर्श करने में पात्रों में नित्य प्रति विभिन्नता पाई जाती है। इसी प्रकार भावनाओं में भी विभिन्न स्तर पाये जाते हैं। भावों के आधार पर ही पृथ्वी स्वर्ग के जैसा आनन्द देती है।

राधा के भावों में भी भिन्नता है। एक ओर तो ऐसी इच्छा होती है कि परम-प्रिय यहां आयें और मधुर वाणी बोलें, प्यार से गोद में लें, नैनों को शीतलता मिले, दुःख दूर हो जायं और मुझे सुख की प्राप्ति हो। दूसरी ओर यह भी इच्छा होती है कि मेरे प्रिय चाहें घर नहीं आवें लेकिन लोक कल्याण से विस्मृत न हों। हृदय का वह भाव जो संसार को कष्ट देता है, दूसरों के दुःखों को देखता है वह तामसी वृत्ति वाला है और जो विविध भावों की इच्छा से युक्त अनेक भावनाओं में डूबा हुआ तथा स्वार्थपूर्ण है वह राजसी वृत्ति वाला होता है।

निष्कामी है··· ··· ·······उन्हें पा। १०० से १०२।

शब्दार्थ—सरल है।

व्याख्या—कवि हरिऔध अब सात्विकी-वृत्ति का विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं। कामना रहित संसार को सुखमय बनाने वाली, भोगों से विमुख वृत्ति सात्विक वृत्ति कहलाती है। इसी प्रकार श्रवण आदि भी तामसिक, राजसिक और सात्विक हुआ करते हैं। हृदय तल की वह भावना जिसमें आत्मत्याग हो सात्विक वृत्ति होती है।

रसना, नासिका, कर्ण अथवा नेत्र प्राणों के रहते हुए अपनी प्रकृति को कैसे छोड़ सकते हैं? प्राणों के रहते हुए इच्छाओं का शमन नहीं किया जा सकता। अतः मैं भी उन इच्छाओं को पवित्र बनाकर रखती हूं।

अब राधा की भी भावनाओं में परिवर्तन आ गया है। जिस विकसित कमल को या चन्द्रमा के सौन्दर्य को देखकर तथा पक्षियों की मधुर ध्वनि सुनकर राधा व्यथित होती थी अब शान्ति के साथ आनन्द से विमुग्ध होती है। अब कमल को प्रियतम के चरणों जैसा देखकर, चांद को उनके मुख जैसा समझकर और पक्षियों की ध्वनि को मुरली की मधुर ध्वनि समझकर आनन्दित होती है।

यों ही········· **·········प्रेम जागा।** १०३ से १०५ ॥

शब्दार्थ—अंग सम्भूत=अंगों से उत्पन्न, साम्या=तुल्य या बराबर, गरिमावान=गौरवशाली, स्वीय-प्राणेश=अपना प्रिय।

व्याख्या—कवि हरिऔध राधा का प्रकृति के साथ तादात्म्य का चित्रण कर रहे हैं। बाला राधा कहती है कि धरती और आकाश में जिन दिव्य वस्तुओं को मैं स्पर्श कर लेती हूं उन सब में श्याम के गुणों की महानता देखकर मुग्ध हो उठती हूं। समान गुणों वाली वस्तु को देखकर मैं उनमें श्याम के दर्शन करती हूं। हृदय के ऐसे अद्भुत भाव परिवर्तन से मैंने परम-गौरवशाली दो फलों की प्राप्ति की है। मेरे हृदय में विश्व को विजित करने वाला प्रेम जग गया है। दूसरे ईश्वर के दर्शन मैंने अपने प्रिय में ही किये हैं। संसार की विभिन्न वस्तुओं के रंग और रूपों में उसी प्राणेश को देखती हूं। ऐसी स्थिति में जब मेरा हृदय विश्व-प्रेम जाग गया है तो समस्त वस्तुओं को प्यार से क्यों न देखूंगी। भाव यह है कि सर्वत्र उसी परम प्रिय के दर्शन करूंगी।

विशेष—इन पदों में विरह व्यथिता का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। विरह की एक ऐसी सीमा होती है जहां पर आकर समस्त वस्तुएं प्रिय के रंग से रंजित दिखाई देती है। इसी की पुष्टि उपर्युक्त पदों में की गई है।

जो आत न········· **·········अतः है ॥१०६ से १०८॥**

शब्दार्थ—सरल है।

व्याख्या—कवि हरिऔध इन पंक्तियों में ईश्वर के अव्यक्त रूप को चित्रित कर रहे हैं। राधा कहती है कि जो ईश्वर मन की शक्ति से परे हैं, बुद्धि से जिसका पार नहीं पाया जा सकता, भावों का जो विषय नहीं है, अव्यक्त रूप है, इंद्रियों से परे, जिसको ज्ञानी नहीं जानते ऐसी वस्तु को मैं अज्ञान बालिका कैसे जान सकती हूं ? अर्थात मैं भी उसे नहीं पा सकती।

शास्त्रों में कहा गया है कि प्रभु के असंख्य सिर, नेत्र, हाथ और पैर हैं। और साथ ही यह भी कहा गया है कि मुख, नेत्र और नासादि इन्द्रियों के न होने पर भी स्पर्श करता है, सूंघता है और श्रवण करता है। भाव यह है कि इसके रूप को निश्चित नहीं किया जा सकता और न ही बुद्धि से जाना जा सकता है।

ज्ञानियों ने ईश्वर के मर्म को बताते हुए कहा है कि सारे संसार के प्राणी उसी की मूर्तियां हैं। उनकी सहस्त्रों आंखें हैं। अतः ब्रह्म को असंख्य इन्द्रियों वाला कहा गया है।

विशेष——इन पदों में ईश्वर के सगुण एवं निर्गुण दोनों ही विचारों को रखा गया है। इसके अतिरिक्त प्रिय में ही ईश्वर का रूप देखकर उसके सहज प्राप्य रूप को प्रतिष्ठित किया गया है।

निस्प्राणों को……… ………उज्वला है ।।१०६ से १११।।

शब्दार्थ——निष्प्राण = प्राण रहित या मृतक, गात्रेन्द्रियां = देह की इन्द्रियां, अन्या शक्ति = अन्य शक्ति, ईशांश = ईश्वर का अंश, तिमिर = अंधकार, पादपों = वृक्षों, पूतता = पवित्रता, पगी = सिक्त।

ससंदर्भ व्याख्या--ईश्वर के रहस्य की गुत्थियां प्रस्तुत करते हुए कवि कहते हैं कि मृतक शरीर की सभी इन्द्रियां भी शिथिल होकर अपना कार्य समाप्त कर देती है। इससे प्रतीत होता है कि इन्द्रियों से परे भी कोई शक्ति है। अतः वह शक्ति भी ईश्वर का अंश है जो बिना रसना और नासादि के खाता, सूंघता और देखता है। तारों में, सूर्य में, आग तथा विद्युत में, रत्नों तथा मणियों में सर्वत्र इसी की कांति है। पृथ्वी, पानी, आकाश, वृक्षों और पक्षियों में जो महानता है वह सभी संसार में व्याप्त ब्रह्म की है।

राधा कहती है कि जगत ब्रह्म की सत्ता नित्य ही लीला करती रहती है। वह प्रेम से सिक्त, परम मधुर, पवित्र है। वह उच्च है, अनोखी है सरल है, आनंददायक है तथा ज्ञान से परिपूर्ण और आकर्षक है। वह वन्द्य है तथा पूज्य है, कांतिशाली है और हृदय को हर्षित करने वाली है। वास्तव में ईश्वर के बारे में कुछ कहा ही नहीं जा सकता।

मैंने की है…… ……अभिन्न ।।११२ से ११३।।

व्याख्या—कवि हरिऔध अपने आध्यात्मिक विचारों को सारांश रूप में प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि मैंने ईश्वर के सम्बन्ध में जितनी भी शास्त्र सम्मत बातें की हैं उनसे प्रकट होता है कि सर्वत्र ईश्वर ही व्याप्त है। सर्वत्र वही प्रियतम है और प्रियतम में संसार व्याप्त है। इसीलिए ईश्वर को मैंनें अपने प्रिय श्याम की कांति में ही पाया है।

कवि निष्काम भक्ति की चर्चा करते हुए कहता है कि शास्त्रों में जिस निष्काम भक्ति को रखा गया है वह अलौकिक और मानव जीवन की विभूतियों से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। जब मैं प्रियतम और ईश्वर को एकाकार देखती हूँ तो अपार आनन्द मिलता है और मैं अपने को स्वर्गीय जीवों में पाती हूं। सर्वत्र मुझे उसी प्रिय श्याम की कांति नजर आती है। इससे मैं अपने आपको बड़ी ही धन्य एवं स्वर्गीय आभा से लसित पाती हूं।

जगत-जीवन…… …… प्रभु भक्ति है ।।११४ से ११५।।

शब्दार्थ—स्व प्रिय = अपना प्रिय, महा-कमनीय = महान सुन्दर।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध भक्ति की महत्ता तथा इसके प्रकारों पर विचार प्रकट करते हुए कहते हैं कि—संसार का आधार प्राणों का स्वरूप तथा अपने माता पिता, गुरू आदि को प्रसन्न रखने का प्रमुख साधन यही निष्काम भक्ति है। दूसरे अपने प्रिय का साधन भी यही निष्काम एवं सुन्दर भक्ति है। भाव यह है कि अपनी आत्माओं की प्रियता से लेकर समष्टि को प्रिय बनाने का प्रमुख उपाय भक्ति है। भगवान के गुणों का श्रवण, कीर्तन, भगवान की वन्दना, दासता, स्मरण, मित्रता का भाव, उसकी पूजा करना तथा चरणों की सेवा करना ये सब नवधा भक्ति के विभिन्न रूप है।

बना किसी की······ ······अर्चनादि ॥११६॥

व्याख्या—नवधा भक्ति के बाद राधा वर्णन करती है कि जो भक्ति किसी की कल्पित मूर्ति बनाकर उसकी सेवा करता है तो उसकी यह भक्ति भगवान की भक्ति के समान नहीं होगी। भगवान की पूजा देवी देवताओं की पूजा से उत्तम है।

विश्वात्मा ··· ······वन्दनाख्या ॥११७ से २०॥

शब्दार्थ—गिरि = पर्वत, सर्वोत्तमा = सबसे श्रेष्ठ, आर्त्त = दुःखी, लोक-उन्नायकों = उन्नति करने वाले, सत्संगियों = अच्छी संगत, कीर्त्तनोपाधिवाली = कीर्त्तन की उपाधि दी जाने वाली, विबुध = ज्ञानी या विद्वान।

व्याख्या—कवि हरिऔध भक्ति की व्यापकता को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि संसार में जितने भी रूप हैं वे सब उसी विश्वात्मा प्रभु के ही रूप हैं। सभी जीव, नदी, पर्वत, वृक्ष, लता इत्यादि सभी उसी के रूप हैं। उन सब की भली प्रकार से रक्षा करना, सेवा करना, उनको सम्मान देना भाव-युक्त ईश्वर की श्रेष्ठ भक्ति के अन्तर्गत आते हैं। दुःखी एवं दग्ध प्राणियों की दुःख गाथा को बड़ी श्रद्धा से सुनना रोगी प्राणियों की सेवा तथा दुःखियों का दुःख दूर करना सद् शास्त्रों का अध्ययन करना इत्यादि सुन्दर श्रवण भक्ति के अन्तर्गत आते हैं। सोते, जागते, उठते-बैठते परम प्रिय के गुणों का गान करने से अंधकार दूर होता है तथा भूले मनुष्य सत्पथ पर आते हैं। भाव यह है कि हर समय चाहे कोई भी समय हो परम प्रिय के गुणों का गान करना ही प्रभु कीर्तन भक्ति है।

विद्वानों के, अपने गुरूजनों के, देश प्रेमियों के ज्ञानी, दानी, सुचरित्रों के, तेजवान पुरुषों के आत्म उत्सर्ग करने वाले, बलिदान करने वाले तथा दिव्य गुणों से संयत मनुष्यों के आगे नत मस्तक होना ही ईश्वर की श्रेष्ठ बन्दना भक्ति है।

जो बातें हैं······ ······भक्ति है ॥१२१ से १२३॥

शब्दार्थ—सब-हितकारी = संसार का हित करने वाली, कंगालों = गरीबों, सुरति करना = ध्यान रखना या स्मरण करना, त्राण देना = मुक्ति देना, विपद-सिंधु = दुःखों के सागर।

व्याख्या—कवि हरिऔध पूर्व संदर्भानुसार कहते हैं कि जो बातें लोक के हित में होती हैं, जिन प्रयत्नों से पतित जातियां उन्नति के पथ पर अग्रसर होती हैं उन सबके लिये उत्सर्ग होना और सेवा में निरत रहना ही दासता भक्ति है। भाव यह है कि पतित जातियों को उठाने तथा लोकहित के लिये अपने को उत्सर्ग कर देना ही दास भक्ति है। गरीबों, विधवा और अनाश्रितों, दुःखियों को याद करना और उन्हें मुक्त करना, दूसरों की पीड़ाओं का ध्यान रखना स्मरण भक्ति के अन्तर्गत आता है। आत्म-निवेदन भक्ति को इंगित करते हुए कवि हरिऔध कहते हैं कि जो मनुष्य विपदा के सागर में पड़ा हो, उस मनुष्य के दुःख को दूर करने के लिये अपने को त्याग देना ही आत्म-निवेदन भक्ति है।

संत्रस्तों········ ·······सेवनाख्या ।।१२४ से १२६।।

शब्दार्थ—संत्रस्तों=दुःखी अरक्षित, निर्बोधों=जिन्हें किसी का ज्ञान न हो। समाज वपु=समाज रूपी शरीर।

व्याख्या—कवि हरिऔध पूर्व संदर्भानुसार ही कहते हैं कि दुःखी या अरक्षित प्राणियों को शरण देना, दुःखियों को शांति देना, अज्ञानियों को अच्छा परामर्श देना, रोगियों को दवा या औषधि देना, प्यासों को पानी तथा भूखों को अनाज देना ये सब श्रेष्ठ अर्चना भक्ति के अन्तर्गत आती हैं। विभिन्न प्राणियों, वृक्षों, पर्वत तथा लताओं को ही नहीं बल्कि पृथ्वी से लेकर आकाश पाताल तक सभी से उन्हीं के अनुसार कार्य लेना उनके प्रति सहृदय होना है और यही सख्य भक्ति के नाम से पुकारी जाती है। जो प्राणी समूह अपने निकृष्ट कर्मों से समाज रूपी दानव के पैरों के नीचे पड़ा है उसे प्रयत्न सहित शरण में लेना लोक-परा भक्ति के अंतर्गत आती है।

विशेष—नवधा भक्ति के अंतर्गत कवि हरिऔध ने केवल भक्ति के सूक्ष्म अर्थ को ग्रहण किया हो ऐसी बात नहीं है। इस भक्ति के व्यापक रूप को प्रस्तुत करना ही उनका प्रमुख लक्ष्य है जिससे मानव समाज संकुचित न होकर भावनाओं के व्यापक दायरे में प्रवेश कर सके।

कह चुकी······ ·······भाग्यवती हुई ।।१२७ से १२८।।

शब्दार्थ—सरल है।

व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार राधा कहती है कि ईश्वर की प्राप्ति की सर्व प्रिय एवं सहज साधन प्रिय की ही भक्ति है। इसीलिए प्रिय एवं परमेश्वर की भक्ति अभिन्न है।

उद्धव को सम्बोधित करती हुई राधा कहती है कि यह तो मणि और कांचन का बड़ा ही अपूर्व संयोग है। कहां कृष्ण जैसे मणि और कहां मैं? यह मेरा बड़ा ही अहोभाग्य है कि कृष्ण ने मेरे लिये संदेश भेजा है। यह अवसर पृथ्वी पर बड़े ही भाग्य से मिलता है। यह स्वर्ण में सुगन्धि ही है। इससे मैं तो पृथ्वी पर बड़ी ही भाग्यशाली हो गई हूं।

जो इच्छा है ····· ·····कार्यावली में ।।१२६ से १३१।।

शब्दार्थ—अनुज्ञा=आज्ञा, दत्तचित्ता=संलग्न, रंजिता=रंगी हुई, मर्म=रहस्य, पूत=पवित्र।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भ के अनुसार ही राधा उद्धव से कहती है कि मेरे प्रिय श्याम की जो आज्ञा है उसे मैं कभी नहीं भूल सकती हूं तथा यह संदेश मेरे आत्म व्रत के लिए परम उपयुक्त है। अब तो मैं इसमें और भी सलंग्न होकर इसका पालन करूंगी। भाव यह है कि श्याम के परम संदेश का पालन राधा अत्यंत सलंग्न होकर करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा करती है।

राधा कहती है कि मुझ में फिर भी मोह की मात्रा अधिक है और उनकी समृति में बेचैन रहती हूं लेकिन मोह के होते हुए भी प्रणय के रंग से रंजित हूं। अब मैं इस पुण्य कार्य में और भी सलंग्न हूंगी जिससे मैं श्याम के प्रेम में पूर्णत: लिप्त हो सकूं। मैंने प्रिय का सम्पर्क पाकर जो भक्ति सीखी है तथा श्याम के प्रेम का रहस्य जाना है उसका बुद्धि द्वारा दत्तचित्त होकर सतत पालन करूंगी और उस पावन व्रत को कभी नहीं भूलूंगी।

जाके मेरी······ ······शांत होगा ।।१३२ से १३४।।

शब्दार्थ—कष्टिता=दु:खी, शोक मग्ना=शोक में डूबी हुई, व्यथित=दु:खी, पुष्पानुपम=पुष्प के समान सुन्दर, चारु=पवित्र, सद्वाक्यों=अच्छे वचन, प्रवल=तेज।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध अप्रत्यक्ष रूप से राधा से अपनी व्यथा को कहलवा रहे हैं। राधा अपने कष्ट से दु:खी नहीं है, वह तो दूसरों के दग्ध हृदयों से व्याकुल है। राधा उद्धव से कहती है कि–हे उद्धव! आप कृष्ण को बड़े ही सौजन्य एवं विनय से मेरे निवेदन को कहना कि मैं आपके विरह में अपने ही कष्टों से व्यथित नहीं हूं। मेरी व्यथा की आप चिंता मत करो। अन्य ब्रजवासियों की स्थिति बड़ी ही दयनीय है। इसी से मेरे को वेदना है। दूसरे शब्दों में मैं अपने कष्टों से दु:खी नहीं हुं बल्कि ब्रज वासियों की स्थिति मुझे व्याकुल बनाये दे रही है। इसकी ओर ध्यान दो। हे कृष्ण! आप अपना मुख कमल विकल गोपी गोपों को दिखा जाओ। यदि आपके पावन कर्तव्यों में किसी प्रकार की बाधा न हो तो अपनी माता की स्थिति देख जाओ।

राधा आगे कहती है कि लाभ की आकांक्षा से लोभ की मात्रा बढ़ती जाती है। फिर भी आपके आने से यहां की कई भ्रांतियां दूर हो जावेंगी। आपके दर्शनों से उत्कुंठित मुख जिनको देख कर हृदय दग्ध होता है उनको आपके वचनों से शांति प्राप्त होगी और विकलता का वेग भी कम होगा।

सत्कर्मी हैं······ ·······हुए ।।१३५ से १३६।।

शब्दार्थ—शुचि=पवित्र, कौमार-व्रत=कुंवारी व्रत, समेत=सहित।

व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार राधा उद्धव से कहती है कि आप अत्यंत

पावन, अच्छे कार्य करने वाले, सुन्दर एवं ज्ञानी हो। आप श्याम से इतना विनय करना कि मैं उनको कभी भी न भूलूं। उनकी आज्ञा का पालन सतत करती रहूं। मैं मेरा कुमारी-व्रत संसार में पूर्णता को प्राप्त करूं और मैं ससार के कार्यों के निमित्त साधन बन सकूं। इतना विनय करके राधा मुग्ध होकर शांत हो गई। उद्धव ने भी राधा के चरणों की धूल अपने मस्तक पर धारण करके परम शांति सहित विदाई ली और ब्रज की ओर चल दिये।

विशेष—इन पंक्तियों में राधा की विरहावस्था चरम सीमा को प्राप्त कर अपने को संसार के लिये समर्पित कर देती हैं। और कृष्ण को न भूलने के लिये निवेदन करती है।

सप्तदश सर्ग

कथासार

सप्तदश सर्ग प्रियप्रवास का अन्तिम सर्ग है। इस सर्ग में एक संदेश निहित है, एक विशिष्ट अर्थ-गौरव है। इसमें राधा के चरित्र का उदात्तीकृत रूप, उद्धव का वापस जाना और ब्रजवासियों के प्रेम से भलीभांति परिचित होना व्यंजित है।

उद्धव ब्रजभूमि केवल दो एक दिन के लिए ही आये थे, किन्तु उस रमणीक वनस्थली में इतने रमे कि कई मास तक रहने को मजबूर हो गये। उद्धव मथुरा वापस चले गये। तदनंतर वे कभी भी ब्रज नहीं लौटे और न कृष्ण ही आ सके। कुछ समय पश्चात् ब्रजवासियों के कानों में पड़ा कि कंस मारा गया है अत जरासंघ कृष्ण पर आक्रमण करने के लिए आ गया है। इस समाचार से सभी बड़े दुखी हुए। जब भी कभी वे आकाश में धूल उड़ती देखते थे। घोड़ों की टापों की आवाज सुनते तभी व्याकुल हो जाते और उनका हृदय विदीर्ण होने लगता। काल की गति विचित्र है। कुछ ही समय के पश्चात् उन्हें यह समाचार सुनाई पड़ा कि जरासंघ पराजित हो गया है। वे सभी बड़े संतुष्ट और प्रसन्न हुए। सत्रह बार हार जाने के पश्चात् जब जरासंघ ने अठारहवीं बार आक्रमण किया तो सब ने बहुत ही व्यथित होकर यह सुना कि कृष्ण मथुरा को छोड़ गये हैं और अब तो वे द्वारिका में जाकर रहने लगे हैं। यह सुनकर उनकी रही-सही कामनाएं और आशाएं भी नष्ट हो गईं।

इतनी निराशा के पश्चात् भी वे हताश नहीं हुए और कृष्ण के मिलन की आशा से दूर नहीं हुए। आज भी सभी ब्रजवासी कृष्ण के दर्शनों की प्रतीक्षा में आस लगाये बैठे हैं। आशा और प्रतीक्षा की भी हद होती है। कोई प्राणी कब तक दुख-भार को सहन कर सकता है। प्रकृति की सुषमा, सज्जनों के उपदेश और जीवन के विविध संदर्भ मनुष्य कैसे और कब तक सन्तोष दे सकते हैं। धीरे-धीरे समय की पर्त पर पर्त इकट्ठी होती गई और एक समय ऐसा भी आया कि कृष्ण को लोग भूलने लगे, किन्तु भूलने पर भी कृष्ण की मूर्ति उनके हृदय से विलीन नहीं हो सकी। ब्रजवासियों के मन में समायी कृष्ण की मूर्ति उन्हें सदैव कृष्ण की याद दिलाती रहती थी। कृष्ण के मधुर यश का गुणगान किया करते थे। राधा ने माता पिता को तथा अन्य ब्रजवासियों के दुखों को दूर करने का पर्याप्त प्रयास किया किन्तु वह सभी सम्भव न हो सका। कौमार्य-व्रत को धारण करने वाली अन्य बालाओं के पास भी राधा जाया करती थी। जब बादल घिर आते और

मयूर नृत्य करने लगता तो सभी बालायें परस्पर वार्ता किया करती थीं । वे कहा करती थीं—

जो छा जाती गगन-तल के अंक में मेघमाला ।
जो केकी हो नटित करता केकिनी साथ क्रीड़ा ।
प्रायः उत्कंठ बन रटता पी कहां जो पपीहा ।
तो उन्मत्ता-सदृश वन के बालिकायें अनेकों ।।
ये बातें थीं सजल घन को खिन्न हो हो सुनाती ।
क्यों तू होके परम-प्रिय सा वेदना है बढ़ाता ।
तेरी संज्ञा सलिल-धर है और पर्जन्य भी है ।
ठंडा मेरे हृदय-तल को क्यों नहीं तू बनाता ।।

राधा सभी विरहातुर बालाओं को समझाया करती थी । यदि कभी कोई बालिका विपन्न होती तो राधा उससे कहती—यह तेरी बुद्धिमत्ता नहीं है । प्रियतम की सुछवि क्या तुझे चन्द्रमा में नहीं दिखाई देती है ? जब बसन्त ऋतु आती और सारी प्रकृति नया शृंगार करती तब ब्रजवासियों के हृदय का दुख और भी बढ़ जाता था । बालिकाएं शोक मग्ना हो जाती और राधा उन्हें समझाया करती थी । राधा सर्वत्र घूमती और उनका शीतलोपचार करती थी । राधा नित्य प्रति यशोदा के पास जाती और बहुत सी बातें कह कह कर उन्हें समझाया करती थी । जब कभी भी यशोदा पूछती कि क्या राधा अब श्याम यहां कभी नहीं आयेगा तो वह उत्तर देती—"आयेंगे क्यों नहीं ? वे दुखी ब्रज को कैसे छोड़ सकेंगे ।" ऐसा कहते कहते राधा स्वयं भी रो पड़ती थी ।

राधा नन्द जी के पास भी जाया करती थी और उन्हें शांति प्रदान करने की चेष्टा करती थी । यदि कभी कोई गोप अकेला बैठा होता तो राधा उसके पास जाती और उसे किसी न किसी कार्य में लगा देती तथा उसका ध्यान दूसरी ओर लगाकर दूसरे के पास चली जाया करती थी । गोपियों के दुख को भी वह इसी प्रकार दूर किया करती थी ।

राधा कृष्ण के सदेश का पूर्णतः पालन किया करती थी । वह यह प्रयत्न किया करती थी कि कहीं मुझ से लोकोपकार के कार्य में कोई त्रुटि न हो जाय । इसी कारण राधा रोगियों और दुखियों की सेवा भी किया करती थी । यह पृथ्वी के सभी जीवधारियों का ध्यान रखती थी । चींटी से पक्षी तक को सुख प्रदान करने का प्रयत्न करती थीं । ब्रज के मोह की रात में राधा चन्द्रिका के समान शोभित होती थी । अन्य बालाओं को भी राधा शिक्षा से प्रेरित होकर सुखी करने का कार्य किया करती थी । कवि के इन शब्दों से राधा की लोकोपकारिता का अनुमान लगाया जा सकता है—

आटा चींटी विहग गण थे वारि औ अन्न पाते ।
देखी जाती सदय उनकी दृष्टि कीटादि में भी ।
पत्तों को भी न तरुवर के वे वृथा तोड़ती थीं ।
जी से वे थीं निरत रहती भूत–संवर्द्धना में ।।

इसके बावजूत भी ब्रज में वह शुभावसर नहीं आया जबकि कृष्ण लौटते और सभी को आनंदित करते । ब्रजवासी कृष्ण दर्शनों की लालसा को

ही हृदय में छिपायें अपना जीवन जैसे-तैसे चलाते रहे। वे कभी भी विरह को न भूल पाये और उनके वंशज भी कृष्ण और तत्सम्बंधित प्रेम को विस्मृत नहीं कर पाये। आज भी वे व्यथातुर हैं। कृष्ण जैसे सच्चे देश के प्रेमी हों और राधा जैसी नारियां हों तो सही, किन्तु विरह की इतनी व्यापकता कहीं भी न हो।

सर्ग समीक्षा

१. सर्ग समापन के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

२. राधा के चरित्र का लोकोत्तर रूप प्रदर्शित किया गया है। हरिऔध जी ने राधा के रूप में एक आदर्श भारतीय नारी को प्रस्तुत किया है। उसमें लोककल्याण और कर्म-योग दोनों का सम्मिलन है। राधा परम्परा से हटकर दिखाई गई है।

३. वर्णन शैली अतिशयोक्तिपूर्ण है।

व्याख्यायें

उधो लौटे ···· ···· ···· ···· उरों में ।।१–३।।

शब्दार्थ :—व्यग्रता=बैचेनी, निधन=मृत्यु, व्यापमाना=पूरी तरह से व्याप्त, आपदा=आपत्ति, तर्कनारों=विचारणायें।

सप्रसंग व्याख्या :—प्रस्तुत पंक्तियों में कवि हरिऔध बता रहे हैं कि उद्धव ब्रज भूमि गये तो दो एक दिन के लिए ही थे, किन्तु वहां उन्हें काफी समय लग गया और वे वहां से कई मास पश्चात् लौटे। इस अवधि में ब्रज में कोई भी नहीं आया और न कृष्ण ही आये। शनैः-शनैः ब्रज वासियों के दिन कृष्ण के विरह में बड़ी बैचेनी से बीतने लगे। कुछ समय बीतने के अनन्तर ब्रज में एक संवाद आया कि श्याम ने कंस का वध कर दिया है। इस घटना के घटित होते ही जरासंध क्रोधित होकर विशाल सेना के साथ मार्ग के नगर और गावों को जलाता हुआ मथुरा की ओर बढ़ने लगा। ये बातें जैसे ही ब्रज की धरा पर फैली सभी लोग दुख में डूब गये और बहुत ही चिन्तातुर हो गये। सभी यह सोचने लगे कि "अब क्या होगा ? यह विपत्ति कैसे दूर होगी"?

जो होती ··· ···· ··· गोपादिकों को ।।४–६।।

शब्दार्थ :—उत्थिता=उठती, घोटकों=घोड़ों की, शतधा=सैकड़ों, त्रास=भय, निहत=नष्ट, उद्विग्न=बैचेन, कम्पमाना=कम्पित, धावा=दौड़ा।

व्याख्या :—पूर्व संदर्भानुसार ही कवि कह रहा है—यदि आकाश में कभी धूल उड़ती हुई दिखाई देती थी तो सभी ब्रजवासियों को आशंका होती थी और वे भय से पागल से होते थे। यदि कहीं घोड़ों की टापें सुनाई देती थीं तो गोप गोपियों का हृदय सैकड़ों टुकड़ों में विभक्त हो जाता था। इस प्रकार दुख के ये दिवस बड़े त्रास के साथ व्यतीत हुए। लोगों ने समाचार

दिया कि शत्रु की सम्पूर्ण सेना कृष्ण के द्वारा नष्ट और निहत्थी कर दी गई और जरासंध बड़ी कठिनाई से अपने प्राणों को बचा कर भागा है। जरासंध ने ब्रज भूमि को कम्पित बनाते हुए सत्रह बार मथुरा पर आक्रमण किया और प्रत्येक बार पराजित हुआ। जब जरासंध ने अठारहवीं बार आक्रमण किया तो उस समय ब्रज में सूचना पहुंची कि उससे तो नन्द और गोप-गोपियों की सारी आशायें धूल में मिल गईं। उन्हें यह विश्वास हो गया कि अब की बार ब्रज का बचना बड़ा मुश्किल है।

हां! हाथों ··· ···· ··· ···· वहां भी ॥७–९॥

शब्दार्थ :—उत्पातों = उपद्रवों, स्वाती सेवी = स्वाती जल का इच्छुक, अतिशय = अधिक, तृषावान = प्यासा, सर्वदेशी = सर्व प्रकार से, वीची = लहर, जीवनाम्बोधि = जीवन-सागर, ज्योति = प्रकाश।

सप्रसंग व्याख्या :—पूर्व संदर्भानुसार कवि कह रहा है कि सभी ब्रज-वासियों को जरासंध के अठारहवें आक्रमण से बड़ी चिन्ता हो गई। वे अब की बार तो अपने हाथों से कलेजे को थाम कर रह गये। रोते हुए सब लोगों ने यह बात सुनी कि जरासंध के रोज के झगड़ों से तंग आकर कृष्ण ने मथुरा प्रवास छोड़ दिया है और वे द्वारिका में जाकर रहने लगे हैं।

जिस प्रकार स्वांति नक्षत्र का पानी पीने वाला अत्यन्त प्यासा पपीहा शरद ऋतु के बीत जाने पर बड़ा निराश और अवसादपूर्ण हो जाता है उसी प्रकार कृष्ण के द्वारिका गमन की सूचना से ब्रज में सभी के हृदयों पर गहरी उदासी आ गई।

प्राणिमात्र की यह विशेषता है कि वह आशा के कमलवत चरणों को कभी नहीं छोड़ पाता है। वह जीवन के सागर में लहर की तरह सदैव उपस्थित रहता है। जहां पर हृदय के अंधकार के समान निराशा छाई हुई है, वहां आशा की मन्द किरणें अवश्य बिखरी दिखाई देती हैं।

विशेष :—उदाहरण, उपमा और रूपक अलंकारों का प्रयोग सुन्दर ढंग से किया गया है।

आशा त्यागी ··· ··· ··· ··· जलों की ॥१०–१२॥

शब्दार्थ :—ब्रजमही = ब्रज की पृथ्वी ने, जीको मारे = मन मान कर, नखत गिनके = नक्षत्रों को गिन-गिन कर, निलय = घर, ललित लतिका = सुन्दर लतायें। कान्ता = सुन्दर।

ससंदर्भ व्याख्या :—पूर्व संदर्भानुसार ही कवि कह रहा है कि कृष्ण के मथुरा छोड़ देने पर भी ब्रज के निवासियों ने कृष्ण के दर्शन-लाभ की आशा नहीं छोड़ी। आज भी लाखों आंखें आशान्वित होकर कृष्ण के मार्ग को देखती रहती हैं। सभी के दुख अधिक गम्भीर हो गये हैं और अब तो उनकी आंखों से दुखातिरेक के कारण पानी या आंसुओं के स्थान पर रक्त आया करता है।

वस्तुतः सच है कोई भी व्यक्ति कब तक किस सीमा तक रोता रह सकता है? वह अपने टूटे कलेजे को थाम कर कब तक नेत्रों से आंसू बहा सकता है। भाव यह है कि हर क्षण और हर स्थिति की अपनी सीमा होती है। कोई विरही कब तक दुखी तथा व्याकुल होकर नक्षत्रों को गिनता हुआ संसार के सारे सुखों से उदासीन रह सकता है? इस स्थान पर सूर्य और चन्द्रमा की अनुपम शोभा और कांति वाली किरणें हैं, तारों से युक्त नभ की सुन्दर और आकर्षक नीलिमा है, आकर्षक मेघावली है। इतना ही नहीं यहां पर वृक्षों और ललित-लताओं की शोभा का अपार सागर लहरें ले रहा है। यहां पर तालाब, झरने के जल मधुर और रमणीय क्रीड़ारत रहते हैं।

मीठी तानें.... ....हटाते ॥१३ से १५॥

शब्दार्थ—विद्यादिकों = विद्यावान आदि की, विहग-कुल = पक्षियों के समूह, वैचित्र्य से वलित = विशिष्टता युक्त।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार कवि वर्णन कर रहा है— गाने और बाजों के संगीत की मधुर हिलोरें और तानें हैं पक्षियों के समूह की मधुर आवाज है। बालकों की रम्य और मनोहारी क्रीडाएँ भी यहां दिखाई देती हैं। सुन्दर ऋतुओं, उत्सवों और मेलों की अनुपम शोभा है, और धरती की अनूठी सम्पत्तियां हैं।

दुख से व्यथित और परेशान व्यक्तियों को देखकर नेत्रों में कठोर संसार का चित्र खिच जाता है किन्तु साथ ही सज्जनों की सान्त्वना पूर्ण वाणी और सदुपदेश भी सुनने को मिलते हैं। ये सभी व्यथित व्यक्तियों को समझाते हैं। इस स्थान पर संसार का स्वाभाविक और सहज सौन्दर्य भी है और जीवन के अगणित कृत्य हैं जो जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक जान पड़ते हैं।

सांसारिक सौन्दर्य और सभी उपर्युक्त बातें मिलकर मानव हृदय को मोहित कर लेती हैं और अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। धीरे-धीरे गंभीर दुखों को वेग भी कम हो जाता है। विविध भाव अनंत अनंत माधुर्य ने दुखियों के हृदय की व्यथा को धीरे-धीरे कम कर देते हैं या शांत करने में सहायता देते हैं।

गोपी गोपों ....राधिका ने ॥१६ से १८॥

शब्दार्थ—चित्तोन्मादी=हृदय को पागल बनाने वाला, न्यून प्रायः= थोड़ा सा, राधिका-कान्त=राधा के स्वामी अर्थात् कृष्ण, किल्विषों=मलिनता, निम्ना=नीचा।

व्याख्या—कवि इन पंक्तियों में काल की विलक्षणता की ओर संकेत कर रहा है। उनका कथन है कि कृष्ण जब दीर्घकाल तक नहीं लौटे तो समय के प्रभाव से गोप, गोपियां, माता पिता और बालक व बालिकाओं के दुख का पागल वेग भी शनैः शनैः कम होता गया। एक समय ऐसा भी आया

कि यह समाप्त हो गया। इस पर भी ब्रजवासियों के हृदय से श्याम की श्यामली मूर्ति हटाई न जा सकी।

ब्रजवासी कृष्ण को न भूले। वे गाते तो सदैव कृष्ण की ही कीर्ति गाते थे जब भी चर्चा होती तो कृष्ण की बातों की ही चर्चा चला करती थी। कृष्ण ने जब-जब और जिस जिस समय सुन्दर क्रीडाएं की थी वे सभी तिथियां विशिष्ट गौरव वाली मानी जाती थी। ब्रजवासी उन तिथियों को विशिष्ट स्थान देते थे। विरह से उत्पन्न वेदना की मलिनता को दूर करने के लिए पीड़ित हृदय में वांछित शांति का संचार करने के लिए तथा आशाओं से व्याकुल नन्द और यशोदा के हृदय को प्रबोधने के निमित्त राधा ने जो स्वयं प्रेमोन्नत्त थी, पर्याप्त श्रम किया, किन्तु किसी को भी शांति लाभ न हो सका।

चिन्ता ग्रस्ता······ ···तू बनाता ॥१६ से २१॥

शब्दार्थ—चिन्ताग्रस्ता=चिन्तातुर, निरता=संलग्न, नटित=नृत्य करके। संज्ञा=नाम, पर्जन्य=मेघ या दूसरों के कल्याण के लिए जन्म लेने वाला।

व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार कवि कह रहा है कि विरह के क्षणों में व्रज-बालिकायें राधा का ससर्ग पाकर अपने को धन्य तथा चित्त को शांति सम्पन्न समझती थीं। चिन्ताओं से ग्रस्त रहने, विरहातिरेक से व्याकुल और प्रेम भावों में निमग्न कौमार्य व्रत को धारण करने वाली अन्य सभी बालिकायें नित्य प्रति घंटों राधा के चरण कमलों के पास बैठी रहा करती थी। राधा के सम्पर्क से शांति-लाभ करके सभी विपत्ति और विरह-विधुरा बालिकायें अपने को उपकृत समझती थीं—धन्य समझती थी। जब कभी आकाश में बादल घिर आते तथा मयूर मोरनी के साथ नृत्य करने लगते या उत्कंठित होकर पपीहा यह रट लगाता था कि—पी कहां हैं? तो बहुत सी बालिकाएं पागल सी बन जाती और कहने लगती कि—

हे जलभरे मेघ! तू नहीं समझता कि हम बहुत दुखी हैं। तू तो बहुत ही मधुर है, फिर क्यों हमारे दुख को तीव्रतर करता जाता है। हमारी वेदना को क्योंकर बढ़ाता है। तुझे तो लोग पर्जन्य और जल का घर कहते हैं—जिसका अर्थ दूसरों का कल्याण करना या दूसरों के निमित्त जन्म धारण करने वाला। ऐसी स्थिति में मेघ तुझे तो मेरे हृदय को सान्त्वना और शीतलता प्रदान करनी चाहिए।

तू केकी········ ········न पाती ॥२२ से २५॥

शब्दार्थ—केकी=मयूरी, मोद=आनन्द, त्रिविध=तीन प्रकार की, भगिनि=बहिन, पक्षाभा=पंखों की शोभा, कलापी=मयूर, सुखद=सुखदायी सुभगे=सुन्दर, इन्द्र=चन्द्रमा।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व सदर्भानुसार कवि कहता है कि हे मेघ तू मोर को अपनी शोभा दिखलाकर बहुत प्रसन्न कर देता है किन्तु तुझे देखकर पपीहे

को उतना आनंद नहीं मिलता है। हे मेघ! तेरी श्यामता को देखकर मेरे हृदय को बहुत ही कष्ट होता है—कारण तेरी श्यामता कृष्ण से मिलती जुलती है। न मालूम मुझे क्यों तेरी ये तीन प्रकार की मूर्तियां दिखाई देती हैं। इस प्रकार के स्थलों पर राधा बड़ी होशियारी से जाती और प्रसन्नता के साथ बालिका से कहती—हे बहिन यदि तुम अपने मन में शान्ति प्राप्त करना चाहती हो तो संसार को प्रेमिल दृष्टि से देखो। यदि यह नहीं हो सका तो शांति असंभव है।

राधा जल भरे मेघों से कहती-तू तो बड़ा मधुर है फिर तू क्यों हमारे दुख को तीव्र से तीव्रतर करता जाता है। तुझे देखकर तो हमारे नेत्रों में श्याम की कान्ति घिर आती है। मयूर के पखों को देखकर कृष्ण के मोर मुकुट का सौन्दर्य दिखाई देता है। पपीहा भी अपनी पिउ-पिउ की आवाज से प्रियतम के प्रति प्रेम प्रदर्शित करता है। ये सभी बातें सुखद हैं किन्तु फिर भी कष्ट होता है जिसका कारण अज्ञात है—अविदित है।

यदा-कदा कोई बालिका पूनम के स्वच्छ और निर्मल चन्द्रमा को देखती तो भी बहुत दुखी होती थी। राधा ऐसी बालिकाओं से कहा करती थी—हे सखी! तेरी इस प्रकार व्याकुल होना उचित नहीं है। क्या चन्द्रमा में तुझे प्रिय के मुख की शोभा के दर्शन नहीं होते। यदि ऐसा होता है तब कष्ट क्यों होगा और फिर दुख का कारण ही क्या हो सकता है।

विशेष—इन पंक्तियों में राधा के चरित्र की पर-दुख कातरता का वर्णन किया गया है। कवि ने उसे नया रूप दिया है।

जब कुसुमित होती······ ······कोकिलायें ॥२६-२७॥

शब्दार्थ—कुसुमित=विकसित, ऋतुपति=वसंत, मनोज्ञा=सुन्दर, मनसिज=कामदेव, मत्तता=मस्ती, मानसों=हृदयों में, मलय-प्रसूता=मलय से उत्पन्न।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध कहते हैं कि वसंत की शोभा देखकर व्रजवासियों को कष्ट होता है। विशेषकर जब आम्र मंजरियों के साथ वसंत आता है। लतायें और वेलें फूलों से भर जाती हैं तब सम्पूर्ण धरित्री सरस होकर आकर्षण से संयुक्त हो जाती है। ऐसे समय में कामदेव भी हृदय को मस्ती से भर देता है। जब मलय पवन से होकर आने वाली भीगी-भीगी वायु चलती है तो वृक्ष कोपलों और कलियों से शोभित हो जाते थे और कुंजों में भ्रमरों का समूह गूंजता था, जब कोयलें हर्षित होकर अपना संगीत छेड़ देती थीं। आज भी जब ऐसा वातावरण दिखाई देता है तो हृदय कृष्ण की याद में खो जाता है और व्यथातुर होकर खोया-खोया सा जान पड़ता है।

तब व्रज बनता··· ···तन्मयी हो ॥२८ से ३०॥

शब्दार्थ—उद्विग्नता=बेचैनी। उनींदी=निंदियायी। व्यजन=पंखे।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व पदों में वर्णित वसंतागमन पर सम्पूर्ण व्रज व्यथा से भर जाता था और कृष्ण की याद में वह बैचेन हो जाता था। व्रज के प्रत्येक निवासी में वेदना की वृद्धि होने लगती थी। जहां कहीं भी दृष्टि जाती थी सभी व्रजबालिकाएं बीमार व उदास सी नजर आती थीं—गृहों, मार्गों व कुंजों के बीच जहां तक दृष्टि का प्रसार था सभी बालिकाएं बहुत ही व्याकुल, उनींदी और ऊबती सी व उदास नजर आती थीं। इस प्रकार के विविध व्यथाभरे दिनों में एक सरल स्वभाव वाली बालिका रात दिन कृष्ण के प्यार से पीड़ित सर्वत्र घूमती फिरती थी। उसे मार्ग कुमार्ग का भ ध्यान नहीं था। वह गृहों, पथों और बहुत से बागों, कुंजों और वनों में घूमती फिरती थी। वह बालिका बड़े प्रेम के साथ किसी बेहोश बाला को अपनी गोदी में उठा लेती थी और अनन्तर उसे चैतन्य बनाने का प्रयास करती थी। इसके निमित्त वह बेहोश बालिका के मुख पर पानी के छींटे डालती थी तथा गहरी तन्मयता से पंखा झलती रहती थी। यह बाला राधा थी। कृष्ण के संदेश का अनुपालन करती हुई वह बाला परोपकार में लगी हुई थी।

कुवलय-दल······ ······**सुलाती। ३१ से ३३ ॥**

शब्दार्थ—कुवलय दल=कमलों के समूह, कलित करों=सुन्दर हाथों से, तप्ता=तपती हुई, बोधती=समझाती, अपस्थल=अन्य स्थल।

ससंदर्भ व्याख्या—प्रस्तुत पंक्तियों में राधा के परोपकारी रूप का वर्णन किया गया है। कवि कहता है कि राधा कमलों के समूह को तथा बिखरे हुए पुष्पों और पत्तों को अपने सुन्दर हाथों से धरती पर बिछौने की भांति बिछा देती थी। आवश्यकता पड़ने पर वह उसी बिछौने पर किसी दुखिनी बाला को सुला देती थीं और सान्त्वना दिया करती थी। वह उस बालिका के शरीर पर शीतल अवलेप लगाया करती थी। यदाकदा बालिका ज्यादा व्याकुल होती तो वह उसे किसी मधुर कुंज में ले जाती थी और वहां उसे ले जाकर प्रबोधन देती थी—समझाती-बुझाती थी। यदि कोई बालिका कृष्ण के विरह में वन-वन बिलखती घूमती तो वह उसके समीप जाती और उसके संताप का निवारण करती थी ठीक वैसे ही जैसे शीतल छाया ताप का निवारण करती है।

एक स्थान पर तो राधा धरती पर लौटती किसी विरहिणी बालिका का शरीर पोंछती और उसे हृदय से लगाकर सभी प्रकार से सान्त्वना देती थी तो दूसरे ही क्षण वह किसी मोहमग्ना बाला को जो घबराई हुई होती थी सो बहलाया करती थी और उसका सिर सहलाकर अपनी गोद में सुलाती थी। इस प्रकार विविध प्रकार से राधा विरहिणी बालाओं की सेवा और रक्षा किया करती थी।

सुनकर······ ······**सार्यता से। ३४ से ३५ ॥**

शब्दार्थ—कश्चिदार्ता=कोई दुखियारी, सिधाती=चली जाती,

राधा=शाब्दिक अर्थ है—दूसरों की सेवा से प्रसन्न होने वाली ।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार ही कवि वर्णन कर रहा है कि राधा जब किसी भी घर से रोमांचकारी आह सुनती थी तो वह उस घर में शीघ्र ही चली जाती थी । वहां जाकर वह मीठे वचनों से और उक्तियों से उसे समझाती तथा जैसे तैसे समझा बुझाकर व्यथा के वेग को कम करती थी । विरह में जो बालायें तारे गिन-गिन कर आंसू बहा-बहा कर रातें बिताती थी तो राधा उनके भी पास जाती और उनकी सेवा और परिचर्या आदि करके अपने अनुपम नाम 'राधा' की सार्थकता व्यक्त करती थी ।

राधा जाती...... ....न बेटी । ३६ से ३९ ॥

शब्दार्थ—नन्दांगना=यशोदा, विपन्ना=दुखी, विनीता=विनयशीला, खिन्न=उदास ।

ससंदर्भ व्याख्या—इन पंक्तियों में कवि हरिऔध राधा की सेवा की चर्चा कर रहा है । वह कहता है कि राधा प्रति दिवस यशोदा के पास जाया करती थीं और उनसे भिन्न-भिन्न प्रकार की बातें करके उन्हें समझाया करती थीं । यदि वे परम व्यथित और दुखी होकर बेहोश हो जाती तो वे आठों पहर उसी स्थान पर जाकर सेवा किया करतीं थीं । राधा हरि की माता को घंटों गोद मे लेकर बैठी रहती थीं । जब भी यशोदा खिन्न और शोकमग्न होती तो राधा उन्हें प्रसन्न करने के अनेक प्रयत्न किया करती । राधा धीरे-धीरे यशोदा के चरणों को सहलाती और इसी प्रकार उनके चित्त की पीड़ा का शमन किया करती थी । अपने ही हाथों से उनके नेत्रों के आंसुओं को भी पोंछ देती थी । भाव यह है कि सभी प्रकार से सान्त्वना दिया करती थी ।

यशोदा माता जब कभी भी विलख करके राधा से पूछती थी कि क्या कृष्ण जो जीवनाधार हैं, लौटकर नहीं आवेंगे तो राधा बड़े ही विनीत स्वर में बता दिया करती थी कि हां-हां अवश्य आयेंगे । व्रज के दुखीजनों को छोड़ पाना कृष्ण के लिए सम्भव न होगा । भाव यह है कि वे अवश्य आयेंगे । राधा जब कभी भी यशोदा के समक्ष कृष्ण के संदर्भ से बातें किया करती थी तो उसकी आंखों में पानी आ जाता था । आंखों से टपकता हुआ अश्रु-जल सीधे बूंदों के रूप में गाल पर टपक पड़ता था । यशोदा को राधा समझाया करती थी, किन्तु कभी-कभी राधा को यशोदा भी समझाती थी । जब भी राधा की आंखों में आंसू कपोलों पर ढुलक पड़ते थे और यशोदा उन्हें देख लेती तो समझाती हुई कहा करती थी कि हे बेटी तू खिन्न मत हो ! मन में धीरज धारण कर । तेरी मनोकामना अवश्य ही पूर्ण होगी ।

विशेष—वर्णन मधुर और आकर्षक है । इसमें कवि की भावुकता दिखाई दे रही है ।

होके राधा.... ....गम्भीरता से ॥४०-४२॥

शब्दार्थ :—दृगयुगल में=दोनों नेत्रों में, चारू सेवा=सुन्दर सेवा, उत्कंठ=उत्सुक होकर, क्लान्तियां=क्लेश या वेदनायें, यत्नतः=परिश्रम के साथ अथवा यत्नपूर्वक ।

ससंदर्भ व्याख्या :—जब यशोदा राधा को रोती देख लेता और शान्त हो जाने के लिए कहती तो राधा उत्तर दिया करती थी—राधा विनय-पूर्वक कहा करती कि मैं रो नहीं रही हूँ। मेरे दोनों नेत्रों में आनन्द के आंसू आया करते हैं। आपकी सेवा करने से जो आनन्द मिलता है वही आंखों के माध्यम से पानी या आंसू बन कर बह जाया करता है। राधा प्रायः उत्कंठित होकर नृपति नन्द के पास भी जाया करती थीं। वे नन्द की विविध सेवायें किया करती थीं और इस प्रकार सेवाओं के माध्यम से उनकी क्लान्ति को दूर किया करती थीं। बातों ही बातों में राधा यह भी बतलाया करती थी कि संसार का वैभव तुच्छ है। जब कभी भी वे देखती कि नन्द व्याकुल हो रहे हैं तो वे विविध संदर्भों से युक्त शास्त्रों का पाठ किया करती थीं। राधा जब कभी भी यह देखती कि कोई गोप-मण्डली या गोपों की पंक्ति मन मारे या उदास भाव से बैठी हुई है या कभी कोई गोप व्यथित दिखाई देता तो वे तुरन्त उसके पास जाया करती थीं और वे तुरन्त उन्हें शान्ति देने के लिए अनेक प्रकार से यत्न किया करती थीं। वे उस समय बड़ी गम्भीरता से बातें किया करती थीं।

विशेष :—वर्णन शैली सरल और प्रभावोत्पादक है।

जो सा .... बोध देती ॥४३-४५॥

शब्दार्थ :—पुरुष तन=मानव शरीर, उद्योगी=परिश्रमी, परम रुचि=अतिशय रुचि के साथ, मुग्धकारी=मोहित करने वाले, तद्गता= ठीक वैसी ही ध्यानमग्न होकर, यथा रीति=उचित ढंग से।

ससंदर्भ व्याख्या :—पूर्व संदर्भ में ही राधा कह रही है कि यदि आप सभी कृष्ण के प्रति सच्चा प्रेम रखते हैं तो पुरुष-तन धारण कर के उदास मत हो। भाव यह है कि आलसी बन कर बैठे रहने से काम नहीं बनेगा। अतः उद्योगी होकर पूर्ण रुचि के साथ ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे कृष्ण प्रसन्न हों—वे कृष्ण जो सभी प्राणियों के परम प्रिय हैं।

राधा परोपकार और सेवा भावना की प्रक्रिया में जब कभी किसी गोप के बालक को दुखी देखतीं तो उनका मन बहलातीं और उन्हें पुष्पों से सजे हुए मन मोहक खिलौने प्रदान करतीं। राधा उन छोटे-छोटे बच्चों को विविध प्रकार की लीलायें कराया करतीं थीं और स्वयं घन्टों तक बैठी तद्गत होकर देखती थीं। ब्रज के अन्तर्गत जितनी भी अन्य गोपांगनायें थीं वे जब भी दुखी होती तो राधा उन्हें यथाविधि सुख प्रदान किया करती थीं। वे स्वयं कृष्ण की लीला गातीं और प्रियतम की वंशी बजाती तथा साथ ही साथ अनेक बातें बना कर प्रिय कथन करतीं और उन्हें समझाती।

विशेष :—राधा का लोकोपकारी रूप चित्रित किया गया है। कवि हरिऔध ने प्रयत्न किया है कि राधा लोक कल्याण की चित्रपटी पर उतर कर नवीन सज्जा में सामने आवे।

संलग्ना हो ···· ···· ···· ···· संवर्द्धना में ॥४६–४८॥

शब्दार्थ :—संलग्ना=तल्लीन, सांत्वना=शांति प्रदायक, कलह जनिता=क्लेश से उत्पन्न, आधि=बीमारियों, व्यापिनी=व्यापने वाली, भावज्ञता=सरसता और प्रेम, कीटादि=कीड़े आदि, निरत=संलग्न, भूत-सम्वर्द्धना=पृथ्वी के प्राणियों की उन्नति में।

ससंदर्भ व्याख्या—राधा का जीवन एक ऐसी नारी का जीवन था जो विविध प्रकार के कार्य करके परिश्रम से जीवन बिताती थी। वह विरहिणी होकर भी परोपकार कार्यों में रत रहती। कवि कहता है—

राधा विविध प्रकार के कार्यों में संलग्न होकर भी दुखी व्यक्तियों को सान्त्वना प्रदान किया करती थी। वे नित्य प्रति वृद्ध और रोगी जनों की सेवा किया करती थीं। दीनों और आश्रय–हीनों तथा निर्बल व विधवा स्त्रियों को भी बहुत महत्व प्रदान करती थीं। भाव यह है कि इन सभी को महत्ता प्रदान करके गौरव प्रदान किया करती थीं। इसी प्रकार के कार्यों के कारण ही राधा ब्रज भूमि में देवियों का सम्मान पाया करती थीं। वे अपने व्यवहार व श्रम से सभी व्यक्तियों के पारस्परिक क्लेश को भी खो देती थी। वे अपने सही प्रबोधन से मन में व्याप्त कालिमाओं को खो दिया करती थीं। साथ ही साथ अपनी मधुर वाणी से राधा भावुकता और सरसता का बीज वपन किया करती थीं। वस्तुतः राधा चिन्ता से घिरे हुए घरों में शांति की धारा बहाया करती थी।

राधा के हाथों से ही चींटियां, पक्षी गण, और अनेक कीट आदि वारि और अनाज के दाने प्राप्त किया करते थे। भाव है कि राधा इनका भी ध्यान रखती थी। इससे स्पष्ट है कि उनकी दयापूर्ण दृष्टि कीट आदि में भी देखी जाती थी। उनकी दयालुता इतनी बढ़ी हुई थी कि वे पत्तों को भी विना आवश्यकता के नहीं तोड़ती थी। इस प्रकार राधा अपने सच्चे हृदय से प्राणियों की अभिवृद्धि में रुचि लिया करती थीं।

वे छाया······ ······हो गई थीं ॥४९ से ५१॥

शब्दार्थ—सुजन=सज्जन, शासिका=शासन करने वाली, अनाथाश्रितों=अनाथ और आश्रितों, मोहावरित=मोहावृत, विस्तारतीं=विस्तार करतीं थीं।

ससंदर्भ व्याख्या—राधा की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन करते हुए हरिऔध कहते हैं—

राधा सज्जनों के सिरों पर छाया के समान शीतलता प्रदान करती थी। दुष्टों पर वे शासन करती और उन्हें दण्डित करती थीं। गरीबों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वे औषधी थीं। पीडित और कंगालों, दीनों सभी को वे हृदय से चाहती थीं। परिणामतः वे गरीबों की बहिन थी, तथा जो अनाथ और आश्रित थे उनकी जननी थी। वे पूरे ब्रज की आराध्या थीं और सम्पूर्ण विश्व की प्रेमिका थीं।

गोप और गोपियों की वियोग वेदना जितनी व्यापक और गंभीर थी, राधा भी उसी श्रेणी की दयावान तथा प्रेम से भरी हुई थीं। स्नेह की मूर्ति राधा से सभी को प्रेम प्राप्त होता रहता था। व्रज में मोह से युक्त जो अंधेरी रात्रि छाई हुई थी, राधा उसमें चांदनी के समान शोभित हुआ करती थीं। चांदनी रात के होने से जैसे अंधकार दूर हो जाता है, ठीक वैसे ही राधा के सम्पर्क और सौजन्य से मन का अंधकार दूर हो जाता था।

अन्य जो स्त्रियां कौमार्य-व्रत को धारण किए हुए थीं वे भी राधा का अनुगमन करती हुई व्रजवासियों को शांति का पाठ पढ़ाया करती थीं। राधा की आत्मिक शक्ति से, उनके स्वर्गीय गुणों से तथा शिक्षाओं से वे बालायें भी सचमुच ही राधा की छाया के समान हो गई थीं।

तो भी न आई······ ······ न होवे ।।५२ से ५४ ।।

शब्दार्थ—घटिका=घड़ी, वार=दिवस, उन्मादकर=मस्ती पैदा करने वाले, जलद-तन=श्यामल बदन, अवनिजन=पृथ्वी के प्राणियों, विश्व प्रेमानुरक्ता=विश्व-प्रेम में अनुरक्त।

ससंदर्भ व्याख्या—पूर्व संदर्भानुसार कवि कहता है कि राधा ने कृष्ण के आदर्श और संदेश के अनुरूप आचरण किया। परोपकार और लोकोपकार के निमित्त स्वयं के जीवन की भी परवाह नहीं की और अपने को विश्व के जीवन के निमित्त ही समर्पित कर डाला। किन्तु कृष्ण फिर भी प्रभावित नहीं हुए। कवि इसी संदर्भ में कहता है—

इतने पर भी व्रज में न तो वह घड़ी आई और न वे दिन ही आये, न व्रज के अन्तर्गत सुख प्रदायिनी वायु ही बही जैसी कि कृष्ण के जमाने में बहती थी। न कभी व्रजभूमि के ऊपर ऐसे बादल ही छाये जो कि अमृत की सुखद, शीतल और मधुर वर्षा करते। इतना ही नहीं कभी भी ऐसा नहीं हुआ कि कोई कोकिला भूल से भी उन्मादनकारी वाणी में बोली हो। व्रज धरा के प्राणी कृष्ण की इतनी उपेक्षा पर भी कृष्ण के कार्यों — लीलाओं को जीते जी नहीं भूल सके। कृष्ण की क्रीड़ाओं और लीलाओं को याद कर कर के सभी व्यथित होते रहे। उनके पश्चात् उनके वंशजों में श्याम के विरह की छाया विद्यमान रही। वह वियोग-पीड़ा की छाया आज भी व्रज भूमि पर अंकित है।

हरिऔध कहते हैं कि हे ईश्वर! भारत में कृष्ण के समान सच्चे प्रेमी जन्म लें और राधा जैसी पवित्र-हृदया तथा विश्व के प्राणियों से प्रेम करने वाली नारियां जन्म लें तो संसार का कल्याण हो कहना है। यह सब तो हो, किन्तु कृष्ण और राधा तथा कृष्ण व गोप-गोपियों की सी विरह जनित कोई भी घटना न घटे।

विशेष—कवि कहना यह चाहता है कि प्रेम हो, परस्पर सम्बन्ध हों, लोक कल्याण के भावों का प्रसार हो, किन्तु विरह न हो, दुख न हो, सभी सुखी रहें और आनन्द से जीवन व्यतीत करें।